भारतीय राष्ट्रवाद के विकास
की
हिन्दी-साहित्य में अभिव्यक्ति

डॉ० सुषमा नारायण एम० ए०, पी-एच० डी०

१९६६
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली—७ : : पटना—४

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास

की

हिन्दी-साहित्य में अभिव्यक्ति

[दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

डॉ० सुषमा नारायण
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग
इन्द्रप्रस्थ कालिज फॉर विमेन,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली-७ :: पटना-४

प्रकाशक :
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली-७

ब्रांच :
खजाञ्ची रोड, पटना-४

मूल्य :
बीस रुपये
(२०·००)
प्रथम संस्करण १६६६

मुद्रक :
अशोक प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली-६

परिचय

श्रीमती डा० सुषमा नारायण के "भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति" शीर्षक प्रस्तुत अध्ययन का मैं स्वागत करता हूं। मूल रूप में यह अध्ययन दिल्ली विश्वविद्यालय की डाक्टरेट उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था। वर्तमान ग्रन्थ उसी का संशोधित तथा परिवर्धित रूप है।

ग्रन्थ दो खंडों में विभक्त है (क) भूमिका-खंड तथा (ख) शोध-खंड। भूमिका खंड में राष्ट्रवाद के स्वरूप के वैज्ञानिक विश्लेषण के उपरान्त १८५७ से १९२० तक की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण के साथ उस काल के साहित्य में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का स्वरूप निरूपित किया गया है। ये प्रारम्भिक तीन अध्याय शोध खंड की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हैं।

शोध-खंड चौथे अध्याय से नवम अध्याय तक है। चौथे अध्याय में १९२० से १९३७ तक की राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है तथा पाँचवें अध्याय में इसी काल के हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का दिग्दर्शन है। आगे के तीन अध्याय (६—८) पूर्णतया मौलिक है और इनमें प्रचुर उदाहरणों की सहायता से राष्ट्रवाद के रागात्मक पक्ष, प्रभावात्मक पक्ष तथा भावात्मक पक्ष के अनेक रूपों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है अन्तिम नवम् अध्याय में इस काल के हिन्दी साहित्य में भारत के भविष्य और स्वराज्य की रूपरेखा के संबंध में पाए जाने वाले विचार संक्षेप में दिए गए हैं।

इस ग्रन्थ की कई विशेषताएँ हैं। प्रथम, मुख्य अध्ययन को प्रारम्भ करने के पूर्व सुयोग्य लेखिका ने राष्ट्रवाद के स्वरूप तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास प्रामाणिक सामग्री के आधार पर दिया है। दूसरे, शोध-खंड के निष्कर्षों का आधार उस काल के हिन्दी साहित्य का विस्तृत और गंभीर अध्ययन है। प्रचुर उदाहरण इसके प्रमाण हैं। तीसरे, लेखिका ने निष्कर्ष अत्यंत संतुलित रूप में दिए हैं—भावुकता से अपने को दूर रक्खा है।

विषय से संबंधित प्रचुर विचार सामग्री प्रस्तुत करने के लिए मैं सुयोग्य लेखिका को हार्दिक बधाई देता हूं। मुझे विश्वास है कि भारतवर्ष के इस काल के राजनीतिक तथा साहित्यिक इतिहास में दिलचस्पी रखने वाले पाठक ग्रंथ को अत्यंत रोचक, ज्ञानवर्धक तथा उपयोगी पावेंगे। इस प्रकार के अन्य अध्ययनों के लिये प्रस्तुत रचना आदर्श स्वरूप है।

धीरेन्द्र वर्मा

जबलपुर,

प्राक्कथन

सन् १९२० से १९३७ के साहित्य में राष्ट्रवाद के विकास की अभिव्यक्ति का स्वरूप-विश्लेषण इस शोध-प्रबंध का विषय है। निःसन्देह भारतेन्दु युग से ही हिन्दी साहित्यकार युगीन राष्ट्रीय चेतना के प्रतिबिंबन के प्रति सजग एवं सचेष्ट हो गए थे और द्विवेदी युग तक राष्ट्रीयता हिन्दी-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई थी। लेकिन सन् १९२० के पश्चात् समग्र हिन्दी-साहित्य पर राष्ट्रवाद की स्पष्ट छाप लग गई। इसका कारण यह हैं कि भारतीय इतिहास का यह विशेष काल राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गांधी जी ने सन् १९२० में राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश कर देश-जीवन की रग-रग में राष्ट्रवाद का संचरण कर दिया था। उन्होंने भारत देश को ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व को युग-युग के लिए राष्ट्रवाद का आदर्श रूप प्रदान किया। आलोच्य काल के हिन्दी साहित्य-स्रष्टा भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहे। उन्होंने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रवाद के सभी अंगों की सशक्त एवं पुष्ट अभिव्यक्ति की, यह इस शोधप्रबन्ध से स्पष्ट है। हिन्दी-साहित्य के विविध रूपों एवं अनेक कला-शैलियों में राष्ट्रवाद की जितनी कलात्मक अभिव्यक्ति इस विशेष युग में की गई, वह अपूर्व है।

अब तक राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य का अनुशीलन नहीं हुआ था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से श्रीमती कीर्तिलता ने 'भारत का स्वतन्त्रता प्राप्ति-संबंधी आन्दोलन और हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव - १८८५-१९४७ ई०' विषय पर शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति का आन्दोलन राष्ट्रवाद का लक्ष्य मात्र था, अतः इस विषय का संबंध राष्ट्रवाद के विकास के सम्यक् विवेचन से नहीं है। उसी विश्वविद्यालय में शैलकुमारी गुप्त ने 'हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीय भावना' विषय लेकर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया है, किन्तु उसमें आदिकाल से भारतेन्दु युग का ही समय लिया है। अतः यह आवश्यक था कि सन् १९२०-१९३७ जैसे महत्वपूर्ण काल पर कार्य किया जाता।

विषय की स्पष्टता के लिए प्रथय अध्याय में ही राजनीति-शास्त्र के मान्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर राष्ट्रवाद का स्वरूप-विश्लेषण किया गया है। इस प्रबंध की पृष्ठभूमि सन् १८५७ से १९२० ई० तक मानी गई है क्योंकि सन् ५७ के विद्रोह के पश्चात् ही भारत पूर्णतया अंग्रेजी साम्राज्यवाद के

अधीन हुआ और हिन्दी-साहित्य में भी आधुनिक काल का सूत्रपात हुआ। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के विकास की अभिव्यक्ति को अधिक स्पष्ट करने के लिए इस युग का इतिहास देना आवश्यक था, जिसकी सामग्री के लिए इतिहास के मान्य विद्वानों के ग्रन्थों से बहुत सहायता मिली है। इस प्रकार ऐतिहासिक और तात्विक विवेचन के अतिरिक्त जितना भी साहित्यिक विवेचन-विश्लेषण है, वह प्रायः मेरा अपना ही मौलिक प्रयास है।

कविता, नाटक, उपन्यास एवं कहानियों से संबंधित सामग्री अत्यधिक मात्रा में मिल जाने के कारण निबंध-साहित्य को इसके अन्तर्गत नहीं लिया जा सका है। इसके अतिरिक्त हिन्दी-साहित्य के प्रतिनिधि लेखकों की प्रतिनिधि रचनाओं का ही आधार ग्रहण किया है।

अन्त में, गुरुवर आचार्य डॉ० नगेन्द्र के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करती हूं, जिनके सम्यक् निर्देशन के फलस्वरूप यह कठिन कार्य पूर्ण हुआ। अपने पूज्य पिता प्रोफ़ेसर डॉ० विश्वेश्वर प्रसाद अध्यक्ष, इतिहास-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के लिये मैं शब्दों में कुछ भी नहीं कहना चाहती, क्योंकि पितृ-हृदय सदा सन्तान-उन्नति चाहता है, मेरी उन्नति के लिए उनका आशीर्वाद आजीवन मेरे साथ है। जबलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० धीरेन्द्र वर्मा एवं रायपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० बाबूराम सक्सेना की अमूल्य सहायताओं के प्रति भी मैं विशेष आभारी हूं और अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूं। इस शोध-प्रबन्ध के प्रकाशन में डॉ० देवराज चानना, रीडर संस्कृत-विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय तथा डॉ० ओम्प्रकाश शास्त्री की सहायता के प्रति धन्यवाद देना मेरा कर्त्तव्य है। अन्य उन सभी कलाकारों एवं समालोचकों के प्रति आभार प्रकट करती हूं जिनकी कृतियों से इस प्रबन्ध में सहायता मिली है।

हिन्दी-विभाग,
इन्द्रप्रस्थ कालिज फ़ार विमेन
दिल्ली।

सुषमा नारायण

ममतामयी माता

एवं

वात्सल्यमय पिता की—

विषय-सूची

भूमिका-खण्ड

: १ :

राष्ट्रवाद का स्वरूप-विश्लेषण

राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की मान्य परिभाषायें :

सभ्यता तथा बुद्धि के निरन्तर विकास ने मानव को कुटुम्ब, ग्राम तथा छोटे राज्य की सीमा के पार देश के विस्तृत भूखंड के मोह-पाश में बांध दिया है। राष्ट्रीय भावना से युक्त देश को ही एक राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। राष्ट्र के प्रति तीव्र एवं गहन अपनत्व तथा ममत्व की भावना में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ है। यद्यपि वर्तमान युग में व्यक्ति का व्यक्तित्व राष्ट्र अथवा राष्ट्रीयता की दीवार को तोड़कर अन्तर्राष्ट्रीयता के क्षेत्र में आना चाहता है, तथापि राष्ट्रीयता की भावना इतनी प्रबल एवं आकर्षक है कि "वसुधैव कुटुम्बकम्,' की भावना अप्राप्य आदर्श मात्र रह गई है। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की विभिन्न मान्य परिभाषाओं का विवेचन विषय की स्पष्टता के लिए आवश्यक है।

हैंस कोहन् ने अपनी पुस्तक 'आइडिया आफ नेशनलिज्म' में राष्ट्रवाद की भावना को १८वीं शताब्दी से अधिक पुराना नही माना है।[1] तत्कालीन यूरोप की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने राष्ट्रवाद की उत्पत्ति तथा विकास में महत्वपूर्ण योग दिया था। इस काल के पूर्व न केवल यूरोप वरन् समस्त भूखंड छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था, जिसमें सामंतवादी समाज-व्यवस्था प्रचलित थी। राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से ये छोटे-छोटे राज्य स्वतन्त्र तथा आत्मनिर्भर होते थे। सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में आवद्ध करने वाली शासन-सत्ता का अभाव था— अर्थात्, राष्ट्रवादी राज्यों का सूत्रपात नहीं हुआ था। राज्य के भीतर तथा अन्य देशों से व्यापार होता था, किन्तु वड़ी-बड़ी मिलें तथा बड़े बाजार नहीं थे। मध्यम वर्ग अथवा जिसे शिक्षित वर्ग भी कहा जा सकता है, और जिसका उस समय उद्भव हो रहा था, इस सामंतवादी समाज-व्यवस्था का विरोधी था। उसने छोटे-छोटे राज्यों को मिटा कर देश में एक शासन सत्ता की नींव डालनी चाही। देशीय प्रति-

---

1. Nationlism as we understand it is not older than the second half of the eighteenth Century."

Hans Kohn—Tha Idea of Nationalism—P. 3.
1956 edition.

बन्धों के उन्मूलन के साथ-साथ स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के आधार पर बूर्ज़्वा—क्रान्तिकारी वर्ग ने संघर्ष प्रारम्भ किया। यातायात और आवागमन के साधन बढ़े, नवीन आविष्कारों का जन्म हुआ, बड़े बाजार खुले तथा इन सबके समन्वय में देश एक शृंखला में बंध गया। व्यापार की प्रगति ने उत्पादन की अभिवृद्धि की तथा अन्य देशों में इसकी खपत के प्रयत्न किये जाने लगे। इसके लिए राज्य-सहयोग तथा सैन्यशक्ति की भी आवश्यकता हुई। इस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं ने नवीन समाज-व्यवस्था की ओर इंगित किया, और पुरानी समाज-व्यवस्था के पैर उखड़ने लगे। सम्पूर्ण देश का जनसमुदाय नवीन व्यवस्था के कारण अधिक निकट सम्पर्क में आया और, परिणामस्वरूप, एक देश के निवासियों का ध्यान अपने इतिहास, सभ्यता, संस्कृति तथा भाषा की समानता या एकता की ओर गया। यद्यपि जनजीवन सामंतवाद के चंगुल से मुक्ति पाकर भी पूंजीवादी-व्यवस्था की कठोर जंजीर में जकड़ गया था, राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता का पूर्ण विकास हुआ। इस नवीन समाज-व्यवस्था में ही राष्ट्रवाद की भावना का उदय हुआ जिसका ध्येय एक देश—एक राष्ट्र था। वस्तुत: राष्ट्रवाद की जड़ में गौरवमय अतीत की स्मृति है, पर उसकी दृष्टि वर्तमान पर केन्द्रित है, जिसमें भविष्य के सुन्दर स्वप्न संजोये रहते हैं। हैंस कोह्न ने इसी कारण राष्ट्रवाद की उत्पत्ति मस्तिष्क की एक विशेष दशा बतलाई है।[1] हैंस कोह्न की भांति जी० पी० गूच ने भी राष्ट्रवाद का सूत्रपात १९वीं शताब्दी में फ्राँस की क्रान्ति से माना है।[2] इन विद्वानों के अनुसार फ्रांस की क्रान्ति के उपरान्त मानव-समुदाय में राष्ट्रवाद की भावना अथवा राष्ट्रीय-चेतना का अधिक प्रचार हुआ।

राष्ट्रवाद के जन्म तथा विकास के सम्बन्ध में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जो चिनगारी आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के उलट-फेर के कारण सामंतवाद की समाज-व्यवस्था को भस्मीभूत करने के लिए सुलग उठी थी, उसे फ्रांस की क्रान्ति के तीव्र झकोरों ने आग की लपटों में परिणत कर राष्ट्रवाद के ज्वलंत रूप को यूरोपीय राष्ट्रों के सम्मुख रखा। १८वीं शताब्दी में फ्रांस की क्रान्ति व्यक्ति की स्वतन्त्रता का ध्येय तथा विश्वमैत्री की भावना लेकर आरम्भ हुई थी, किन्तु १९वीं शताब्दी में यह विचारधारा राष्ट्रवाद तक परिसीमित हो गई। फ्रांस में इस क्रान्ति की सफलता ने अन्य देशों में भी अपनी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, साहित्य और कला के प्रति विशेष श्रद्धा और गर्व की भावना विकसित की। अनेक राष्ट्र फ्रांस की देखा-देखी अपनी संस्कृति, कला, इतिहास, साहित्य आदि राष्ट्र की इकाई को

---

1. 'Nationalism is first and foremost a State of mind.' Hans Kohn.

The Idea of Nationlism—P. 10, 11.

2—'Nationlism is the child of French Revolution.'
G. P. Gooch—Studies in Modern History P. 217.
London—Longmans,

महानता देने वाले तत्वों की श्रेष्ठता-प्रतिपादन के हेतु प्रयत्नशील हुए। अन्य यूरोपीय देशों, विशेषतया जर्मनी तथा इटली, में पितृभूमि के प्रति गर्व की भावना जागृत हुई और उनका जन-समाज अपने राष्ट्र की उन्नति एवं एकता की भावना को सुदृढ़ करने के लिए कटिबद्ध हो गया। परन्तु अपने राष्ट्र के अंगों में एकता तथा सौहार्द की भावना की अभिवृद्धि में अन्य राष्ट्रों के प्रति उपेक्षा की भावना भी निहित थी। पुनः जब पश्चिमी जगत् की राष्ट्रवादी लहरें एशिया में भूखंड पर भी तरंगित होने लगीं तब पराधीन देशों में भी जागृति का मानवसंदेश प्रवाहित हुआ। वहाँ विद्रोह व आन्दोलन प्रारम्भ हुए तथा अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के समान स्तर तक पहुंचने के लिए प्राणों की बाजी लग गई।

१९वीं शताब्दी में 'धर्म की एकता' राष्ट्रीयता का आधारभूत सिद्धान्त मानी जाती थी, किन्तु समय के साथ विचारों में परिवर्तन हुआ और धर्म के अतिरिक्त अनेक नवीन सिद्धान्तों को भी मान्यता दी गई। इनमें प्रधान भूमि, शासन तथा संस्कृति की एकता है। भूमि की एकता, अर्थात् राष्ट्र का स्वतन्त्र निजी भूभाग, और राजनैतिक तथा सांस्कृतिक एकता के सम्मिलन में राष्ट्र का स्वरूप निर्मित होता है। भौगोलिक एकता राष्ट्रीयता का वाह्य आकार कहा जा सकता है। राजनैतिक एकता प्राण, सांस्कृतिक एकता मानस और आर्थिक एकता शक्ति। इनमें से एक के भी अभाव में राष्ट्र का जीवित रहना दुष्कर हो जाता है।

डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'फन्डामैंटल यूनिटी आफ़ इंडिया' में भारतवर्ष की एकता के सम्बन्ध में लिखते हुए, राष्ट्रीयता के उदय के लिए भौगोलिक एकता को प्राधान्य दिया है। उनका कथन है कि जिस प्रकार शरीर के अभाव में कपड़ों का कोई अस्तित्व ही नहीं हो सकता, उसी प्रकार स्थायी भूमि के अभाव में राष्ट्रीयता की भावना निरर्थक हैं। निःसन्देह, इतिहास ने यह स्पष्ट कर दिया है कि निश्चित भौगोलिक सीमा के अभाव में राष्ट्र की कल्पना स्वप्नमात्र है। राष्ट्रीयता की भावना अथवा राष्ट्र बनाने की इच्छा को देश की कठोर भूमि साकार रूप प्रदान करती है। कतिपय विद्वान भौगोलिक आधार को प्रधानता नहीं देते हैं, तथा अपने पक्ष के समर्थन के लिए यहूदी लोगों का उदाहरण देते हैं। किन्तु यहूदियों की राष्ट्रीयता में भी भौगोलिक एकता की तीव्र इच्छा निहित थी। उनकी राष्ट्रीयता का आधार भी सीमाओं से घिरा हुआ एक भूखंड था, जहाँ वे अपनी संस्कृति, सभ्यता, भाषा आदि का विकास कर सकते। स्थायी भूमि प्राप्ति के अथक प्रयत्न तथा संघर्ष के पश्चात् अब इस्राइल में उनको अपना देश मिल गया है। वर्तमान युग में धर्म,

---

1. A form of corporate sentiment of peculiar intensity, imtinacy and dignity related to a definite home-country.

   Zimmer.

2. A common memory and a common ideal—these are mre than a blood—make a nation, Burn

जाति, भाषा, संस्कृति की एकता राष्ट्रवाद के लिए अनिवार्य रूप में अपेक्षित नहीं है, किन्तु भू-भाग की अवहेलना नहीं की जा सकती।

ज़िमर ने राष्ट्रीयता की जो परिभाषा दी है, उसके अनुसार राष्ट्रीयता किसी एक देश से सम्बद्ध समष्टि-चेतना का नाम है जिसमें विशेष प्रकार की तीव्रता अन्तरंगता तथा गौरव की भावना सन्निहित रहती है।[१] बर्न का मत है कि—राष्ट्र के निर्माण के लिए रक्त की एकता से अधिक महत्वपूर्ण तत्व ध्येय की एकता और ऐतिहासिक समानता है।[२] मिल के अनुसार राष्ट्रीयता के चार मुख्य तत्व हैं :—

१—पूर्वजों की एकता
२—भौगोलिक एकता
३—भाषा और जाति की एकता
४—राजनैतिक-लक्ष्य की एकता

रैम्ज़ै म्योर ने अपनी पुस्तक 'नेशनेलिज्म' में राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में इन तत्वों का उल्लेख किया है—जाति की एकता, सांस्कृतिक एकता, शासन की एकता, आर्थिक एकता, राजनैतिक लक्ष्यों की एकता तथा महापुरुषों की जीवन गाथाओं व विजय गानों की मान्यता आदि। उन्होंने इन तत्वों के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया है कि एक या अनेक के संयोग से राष्ट्रीयता सम्भव है। प्रोफेसर मजूमदार के अनुसार वह जनसमूह जो यह अनुभव करता है कि उसका एक निजी सामाजिक-व्यक्तित्व है, अपना साहित्य है, अपनी भाषा है, एक ही ध्येय है, एक से रीति रिवाज हैं और जो अन्य राष्ट्रों से इन विशेषताओं के कारण एक भिन्न अस्तित्व रखता है—एक राष्ट्र का निर्माण करता है। उसकी निजी एकता और अन्य राष्ट्रों से भिन्नता की भावना ही राष्ट्रवाद है। प्रोफेसर हेज़ ने राष्ट्रवाद की परिभाषा दी है—आंशिक रूप में राष्ट्रवाद स्वदेश प्रेम है, परन्तु मुख्यतया राष्ट्रवाद अपने राष्ट्र के प्रति गर्व और अन्य राष्ट्रों के प्रति उपेक्षा की भावना है। यह भावना इस विश्वास से भरी हुई होती है कि उसके राष्ट्र के सदस्यों के कार्य सदैव उचित होते हैं।[१] शूमैन ने अपनी पुस्तक "इन्टरनेशनल पालिटिक्स" में लिखा है कि 'राष्ट्रवाद, जातिवाद का विकसित रूप है जिसमें एक वृहद भूखंड में बसने वाली जाति-विशेष की सामाजिक एकता की सीमायें, भाषा और संस्कृति की सीमाओं से एकाकार रहती है।[१] डा० सुधीन्द्र के अनुसार 'राष्ट्रवाद एक व्यक्तिगत नहीं समष्टि-

---

1. "Nationalism is an advanced form of ethnocentrism in which the limts of social cohesion are coteminous with the boundrf the language and culture of people in a large community inhabiting extensive territories,"

by Frederick L. Schuman—International politics—P. 424. Fourth edition ; New York.

गत (सामूहिक) चेतना है—जिसकी दृष्टि समूह या सर्व के अभ्युदय और प्रगति पर है। और वह प्रगतिशील तत्व भी है। देशभक्ति राष्ट्रीयता का सनातन स्वरूप है और राष्ट्रवाद है और राष्ट्रवाद उसका प्रगतिशील (ऐतिहासिक) स्वरूप है।[1]

राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद की विभिन्न मान्य परिभाषाओं का सूक्ष्म विवेचन करने पर, उसके विकासशील तत्वों के सम्बन्ध में निश्चित मत स्थापित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। प्रायः सभी विद्वानों ने राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता की परिभाषा, तथा उसके तत्वों का निरूपण अपने ढंग से किया है। ज़िमर की परिभाषा में, राधाकुमुद मुखर्जी की भाँति, निश्चित भौगोलिक सीमा उस राष्ट्रीयता का आवश्यक तत्व है। ज़िमर ने राष्ट्रीयता की परिभाषा की परिधि को छूने का प्रयास किया है; क्योंकि, राष्ट्रीयता के लिये केवल भौगोलिक उपकरण पर्याप्त नहीं हैं जब तक विशेष रूप से राष्ट्र बना कर रहने की इच्छा न हो। राष्ट्र की संज्ञा से विहीन, देश के जनसमूह में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता है, तथा दो या अधिक राष्ट्रों के भी ऐसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाये जाते हैं। गौरव की तीव्रतम सामूहिक चेतना के पीछे इतिहास की एकता तथा अतीत गौरव गान भी आवश्यक तत्व हैं। बर्न ने रक्त की एकता की अपेक्षा ध्येय की एकता को अधिक महत्व दिया है। निःसन्देह, रक्त की एकता का मिलन असम्भव तथा कठिन है, क्योंकि आज सभी जातियों के रक्त आपस में इतने घुलमिल गये हैं कि रक्त की पवित्रता का मिलना नितान्त असम्भव है। इसके अतिरिक्त स्विटज़रलैण्ड के उदाहरण से इनके मत की पुष्टि हो जाती है, क्योंकि वहाँ तीन जातियों के लोग तथा तीन भाषायें हैं और फिर भी वह एक सफल राष्ट्र है। बर्न की परिभाषा तथ्य के अधिक निकट है। राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता को इस परिभाषा की कसौटी पर कसा जा सकता है।

मिल के मत का समर्थन अधिकांश विद्वानों ने किया है। पूर्वजों की एकता या ऐतिहासिक समानता राष्ट्रीयता के विकास में सहायक है, इसमें सन्देह नहीं—किन्तु अमरीका एक ऐसा राष्ट्र है जिसने इस तत्व की भी अवहेलना कर दी है। अमरीका के राष्ट्रवाद के एकमात्र तत्व—'एक शासन में रहने की इच्छा' का सिद्धान्त—अन्य राष्ट्रों द्वारा मान्य होना कठिन है, क्योंकि अन्य देशवासियों में इस प्रकार के विचार नहीं पाये जाते। भौगोलिक एकता दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है, जिसकी महत्ता सिद्ध की जा चुकी है। भाषा और जाति की एकता अवश्य महत्व रखती है, क्योंकि इसके द्वारा विचार विनिमय तथा घनिष्ठता सहज हो जाती है। ऐतिहासिक एकता तथा भाषा की समानता का अन्योन्याश्रित संबन्ध होता है। वैसे अपवाद-स्वरूप स्विटजरलैण्ड का नाम लिया जा सकता है जहाँ तीन भाषायें राष्ट्रीय कार्य-संचालन में महत्व रखती हैं। जातीय एकता की अपेक्षा एक शासन अथवा राजनैतिक लक्ष्य की एकता अधिक आवश्यक तत्व हैं। अतः मिल द्वारा निरूपित तत्व उल्लेखनीय हैं किन्तु इनमें

१—डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर। पृ० २३७ : प्रथम संस्करण

से किसी एक तत्व के आधार पर भी राष्ट्रवाद के विकास में पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है।

रेम्जै म्योर की परिभाषा इतनी विस्तृत है कि उसमें किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीयता का आधार सुगमता से ढूंढा जा सकता है। वे एक राष्ट्र को केवल इसलिए राष्ट्र मानते हैं कि उसके निवासियों का ऐसा विश्वास होता है, और उनके आपस के घनिष्ट सम्बन्ध इस विश्वास की जड़ में निहित होते हैं। निःसन्देह, लक्ष्य तथा स्वार्थों की समानता, घनिष्ठ सम्बन्ध, समष्टिगत स्वार्थ तथा सुख के लिए व्यक्तिगत-स्वार्थों का त्याग राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक हैं, किन्तु इसके लिए अन्य तत्व अप्रत्यक्ष रूप से क्रियाशील रहते हैं। रेम्जे म्योर ने राष्ट्रीयता की कोई निश्चित एवं मान्य परिभाषा नहीं दी है। प्रोफेसर मजूमदार की परिभाषा भी आवश्यकता से अधिक विस्तृत है। रीति-रिवाज अथवा रहन-सहन में समानता न होने पर भी एक राष्ट्र में राष्ट्रवाद की भावना मिल सकती है। प्रोफेसर हैज की परिभाषा में राष्ट्रवाद का अधिक विस्तृत एवं उज्ज्वल रूप नहीं मिलता। यद्यपि राष्ट्रवाद का जन्म, फ्रांस में, राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना से हुआ था, किन्तु आज अन्य राष्ट्रों के प्रति उपेक्षा की भावना उपयुक्त नहीं समझी जाती। सच्चे राष्ट्रवाद में अपने राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना के साथ अन्य राष्ट्रों के सम्मान का उच्च आदर्श रहता है। यह तो एक राष्ट्र के जन-समुदाय को कस कर बांध रखने की शृंखला मात्र है जिससे वह छिन्न, भिन्न न हो जाये।

शूमैन की परिभाषा भी सीमित और संकुचित है। वर्तमान युग का राष्ट्रवाद जातिवाद का विकसित रूप नहीं कहा जा सकता। राष्ट्रवाद विशिष्ट सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों का फल है, तथा उसे हम मानव-बुद्धि की प्रगति का परिणाम कह सकते हैं। जातिवाद अथवा जातीय एकता तो उसका एक तत्व मात्र बन सकता है। भाषा तथा संस्कृति की एकता भी आवश्यक नहीं है। डा० सुधीन्द्र ने राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता का सूक्ष्म विवेचन न करके, स्थूल रूप से समझाने का प्रयत्न किया है।

एक देश 'देश' की संज्ञा से ऊपर उठकर 'राष्ट्र' की संज्ञा को तभी प्राप्त करता है, जबकि उसके निवासियों में कुछ सामान्य विशेषताओं के आधार पर घनिष्ट संबंध स्थापित हो जाता है, तथा वे सब अपने को देश की इकाई के रूप में देखते हैं। जब एक निश्चित सीमा में आवद्ध भूभाग के लोगों का इतिहास एक होगा—उनमें अतीत गौरव-गाथाओं के प्रति गर्व होगा, तथा भविष्य में अपने राष्ट्र को सुदृढ़ करने वाली योजनाओं के प्रति उत्साह होगा—तभी राष्ट्रीयता की भावना संभव हो सकेगी। एक राष्ट्र के जन अपनी राष्ट्रीय भावना को साहित्य, शिल्पकला, चित्रकला, संगीत आदि कला-माध्यमों के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं, जिससे अन्य राष्ट्र उनकी राष्ट्रीयता से परिचित हो सकें। इस प्रकार राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध केवल बाह्य शरीर अथवा जड़ भूमि मात्र से न होकर, आन्तरिक होता है। अन्त में यह

स्पष्ट है कि राष्ट्रवाद के अनेक तत्व हैं जिनमें से एक या अनेक के संयोग से इसका उद्भव एवं विकास होता है। ये तत्व हैं—जाति की एकता, धर्म की एकता, भाषा की एकता, इतिहास की एकता, सामान्य स्वार्थ की एकता आदि। इनके केन्द्र में एकता बिन्दु रूप में अवस्थित रहती है। नाज़ी लोग आकृति की समानता अथवा शारीरिक समानता पर बल देते थे ; अंग्रेजों के लिए भाषा, इतिहास तथा संस्कृति की एकता राष्ट्रीयता के लिये आवश्यक है; अमरीका-निवासियों के लिये एक शासनाधिकार में रहने की इच्छा ही पर्याप्त है। अतः कदाचित् ही संसार के कोई दो राष्ट्र-राष्ट्रवाद के समान तत्वों के विषय में एकमत हों।

आज विश्व-जीवन की शांति के लिए नितांत आवश्यक है कि राष्ट्रवाद के शुद्ध रूप की स्थापना की जाये। यदि वह उग्र रूप ले लेता है तो विश्व-शान्ति भंग होने की सम्भावना बढ़ जाती है। राष्ट्रवाद को जातीयता, धर्म, साम्प्रदायिकता संकीर्णता, स्वार्थपरता से ऊपर उठकर, राष्ट्र की सीमा में विश्वास रखते हुये भी मानव-कल्याण की भावना से अभिप्रेरित होना चाहिये। गांधीजी ने राष्ट्रवाद का जो रूप देश को दिया था वह अत्यन्त व्यापक, उदार तथा प्राणिमात्र के कल्याण की भावना से परिपूर्ण था। उनके सिद्धान्तों का विवेचन विस्तार के साथ शोध खंड के अन्तर्गत किया गया है।

राष्ट्रवाद, देशभक्ति, जातिवाद अथवा सम्प्रदायवाद से भिन्न है प्रायः इन शब्दों को एक में मिलाने का प्रयत्न किया जाता है। अतः इनका अन्तर स्पष्ट कर देने से राष्ट्रवाद का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

राष्ट्रवाद और देशभक्ति

भक्ति का क्षेत्र, भावना अथवा हृदय है तथा वाद का सम्बन्ध बुद्धि से है। अतः देशभक्ति, देश के प्रति एक प्रकार का अनुराग है और राष्ट्रवाद मस्तिष्क के तर्क से उत्पन्न विचार। राष्ट्रवाद के मूल में देशभक्ति बीज रूप में सुरक्षित रहती है। अनेक अन्य प्रकार की भक्ति की भांति देशभक्ति भी देश की रज के प्रति भक्ति की भावना है। प्रारम्भ में मनुष्य की भक्ति तथा ममत्व की भावना जन्मभूमि तक सीमित थी किन्तु शनैः शनैः उसका विस्तार राज्य की सीमा में बढ़ा। शिक्षा के प्रसार, तथा यातायात की सुविधाओं के साथ मनुष्य का परिचय एक बड़े भूखंड के अन्य भागों से भी हुआ। सामान्य विशेषताओं, रीति-रिवाज और संस्कृति की एकता के आधार पर आपस में सम्बन्ध स्थापित हुये। इसी कारण आज देशभक्ति की भावना जिस विस्तृत रूप में संसार के सम्मुख आयी है, वैसी इसके पहले कभी न थी। आज हम अपने पूरे देश या राष्ट्र को जन्मभूमि की संज्ञा देते हैं। जन्मभूमि का अर्थ स्वदेश है, जिसके प्रति रागात्मक वृत्ति सजग रहती है। सामन्तवादी समाज-व्यस्था में व्यक्ति की भक्ति-भावना के क्षेत्र केवल छोटे-छोटे राज्य थे। उनकी देशभक्ति शासक के प्रति मोह तक ही सीमित थी।

देशभक्ति अथवा राष्ट्रभक्ति का मूलमन्त्र है—हमारा देश, हमारा राष्ट्र, अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ, सुन्दर तथा समृद्ध है। जार्ज बर्नर्डशा ने कहा है कि 'राष्ट्रभक्ति में ऐसा दृढ़ विश्वास होता है कि जिस देश में जन्म हुआ है वही देश संसार में श्रेष्ठ है। डा० राधाकुमुद मुखर्जी के मत में भारत में जन्मभूमि के प्रति भक्ति तथा स्वदेश की भावना वैदिक काल से पायी जाती है—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी—जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् है, मातृभूमि के सम्मुख स्वर्ग-सुख भी त्याज्य है। विष्णु पुराण में भारत-भूमि के प्रति महान् भावना मिलती है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।

बाल्यावस्था में जो स्नेह, श्रद्धा, भक्ति अपने माता-पिता, कुटुम्बीजन, तथा आसपास के वातावरण के प्रति जागृत होती है। वही अवस्था बुद्धि के विकास के साथ कालान्तर में देश के प्रति भक्तिभाव में परिणत हो जाती है। देश की वन्दना, गौरवगान, जयजयकार, जागरण और अभिमान के गान देशभक्ति के विभिन्न पक्ष हैं। राष्ट्र अथवा राष्ट्रवाद के अभाव में भी देशभक्ति वर्तमान रह सकती है।[1] अतः राष्ट्रीयता से देशभक्ति का मौलिक अन्तर है। इन शब्दों को एक अर्थ में प्रयुक्त करना असंगत है।

राष्ट्रवाद और जातिवाद

राष्ट्रवाद, सम्प्रदायवाद, साम्राज्यवाद, व्यक्तिवाद, समष्टिवाद आदि विभिन्न वादों क सदृश जातिवाद को १९वीं शताब्दी में महत्व दिया गया। एक जाति के व्यक्तियों के संगठन में इसका आविर्भाव हुआ। इसका प्रमुख सम्बन्ध शरीरशास्त्र से है अर्थात् इसने आकृति, वर्ण तथा रक्त के आधार पर समस्त संसार को अनेक जातियों उपजातियों में विभाजित किया है। इसमें अपनी जाति तथा वर्ण के व्यक्तियों के अभ्युदय एवं प्रगति की शुभकामना वर्तमान रहती है।

जातिवाद तथा राष्ट्रबाद में विशेष अन्तर है। राष्ट्रवाद जाति, वर्ण, रक्त भेद को भुलाकर राष्ट्र के कल्याण की भावना से अभिप्रेरित होता है। रक्त की एकता अथवा जाति की एकता राष्ट्रवाद की पुष्टि में सहायक एक तत्व मात्र बन सकती है। कदाचित् इसी कारण शूमैन ने राष्ट्रवाद को जातिवाद का विकसित रूप कहा है। किन्तु यह नितांत आवश्यक तत्व भी नहीं है जैसा कि राष्ट्रीयता की मान्य परिभाषाओं के विवेचन में सिद्ध किया जा चुका है। वस्तुतः आज के अधिकांश राष्ट्रों की राष्ट्रीय भावना के पीछे केवल जातिवाद की भावना नहीं है।

१—'देशभक्ति जन एकता और जन संस्कृति राष्ट्र के तीन पार्श्व हैं—परन्तु देशभक्ति आधारभूत है; उसके बिना 'राष्ट्रीयता' की कल्पना नहीं की जा सकती। डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर : पृ० २३६

राष्ट्रवाद और सम्प्रदायवाद

कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों को कट्टरता के साथ ग्रहण करने वाले जनसमुदाय को सम्प्रदाय की संज्ञा प्रदान की जाती है। राजनैतिक आर्थिक, सामाजिक, स्थूल या सूक्ष्म मतभेदों के आधार पर छोटे-बड़े सम्प्रदायों की नींव पड़ती है। एक देश या राष्ट्र में सैद्धान्तिक विभिन्नता के आधार पर निर्मित छोटे-मोटे अनेक सम्प्रदाय मिल सकते हैं। धर्म, संस्कृति, तथा आचार-विचार में समझौता न हो सकने के कारण कभी कभी सम्प्रदाय बड़ा उग्र रूप धारण कर लेते हैं। विशेषतया धार्मिक मतभेदों के आधार पर ऐसे सम्प्रदायों का निर्माण होता है। भारत में सम्प्रदायवाद अधिक लोकप्रिय रहा है। धर्म क्षेत्र में केवल नाममात्र के मतभेदों को कारण मान कर नवीन सम्प्रदायों का सृजन कर लेना अति साधारण बात थी। इससे मनोवृत्ति अधिक संकुचित हो गई। भारत देश के विभाजन का प्रमुख कारण यही सम्प्रदायवाद रहा है जिसका मूलाधार धार्मिक संकीर्णता था।

राष्ट्रवाद तथा सम्प्रदायवाद दोनों ही मनुष्य के मस्तिष्क की उपज हैं लेकिन राष्ट्रवाद का जन्म अनुकूल परिस्थितियों में हुआ और सम्प्रदायवाद का प्रतिकूल परिस्थितियों तथा मतभेदों में। मतभेद तथा साम्प्रदायिकता, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता अथवा राष्ट्रवाद के विकास में अवरोधक हैं। राष्ट्रवाद राष्ट्र की एकता तथा विशिष्टता की समतल भूमि पर आधारित है—भिन्नता में अभिन्नता, भेदों में अभेद का इच्छुक है। सम्प्रदायवाद अभिन्नता से भिन्नता अभेद से भेद, एकता से अनेकता की ओर जाने की प्रेरणा देता है और राष्ट्र के एकत्व को छोटी-छोटी साम्प्रदायिक टुकड़ियों में विभक्त करने में विश्वास रखता है। राष्ट्रवाद की अपेक्षा सम्प्रदायवाद अधिक सीमित, संकुचित तथा संकीर्ण है। प्रायः सम्प्रदायवाद राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद की भावना पर कुहरा बन कर छा जाता है जिससे उसका शुद्ध रूप स्पष्ट दृष्टिगत नहीं होता। कभी-कभी तो सम्प्रदायवाद की आंधी राष्ट्रवाद की सशक्त जड़ों को उखाड़ने में भी समर्थ हो जाती है और राष्ट्रीय एकता को छिन्न भिन्न कर पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ देती है। भारत का इतिहास इसका साक्षी है। संकीर्ण सम्प्रदायवाद राष्ट्र, राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद के लिए अमृत की अपेक्षा गरल का ही कार्य करता है किन्तु विरोधाभास यह है कि राष्ट्रवाद के भीतर ही सम्प्रदायवाद पनपता है। अन्त में यह कहा जा सकता है कि सम्प्रदायवाद तथा राष्ट्रवाद में अन्तर ही नहीं विरोध भी है।

राष्ट्रवाद और साम्यवाद

राष्ट्रवाद तथा साम्यवाद, दोनों ही व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि में विश्वास रखते हैं। राष्ट्रवाद राष्ट्रीयता का प्रगतिशील रूप है। यह एक प्रकार की चेतना है जो राष्ट्र के एक व्यक्ति में स्पन्दित रहती है जिसमें एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से स्वतन्त्र एवं पृथक् अस्तित्व बना रहता है। इसमें एक निश्चित भूभाग की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक सीमाएं एक ही दिशा में चलती हैं, कहीं भी विरोध नहीं होता, किसी प्रकार की बिषमता अथवा कटुता नहीं आने पाती। स्वदेश प्रेम राष्ट्र-

वाद का आवश्यक अंग है, जिसके अभाव में राष्ट्रवाद अपूर्ण एवं विकलाँग हो जाता है। राष्ट्रवाद की अपेक्षा साम्यवाद ने जीवन को नवीन दृष्टि से देखा है । उसने भौतिक आवश्यकताओं को महत्वपूर्ण स्थान देकर, उसे सभी परिवर्तनों का मूल कारण माना है। साम्यवाद ने राजनैतिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साँस्कृतिक, साहित्यिक अर्थात् जीवन की समस्त प्रणालियों को एक बार फिर से छिन्न भिन्न करके नवीन ढंग से सजाने का प्रयत्न किया है। उसने आज तक चली आती हुई व्यवस्था को हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा जड़ से उखाड़ फेंकने का संकल्प ले रखा है। साम्यवाद कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह राज्य क्रान्ति सन् १९१७ में रूस में प्रारंभ हुई थी। इसका मूल सिद्धान्त है वर्गहीन समाज की स्थापना, व्यक्तिमात्र की स्वतन्त्रता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर पग बढ़ाना। यह संसार की मानवता को राष्ट्रीयता, रक्त, जाति, वर्ग अथवा अन्य छोटी छोटी सीमाओं में बाँटने में विश्वास नहीं रखता। पूंजीवाद की प्रतिक्रिया-स्वरूप इसका जन्म हुआ था अतः उसे मिटा कर वर्गहीन समाज की स्थापना इसका एकमात्र लक्ष्य है। इसका विचार है कि मजदूर शासन सत्ता की स्थापना की जाये। तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्व में समानता के आधार पर कार्यक्रम प्रसारित हो। साम्यवादी हिंसात्मक क्रान्ति का चक्र तब तक चलाना चाहते हैं जब तक समाज सच्चे अर्थों में जनकल्याणकारी, जनस्वतन्त्रता का पोषक, राज्य-विहीन, अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य तथा विद्वेष की भावना से रहित न हो जाये।

साम्यवाद एक सुन्दर स्वप्न है जिसे वास्तविकता में परिणत करना अथवा मूर्त्त रूप प्रदान करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मनुष्य के स्वभाव अथवा मनोरचना से भी इसके सिद्धान्तों का मेल नहीं हो पाता। इसके अनुसार सम्पूर्ण समाज में दो प्रमुख वर्ग हैं—शोषक और शोषित, पूंजीपति और श्रमिक। इसके विपरीत राष्ट्रवाद मनुष्य की अलग-अलग श्रेणियां नहीं बनाता। तथा उसका मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्ति के साथ भी सहज ही सामंजस्य हो जाता है। इसके अस्तित्व में साम्यवाद की उपस्थिति असंभव है और साम्यवाद में राष्ट्रवाद की। परन्तु आज के सभी साम्यवादी राष्ट्र अपनी निश्चित भौगोलिक सीमाओं में घिरे हैं और अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर पग बढ़ाने में असमर्थ हैं। राष्ट्रीय सीमा में आबद्ध साम्यवादी राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास में बाधक हैं। वैसे साम्यवाद का आदर्श राष्ट्रवाद की अपेक्षा अधिक उच्च, उदात्त एवं महान् है। वह तो राष्ट्रवाद के आधारमूल-तत्वों—जाति, रक्त, भाषा, आचार-विचार, सभ्यता-संस्कृति, इतिहास की एकता, भौगोलिक सीमा आदि को तोड़ने में विश्वास रहता है। यदि राष्ट्रवाद एक विशिष्ट भूखंड के निवासियों की उन्नति तथा प्रगति के संयोजक तत्वों को ही महत्व देता है, अन्य भूखंडों में बसने वाले जनसमुदाय की उपेक्षा करता है, तो साम्यवाद विश्व-ऐक्य, मानवमात्र की समानता को जनकल्याण के लिए उपयुक्त समझता है।

साम्यवाद और राष्ट्रवाद में साम्य की अपेक्षा विषमता ही अधिक है। जहां राष्ट्र की मान्यता नहीं वहां राष्ट्रवाद असम्भव है तथा जहाँ अपने राष्ट्र के प्रति मोह

व ममत्व है वहां साम्यवाद कठिन है। यदि साम्यवाद अपने सच्चे अर्थों में, विशुद्ध रूप में मान्यता पाता है तो राष्ट्रवाद की भावना दूर हट जाती है। दोनों की विचारधारा व मूल दर्शन में विरोध है। राष्ट्रवाद की सीमा में साम्यवादी विचारधारा का आरोपण भ्रम मात्र है।

राष्ट्रवाद की आधुनिक विकृतियाँ

राष्ट्रवाद के साथ भिन्न भिन्न राष्ट्रों की विभिन्न सभ्यता तथा संस्कृतियाँ आई, इतिहास और गौरव गाथाओं का गान हुआ तथा राष्ट्रों के अभ्युदय व विकास की योजनाएं बनीं। इसके विकास के साथ विभिन्न राष्ट्रों में स्वार्थवश स्पर्द्धा तथा प्रतिद्वन्द्विता की मात्रा बढ़ती गई। फलतः विकृतियां आईं जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं—प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध। श्री अप्पादोराय ने अपनी पुस्तक में राष्ट्रवाद की विकृतियों पर प्रकाश डाला है। उनके मत में राष्ट्रवाद सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से, मानव के लिए अहितकर है।[1] वैज्ञानिक यातायात के साधनों के कारण विश्व के सभी भाग निकट आ गये हैं लेकिन राष्ट्रीय प्रतिबन्धों के कारण सम्पूर्ण विश्व के आर्थिक उत्पादन का मानव मात्र के लिए अधिक से अधिक उपयोग असंभव हो गया है। इनके मत में भी राजनैतिक दृष्टि से युद्ध सबसे बड़ी विकृत है, जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

स्वतन्त्र राष्ट्रों से प्रेरणा ग्रहण कर पराधीन राष्ट्रों ने भी अपने छिन्न-भिन्न अंगों को समेट कर सुदृढ़ राष्ट्र में परिणत होने के लिए क्रान्ति प्रारम्भ की। मध्यम श्रेणी के राष्ट्र उन्नत राष्ट्रों की पंगत में बैठने के लिए अपने राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों को दृढ़ बनाने लगे और उन्नत राष्ट्रों ने राष्ट्रवाद के विकृत रूप से प्रेरित होकर साम्राज्यवाद का विस्तार करने के लिए निर्बल राष्ट्रों पर आक्रमण किया। अतः इसकी प्रथम विकृति है राष्ट्र-संघर्ष जिसको इससे प्रोत्साहन मिलता है।

राष्ट्रवाद में स्वार्थ भावना अधिक प्रबल होती है। इसकी प्रबलता अन्य राष्ट्रों के लिए घृणा की भावना का संचार करती है, जिससे मानव जाति के कल्याण की अपेक्षा ध्वंस ही अधिक होता है। निरीह मानवता संकीर्ण एवं विकृत राष्ट्रवाद की चक्की में बुरी तरह पिस जाती है। प्रोफेसर हेज ने इसी कारण अपनी परिभाषा में राष्ट्रवाद को अपने राष्ट्र के प्रति गर्व तथा अन्य राष्ट्रों के प्रति उपेक्षा की भावना माना है। साम्यवाद का जन्म इसकी विकृति की प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ। विकृत राष्ट्रवाद के परिणामस्वरूप उन्नत, समृद्ध तथा शक्तिशाली राष्ट्र पराधीन राष्ट्रों के साथ बर्बर और नृशंस व्यवहार करने में तनिक भी संकोच नहीं करते।

भारत और राष्ट्रवाद

राजनीतिशास्त्र के मान्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रवाद की ग्राह्य परिभाषाओं

---

1. A. Appadorai—The Substance of Politics—P. 150, 154
Eighth Edition—Oxford University Press : 1957

की कसौटी पर यदि भारत को देखा जाय तो अंग्रेजी शासन के पूर्व यहाँ राष्ट्रवाद नहीं मिलता। १६वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में राष्ट्रीय महासभा ने जिस राष्ट्रीय कार्यक्रम का प्रचार किया उसने राष्ट्रीय चेतना के विकास में पर्याप्त सहायता पहुंचाई। भारत में इस भावना अथवा चेतना का जन्म धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक सुधारों में हुआ। अंग्रेजी शासन काल में यातायात की सुविधाओं तथा एक शासन के कारण देश की मनःस्थिति ऐसी हो सकी जिसमें सम्पूर्ण देश की उन्नति तथा प्रगति के लिए कार्य प्रारम्भ हुआ। देशवासियों का ध्यान राष्ट्रनिर्माण के अवरोधक तत्वों की ओर आकृष्ट कर उसके विकास के लिए उपयोगी वातावरण निर्मित किया गया।

भारत एक विशाल देश है जिसे स्वयं प्रकृति ने भौगोलिक सीमाएं प्रदान की हैं। उसका इतिहास, संस्कृति, साहित्य, आचार-विचार रहन-सहन अति पुरातन है। पराधीनता की बेड़ियों में कसे होने पर भी, वह निरन्तर स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करता रहा और अन्त में विदेशी दासता से मुक्ति पाकर ही निश्चिन्त हुआ। २०वीं शताब्दी से राष्ष्ट्रीय एकता तथा स्वतन्त्रता के लिए जो आन्दोलन हुए उन्हें लक्ष्य का एकता कहना चाहिए।

मिल द्वारा उल्लिखित राष्ट्रीयता के चारों तत्व आज भारत में उपलब्ध हैं—अर्थात् पूर्वजों की एकता, भौगोलिक एकता, भाषा और जाति की एकता, राजनैतिक लक्ष्य की एकता। बर्न की परिभाषा पर भी भारत की राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद खरा उतरता है। अतः भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व स्वतन्त्रता को ध्येय बनाकर राष्ट्रवाद का पूर्ण विकास हो गया था। आधुनिक हिन्दी साहित्य में इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है जो इस शोध प्रवंध का विषय है।

: २ :

राजनैतिक सामाजिक-परिस्थिति तथा राष्ट्रीय चेतना

१८५७-१९२० ई०

वैदिक एवं संस्कृत-साहित्य में आर्यावर्त्त की भौगोलिक एकता की भावना स्पष्ट है, किन्तु उसे राष्ट्रीय भावना या चेतना कहना अत्युक्ति होगा। कतिपय विद्वानों के मत में–'भारतवर्ष नाम तथा चक्रवर्ती राजा बनने की महत्वाकांक्षा राजनैतिक एकता का सूचक है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पंतजलि के महाभाष्य १५० ई० पू०), रामायण, महाभारत, वराहमिहिर की वृहत्संहिता तथा कालिदास के ग्रन्थों में भारत के अनेक भागों का वर्णन मिलता है।[1] तुर्कों के आगमन के पूर्व देश की भौगोलिक एकता के वर्णन, उसको एकसूत्र में बाँधने के प्रयत्न तथा धार्मिक एकता की भावना पाई जाती है, लेकिन देश के भिन्न भिन्न भागों में आचार-विचार, रहन-सहन तथा भाषा का अन्तर भी था। तुर्क साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् भी संपूर्ण भारत-भूमि एक शासन सूत्र में पूर्णतया न बंध सकी और अनेक स्वतन्त्र राज्य शेष रहे। इस काल में सभी शक्तिशाली शासकों ने सम्पूर्ण भारतदेश को एक छत्र के नीचे लाने के प्रयत्न किये और वे किसी अंश में सफल भी हुए, लेकिन जैसे ही केन्द्रीय शासन शिथिल होता था, देश पुनः अनेक भागों में बंट जाता था। अतः आज राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया जा रहा है, उस रूप में राष्ट्रीय भावना आधुनिक काल के पूर्व नहीं मिलती। यूरोप में भी यह भावना इसी काल की देन है।

अंग्रेजी शासनकाल से शासनिक एकरूपता, अंग्रेजी भाषा के सार्वदेशिक प्रयोग तथा यातायात की सुविधा के फलस्वरूप उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक देशवासी, एकता के सूत्र में आबद्ध हो, निकट सम्पर्क में आये, जिससे राष्ट्रीयता की नवीन चेतना का उदय हुआ। यद्यपि भारत की भौगोलिक एकता पर्वतों तथा सागरों की विशाल लहरों द्वारा सुरक्षित थी और राष्ट्र-निर्माण में सहयोगी सभी उपकरण

---

1. Radha Kumud Mukerjee –The Fundamental Unity of India–P. 17, 63, 110. 1914 Edition–Longmans Green & Co.

विद्यमान थे, किन्तु संगठन के अभाव में राष्ट्र का निर्माण न हो सका था । सहस्रों वर्षों से उपलब्ध राष्ट्रनिर्माण की आधारभूमि भौगोलिक एकता निष्प्रयोजन सी ही थी । अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने इस चेतना के उद्‌बोधन हेतु अनुकूल वातावरण तथा उपयुक्त सामग्री प्रदान की । शनैः शनैः सुप्त भारतवासियों ने जागृत हो अपनी दीन हीन दशा की ओर दृष्टिपात किया और वे विक्षुब्ध हो उठे । अतः अंग्रेजी साम्राज्यवाद बाधक के साथ साधक भी सिद्ध हुआ, क्योंकि इसी शासन काल में भारतीयों ने नव-जागृति का संदेश सुना ।

१८५७ ई० से पूर्व ईस्ट इंडिया कम्पनी के सौ वर्ष के शासन-काल में भारतीयों के साथ व्यवहार रूप में लाई गई राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक नीति के कारण देश में विद्रोह के लक्षण स्पष्ट हो रहे थे ।[१] लार्ड डलहौजी की देशी राज्यों के विलय की नीति और अवध प्रदेश का अंग्रेजी साम्राज्य में समाहार महत्वपूर्ण घटनाएं थीं जिनसे जनता की स्वाधीन भावनाओं पर कठोर प्रहार हुआ था । विदेशी शासन की शिक्षा-आयोजना, रेल-तार-डाक का प्रचार, नहरों तथा सड़कों के निर्माण आदि ने विद्रोहाग्नि प्रज्ज्वलित करने में समिधा का काम किया । देशी राज्यों तथा अवध के सिपाहियों की आजीविका छिन गई थी, वे किसी भी क्षण विद्रोह करने के लिए तत्पर बैठे थे । भारतीय नरेशों की स्वतन्त्रता के अपहरण के साथ अंग्रेजी अधिकारी वर्ग ने उन्हें अपमानित भी किया था । अतः असंतोष तथा विक्षोभ के के अतिरेक ने १८५७ ई० में विद्रोह का रूप ले लिया, जिसने हिन्दी प्रदेश में उग्रतम रूप धारण किया ।

सन् १८५७—१८८५ ई०

१८५७ ई० के विद्रोह के कारणों के संबंध में मतभेद है । अनेक पश्चिमी इतिहासकार इसे सिपाही-विद्रोह की संज्ञा देते हैं, किन्तु बहुधा भारतीय इतिहासकार इसको स्वतन्त्रता-संग्राम की ओर ले जाने वाला प्रथम सोपान मानते हैं ।[२] निःसन्देह १८५७ ई० का विद्रोह अँग्रेजी सत्ता को मिटा देने का महान् उद्योग था जिसका प्रभाव

१—अंग्रेजों का भारतीयों के प्रति व्यवहार कठोर और अमानुषिक हो चला था और पादरियों का धार्मिक प्रचार पूर्ण वेग से बढ़ रहा था । शासन में सभी सम्मानित पदों से भारतीय अलग कर दिये गये थे । भूमि-कर-व्यवस्था के नये नये काननों और परिवर्तनों से पुराने शासकीय वर्ग की स्थिति बहुत गिर गई और कृषक वर्ग पर भारी आर्थिक बोझ पड़ा ।......

डा० रघुवंशी—भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० २२

२—अंग्रेजी लेखक इस युद्ध को बग़ावत कहते हैं परन्तु यह गलत है । यह कुछ सिर-फिरे देशी नरेशों की छुटपुट बगावत नहीं थी, बलिक सामन्तवाद की अन्तिम और संगठित कोशिश थी, अपने को जीवित रखने के लिए ।

—कृष्णदास : स्वतन्त्रता संग्राम ९० वर्ष : पृ० १०

कालान्तर में स्पष्ट हुआ ।[1] इसके पश्चात् ही भारत का शासन-सूत्र ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के माध्यम द्वारा सीधा इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट के हाथ में आया । महारानी विक्टोरिया ने भारतीय जनता के असन्तोष, अविश्वास तथा विदेशी शासकों के प्रति घृणा एवं कटुभावनाओं को शान्त करने के लिए घोषणा की कि अंग्रेजी शासनान्तर्गत योग्यतानुसार भारतीय सभी पदों पर नियुक्त होंगे तथा सामाजिक एवं धार्मिक विषयों में शासकों का हस्तक्षेप नहीं होगा ।[2] देशी शासकों के विक्षोभ को शान्त करने के लिए उन्हें विश्वास दिलाया गया कि उनके राज्य, उनके वंशजों के लिए सुरक्षित रहेंगे । इस विद्रोह को राष्ट्रीय आन्दोलन न कहा जा सकता हो, फिर भी इसने आन्दोलन के बीजारोपण के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण कर दिया था और भारतीयों की विदेशी शासन से मुक्त होने की आकांक्षा स्पष्ट हो रही थी ।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा तथा शासनसूत्र का ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के अधिकार में आ जाने से विद्रोहाग्नि पर राख डालने का प्रयत्न किया गया था किन्तु यह आग अन्दर ही अन्दर धधकती रही । १८५७ के विद्रोह के पश्चात् बीस वर्षों तक ऊपरी शांति बनी रही लेकिन जनता का असंतोष तथा क्षोभ प्रच्छन्न रूप से अंग्रेजी साम्राज्यवादी स्वार्थपूर्ण नीति के कारण उग्र रूप धारण करते जा रहे थे ।

भारतीय शासन का सीधा सम्बन्ध ब्रिटिश पार्लियामेंट से हो गया था फिर भी भारतीय जनता की दशा में अधिक सुधार न हुआ, विदेशी सरकार की गति-विधि पूर्ववत् ही कठोर बनी रही । अंग्रेज सशंक दृष्टि से भारतीयों को देखते थे और भारतीय उनको घृणा की दृष्टि से। इसके फलस्वरूप अंग्रेजी सेना की संख्या में अभिवृद्धि हुई तथा सेना के कुछ विभागों में भारतीयों को स्थान न दिया गया। इसके अतिरिक्त विदेशी शासकों ने अपनी सुरक्षा की क्षुद्र भावना से प्रेरित होकर सम्पूर्ण देश का निःशस्त्रीकरण भी किया और शस्त्र-अधिनियम बड़ी दृढ़ता के साथ क्रियान्वित किया गया । समय समय पर राष्ट्रीय जीवन के निर्माण-विकास में योग देने वाले समाचारपत्रों की स्वाधीनता पर भी प्रेस-अधिनियम द्वारा बन्धन लगाया गया, जिससे जनता अपनी व्यथा की कथा कहने में भी असमर्थ हो गई। साम्राज्यवादी शोषक-नीति के कारण ग्रामीण व्यवस्था तथा गृह-उद्योगों को

१– पट्टाभिसीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिरास : पृ० ५

2—We hold ourselves bound to the native of our Indian territories by the same obligations of duties which bind us to all our other Subjects. In their prosperity wil be our strength; in their contentment our security and in their gratitude our best rewards.
Mubatma: Life of Mohan Das Karam Chand Gandhi—P. 3 Vol. 1. published dy Vithal Bhai K. Zhaveri & D. G. Tendulkar, 64, Walkeshwar Road, Bombay—6-

भारी आघात पहुँचा, कर में निरन्तर वृद्धि हुई, तथा महारानी विक्टोरिया की घोषणा के विपरीत जाति-भेद तथा रंग-भेद का विष-बीज बोया गया। आर्थिक शोषण का भीषण परिणाम था दुर्भिक्ष तथा महामारी का नग्न तांडव। जिस समय मृत्यु की विभीषिका भारतीयों के जीवन को आक्रान्त किए हुए थी, अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि देश के धन को 'दिल्ली दरबार' तथा अफगान युद्ध जैसे निरर्थक कार्यों में मुक्तहस्त व्यय कर रहे थे। धार्मिक क्षेत्र में भी निरन्तर ईसाई धर्म का प्रचार हो रहा था। देश की इस विषम परिस्थिति में एक ओर तो जनता में कटुता, घृणा और अवज्ञा की भावना बढ़ी, जिसने कुछ सुशिक्षित भारतीयों का ध्यान देश दशा की ओर आकृष्ट किया तथा दूसरी ओर उनके हृदय में देश-प्रेम की भावना का जन्म हुआ, जो राष्ट्रीय चेतना का कारण बन बैठा। इलबर्ट बिल सम्बन्धी आन्दोलन के पश्चात् तो इस शिक्षित वर्ग की धारणा प्रबल हो गई कि बिना संगठन और अखिल भारतीय आन्दोलन के उनके अधिकारों की रक्षा न हो सकेगी।

राष्ट्रीय चेतना के प्रचार तथा प्रसार में भारत की कुछ महान् विभूतियों का विशेष स्थान है, जिन्होंने संस्थाओं तथा सभाओं की स्थापना कर जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार करना चाहा। उन्होंने निश्चेष्ट, निराश एवं निरवलम्ब जनता को अपने उच्च विचारों का दान तथा नवचेतना प्रदान कर, उनके जन्मजात अधिकारों की ओर दृष्टि आकृष्ट की। सर्वप्रथम राजा राममोहनराय ने धार्मिक व सामाजिक सुधार अन्दोलन का नेतृत्व कर भारतीय जनता की अन्ध-विश्वास तथा रूढ़िवादिता द्वारा होने वाले अनर्थों से मुक्त करने का प्रयत्न किया।[२] बम्बई में 'बम्बई सभा' (१८५२) के प्रमुख संस्थापक दादाभाई नौरोजी तथा विश्वनाथ नारायण मांडलिक थे। समाज सुधार का कार्य बम्बई में प्रार्थना-समाज तथा बंगाल में ब्राह्म-समाज ने किया। भंडारकर, आगरकर, तेलंग तथा रानाडे आदि ने भी सामाजिक विषमताओं को मिटाने का सफल प्रयास किया।[३] स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार-आन्दोलन के जन्मदाता भी ये ही थे। १८७० ई०

१—'ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में शासनसूत्र चले जाने के बाद भी भारत-सरकार की गतिविधि पहले की ही तरह जारी रही; हां, एक बात जरूर हुई कि उसका शासन २० साल तक बिला खरखशा जारी रहा। इस बीच कोई युद्ध वगैरा नहीं हुआ। परन्तु इसके यह मानी नहीं कि कोई रगड़झगड़ और कोई अशान्ति थी ही नहीं। ब्रिटिश शासन में बड़ी-बड़ी खराबियां थीं, जिन्हें मि० ह्यूम जैसे हमदर्द अंग्रेज अफसर दिखाया भी करते थे और कोशिश भी किया करते थे कि वे दूर हों।'

—पट्टाभिसीतारमैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ५

२—डा० रघुवंशी : भारतीय सावैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० ४८

३—झावेरी और तन्दूलकर : महात्मा : पृ० ३

में गणेश वासुदेव जोशी ने महाराष्ट्र में सार्वजनिक सभा की संस्थापना कर स्वदेशी वस्तु के प्रचार के हेतु कुछ दुकानें खुलवाईं तथा देशी करघों के ताने-वाने से बुने वस्त्रों द्वारा देशवासियों को स्वदेश प्रेम के रंग में रंग देना चाहा। इसके अतिरिक्त इनका उद्देश्य भारतीय कलाकौशल को प्रोत्साहन देकर, भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार करना तथा क्रमशः बढ़ती हुई निर्धनता तथा बेकारी को कम करना भी रहा होगा।

१८७५ ई० में बम्बई तथा १८७७ ई० में लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना कर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ किया। इनका ध्येय धर्म को भारतीय राष्ट्रीय जीवन की गत्यात्मक शक्ति बनाकर देशवासियों को धार्मिक रूढ़िवादिता तथा अन्धकार से मुक्त कर वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करना था। जन-जीवन में आत्मविश्वास की भावना भरने के लिए उन्होंने प्राचीन जीवन के गौरव तथा आदर्शों को सम्मुख रखा। तत्पश्चात् स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने दक्षिण में कुमारी अन्तरीप से उत्तर में अल्मोड़े तक नवयुवकों को आध्यात्मिक शक्ति द्वारा संसार पर विजय पाने का संदेश सुनाया।

'ये सुधार आन्दोलन मुख्यतः धार्मिक होने के साथ ही, राष्ट्रीय भी थे। इन्होंने भारतवासियों को अपने महान् अधिकार के प्रति सचेत किया और उनमें राष्ट्रीय भावना जाग्रत की। धर्म ने राष्ट्रीयता को प्रेरित किया।'[1] मि० गेट्ट के अनुसार 'राष्ट्रीयता में शिक्षित वर्ग का अनुराग, हमेशा ही कुछ हद तक आर्थिक और कुछ हद तक धार्मिक कारणों से हुआ है'[2] इन धार्मिक नेताओं ने वैदिक साहित्य के प्रति जनता में अभिरुचि तथा श्रद्धा उत्पन्न की। नव शिक्षा में दीक्षित भारत का एक वर्ग पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध में अपने इतिहास, धर्म तथा संस्कृति को हेय समझने लगा था। उसकी भ्रान्त धारणा को दूर करने के लिए तथा विदेशी साम्राज्य द्वारा उत्पन्न मानसिक दासता से रक्षा करने के लिये अपने प्राचीन साहित्य, धर्म तथा संस्कृति के उच्चतम तथ्यों को रखने में इन्होंने अपूर्व परिश्रम किया। इस कार्य का बहुत कुछ श्रेय उन विदेशियों को भी दिया जायेगा जिन्होंने वैदिक एवं संस्कृत साहित्य के अमूल्य ग्रन्थों का अध्ययन कर उनकी प्रशंसा की, जिससे भारतीयों को अपने धर्म तथा साहित्य का गौरव-ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी काल में अंग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम बनाई गई और शासन कार्य में प्रयोग की गई। इसके दो प्रभाव हुए, देश के भिन्न प्रान्तों के शिक्षित वर्ग को परस्पर विचार विनिमय के लिए एक सर्वग्राह्य भाषा मिली, जिससे राष्ट्रीय संगठन में प्रजातंत्र के प्रति श्रद्धा बढ़ी और इसकी मांग दृढ़ होती गई। शिक्षित वर्ग में राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता,

---

१—गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १२७
अनुवादक—सुरेश शर्मा : आत्माराम एंड संस, १९५२

२—गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १२७

स्वशासन आदि की स्पष्ट धारणाएँ बनीं तथा उनका ध्यान अपनी भाषा संस्कृति, व इतिहास के अध्ययन की ओर गया। देश की बढ़ती हुई आर्थिक अवनति ने इस अध्ययन की ओर विशेष रूप से प्रेरित किया।

अतः इस युग में कितनी ही शक्तियां एक साथ कार्य कर रही थीं, जिनके परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीय चेतना का उद्भव एवं विकास हो रहा था। गुरुमुख निहालसिंह ने अपनी पुस्तक 'भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास' में राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म देने वाली मुख्य बातों को निम्न शीर्षकों में विभाजित किया है :—

(१) पश्चिम के राजनीतिक आदर्शों की प्रेरणा।

(२) धार्मिक पुनरुत्थान और भारत के प्राचीन वैभव के प्रति श्रद्धा का भाव।

(३) आर्थिक असन्तोष और ब्रिटिश आश्वासनों के पूर्ण न किये जाने के कारण निराशा भाव।

(४) भारतीय समाचारपत्रों का और साथ ही देशी साहित्य का प्रभाव।

(५) संचारसाधनों का विकास और साम्राज्यीय दरबारों का आयोजन।

(६) शासक जाति के उद्धत एवं अहंकारपूर्ण व्यवहार के कारण जातीय-भावनाओं की कटुता में वृद्धि, लार्ड लिटन का प्रमत्त एवं अविवेकपूर्ण शासन और हत्भाग्य इल्बर्ट बिल के सम्बन्ध में यूरोपियनों तथा आंग्ल-भारतीयों द्वारा उग्रता और संगठित तीक्ष्ण प्रचार का प्रदर्शन।[1]

राष्ट्रीय भावना से यद्यपि अल्पसंख्या ही प्रभावित हुई थी, फिर भी इन थोड़े लोगों ने ही देश के ढांचे को बदलने के लिए उथल-पुथल मचा दी। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि मुख्य स्थानों में अनेक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना हुई, साथ ही यह भी विचार दृढ़ होता गया कि जब तक एक राष्ट्रीय राजनैतिक संस्था न बनेगी और वह आन्दोलन को अपने हाथ में न लेगी, तब तक जनहित की साधना न हो सकेगी। १८८५ ई० में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' के जन्म से यह अभाव दूर हुआ तथा राष्ट्रीयता के विकास में एक बड़ा कदम उठाया गया।

राष्ट्रीय भावना अथवा राष्ट्रीयता का स्वरूप (१८५७—८५ ई० तक) :

राजराममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस आदि के अथक प्रयत्नों से तथा पाश्चात्य सभ्यता एवं संघर्ष के फलस्वरूप देश में एक नवीन चेतना का जन्म हुआ जिसे राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की संज्ञा दी गई। इस काल में देश की अनेक शक्तियां छोटी-छोटी धार्मिक संस्थाओं तथा स्थानीय सभाओं के रूप में राष्ट्रीय-चेतना के प्रसार में प्रयत्नशील थीं। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में उनका ध्येय धार्मिक तथा सामाजिक सुधार कर जन-जीवन को एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर करना था। अप्रत्यक्ष रूप से यहीं राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ। राष्ट्रीयता को मूल प्रेरणा धर्म

१—गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १२५

से मिली। धर्म का व्यक्तिगत पक्ष कुंठित था, परन्तु राष्ट्रीयता अथवा देश-सुधार का पक्ष प्रबल था। इस काल की धार्मिक राष्ट्रीयता का प्रमुख ध्येय था भारत के अतीत गौरव तथा प्राचीन संस्कृति को नवजीवन प्रदान कर, देश में पुनः उसकी स्थापना करना। अज्ञान, मूर्खता तथा कूपमण्डूकता से मुक्त कर, उसमें आत्मविश्वास तथा पौरुष की भावना को जगाना ही तत्कालीन राष्ट्रीयता की परिसीमा थी। धर्म के माध्यम से राष्ट्रीय भावना उद्वेलित हुई, जिससे जनता तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति सजग हो सकी।

राष्ट्रीय चेतना अथवा भावना जनजीवन के अन्तर में अपनी जड़ें जमा रही थी, जिसका व्यक्त रूप था अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति असन्तोष तथा क्षोभ। इस काल के अनेक नेताओं का अंग्रेजी शासकों अथवा साम्राज्य से कोई विरोध न था तथापि वे, शासन विधान में सुधार चाहते थे और उनकी प्रबल धारणा थी कि सामाजिक सुधार तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रचार से ही राष्ट्र की उन्नति हो सकेगी और कालान्तर में शनैः शनैः शासन प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा हो सकेगा। यह राष्ट्रीयता का ऊषाकाल था जबकि भारत के नभ में राष्ट्रीयता की केवल सुखदायिनी लालिमा ही फैली थी। क्रमशः राष्ट्रीय भावना का सूर्य अखिल भारतीय महासभा के रूप में उदित हो दिन प्रति दिन प्रखर होता गया।

राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास : कांग्रेस स्थापना के कारण : १८८५ ई० से १६०५

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सन् १८८५ के पूर्व ही देश के अनेक प्रान्तों में, विशेषकर बंगाल, महाराष्ट्र तथा युक्तप्रान्त में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सुधार सम्बन्धी संस्थाओं की जड़ें सुदृढ़ हो चुकी थीं। देश के सुशिक्षित जनों में आत्मगौरव तथा आत्मविश्वास के जागरण की भूमिका प्रस्तुत की जा चुकी थी। राजेन्द्र लाल मित्र, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर तथा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक संसार के सम्मुख भारतीय इतिहास, धर्म, संस्कृति तथा दर्शन की प्राचीनता तथा भारत की विद्वत्ता की धाक, अपनी अमूल्य साहित्य-रचना द्वारा जमा चुके थे। दुर्भिक्ष तथा महामारी की विभीषिका में, वैभवपूर्ण दिल्ली-दरबार तथा अफ़गान-युद्ध ने जनता के असन्तोष तथा विक्षोभ को तीव्रता प्रदान की थी। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि दिल्ली दरबार में ही भारतीय नेताओं के मस्तिष्क में यह विचार विद्युत-सा चमक गया था कि क्यों न वे भी भारतीय एकता के लिए कोई संगठन बनायें।[1] पाश्चात्य शिक्षा ने विचार-स्वातन्त्र्य को जन्म दे ही दिया था तथा वैज्ञानिक आविष्कार इसके प्रसार में सहयोगी बने थे। अतः आर्थिक शोषण, अराष्ट्रीय आर्थिक नीति, वर्णभेद तथा जातीयता की कटु भावना तथा लार्ड लिटन की साम्राज्यवादी स्वार्थ नीति ने देशवासियों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत कर विदेशी शासन के अभिशाप से मुक्त

1. Mahatma : A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—P. 8.

होने के लिए प्रेरित किया। महारानी विक्टोरिया की घोषणाओं द्वारा उत्पन्न आशा पर तुषारापात हो चुका था और निकट भविष्य में उनके पूर्ण होने की आशा न देख शिक्षित समुदाय को कड़ा आघात पहुंचा था। पुनः देश में विद्रोह के बादल दृष्टिगत होने लगे थे, केवल सुयोग्य पथ-प्रदर्शक और नेतृत्व का अभाव था। इसी समय भारतीय राष्ट्रीय सभा की स्थापना हुई, जिसने हिंसक विद्रोह के स्थान पर शान्तिमय वैधानिक आन्दोलन को प्रवृत्ति दी।

कांग्रेस महासभा की स्थापना :

ई० सन् १८८५ में ए० ओ० ह्यूम के विशेष प्रयत्नों के कारण भारत की इस महान् राष्ट्रीय संस्था की स्थापना हुई थी और उस समय से इस राष्ट्रीय महासभा का इतिहास ही वास्तव में राष्ट्रीय प्रगति एवं आन्दोलनका इतिहास रहा है। ह्यूम ने भारत की तत्कालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में भारतीय जनता की समस्याओं, उनकी मनःस्थिति तथा उन पर विदेशी शासन की प्रतिक्रिया का स्वतन्त्रतापूर्वक अध्ययन किया था। उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने अज्ञान तथा आलस्य में डूबी जनता के अन्तर में उग्र होते विरोध के भयंकर परिणामों को देख लिया। यह प्रत्यक्ष था कि धार्मिक तथा समाज सुधार संबंधी प्रवृत्तियां राष्ट्रीय चेतना को उद्वेलित करने में प्रयत्नशील थीं। मुसलमानों में भी शासनसूत्र छिन जाने के कारण भीतर ही भीतर विद्रोहाग्नि धधक रही थी। यह कहना कठिन है कि किस प्रेरणा से अभिभूत होकर ह्यूम ने राष्ट्रीय आकांक्षाओं की मूर्त्त रूप इस महासभा की स्थापना की—साम्राज्य की रक्षा के लिए अथवा राष्ट्रीय भावना को निश्चित रूप देने के लिए। उन्होंने कलकत्ता विश्व-विद्यालय के स्नातकों के सम्मुख जो आदर्श रखा था उसमें राष्ट्रीय भावना तथा देश के एकीकरण पर बल दिया गया था।[1] भारत की प्रगति में प्रयत्नशील ह्यूम ने इस संस्था के संचालन के लिए ऐसे व्यक्तियों की माँग की थी जो सच्चे, निःस्वार्थी, आत्मसंयमी, नैतिक साहस से पूर्ण तथा परहितकारी हों। उन्होंने लिखा था—'आत्म बलिदान और निःस्वार्थता ही सुख और स्वतन्त्रता के अचूक पथ प्रदर्शक हैं।'[2]

ह्यूम के अतिरिक्त सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रभृति बंगाल के नेता भी एक अखिल भातरीय राजनैतिक संस्था की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। १८८४ ई० में कलकत्ता में जो महासभा हुई थी, उसमें इस आशय के प्रस्ताव पास हुए थे। मद्रास में भी थियासाफिकल सोसाइटी के महोत्सव के अवसर पर १९ नेताओं ने इस समस्या पर विचार किया था और आगामी वर्ष एक राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन करने का

१—'सभा का विधान प्रजासत्तात्मक हो, सभा के लोग व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से परे हों, और उनका यह सिद्धान्त वचन हो, कि जो तुममें सबसे बड़ा है उसी को तुम्हारा सेवक होने दो।

—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ०७

2. Mahatma : A life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p. 11.

निश्चय किया गया था। ह्यूम के प्रयत्न ने इन सभी प्रयत्नों में योग दिया। यद्यपि पहले वे केवल समाज-सुधार संस्था ही चाहते थे, परन्तु लार्ड डफरिन से परामर्श के पश्चात् उन्होंने इसको राजनैतिक रूप दिया। इंगलैण्ड में भी उनको प्रोत्साहन मिला और इस प्रकार भारत सरकार तथा अंग्रेजी नेताओं की शुभकामनाओं के साथ राष्ट्रीय महासभा की स्थापना बम्बई में १८८५ में की गई।

इस कांग्रेस के प्रत्यक्ष रूप से दो उद्देश्य थे, प्रथम भारत के सच्चे कार्यकर्ताओं को एकत्रित कर राष्ट्रीय प्रगति के हेतु उनमें घनिष्ठ सम्पर्क तथा मैत्री भाव बढ़ाना तथा द्वितीय, जातीय, प्रान्तीय, धार्मिक भेदभाव मिटाकर राष्ट्रीय भावना और एकता को सुदृढ़ कर आगामी वर्ष के लिए शासन सुधार-सम्बन्धी योजना प्रस्तुत करना। अप्रत्यक्ष रूप से इस संस्था की स्थापना का ध्येय था प्रतिनिधि शासन के लिए योग्य व्यक्ति तैयार करना।[1] ह्यूम ने तो केवल सामाजिक विषयों पर वाद-विवाद करने के लिए इस संस्था की स्थापना करनी चाही थी किन्तु जब देश के भिन्न भागों के राजनीतिज्ञ निकट सम्पर्क में आए तो राजनैतिक विषयों पर ही विचार किया गया।

इस प्रकार देश के कुछ सच्चे जनसेवकों ने सार्वजनिक सेवा के भाव से प्रेरित होकर इस राष्ट्रीय महासभा का प्रारम्भ किया, जिसने प्रति वर्ष अपने अधिवेशनों द्वारा शासक वर्ग के सम्मुख जनता की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए, उनकी प्रगति में अवरोध नियमों का विरोध किया तथा उनकी दशा-सुधार के संबंध में सुझाव प्रस्तुत किये।

कांग्रेस की मांगें :—काँग्रेस की प्रारम्भिक मांगों पर दृष्टिपात करने से तत्कालीन राष्ट्रीय प्रवृत्ति का इतिहास अधिक स्पष्ट हो जायेगा। ये मांगें विशेषकर शासन सम्बन्धी थीं तथा कुछ का सम्बन्ध भारतीय जन समाज से था। प्रथम चार-पांच वर्ष तक कांग्रेस का लक्ष्य निश्चित नहीं था। इस कारण अधिक महत्वपूर्ण राजनैतिक विषयों पर प्रस्ताव प्रस्तुत न किये जा सके। प्रथम अधिवेशन में कांग्रेस ने भारतीय शासन सम्बन्धी कार्य की जांच के लिए रायल कमीशन की मांग की थी तथा इंडिया कौंसिल को भंग करने का प्रस्ताव भी किया था।[2] १८९० के लगभग कांग्रेस का लक्ष्य तथा उसकी नीति स्पष्ट होने लगी थी, देश-विदेश में यह संस्था अत्यधिक लोकप्रिय होती जा रही थी। अब इस महासभा ने विशाल देशवासी जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली तथा उसके प्रति पूर्णरूपेण उत्तरदायी शासन-व्यवस्था पर बल दिया। चार्ल्स ब्रैडला के उस बिल का स्वागत किया गया था—जिसमें भारत के मनोनुकूल शासन-सम्बन्धी सुधारों की ओर इंगित किया गया था। १८९३ में कौंसिल एक्ट क्रियान्वित होने पर शासक-वर्ग की उदारता के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव भी किया गया।

१८३३ के कानून तथा १८५७ की महारानी की उद्घोषणा द्वारा भारतीयों को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त होने का अधिकार मौखिक रूप से दिया जा चुका था

1. Annie Besant : How India Wrought her Freedom—P. 3.
2. Same, P. 13.

किन्तु व्यावहारिक रूप में उच्च पद पाने के नियम अति कठिन थे। इस राष्ट्रीय महासभा का विशेष सम्बन्ध उच्च मध्यवर्गीय समाज से था, और सिविल सर्विस की उच्च नौकरियों को प्राप्त करने वाली परीक्षाओं को इंगलैण्ड तथा भारत में एक साथ करने की माँग रखी गई। सन् १८९३ में कामन सभा ने यह मांग स्वीकार कर शिक्षित वर्ग को उत्साह व उल्लास से भर दिया किन्तु बाद में अस्वीकृत होने पर निराश भावना तथा असन्तोष का रंग अधिक गहरा हो गया। जातिभेद तथा रंगभेद की भावना की अभिवृद्धि के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्रगति मिली। कांग्रेस की यह इच्छा कि अधिक से अधिक भारतीय शासन कार्य संचालन के हेतु उच्च पदों को विभूषित करें, पूर्ण न हो सकी।

अपने प्रथम अधिवेशन में ही कांग्रेस की जागरूक प्रवृत्ति ने अंग्रेजी स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के कारण उत्पन्न व्ययपूर्ण सैनिक व्यवस्था का विरोध किया था। देश की अर्थ-व्यवस्था विश्रृंखलित हो जाने के कारण भारतीय-हित-संरक्षा के लिए देशवासियों को सैनिक स्वयं सेवक बनाने की प्रथा पर तथा सेना के उच्च पदों पर भारतीयों को रखने पर बल दिया गया था। १८९१ ई० में कांग्रेस अधिवेशन ने प्रस्ताव रखा था—"भारतीय लोकमत का सम्मान करके भारतवासियों को प्रोत्साहन देकर इस योग्य बनावें कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा कर सकें।"[१]

कानून तथा न्याय में सुधार आन्दोलन का सूत्रपात राजा राममोहनराय ने किया था। कांग्रेस के तत्कालीन सदस्य भी अंग्रेजी कानून तथा न्याय का पक्षपातपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण नीति से भलीभांति परिचित थे। उनके पास उसके प्रमाण भी उपस्थित थे। शासन तथा न्याय के पृथक्करण के सम्बन्ध में दादाभाई नोरोजी ने भी अपने विचार अभिव्यक्त किये थे। कांग्रेस अधिवेशनों से प्रायः प्रतिवर्ष इस प्रश्न पर प्रकाश डाला गया। १८९३ में इस सम्बन्ध में विशेष रूप से नम्रतापूर्वक आवेदन भी किया गया था।[२] इंगलैण्ड तथा भारत सरकार ने इस विषय को विचाराधीन रखकर जनता को आश्वस्त अवश्य किया था किन्तु अन्त में निराशा ही हाथ लगी। न्याय व शासनकार्य सम्मिलित रहे तथा जूरी व्यवस्था में भी कोई संशोधन न हुआ। राजनैतिक नेताओं के प्रति दमन नीति का आरंभ हुआ, जिसके प्रथम ग्रास सरदार नातू बन्धु थे जिन्हें विना मुकदमा चलाये ही कारागार की बेड़ियों में जकड़ दिया था। शासकीय नीति कठोर हो गई और लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध में दण्डित किया गया।[३] विदेशी सरकार ने कानून और न्याय को अपनी दमन नीति का मुख्य अस्त्र बनाया। परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षित जन समूह की स्वतन्त्रता की भावना दमन नीति की अग्नि में तप कर अधिक निखर आई। देश में इस दमन नीति

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २९

२—वही : पृ० ३३

३—वही : पृ० ३४

का विरोध प्रत्यक्ष हुआ और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की मांग प्रबल हुई । सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने १८९७ ई० में अपनी विशेष शैली में सरकार की नीति का विरोध करते हुए कहा था—'अंग्रेजों ने अपने लिए मेग्नाचार्टा और हैबियस कार्पस प्राप्त किये थे, इनके द्वारा उन्हें जो सुविधाएं प्राप्त हैं वे सिद्धान्त रूप से उनके गौरव-विधान में सम्मिलित हैं पर मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती कि **वह शासन विधान हमारा पैदाइशी हक है** । हम ब्रिटिश प्रजा हैं, इसलिए ब्रिटिश प्रजाजनों को जो विशेषाधिकार मिले हैं उनके हम भी हकदार हैं । इन अधिकारों को हमसे कौन छीन सकता है ? हमने निश्चय कर लिया है और कांग्रेस इस बात का प्रण करेगी, आप और हम सब मिलकर इसके लिए एक गम्भीर निश्चय करेंगे । **इस सभा भवन से निकल कर** उसकी ध्वनि भारत-भर की जनता में फैलेगी कि हम इस बात के लिए तुल गये हैं, इस बात पर जोर देने में हम किसी भी **वैध उपाय** को बाकी नहीं छोड़ेंगे, कि ईश्वर की छत्रछाया में ब्रिटिश प्रजाजन की हैसियत से हमारे भी वे ही अधिकार हैं जो अन्य प्रजाजनों के हैं और उनमें भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार किसी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है ।'[1]

विदेशी शासकों की आर्थिक शोषणात्मक नीति के कारण शताब्दियों से चले आ रहे घरेलू उद्योग धंधों का विनाश हो गया था, और ग्रामवासी जनता के पास कृषि ही जीविका का एकमात्र साधन बच रही थी ।[2] शासक वर्ग की स्वार्थपूर्ण नीति के कारण कृषि अवलम्बित जनता भी शान्ति से न बैठ सकी, लगान में निरन्तर वृद्धि ने उसका जीवन भार-स्वरूप बना दिया । राष्ट्रीय महासभा ने प्रारम्भ से ही, विनीत भाव से कर वृद्धि का विरोध किया था । इस विरोध का परिणाम निराशाजनक ही रहा था । इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने आबियाने, गरीबी तथा अकाल जैसे तत्कालीन जन जीवन से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्नों को भी अपने प्रस्तावों द्वारा शासक वर्ग के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया था । दुर्भिक्ष का आंशिक कारण करों और महसूलों की निरन्तर वृद्धि, अत्यधिक सैनिक व्यय, स्थानीय तथा देशी कला कौशल का नष्ट हो जाना ठहराया गया था । भारत सरकार से दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता, कृषकों की अवस्था के सुधार, निर्धनता को दूर करने के प्रयास का अनुरोध भी कांग्रेस ने किया था । भारतीयों की आर्थिक अवस्था की जांच कराने के लिए एक कमीशन बैठाने का प्रस्ताव रखा गया था । कांग्रेस ने जंगलात के कानून से उत्पन्न कठिनाइयों की ओर भी इंगित किया था पर कुछ समय पश्चात् ये विषय स्वशासन तथा राष्ट्रीयता जैसे महत्वपूर्ण विषय के सम्मुख गौण तथा महत्वहीन हो गये ।

रक्षा, शिक्षा तथा यातायात के सुलभ साधनों की दृष्टि से अंग्रेजी राज्य ने

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३४

2—A. R. Desai Social Background of Indian Nationalism—P. 35

मुसलमानी राज्य की अपेक्षा जनता को अधिक सुखी बनाया किन्तु आर्थिक शोषण असह्य था। देश का धन विदेश जाता देख देशवासी विक्षुब्ध हो उठे थे। शासन की आयात-निर्यात-नीति मुसलमानी शासन से भिन्न थी, और देश के लिए अत्यधिक अहितकर थी। अंग्रेजी सरकार देश के उदीयमान उद्योग को दबाने के लिए विदेशी कपड़े के आयात पर कोई कर न लगने देना चाहती थी परन्तु जब भारत सरकार की आय-वृद्धि के लिए ऐसा करना ही पड़ा तो देश में उत्पन्न नए कारखानों के कपड़े पर चुंगी लगाई गई। राष्ट्रीय महासभा में सूती माल पर कर लगाए जाने का १८९७ ई० में विरोध किया गया क्योंकि इससे भारतीय हितों का बलिदान हो रहा था। १८९८ ई० में मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव रखा था कि—'सरकार को देशी उद्योग-धंधों एवं कला-कौशल की उन्नति करनी चाहिये।'[1] इसके लिए राष्ट्रसेवियों ने प्रयत्न किया और १९०१ ई० में कलकत्ता अधिवेशन के साथ औद्योगिक प्रदर्शनी का प्रारम्भ किया जो कालान्तर में स्वदेशी प्रदर्शनी के रूप में परिवर्तित हो गई। इसी के फलस्वरूप स्वदेशी आन्दोलन हुआ। राष्ट्रीयता की प्रगति के इतिहास में इस प्रदर्शनी का विशेष स्थान है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में कांग्रेस की दृष्टि अफ्रीका निवासी भारतीयों की शोचनीय अवस्था की ओर आकृष्ट होने लगी थी। १९०१ ई० में गांधी ने अफ्रीका प्रवासी भारतीयों की ओर से प्रार्थी रूप में दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भेजा था। १९०३ व १९०४ ई० में ये प्रस्ताव पुनः प्रेषित किये गये। इनका परिणाम भी नगण्य ही रहा। इस दक्षिणी अफ्रीका के प्रश्न ने भारतीयों के हृदय में अपने प्रवासी भाइयों के लिए सहानुभूति उत्पन्न की तथा अंग्रेजों के प्रति कटुता की मात्रा में अभिवृद्धि की। डा० मुंजे ने अफ्रीका यात्रा के पश्चात् आकर कहा था—'हमारे शासक हमें मनुष्य नहीं समझते।'[2] बी० एन० सर्मा ने तो यहां तक कह दिया था कि 'यदि हम अपने प्रति सच्चे रहें तो बड़े-बड़े दार्शनिक महान् राजनीतिज्ञ और वीरवर योद्धाओं को उत्पन्न करने वाली जाति छोटी-छोटी बातों के लिए दूसरी जाति के पांव नहीं पड़ सकती।[3] दक्षिणी अफ्रीका के प्रश्न की ओट में देश में आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास की भावना जागी।

इन प्रश्नों तथा मांगों के अतिरिक्त राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशनों में कुछ अन्य विषयों पर भी विचार किया गया था, जिनका सम्बन्ध देश की जनता के नैतिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्तर की उन्नति से था। १८८९ ई० में काँग्रेस ने संयम तथा मद्यनिवारण की मांग रखी थी। प्रारम्भ में सरकार ने इस माँग से प्रभावित होकर १८९० ई० में शराब पर आयात कर की वृद्धि की, देशी शराब पर कर लगाया,

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३७
२—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ४४
3—वही : पृ० ४८

बंगाल सरकार ने ठेके पर शराब बनाने की पद्धति को दूर करने का निश्चय किया और मद्रास में ७००० दुकानें बन्द की गईं। १९०० ई० से पुनः मद्यपान में वृद्धि हुई क्योंकि सरकार ने युद्ध, यात्राओं में, सैनिकों की छावनियों में स्त्रियां एकत्रित कर मद्यपान को प्रोत्साहन दिया। इसका कांग्रेस ने विरोध किया। भारत सरकार ने पवित्रता सम्बन्धी कानून बनाया जिसके लिये कांग्रेस ने धन्यवाद दिया।[1] इसके अतिरिक्त शिक्षा तथा वेगार-सम्वन्धी समस्याओं में भी अभिरुचि ली गई।

आर्य समाज की स्थापना तथा उसका राष्ट्रीय दृष्टिकोण :

सन् १८७५ ई० में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना वम्बई में की थी। यह धार्मिक संस्था के साथ ही उस काल की सर्वप्रमुख राष्ट्रीय संस्था भी कही जायेगी। धार्मिक आन्दोलन का विशेष सम्बन्ध देश के राष्ट्रीय जीवन से था। धर्म तथा राष्ट्र पृथक् नहीं थे। राष्ट्रीयता धार्मिकता का बाना पहन कर भारत में जन्मी थी। आर्य समाज ने वैदिक आचार विचार, धर्म साधना पर विशेष बल दिया। भारतीयों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए भारतीय वैदिक धर्म तथा संस्कृति का आदर्श रखा। वैदिक पुनरुत्थान में ही उन्हें भारत की सोई हुई आत्मा की जागृति का संदेश मिला। धर्म के आश्रय में समाज-सुधार तथा देश-कल्याण का पुनीत कार्य प्रारम्भ हुआ।

आर्य समाज ने अपने आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय भावना के उत्तेजन में विशेष योग प्रदान किया। उसने धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वास तथा विचार-संकीर्णता का मूलोच्छेद कर वैदिक हिन्दू धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धर्म को राष्ट्रीय जीवन की गत्यात्मक शक्ति बना दिया। प्राचीन हिन्दू धर्म तथा संस्कृति के प्रति विश्वास तथा श्रद्धा उत्पन्न कर भारतीयों में पुनः आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव की सुदृढ़ भावना भर दी। आर्य समाज का राष्ट्रीय दृष्टिकोण भारत की अति पुरातन धर्म तथा समाज व्यवस्था पर केन्द्रित था। अतः राष्ट्रीय भावना अथवा चेतना की प्रगति के इतिहास में आर्यसमाज के धार्मिक राष्ट्रवादी विचारों का विशेष स्थान है।

राष्ट्रवाद का स्वरूप (१८८५-१९०५ ई०) :

राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पूर्व राष्ट्रीय भावना प्रधानतः धार्मिक तथा समाज-सुधार संबंधी प्रवृत्ति तक ही सीमित थी। जन-जीवन में, राजनैतिक अथवा प्रशासन संबंधी अभावों के प्रति विक्षोभ अंदर ही अंदर उभर रहा था, उसे मूर्त रूप नहीं मिला था। १८८५ ई० में राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पश्चात् राष्ट्रीय एकता तथा बौद्धिक, नैतिक, आर्थिक व व्यावसायिक साधनों के संगठन एवं विकास का सुयोग प्राप्त हुआ। अब विभिन्नता में एकता राष्ट्रवादियों का मूलमंत्र हो गया

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ४८

था। कांग्रेस सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय महासभा थी, इसके पूर्व जिन संस्थाओं का आविर्भाव हुआ था, वे अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीयता की साधक थीं।

राष्ट्रीय महासभा द्वारा प्रस्तुत मांगों, प्रस्तावों तथा कार्यों पर विहंगम दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका प्रमुख लक्ष्य शासन-संबंधी न्यूनताओं को मिटा कर भारतीयों को शासन-व्यवस्था में अधिक से अधिक पद तथा अधिकार दिलाना था। अन्य भारतीय जन-जीवन से संबंधित समस्याएं गौण थीं इस युग के राष्ट्रीय आंदोलन का प्रारम्भ मध्य वर्ग से हुआ था जिसमें अधिक संख्या वकील, बैरिस्टर, व्यापारियों तथा डाक्टरों की थी। कुछ प्रस्ताव किसानों की दयनीय अवस्था के सुधार के लिए प्रस्तुत अवश्य किये गये थे, किन्तु प्रायः प्रमुख मांगों का स्वरूप शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय दष्टिकोण तथा स्वार्थों के ही अनुकूल था।[1]

प्रारम्भ में राष्ट्रीय संस्था के सदस्यों की नीति ब्रिटिश सरकार के प्रति सहयोग की थी। जनजीवन के हित से संबंधित सरकार के प्रत्येक कार्य के प्रति वे विनम्र भाव से अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते थे। राष्ट्रीय नेतागण नए करों, सैनिक-व्यय वृद्धि, शासन की अनुदार एवं स्वार्थपूर्ण नीति से असन्तुष्ट थे, किन्तु उन्होंने किसी प्रकार का प्रत्यक्ष विरोध प्रदर्शित नहीं किया।[2] शासकों द्वारा अधिकतर मांगें अस्वीकृत होने पर भी, उस युग की मनोदशा तथा वातावरण सक्रिय विरोध के अनुकूल न थे। राष्ट्रीयता असन्तोष के उच्छ्वास के रूप में व्यक्त होकर ही पूर्ण हो गई।[3] राष्ट्रीय भावना राज-

---

१. 'पिछली सदी के अन्त के प्रारम्भिक पन्द्रह सालों की लड़ाई झगड़ों में जो कांग्रेसी नेता रहे वे ज्यादातर वकील, बैरिस्टर और कुछ व्यापारी एवं डाक्टर थे, जिनका सच्चे दिल से यह विश्वास था कि हिन्दुस्तान सिर्फ इतना ही चाहता है कि अंग्रेजों और पार्लियामेंट के सामने उनका पक्ष बहुत ही सुन्दर और नपी-तुली भाषा में रख दिया जाय। इस प्रयोजन के लिए, उन्हें एक राजनैतिक संगठन की जरूरत थी और इसके लिए उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। उसके द्वारा वे राष्ट्र के दुःखों और उच्च आकांक्षाओं को प्रकट करते रहे।"

—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ५६

२. Mahatma : A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p. 12.

३. "वह जमाना और हालतें भी ऐसी थीं कि अपने दुःख दर्द दूर करने के लिए हाकिमों के सामने सिवा दलील और प्रार्थना करने के और नई रिआयतों और विशेषाधिकारों के लिए मामूली मांग करने के और कुछ नहीं हो सकता था।"

—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ५७

भक्ति का आंचल पकड़े थी, उससे पृथक् होने का साहस नहीं आ पाया था। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट प्रजातन्त्र पद्धति की जननी होने के कारण इनकी आदर्श थी। अंग्रेजों की उदारता, न्याय विधान तथा सत्यता से विश्वास पूर्णतया नहीं उठा था। इस युग की राजभक्ति के संबंध में किसी प्रकार का दोषारोपण करना असंगत होगा। यदि हम इस काल की राष्ट्रीय भावना का मूल्यांकन युगीन मर्यादाओं की परिसीमा तथा मनोरचना को दृष्टि में रख कर करें तो वह कदापि हीन नहीं कही जायेगी। राजभक्ति राष्ट्रीय भावना की पावन गंगा में यमुना के मिलन के समान अति स्वाभाविक लगेगी। गुरुमुख निहालसिंह के शब्दों में-"किंतु यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यद्यपि १८८५-१९०७ के युग में इंडियन नेशनल कांग्रेस राजभक्ति प्रदर्शित करती थी, उसकी सुनिश्चित नीति नरमदली थी और उसकी भाषा निवेदनात्मक ही नहीं वरन् याचनापूर्ण थी, तथापि, उसने उस युग में, भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने, उन्हें एक सूत्र में बांधने और उनसे राष्ट्रीय एवं राजनीतिक जाग्रति फैलाने के लिए महत्वपूर्ण मौलिक काम किया था।"[1] इसी प्रकार डा० पट्टाभि सीतारम्मैया ने इस युग की राजभक्ति के संबंध में लिखा है—'हमारे इन पूर्व-पुरुषों ने अंग्रेजों और इंगलैंड के प्रति जो विश्वास रखा वह कभी-कभी दयाजनक और हेय मालूम होता है; परन्तु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओं को समझें।"[2]

राष्ट्रीय भावना का विकास उत्तरोत्तर होता गया। सर्वप्रथम सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में सन् १८९७ में स्वराज्य अथवा स्वशासन का अस्पष्ट एवं धुंधला सा चित्र मूर्त हुआ।[3] व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विषय में भी पुकार की गई तथा राजभक्ति का स्वर धीमा पड़ता गया। लोकमान्य तिलक के राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश तथा राजद्रोह में दण्डित होने से राष्ट्रीय भावना में उग्रता आई। १९०० ई० के पश्चात् राष्ट्रीय नेताओं की नीति उपनिवेशों के ढंग का स्वशासन बन गई तथा कांग्रेस देश के समस्त शिक्षित वर्ग की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतीक हो गई। शासकों की कठोर नीति तथा दमन प्रणाली के आघात से राष्ट्रीय भावना का विकास अधिक तीव्रगति से होने लगा और बीसवीं शताब्दी ने जनजीवन में नवीन उत्साह का रंग घोल दिया। इस नवीन शताब्दी में लोकमान्य तिलक के रूप में राष्ट्रीयता मूर्तमती हो उठी। इनके राष्ट्रवादी सिद्धान्त उदारदली नेताओं से भिन्न थे, ये पश्चिम की भौतिकतावादी विचारधारा को भारतीय जीवन तथा राष्ट्र की उन्नति के लिए अनुपयोगी मानते थे। वे भारतीयता के पूर्ण पक्षपाती थे, 'स्वधर्म' अर्थात् भारतीय जीवन दर्शन, आध्यात्मिकता तथा राजनीति की ठोस आधारभूमि पर वे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते

---

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १३५
२. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ५८
३. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३४

थे ।[1] वे धर्म व समाज की रूढ़ियों और अन्ध-विश्वास के घोर विरोधी थे। उन्होंने देश के नवजागरण के लिए भारतीय राष्ट्रीय मूल्यों की खोज की । अन्य राष्ट्र सेवियों द्वारा भी राष्ट्र की दयनीय अवस्था के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य तथा आंकड़े उपस्थित किये गये, जिनसे राष्ट्रीयता के विकास में सहायता मिली ।[2]

अन्त में यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि १८८५ से १९०५ ई० तक भारतीय राष्ट्रवाद के भव्य प्रासाद के निर्माण-हेतु प्रारंभिक साधन तथा सुदृढ़ नींव प्रस्तुत की गई। भारत के सच्चे कार्यकर्ताओं के बीच घनिष्ठ सम्पर्क एवं मैत्रीभाव की अभिवृद्धि हुई तथा जातीय, प्रान्तीय व धार्मिक भेदभावों को मिटाकर राष्ट्रीय भावना और एकता को सशक्त कर शासन-सुधार के लिए कार्य किया गया। शासक वर्ग के विरोध में राष्ट्रीयता का संगठन करना एक कठिन कार्य था। आज हमारी राष्ट्रीयता जिस रूप को धारण करने में समर्थ हुई है उसका समस्त श्रेय इन प्रारंभिक राष्ट्रीय प्रतिनिधियों को दिया जायेगा ।[3] सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने शिक्षित मध्यवर्गीय जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन की कला में पारंगत किया था, जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक कार्यों में अभिरुचि रखने वालों की संख्या में वृद्धि हुई थी। इंगलैण्ड में प्रतिनिधि मण्डल भेजकर भारतीय राष्ट्रीयता की शंखध्वनि देश देशान्तर में गुंजा दी गई थी। यह राष्ट्रीयता वैध थी तथा नैतिकता पर आधारित थी। गोपाल कृष्ण गोखले ने राजनीति में सच्चरित्रता तथा सहिष्णुता के सिद्धान्तों पर विशेष बल दिया था, जिसका चरम विकास गांधी जी द्वारा किया गया। दादा भाई नौरोजी ने नारी की शिक्षा तथा स्वतन्त्रता के संबंध में भी कार्य किया था। इस काल के राष्ट्र भक्तों की प्रथम श्रेणी में दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नाम आयेगा, जिन्होंने राष्ट्रीय भावना के सुगठित तथा सुव्यवस्थित रूपनिर्माण में अपूर्व योगदान दिया था।

राजनीतिक आदर्शों तथा जीवन-दर्शन की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्र निर्माताओं की दो श्रेणियां थीं, प्रथम वे राष्ट्रवादी नेता जो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में विश्वास रखने पर भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए पश्चिमी आदर्शों व जीवन दर्शन का अनुकरण आवश्यक समझते थे; द्वितीय श्रेणी तिलक आदि उग्र

---

१. 'It was he who first rediscovered the moral basis by which to define the direction and the goal of the independence movement.'

Theodore L. Shay—The Legacy of the Lokmanya Tilak—Introduction—p. 19.

२. डा० रघुवंशी : भारत का सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० १५१

३. तन्दूलकर : महात्मा : पृ० १३

विचार वाले राजनीतिक राष्ट्रवादी नेताओं की थी जो भारतीय जीवन दर्शन तथा राजनीतिक आदर्शों द्वारा स्वतन्त्रता आन्दोलन का संचालन करना चाहते थे। अन्य शब्दों में इन्हें नरम दल तथा गरम दल पुकारा जाता है। गांधी जी के राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश के पूर्व तिलक आदि उग्र राष्ट्रवादियों का अधिक प्रभाव हो गया था जिसका विवेचन आगे किया जायेगा। इस काल में राष्ट्रीय भावना के प्रथम उत्थान की भूमिका का भलीभांति निर्वाह किया गया। सन् १८९९ से १९०४ ई० तक राजनीतिक क्षेत्र में अवरुद्ध शांति रही किन्तु सन् १९०५ में प्रबल वेग से राष्ट्रीयता की आंधी चल पड़ी तथा एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ।"[1]

राष्ट्रवाद के विकास का इतिहास एवं स्वरूप (१९०५-१९१९ ई०)

भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ विशेष महत्व रखता है। उन्नीसवीं शताब्दी में जिस साहस का प्रत्यक्ष अभाव था, उसकी पूर्ति बीसवीं शताब्दी ने कर दी। राष्ट्रीय उद्‌गारों को निःशंक रूप में स्वर प्रदान कर जनजीवन में नवचैतन्य तथा नवीन क्रान्ति की भावना का प्रसार हुआ। राष्ट्रवादी विचारधारा प्रबल रूप में सम्पूर्ण देश में छा गई। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की धाक भारतीय मस्तिष्क में बैठाई जा चुकी थी तथा साम्राज्य वादियों की निरंकुशता से मुक्ति पाने के लिए अतीत-गौरव एक सुदृढ़ रक्षा कवच के समान बन गया था। १९वीं शताब्दी की राष्ट्रीयता अधिक व्यापक न थी। उसका अर्थ हिन्दू पुनरुत्थान अथवा पुनरुज्जीवन मात्र था।[2] स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द ने, पश्चिमी भौतिकवाद तथा अर्थवाद की तुच्छ नीति की अपेक्षा भारतीय आध्यात्मिकता की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर जनजीवन में आत्मविश्वास तथा पौरुष की भावना भर दी थी।[3] परन्तु नई शताब्दी के आरम्भ में देश की नवीन परिस्थितियों के अतिरिक्त विदेशों में घटित होने वाली घटनाओं का भी भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास पर प्रभाव पड़ा। विदेशों में घटने वाली दो प्रमुख घटनाएं थीं जिन्होंने भारतीय राजनीतिक मस्तिष्क का मंथन कर, उनकी राष्ट्रीय भावना के उद्धेलन में सहयोग प्रदान किया। ये घटनाएं थीं—१८९६ ई० में एबीसीनिया निवासियों द्वारा इटली की पराजय तथा १९०५ ई० में जापान के विरुद्ध रूस की हार। अब यूरोपीय अजेयता का भय छिन्न भिन्न हो गया तथा पूर्वीय शक्ति पर पुनः विश्वास पुष्ट होने लगा। जापान ने भारत को अंग्रेजों के निरंकुश एवं घातक बन्धन से मुक्त होने की प्रेरणा दी तथा उसका पथप्रदर्शन किया। सम्पूर्ण एशिया में नवयुग का प्रारंभ

---

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (सन् १६००-१९०० तक) : पृ० १७२

२. प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा : स्वाधीनता की चुनौती : पृ० १४३

३. Sir Verney Lovett : A History of Indian Nationalist Movement—p. 64, 65.

हुआ।[१] मैज़िनी, गैरी बाल्डी आदि राष्ट्र निर्माताओं की कृतियों का भी शिक्षित वर्ग पर प्रभाव पड़ा। भारतीय भाषाओं में उनकी जीवन व्याख्याओं का अनुवाद हुआ जिससे स्वदेश-प्रेम अत्यन्त वेग से जाग्रत हुआ।

जनता दैवी विपत्तियों का ग्रास बनी हुई थी, निरन्तर दुर्भिक्षों तथा महामारियों से उसे संघर्ष करना पड़ रहा था। शासक वर्ग द्वारा, जनता को इन विपत्तियों से मुक्त करने की उचित एवं सन्तोषजनक नीति न अपनाई जाने के कारण असंतोष तीव्र रूप धारण कर रहा था। सरकार की राष्ट्र-विरोधी नीति के प्रति जनता पूर्णतया सचेत हो गई थी। शनैः शनैः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन सच्चे अर्थों में जन-आन्दोलग का रूप धारण करने लगा। जनता ने विदेशी शासन में अपनी दरिद्रता तथा कष्टों का मूल कारण खोजा।[२] अतः जन जीवन में स्वतन्त्रता के लिए बलिदान की भावना का जन्म हुआ।[३] युवक वर्ग में परिवर्तन की आकांक्षा तीव्र होती जा रही थी। उसमें यह धारणा भी दृढ़ हुई कि वर्तमान काल से प्राचीन युग कहीं अच्छा था।[४] महारानी विक्टोरिया के शासन काल के चालीस वर्षों के शान्त वातावरण की अपेक्षा १९०३ ई० में सम्राट् एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के उपलक्ष में आयोजित दरबार में जनता का असन्तोष स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ था।[५] इसके अतिरिक्त कांग्रेस के प्रयत्नों से सार्वजनिक कार्यों में रुचि रखने वालों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय आदि राष्ट्रीय नेतागण जनता की करुण अवस्था से विक्षुब्ध होकर विदेशी राज्य के कट्टर विरोधी वन बैठे। स्वाधीन भारत के उज्ज्वल स्वप्न ने उन्हें अंग्रेजी शासन के विरुद्ध ठोस कदम उठाने को बाध्य किया।

भारतीय इतिहास में प्रतिक्रियावादी, निरंकुश शासक सदैव हितकर सिद्ध हुए हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम पांच वर्ष लार्ड कर्जन की निरंकुशता तथा कठोर नीति के लिए इतिहास में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कलकत्ता कार्पोरेशन के अधिकारों में कमी की, तथा स्थानीय निकायों जैसी सार्वजनिक संस्थाओं को केन्द्रीय नियंत्रण के अन्तर्गत रखने के लिए केन्द्रीकरण की नीति को अपनाया, पुलिस व्यवस्था के पुनः संगठन तथा रेलवे शासन संबंधी विषयों में भी अपना नियंत्रण सुदृढ़ किया। इसके अतिरिक्त देशवासियों पर यह आरोप लगाया कि वे चारित्रिक सच्चाई की कमी के कारण उत्तरदायित्वपूर्ण

१. Mahatma : A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p. 14
२. Mahatma ; A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi -- p. 13
३. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १४०
४. Lovett : A History of Nationalist Movement—p. 54
५. 'Yet in fact this Durbar marked the end of the comparatively restful and untroubled era which had lasted for forty years.' Lovett : A History of Nationalist Movement—p. 54

पद पाने के अयोग्य हैं, जिसे देशवासी सहन न कर सके। अन्त में बंगाल का विभाजन किया, जिसने राजभक्त देश की कमर तोड़ दी।[१] अब शासकों की नीति अपने नग्नरूप में देशवासियों के सम्मुख आई और इस रहस्य का उद्घाटन हो गया कि बंगाल-विभाजन का मूल उद्देश्य प्रशासनिक सुविधा न होकर, साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ा कर नई राष्ट्रीय भावना को कुचलना है। लार्ड रोनाल्ड शे ने इस सम्बन्ध में लिखा है—'प्रांत के जागृत वर्ग के अनुसार इस विभाजन द्वारा बगाली राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई दृढ़ता पर आक्रमण किया गया था'[२] मजूमदार ने भी लार्ड कर्जन की अत्यधिक स्वार्थ-परक एवं कुटिल नीति का वर्णन इन शब्दों में किया है—'नई चेतना को कुचलने के उद्देश्य से लार्ड कर्जन पूर्वी बंगाल गये। वहां पर इसी उद्देश्य से एकत्रित की हुई मुसलमानों की सभाओं में उन्होंने कहा कि यह विभाजन केवल शासन की सुविधा के लिये ही नहीं किया जा रहा था वरन् उसके द्वारा एक मुस्लिम प्रान्त भी बनाया जा रहा था जिसमें इस्लाम और उसके अनुयायियों की प्रधानता होगी।'[3] गुरुमुख निहाल-सिंह ने लिखा है कि लार्ड कर्ज़न दोनों जातियों के बीच एक खाई तैयार करना चाहते थे और साथ ही बंगाल की नई राष्ट्रीयता को कुचलता चाहते थे।[४] इस प्रकार न केवल बंगाल वरन् सम्पूर्ण देश की राष्ट्रीय भावना को चुनौती दी गई थी। इसने व्यापक आन्दोलन को जन्म दिया। विदेशी सरकार का प्रत्यक्ष विरोध हुआ।

बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी जलूस, सभाओं तथा प्रदर्शनों द्वारा विक्षोभ की भावना को मूर्त रूप प्रदान किया गया। विद्यार्थी वर्ग ने विशेष उत्साह के साथ राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश कर आन्दोलन की तीव्रता को सहयोग दिया था। राज-नीति में भाग लेने के कारण उन्हें स्कूलों से निकाल दिया गया। स्कूलों को सरकारी सहायता बन्द कर देने की धमकी दी गई।[५] सरकार के दमन चक्र के तीव्र एवं कठोर हो जाने पर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप देश की रग रग में नवीन राष्ट्रीयता का प्रवाह अधिक व्यापक, तीव्र एवं गम्भीर रूप में हुआ।[६] अनुकूल परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विपिचन्द्र पाल जैसे नेताओं ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण

---

१. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : भाग—१ : पृ० ६४

२. Ronald Shaw : Life of Lord Curzon—p. 332

३. A.C. Mazumdar : Indian National Evolution—p. 207

४. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १७२

५. वही : पृ० १७४

६. "सरकार की उत्तरोत्तर उग्र और नग्न-रूप-धारण करने वाली दमन नीति के कारण नव जागृत चेतना भी सचमुच व्यापक, विस्तृत और गहरी होती गई। देश के एक कोने में जो घटना होती थी वह सारे देश में फैल जाती थी।"
—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : भाग—१ : पृ० ६४

कर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय शिक्षा और नवचैतन्य का प्रबल वेग से प्रचार किया। उन्होंने विराट सभाओं में भाषण देकर स्वदेशी और बहिष्कार की शपथ ग्रहण कराई।[1] विद्यार्थियोंको राष्ट्रीय सैन्य शिक्षा देने का आयोजन भी किया गया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशाब्द में भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में राष्ट्रीय शिक्षा का अध्याय भी जुड़ गया।

इन ब्रिटिश विरोधी कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी राष्ट्रीय भावना की प्रगति में सहायक थे जैसे आंग्ल भारतीय पत्रों का भारत विरोधी प्रचार, स्कूल और कालेजों की शिक्षा का प्रभाव; आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसाफिकल सोसाइटी, भारत सेवक समिति जैसी संस्थाओं का प्रभाव, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे उपन्यासकारों, रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे राष्ट्रीय कवियों, भारतीय संगीत, साहित्य तथा संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रभाव भी जनजीवन को राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर कर रहा था।[2] इन सबके फलस्वरूप १९०७ ई० में स्वदेशी बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा की पुस्तकों पर विशेष बल दिया गया। राष्ट्रीय नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया था कि विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार से ही देश पुनः विगत समृद्धि तथा राष्ट्रीय गौरव को प्राप्त कर सकता है। श्री अरविन्द घोष तथा श्री विपिनचन्द्र पाल का स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति में महत्वपूर्ण स्थान है। विदेशी सरकार ने स्वदेशी सभाओं को बलपूर्वक विच्छिन्न किया तथा स्वदेशी प्रचार को रोका।[3]

निरन्तर शासक वर्ग के दमन तथा दण्ड नीति को सहन करने का भारतीय जनजीवन अभ्यस्त हो गया था। अब राजद्रोह अथवा दण्ड का भय जनता के हृदय से उठ गया था। भारत में युवकों का एक ऐसा वर्ग भी उत्पन्न हुआ जिसने हिंसात्मक क्रान्ति के मार्ग को स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन बनाया। राष्ट्रीय महासभा की वैधानिक विचारधारा के साथ राष्ट्रीयता की इस नवीन विचारधारा ने क्रान्तिकारी दल का संगठन किया जिसके नेता बारीचन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे।[4] देश के विभिन्न भागों में हिंसात्मक क्रान्ति के चिह्न प्रकट हुए। इस दल के कार्यक्रम में छः बातों पर बल दिया गया जिनके विषय में गुरुमुख निहालसिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है। वे बातें थीं—

१—पत्रों की सहायता से प्रबल प्रचार द्वारा शिक्षित लोगों के मस्तिष्क में दासता के प्रति घृणा जाग्रत कर दी जाए।

२—लोगों के मस्तिष्क से बेकारी और भूख का डर दूर कर दिया जाए और

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १०३
२. वही : पृ० १६२
३. वही : पृ० १७४
४. वही : पृ० १७६

उनमें मातृभूमि व स्वतन्त्रता का प्रेम भर दिया जाए। इसके लिए संगीत व नाट्यकला को साधन बनाया गया। राष्ट्रीय वीरों और शहीदों के जीवनचरित्र का अभिनय द्वारा चित्रण करने के लिए कहा गया और साथ ही देशभक्ति से ओतप्रोत गाथाओं को हृदयस्पर्शी संगीत द्वारा लोगों तक पहुंचाने के लिए कहा गया।

३—शत्रु को प्रदर्शनों और आन्दोलन—बन्देमातरम् जलूस, स्वदेशीसम्मेलन बहिष्कार—सभा आदि में व्यस्त रखा जाये।

४—नवयुवकों की भर्ती की जाए, छोटे छोटे जत्थों में उनका संगठन किया जाए, उन्हें शारीरिक व्यायाम, शस्त्रोपयोग और शक्ति-उपसना की शिक्षा दी जाए। क्रांतिकारी साहित्य पढ़ाया जाए और उन्हें अनुशासन पालने और दल के भेद को गुप्त रखना सिखाया जाये।

५—बम बनाये जाएं। बन्दूकों और अन्य शस्त्रों की चोरी की जाए, विदेशों से शस्त्रों को क्रय करके भारत में गुप्त रूप से लाया जाए।

६—चन्दे तथा दान द्वारा और साथ ही क्रांतिकारी डकैतियों द्वारा धन की व्यवस्था की जाये।[1]

बंगाल में इस दल के कार्यों का प्रारम्भ हुआ था। १६०८ में मुजफ्फरपुर के अप्रिय जज की हत्या करने के उद्योग में गाड़ी पर बम फेंका गया जिसमें दो अंग्रेज महिलाओं की मृत्यु हुई। खुदीराम बोस के नेतृत्व में यह कार्य हुआ था, अतः उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें फांसी दी गई। उनकी तस्वीर घर घर में पहुंच गई और विदेशी शासन के प्रति विरोध तीव्र हुआ। १० फरवरी १६०६ को अलीपुर षड्यन्त्र अभियोग और गोसाईं-हत्या-अभियोग के सरकारी वकील को गोली से मार दिया गया। २४ जनवरी १६१० को पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० शमसुल आलम को गोली से मार दिया गया।[2] बंगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी यह दल सक्रिय था। १६१२ में लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। इस प्रकार पुलिस अधिकारियों, अभियोग निर्णय करने वाले मजिस्ट्रेटों, सरकारी वकीलों और सरकारी गवाहों को आतंकित करने के लिए इस दल ने हत्याएं कीं, डकैतियां डालीं और निर्भयता से काम लिया। भारत के अतिरिक्त यूरोपीय महाद्वीप में भी भारतीय क्रांतिकारी समुदाय के लोगों ने पूरी शक्ति से कार्य प्रारम्भ किया, जिसके नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा, एस० आर० राना और कामा दम्पत्ति थे।[3]

राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम भारतीयों के हित में हुआ। शीघ्र ही सरकार को राष्ट्रवादियों की शक्ति का आभास हो गया। विदेशी साम्राज्य की नींव हिल

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १७६-८०
२. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (१६००-१६१६) : पृ० १८२
३. वही पृ० १८८

गई थी। अतः १९०९ में कौंसिल सुधार अधिनियम बना। यह केवल उच्च वर्ग तथा मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए बनाया गया था। इस सुधार योजना ने मुसलमान जाति को पृथक् निर्वाचन और प्रतिनिधित्व का पोषण ही किया।[1] ब्रिटेन की लिबरल सरकार १९०६ से ही विभाजन रद्द करने की चिन्ता में थी।[2] १९११ में दिल्ली में दरबार हुआ जिसमें इंगलैंड के सम्राट् ने घोषणा कर बंग-भंग रद्द किया। लार्ड हार्डिंग ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना में प्रान्तीय स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों को स्वीकार किया। इस कानून से ग्राम्य जनता को आशा की नई किरण चमकती दिखाई दी। राजनैतिक जीवन में आत्मविश्वास तथा नवीन उत्साह छा गया अब भारतवासियों को इस बात की आशा बंध गई थी कि भारत स्वशासन प्राप्त राष्ट्रों के स्वतन्त्र संघ-साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बन जायेगा। जैसे जैसे इस आशा को साक्षात रूप प्रदान करने की आकांक्षा प्रबल होती गई, वैसे ही वैसे देशव्यापी आन्दोलन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा।

इसी बीच मुस्लिम लीग का जन्म हो चुका था, जिसका कारण था लार्ड कर्जन की बंगभंग द्वारा हिन्दू मुसलमानों के बीच फूट डालने की नीति। दिसम्बर १९०६ में विभिन्न प्रान्तों के मुसलमानों ने ढाका में मुस्लिम शिक्षण सम्मेलन के लिए एकत्रित होकर कांग्रेस से पृथक् भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की।[3] इसकी शाखाएं भारत के विभिन्न प्रान्तों के साथ लन्दन में भी फैल गईं। यह एक राजभक्त संस्था थी। इसमें राष्ट्रीय आदर्शों का अभाव था और यह नौकरशाही में विश्वास रखती थी। इसका संगठन भारतीय मुसलमानों के राजनैतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा के लिए किया गया था, जिससे यह मृदु भाषा में उनकी माँगों को सरकार के समक्ष रख सके। यह साम्प्रदायिक संस्था राष्ट्रवाद के पनपते हुए वृक्ष पर कुठाराघात थी, किन्तु १९१३ में इसने भी ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन के ध्येय को स्वीकार किया और हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य भावना को प्रोत्साहन मिला। मुहम्मद अली के नेतृत्व में उग्र विचारों का एक दल संगठित हुआ, जो कांग्रेससे समझौता करना चाहता था। इसके अतिरिक्त १९१४ के प्रथम महायुद्ध में टर्की ने अंग्रेजों के विरुद्ध जर्मनी का साथ दिया और भारत के मुसलमान इस घटना से अंग्रेज विरोधी बन गये।[4]

१९०५ से १९०७ तक भारतीय राष्ट्रीयता के क्षेत्र में उग्र राष्ट्रवादियों का प्राधान्य था, किन्तु सरकार की दमन नीति ने नेताओं को कारावास में बन्द कर आन्दोलन की तीव्रता को दबा दिया था। उग्र पक्ष ने किसी संस्था की स्थापना नहीं

---

१. डा० रघुवंशी : भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० ८८
२. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० २६१
३. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० २२६
४. वही, पृ० २२७
५. डा० रघुवंशी : भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० १११

की थी अतः वह छिन्न-भिन्न हो गया। कांग्रेस विशुद्ध रूप से नरमदली संस्था हो गई थी।[1] १६०८ से १६१६ तक कांग्रेस की कार्यपद्धति पूर्ववत् ही थी अर्थात् प्रतिवर्ष अधिवेशन में राजनैतिक एवं आर्थिक प्रश्नों पर सामान्य प्रस्ताव रखे जाते थे।[2] दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार, इस समय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उत्तेजक विषय था, जिस पर कांग्रेस तथा देश में असंतोष, क्रोध तथा अवमान की भावना से विचार हुआ था। गांधी जी ने वहां भारतीयों की ओर से सरकार तथा उसके काले कानूनों के विरुद्ध सत्याग्रह किया था। 'दक्षिणी अफ्रीका की क्रूर एवं अन्यायपूर्ण सरकार के विरुद्ध वहां के भारतीय समुदाय की वीरता की सारे भारत में प्रशंसा की गई। सारे देश में विराट सभाएं की गईं।'[3]

सन् १६१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ा। इंगलैंड ने फ्रांस, रूस तथा अन्य मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर जर्मनी और टर्की की सम्मिलित शक्ति से युद्ध प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में इसके प्रति भारत की साधारण जनता उदासीन थी।[4] किन्तु राष्ट्रीय नेताओं ने जनता को सरकार की सहायता के लिए तत्पर किया। नरम दल के साथ उग्र दल के राष्ट्रवादी नेता लोकमान्य तिलक ने भी कारावास से मुक्त होकर भारतीयों का सम्राट-सरकार को यथा-सामर्थ्य सहायता देना कर्तव्य बतलाया।[5] महात्मा गांधी ने भी इस समय लन्दन से आकर युद्ध सहायता कार्य का प्रचार किया। युद्धकाल में दोनों राष्ट्रीय दल अर्थात् नरम व गरम दल तथा हिन्दू, मुसलमान नेताओं में किसी प्रकार का विरोध नहीं था और राष्ट्रीय ऐक्य भावना को भी विकास मिला। भारत ने युद्ध में इस आशा से अंग्रेजों का साथ दिया कि वे उनकी सेवा से प्रसन्न होकर स्वशासन का अधिकार दे देंगे, जिससे वह संघ साम्राज्य का एक अंग बन जायेगा। भारतीय सैनिक दल विदेशों में अपनी योग्यता और वीरता का प्रमाण देने के लिए भेजे गए। वहां उन्हें जीवन के नवीन अनुभव हुए। उनमें आत्माभिमान तथा आत्मविश्वास का उदय हुआ। अन्त में युद्ध में विजय से भारतीय सैनिकों में अपनी वीरता पर पुनः विश्वास जम गया, देश में नवीन जागृति आई। जापान की रूस पर विजय द्वारा भारतवासियों को प्रेरणा मात्र मिली थी किन्तु इस युद्ध में स्वयं भाग लेकर तथा विजय प्राप्त कर एशिया व यूरोप में देश को एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। देश ने महायुद्ध में विदेशी सरकार की सहायता अवश्य की थी किन्तु उसका राष्ट्रीय कार्यक्रम समाप्त नहीं हुआ था। राष्ट्रीय आन्दोलन की गति पूर्ववत् बनी रही, अर्थात् भारतीय-शासन-व्यवस्था की नीतियों की तीव्र आलोचना

---

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३०४
२. वही पृ० ३०५
३. वही पृ० ३०६
४. डा० रघुवंशी : भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० ११२
५. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३१५

होती रही और श्रीमती एनी बेसेण्ट तथा लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में स्वशासन के उद्देश्य से वैधानिक आन्दोलन क्रियान्वित हुआ।

श्रीमती एनी बेसेण्ट ने होम रूल आन्दोलन के पुनीत कार्य द्वारा स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा तथा होमरूल का कार्यक्रम जीवित रखा। १९१४ में जेल से मुक्त होते ही तिलक का त्रिमुखी कार्य था—कांग्रेस में मेल कराना, राष्ट्रीय दल का पुनस्संगठन करना तथा एक दृढ़ एवं सुसंगठित होमरूल आन्दोलन चलाना। उन्होंने श्रीमती बेसेण्ट का साथ दिया। इस प्रकार होमरूल का विचार देश के प्रत्येक कोने में दावानल-सा फैल गया। १९१७ में यह आन्दोलन अपने चरम पर पहुँच गया। श्रीमती एनीबेसेण्ट, अरण्डेल तथा वाडिया को सरकार ने नजरबन्द किया। दमन के अन्य उपाय भी काम में लाये गये। उन्हें मुक्त करने के लिए सत्याग्रह की योजना बनी किन्तु इसी समय अंग्रेजी सरकार ने मान्टेग्यू द्वारा यह घोषणा कराई कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य है कि भारतवर्ष में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की शनैः शनैः स्थापना हो और इसका प्रारम्भ प्रान्तों में हो। इस विषय पर और सरकार से राजनीतिक प्रश्नों पर सलाह करने के लिए वे भारत आने वाले हैं। इस घोषणा ने विद्रोह की प्रबलता को क्षणिक शान्ति दी। लेकिन साथ ही कांग्रेस, नरम दल और उग्र राष्ट्रवादियों के बीच फूट पड़ गई। श्रीमती बेसेण्ट को मुक्त कर दिया गया था। नवम्बर १९१७ में जब मान्टेग्यू ब्रिटिश सरकार के अन्य प्रतिनिधियों के साथ दिल्ली पहुंचे तो तिलक और डा० बेसेण्ट ने भी उन्हें मालाएं पहनाईं।[1] मान्टेग्यू ने भारत में स्वशासन प्रणाली की स्थापना की आशा दिलाई।[2] भारतीयों को सेना में उच्च पद मिले व राजनैतिक नेता मुक्त किये गये। माण्टेग्यू मिशन ने परामर्श तथा जांच का कार्य प्रारंभ किया जिसके फलस्वरूप भारतमंत्री और वाइसराय ने सुधारों की एक संयुक्त योजना प्रस्तुत की। यही योजना बाद में १९१९ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट के रूप में प्रस्तुत की गई।

भारतीय वैधानिक सुधारों से संबंधित रिपोर्ट ८ जुलाई १९१८ को प्रकाशित हुई। किन्तु काम पूरा करने के लिए तीन कमेटियाँ नियुक्त की गईं। जून १९१९ में नया अधिनियम प्रकाशित हुआ। यह अधिनियम अंग्रेज सरकार ने बड़ी चतुराई से तैयार कराया था। इसमें तीन महत्वपूर्ण बातें थीं—उत्तरदायी शासन का आरम्भ; देशी नरेशों का भारतीय शासन में—विशेषकर देशी राज्यों से संबंधित विषयों में सहयोग; और प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था का प्रवर्त्तन।[3] प्रान्तीय स्वायत्तता के लिए दो महत्वपूर्ण बातें प्रारंभ हुईं, उच्च सत्ता के नियंत्रण से स्वतंत्रता और जनता के प्रति शक्ति का हस्तान्तरण। प्रान्तीय विषयों को दो वर्गों में विभाजित किया गया

---

१. डा० रघुवंशी : भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास। पृ० ११७

२. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३२१

३. वही, पृ० ३३३

था—'संरक्षित' और 'हस्तांतरित'। प्रायः सभी महत्वपूर्ण विषय 'संरक्षित' श्रेणी में रखे गये थे और हस्तांतरित विषयों में ही भारतमंत्री व भारत सरकार के नियंत्रण में कुछ कमी आई थी। प्रान्तीय सरकारों को पूर्ण रूप से स्वायत्त नहीं बनाया था। उन्हें अब भी सपरिषद् गवर्नर-जनरल की आज्ञाओं का पूर्णतया पालन करना आवश्यक था।[1] राजनैतिक सुधारों की न्यूनता से असंतोष बढ़ा और युद्धकाल में देशवासियों ने जिस आशा से सरकार की सेवा और सहायता की थी उसे गहरा आघात पहुंचा। इसके अतिरिक्त १९१९ एक्ट के अन्तर्गत बने नियमों के अनुसार मुसलमानों, सिक्खों, भारतीय ईसाइयों, यूरोपियनों और आंग्ल-भारतीयों को पृथक् प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ और अब्राह्मणों व मराठों के लिए धारासभाओं में स्थान सुरक्षित किये गये। इस प्रकार साम्प्रदायिकता की भावना को उभाड़ा गया। वैसे १९१७ में बड़ा भारी साम्प्रदायिक दंगा हुआ था १९१८ में—हिन्दुओं द्वारा मुसलमान मारे गये थे और मद्रास में १९१६-१७ में अब्राह्मण आन्दोलन प्रारंभ हो गया था। १९१९ से सिक्खों के साथ यूरोपियनों, आंग्ल भारतीयों और भारतीय ईसाइयों में भी साम्प्रदायिक भावना बढ़ी।

इन सबके परिणामस्वरूप १८५७ के बाद १९१९ में भारतवासियों ने ब्रिटिश सत्ता को पुनः राष्ट्रीय परिमाण पर चुनौती दी।[2] जलियांवाला बाग में विदेशी सत्ता से असन्तुष्ट निःशस्त्र एवं निरीह भारतीय जनता पर तब तक गोलियां बरसाई गईं जब तक वे समाप्त न हो गई। पंजाब की यह घटना अमानुषिक एवं बर्बरतापूर्ण थी। इससे देश के जनजीवन का रक्त उबल गया। यह दुर्घटना भारतीय इतिहास में विदेशी शासकों के पाशविक कृत्यों की रक्त से अंकित कथा है। गांधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं को इससे हार्दिक दुःख हुआ। राष्ट्रीय शक्ति को अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए हिन्दू मुस्लिम ऐक्य और स्वदेशी प्रचार के कार्य को प्रोत्साहन दिया गया। गांधी जी ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया, जिससे राष्ट्रवाद के इतिहास में एक नवीन गति मिली। उन्होंने अहिंसा तथा प्रेम का पाठ पढ़ाकर राष्ट्रीय आन्दोलन को नवीन दिशा का दिग्दर्शन कराया।[3]

प्रथम महायुद्ध आरंभ होने के पूर्व भारत की वित्तीय स्थिति अच्छी थी किन्तु उसके प्रारंभ होते ही १९१६ में २६ लाख पौण्ड के घाटे को पूरा करने के लिए सीमा शुल्क बढ़ाया गया।[4] विदेशों में भारतीय सेना के व्यय का सम्पूर्ण भार देश पर पड़ा और उसके साथ ही ब्रिटिश राज्य कोष को भारत सरकार द्वारा १० करोड़ पौण्ड की सहायता दी गई जिससे कर-भार अधिक हो गया था। इसके अतिरिक्त जीवन के

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३३९
२. वही पृ० ३८९
३. ठाकुर राजबहादुरसिंह : कांग्रेस का सरल इतिहास : पृ० ३२
४. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३९०

साधारण उपयोग की अधिकतर वस्तुओं के दाम बढ़ गये थे। बड़े व्यापारियों के सट्टे तथा नियंत्रण के कारण स्थिति अधिक बिगड़ गई थी।[1] नगर तथा ग्रामों की जनता में अशान्ति बढ़ रही थी, औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों ने हड़ताल करनी शुरू कर दी थी।

ब्रिटिश काल में देश की आर्थिक स्थिति भी बिगड़ती ही गई और साधनहीन जनता को उत्तरोत्तर कर वृद्धि का भार भी उठाना पड़ा। सैनिक व्यय बढ़ता रहा और विदेशी सेना की अभिवृद्धि के साथ इसका भार असह्य हो उठा। सीमान्त युद्धों ने भी इसमें योग दिया और भारतीय सेना को विदेश में साम्राज्य के हित में युद्ध में भेजे जाने से व्यय और भी अधिक बढ़ गया। इसके अतिरिक्त देश की औद्योगिक अवनति हुई क्योंकि शासन ब्रिटिश उद्योग को सहायता दे रहा था। नगरों और ग्रामों में उद्योग तथा कला का ह्रास हुआ, अतः अन्य जीवकोपार्जन साधनों के अभाव में कृषि अवलम्बित जनता की संख्या में निरन्तर अभिवृद्धि हुई।[2] इस कारण भूमि का विभाजन छोटे-छोटे हिस्सों में हो गया, जिससे भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था अव्यवस्थित हो गई। नवीन भूमिकर व्यवस्था का भी अहितकर प्रभाव पड़ा था। जंगल से लकड़ी काटने का अधिकार भी छिन गया था। अतः कृषक की आर्थिक अवस्था दिन प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही थी। कष्टकर दिवसों के लिए उनके पास कुछ भी सम्पत्ति शेष नहीं बचती थी। वह अपने तथा अपने परिवार के लिए भरपेट भोजन जुटाने में असमर्थ था।[3]

इन सबके परिणामस्वरूप कृषक अशान्ति के दो प्रदर्शन चम्पारन (बिहार) तथा खेड़ा (गुजरात) में हुए जो राष्ट्रवाद के इतिहास में कृषक वर्ग की जागृति के द्योतक हैं। चम्पारन में कृषक नील की कोठियों के लगाव की वृद्धि, विदेशी मालिकों के अत्याचार, एकमुश्त रकम तथा अन्य अवैध रकमों के बोझ से विक्षुब्ध हो गया था। गांधीजी ने १९१७ अप्रेल में वहाँ पहुंचकर किसानों की शिकायतों की जांच प्रारम्भ की। अन्त में १९१८ का चम्पारन कृषक-ऐक्ट बनाया गया और सरकार द्वारा कर व्यवस्था में अनेक सुधार हुए।[4] इसी बीच गांधी जी को खेड़ा जाना पड़ा क्योंकि वहां अतिवृष्टि के कारण फ़सल की हानि हुई थी और कृषक वर्ग मालगुजारी देने में असमर्थ था। गांधी जी ने प्रथम बार वहां सत्याग्रह प्रारम्भ किया। सरकार की दमन

---

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३१

२. 'However the most decisive factor which accelerated the process of subdivision of land and its fragmentation was overpressure on agricultuie bought about by aconomic imination of Millions of urban and village handicraftsmen and artisons.'
A.R. Desai : Social Background of Indlan Nationalism—p. 41.

३. A. R. Desai : Soclal Background of Indlan Natlonallsm—p. 47

४. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३९३

नीति के कारण सत्याग्रही किसानों की सम्पत्ति कुर्क कराई गई, जमीन को जब्त करने की आज्ञा दी गई। तथापि किसानों ने दृढ़ता के साथ इन विपत्तियों का सामना किया। इसी बीच गांधीजी को किसी प्रकार सरकारी निर्णय का ज्ञान हो गया कि वह माल गुजारी के सम्बन्ध में छुट देने वाली है। अतः सत्याग्रह आन्दोलन समाप्त किया गया। इस आन्दोलन का परोक्ष रूप से अत्यधिक प्रभाव पड़ा, सार्वजिनक जीवन में नया साहस आया और किसानों को अपनी शक्ति का बोध हुआ।[1] विदेशी सत्ता के प्रति विक्षोभ की भावना की अभिवृद्धि के साथ राष्ट्रीय नेता देशदशा के अभावात्मक पक्ष की ओर अधिक सजग हुए।

सामाजिक तथा धार्मिक सुधार कार्य भी पूर्ववत अनेक संस्थाओं—जैसे प्रार्थना-समाज, आर्य समाज, ब्रह्मसमाज के संरक्षण में चल रहा था। सामाजिक असमानता, जाति-वर्णभेद, बाल-विवाह, विधवाओं की दुरवस्था के विरुद्ध सुधार पर बल दिया गया। भारतीय आदर्शों तथा नैतिकता की रक्षा के साथ बुद्धिवादी समाज सुधारक समुदाय सामाजिक-धार्मिक परिवर्तन के लिए आवाज उठा रहा था। १९१९ ई० तक नारी वर्ग में भी विशेष जागृति आ गई थी और वह भी तीव्र गति से राजनीति में भाग लेने लगा।

१९०५-२० तक के राष्ट्रवाद का आधारभूत दर्शन तथा स्वरूप :

१९०५ के उपरांत राष्ट्रीय ध्येय को पाने के लिए दो विभिन्न साधन अपनाए गए—वैधानिक तथा क्रांतिकारी। वैधानिक आन्दोलन कांग्रेस तथा उसके सदस्यों द्वारा अपनाया गया था, इसके अन्तर्गत भी दो विचारधाराएं कार्य कर रही थीं, उग्र तथा नरम। उग्र दल के महत्त्वपूर्ण नेता थे लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष, विपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपतराय आदि। नरम दल के प्रमुख नेता थे—गोपाल कृष्ण गोखले, दादाभाई नौरोजी, फीरोजशाह मेहता आदि। इस दल के नेताओं की राष्ट्रीयता प्रार्थना तथा प्रस्तावों तक ही सीमित थी। ये लोग भारतीयता की अपेक्षा पश्चिम की उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक आदर्शों तथा जीवन दर्शन से प्रभावित थे। इनके सामाजिक सुधारों का स्वरूप भी बहुत कुछ पाश्चात्य शिक्षा तथा आदर्शों से प्रेरित था।

इनके विपरीत इस काल के उग्र राष्ट्रवादी नेताओं ने भारत के नव-निर्माण के लिए भारतीय जीवन दर्शन और राजनीतिक आदर्शों का आधार ग्रहण किया था।[2]

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० ३९५

२. "Dharma was the integrating principles and Swadharma the speritual and social duty of each individual. Here was the guide to social and political action. Projecting these values the new leaders began to build the emerging philosophy of Indian Nationalism."

Theodore L. Shay : The Legacy of the Lokmanya—The Political philosophy of Bal Gangadhar Tilak—p. 60

इनकी राष्ट्रीयता धार्मिक भावना से अभिप्रेरित थी—उनकी दृष्टि से राष्ट्रीयता किसी राजनीतिक उद्देश्य अथवा भौतिक सुधार के किसी साधन से कहीं बड़ी चीज थी। उनकी दृष्टि में उसके चारों ओर एक ऐसा तेजपुंज था जो मध्यकालीन सन्तों की दृष्टि में धर्म पर बलि हो जाने वालों के चारों ओर होता था।[1] लोकमान्य तिलक के राष्ट्रवादी विचारों का प्रभाव अधिकांश देशवासियों पर पड़ा था, अतः उनके राष्ट्रवाद के दर्शन का विवेचन आवश्यक है। वस्तुतः इस युग के राष्ट्रवाद का यही प्रमुख रूप था।

लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्त्व था भारतीय सांस्कृतिक आदर्श एवं उसकी पुरातन रीति। प्रत्येक देश का अपना जीवनदर्शन, संस्कृति और आदर्श होता है। इस युग के आन्दोलन की भी यह मौलिकता एवं विशेषता थी कि उसे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के आदर्शों से प्रेरणा मिली थी।[2] १९वीं शताब्दी में ईसाई धर्म के प्रचार और पश्चिमी संस्कृति के आदर्शों की प्रतिक्रियास्वरूप पुनः भारतीय धर्म, जीवन-दर्शन और प्राचीन आदर्शों की खोज की गई थी और उनके पुनःस्थापना के प्रयास का प्रारम्भ हुआ था। बीसवीं शताब्दी में उग्र राष्ट्रवादियों ने तिलक के नेतृत्व में पूर्णतया उसका आधार ग्रहण किया। इनकी दृष्टि भारत के गौरवमय अतीत की ओर गई और भारतीय इतिहास का हिंदू काल इनका आदर्श बना। ये नेतागण अपनी स्वाभाविक प्रेरणा तथा अपनी समस्त चेतना के साथ पुरानी परम्पराओं की ओर झुके थे। इनकी स्वराज्य अथवा स्वायत्त शासन की मांग का मूल कारण था भारतीय सांस्कृतिक जीवनदर्शन को विकास की स्वाभाविक गति प्रदान करना। अतः स्वधर्म की स्थापना के लिए भारत की स्वतन्त्रता को आवश्यक माना गया। इनके अनुसार समाज अर्थात राष्ट्र की प्रत्येक इकाई को सर्वोच्च आदर्शों की प्राप्ति में सहायता देनी चाहिये, क्योंकि राष्ट्र तथा समाज का उद्देश्य भिन्न नहीं होता। इस प्रकार इतिहास, धर्म-ग्रन्थों, भारतीय जीवन-दर्शन के महत्त्वपूर्ण तथ्यों की खोज की गई तथा गम्भीर अध्ययन हुआ। सत्य स्वभाव का अनुसरण कर मोक्षप्राप्ति इनका ध्येय था। राजनीति, धर्म तथा दर्शन के समन्वय में राष्ट्रवाद का क्षेत्र विस्तृत एवं विकसित हुआ। अन्त में यह कहा जा सकता है कि इस युग में राष्ट्रवाद का समुचित विकास हुआ। राष्ट्रीयता धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत थी और राजनीतिक उद्देश्य अथवा भौतिक सुधार से कहीं बड़ी चीज थी।[3] इसके विकास में प्रेसों ने विशेष सहयोग दिया था। प्रेस एक्ट लागू होने पर भी राष्ट्रीय विचारों के प्रचार तथा उत्तेजन में समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं से सहायता मिली।

—·—

१. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १६३
२. Shay—The Legacy of Lokmanya—Introduction. p. 13
३. गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास : पृ० १६२

: ३ :

साहित्य में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति

(१८५७ ई० से १९२० तक)

सन् १८५७ का विद्रोह स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रथम उद्योग कहा जा सकता है, जिसका विशेष संबंध हिन्दी प्रदेश से था। यह आश्चर्य का विषय है कि इस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेन्दु आदि ने अपनी लेखनी द्वारा इसका वर्णन नहीं किया। राजाओं, जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों आदि के आश्रय में बसने वाले कवि वर्ग ने अवश्य इस विद्रोह में भाग लेने वाले अपने आश्रयदाताओं की वीरता तथा यश का गान गाया।[1] विदेशी शासन व्यवस्था से सन्तुष्ट तथा उसकी संगठित शक्ति से प्रभावित कवि वर्ग ने विद्रोह की निंदा की। प्रायः इस युग के कवि नवीन शिक्षा में दीक्षित मध्यम अथवा व्यापारी वर्ग के थे जिन्होंने विद्रोह की असफलता के कारण उसे अपनी राष्ट्रीय भावना का मूलाधार नहीं बनाया। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि ये कवि या लेखक देश की तत्कालीन परिस्थितियों से अनभिज्ञ थे अथवा राष्ट्रीय भावना या देशभक्ति से शून्य थे। इन्होंने यह भलीभांति जान लिया था कि सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति के अभाव में भारत की एकता को आघात पहुंचा है अतः नवीन वैज्ञानिक साधनों से विभूषित अंग्रेजी साम्राज्यान्तर्गत ही देश एक सूत्रमें आबद्ध हो प्रगतिशील हो सकता है। अंग्रेजी शासकवर्ग ने, मुसलमान बादशाहों, नवाबों, हिन्दू राजाओं तथा ताल्लुकेदारों के अधीन देश के अनेक छोटे बड़े भागों को अपने अधिकार में करके, अपनी शक्ति तथा कुशाग्र बुद्धि का परिचय भी दे दिया था। भारतेन्दु युगीन हिन्दी-साहित्य मनीषी इस तथ्य से परिचित हो गये थे कि अंग्रेजी शक्ति का विरोध करना मूर्खता होगी।' 'कांग्रेस का इतिहास' में पट्टाभि सीतारम्मैया ने इस समय की मनोवृत्ति के विषय में लिखा है।[2] इसके अतिरिक्त महारानी विक्टोरिया की घोषणा ने भी साहित्यकारों में

---

१. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य : पृ० २८६
हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १९४८ ई० संस्करण।

२. "अब लोग यह समझने लग गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है और लोग उसी उदासीन और अलिप्त भाव से अपने कामकाज में लग गये, जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक खासियत है।"
—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ५

विदेशी शासन के प्रति विरोध भाव को दबा दिया था, घोषणा ने घावों पर मरहम का कार्य किया था।[1] शासकों के प्रति विरोध भाव न रहने पर भी देश की शासन संबंधी तथा आर्थिक कठिनाइयों, धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों के प्रति साहित्य में विक्षोभ की भावना मिलती है। अतः राजभक्ति युग की मांग थी किन्तु देशभक्ति आत्मा की पुकार थी।

सन १८५७ से १९०० तक के साहित्य में राष्ट्रीय भावना :

१८५७ ई० के पश्चात का हिन्दी साहित्य राष्ट्रवाद का प्रारम्भिक इतिहास कहा जा सकता है। अब हिन्दी साहित्य परपाटी-विहीन तथा रूढ़िग्रस्त साहित्य सृजन को त्यागकर नवीन दिशा की ओर मुड़ चला था। साहित्याकाश में भारतेन्दु के उदित होते ही नवजीवन का संचार हुआ। 'तत्कालीन साहित्य ने जीवन की परिस्थितियों का अनुगमन किया।'[2] इस युग के साहित्य को सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का साहित्य कह सकते हैं।[3] साहित्य के समस्त अंग देश की समसामयिक राजनीतिक धार्मिक, आर्थिक व नैतिक परिस्थितियों का यथातथ्य चेतना-उद्बोधक वर्णन करना अपना प्रमुख लक्ष्य समझते थे। रीतिकाल की संकीर्ण संकुचित मनोवृति का परित्याग कर साहित्य ने देश की एकता का गान गाया तथा पाखंड, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता आदि राष्ट्रीय प्रगति के अवरोधक तत्त्वों को मिटाने का प्रयत्न किया, जिससे राष्ट्रीय जागरण की भूमिका प्रस्तुत हो गई।

देश में सार्वजनिक जीवन की नींव डालने वाली संस्थाओं का निर्माण, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, डा० राजेन्द्रलाल मित्र, रामगोपाल घोष, दादा भाई नौरोजी, नाथूभाई, श्रीमती एनीबेसेन्ट आदि के सद्उद्योग से प्रारम्भ हो गया था।[4] यद्यपि इन संस्थाओं द्वारा गतिशील सामाजिक धार्मिक, नैतिक सुधार जन आंदोलन का रूप न ले सके थे किन्तु राष्ट्रीय भावना के प्रसार के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करने का श्रेय इन्हीं को मिलेगा।[5] भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी लेखकों पर इन संस्थाओं तथा व्यक्तियों का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। नवयुग ने विचार-स्वातन्त्र्य को जन्म दिया था अतः इस अनुकूल वातावरण में लेखकों ने देश की प्रगति के कारणों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया तथा साहित्य द्वारा समाज, धर्म,

---

१. "For many years the proclamation acted like a balm and Indian leaders vied with one another in their loyalty to the British Crown."

—Mahatma—A life of Mohandas Karam Chand Gandhi

२. डा० वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य (द्वितीय संस्करण) : पृ० १६

३. श्री रामगोपाल सिंह : भारतेन्दु साहित्य : पृ० ६

४. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० १२

५. झावेरी और तन्दूलकर : महात्मा : पृ० ३, ४, ५

एवं शासन सम्बन्धी सुधार का व्रत लिया। देश, समाज तथा संस्कृति को नवीन दृष्टि से देखा। भारतेन्दु इसके प्रतीक थे और जैसा डा० वार्ष्णेय ने लिखा है, 'उन्होंने देशभक्ति, लोकहित, समाजसुधार, मातृभाषोद्धार, स्वतन्त्रता, आदि की वाणी सुनाई।'[1]

भारतेन्दु हरिचन्द्र के नेतृत्व में इस काल के साहित्य का पथ निर्दिष्ट हुआ अतः साहित्यिक क्षेत्र में यह ही इस नवोत्थान काल के प्रमुख नेता कहे जायेंगे। इस युग की राष्ट्रीय भावना अपने प्रथम चरण में होने पर भी राजनीति के साथ धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक पक्षों को भी समाहित किये थी। अंग्रेज भारत पर राजनीतिक ही नहीं सांस्कृतिक विजय के भी आकांक्षी थे। पश्चिमी शिक्षा, सभ्यता तथा विचारधारा से प्रभावित अधिकांश शिक्षित वर्ग, अपनी मातृभाषा, संस्कृति तथा धर्म को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगा था। भारतेन्दु तथा इस काल के हिन्दी साहित्यकारों की दृष्टि से यह छिप न सका कि अंग्रेजी राज्य केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं वरन् धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी अभिशाप बन कर आया है। उन्होंने सभ्यता, संस्कृति तथा ज्ञान के क्षेत्र में अति प्राचीन भारत की सुदृढ़ आधारशिला को हिलते देखा। भारतीयता पर आघात न सहन कर सकने के कारण उनका सम्पूर्ण अन्तस्तल विक्षोभ एवं ग्लानि से परिपूर्ण हो गया। इन्होंने अपनी वाणी द्वारा पूर्वजों की गौरवमय स्मृति का कलापूर्ण सुन्दर चित्रण कर देशवासियों को सचेत किया। इस अतीत गौरवगान के वर्तमान दुर्दशा तक पहुंचाने वाले हानिकारक तत्त्वों की ओर भी संकेत किया। विदेशी सत्ता की जंजीरों में जकड़ी जनता परमुखापेक्षी हो गई थी। वह अपनी देशी वस्तुओं के मूल्यांकन का विवेक खो बैठी थी। इन सरस्वती के वरद पुत्रों ने जनता की दृष्टि स्वदेशी के प्रचार तथा विदेशी के बहिष्कार की ओर आकृष्ट की अर्थात् देशवासियों को उनके आर्थिक हितों की ओर सचेत किया। अपनी भाषा के महत्त्व तथा उसके प्रचार का मार्ग भी दिग्दर्शित किया, जिससे जनता विदेशी भाषा में मोह के हानिकारक कारणों से सावधान हो जाये।

इस काल के साहित्य में जिन राष्ट्रीयता उद्‌बोधक तत्वों का विस्तार के साथ वर्णन मिलता है उनका विस्तृत विवेचन अपेक्षणीय है। यह विशेष तत्त्व हैं—

(क) प्रचीन गौरव की स्मृति
(ख) वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ; पतन के कारणों का स्पष्टीकरण
(ग) देश प्रेम; भारतीय धर्म तथा संस्कृति के प्रति श्रद्धा।
(घ) हिन्दी का प्रचार।

राष्ट्रीय भावना राजभक्ति के आवरण में लिपटी हुई है, उससे मुक्त नहीं है। अतः राजभक्ति सम्बन्धी उक्तियाँ देशभक्ति तथा राष्टीयता में किस अंश तक बाधक हैं, इसका वर्णन भी उपेक्षणीय नहीं है।

---

३. डा० वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य : पृ० २[illegible]

प्राचीन गौरव तथा स्मृति

भारत का गौरव अक्षुण्ण है, केवल कुछ काल के लिए वह लुप्त हो गया था। देश के अतीत गौरव, उसके प्राचीन ग्रन्थ तथा उसकी वीरगाथाओं के इतिहास की सुरक्षा ही जीवन में नवजागृति का साधन बन सकती थी। राष्ट्रीय चेतना के आरम्भ तथा विकास की स्थितियों के विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजेन्द्रलाल मित्र, भंडारकर, तिलक आदि राष्ट्रीय नेताओं द्वारा रचित विद्वत्तापूर्ण साहित्य, ऐतिहासिक अध्ययन तथा नवीन खोजों ने विश्व के सम्मुख यह सिद्ध कर दिया था कि ज्ञान-विज्ञान की गूढ़तम बातों पर केवल पश्चिम का ही एकाधिकार, नहीं था, सर्वप्रथम भारत ने ही इस क्षेत्र में प्रगति की थी। साहित्य के क्षेत्र में भी भारतेन्दु हरिचन्द्र, 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, श्रीनिवासदास, राधाचरण गोस्वामी प्रभृति साहित्यकारों ने इतिहास परम्परा तथा साहित्य ग्रन्थों द्वारा रक्षित अतीत गौरव तथा वीर कृत्यों का उत्तेजनापूर्ण शब्दों में वर्णन किया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने अति आर्त्त स्वर में भारत के प्राचीन एवं आध्यात्मिक वीरपुरुषों को वर्तमान दुःखमोचन के लिए स्मरण किया है—

कहं गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
चंद्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करिकै थिर।।
कहं क्षत्रिय सब मरे जरे सब गये कितै गिर।
कहां राज को तौन साज जेहि जानत है चिर।।
कहं दुर्ग-सेन-धन-बल गयो धूरहि धूर दिखात जग।
जागो अब तो खल-बल-दलन रक्षहु अपनो आर्य-मग।।[1]

इसी प्रकार 'प्रेमघन' ने 'जीर्णजनपद'[2] में अपने पूर्वजों के निवास स्थान दत्तापुर ग्राम की प्राचीन विभूति और आधुनिक दशा का यथार्थ वर्णन किया है। इस प्रबन्ध काव्य में देश के अतीत गौरव का वर्णन प्रतीकात्मक शैली में किया गया है। इसके अतिरिक्त 'पितर विलाप'[3] कविता में उन्होंने पितृपक्ष में आये पितरजनों द्वारा भारत की वर्तमान दुर्दशा पर विलाप कराया है जिससे भूतकालीनगौरव के रंग अधिक गहरे हो जाते हैं। उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक भारत की भौगोलिक एकता की तुष्टि करने वाले सुविख्यात नगरों—काशी, अयोध्या, प्रतिष्ठानपुर, इंद्रप्रस्थ, मथुरा, उज्जैन, द्वारिका, चित्तौड़, पाटलिपुत्र, पंजाब, कश्मीर की विशेषताओं का

---

१. संकलनकर्त्ता तथा सम्पादक : ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ६८३, ६८४ : दूसरा संस्करण, संवत् २०१० वि० : प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२. सम्पादक—श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, श्री दिनेशनारायण उपाध्याय : प्रेमघनसर्वस्व : प्रथम भाग : पृ० १ : प्रथमावृत्ति संवत् १९९६ : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

३. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १५४.

उल्लेख करते हुए कवि इनके पतन या विनाश पर शोक प्रकट करता है। यह अतीत गौरव-गान वर्तमान दुरवस्था की अनुभूति को अधिक तीव्रता प्रदान करने वाला है—

नहिं वह काशी रह गई, हती हेम मय जौन।
नहिं चौरासी कोस की, रही अयोध्या तौन।।
राजधानि जो जगत की, रही कभौं सुख साज।
सो बिगहा दस बीस में सिकुड़ी सी जनु आज।।[1]

दया, धर्म और सत्यता के शुद्ध मार्ग का आचरण करने वाले दिग्विजयी तथा प्रजाप्रतिपालक राजा अब नहीं रहे 'ललकि लरे मरि मिटे ना लियो देन का नाम।'[2] भारतेन्दु जी के 'भारत दुर्दशा' नाटक के एक गीत में भी अतीत गौरव तथा वर्तमान दुर्दशा का क्षोभपूर्ण शब्दों में तुलनात्मक विवेचन मिलता है—

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीन्हो।
सबके पहिले जो रूप-रंग-रस-भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।[3]

यह विचार कर कविहृदय अत्यन्त दुःखित होता है कि जहां राम, युधिष्ठिर, वासुदेव, हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, भीम, अर्जुन, जैसे महान पुरुषों ने अपनी छटा दिखाई थी, वहां आज मूढ़ता, कलह और अविद्या का राज्य है।[4] बालमुकुन्द गुप्त ने 'पुरानी दिल्ली' कविता में भारत के ऐतिहासिक नगर की प्राचीन गौरव-गाथा का चित्र अंकित कर काल के घातक प्रभाव को बताया है।[5]

काव्य के सदृश नाटकों में भी पौराणिक, ऐतिहासिक, परम्परागत वीर चरित्रों

---

१. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १५५
२. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १५५
३. सम्पादक—ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु ग्रन्थावली : 'भारत दुर्दशा' : नाट्य रसिक व लास्य रूपक—पृ० ४६९ : पहला खंड : प्रथम संस्करण, २००७ वि० प्रकाशक—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
४. ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु ग्रन्थावली : भाग दो : पृ० ४६६
५. डा० नत्थनसिंह : गद्यकार—बाबू बालमुकुन्द गुप्त : जीवन और साहित्य : पृ० १२४

का आख्यान मिलता है। इसका श्रेय भी भारतेन्दुजी को दिया जाता है क्योंकि उन्होंने 'मुद्राराक्षस', 'नीलदेवी' आदि ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित नाटक लिखे। 'मुद्राराक्षस' अनुवाद है लेकिन इसकी विस्तृत भूमिका में, पूर्वकथा और उपसंहार में, भारतेन्दु ने इतिहास सम्बन्धी शोध के विवरण दिए हैं जिनसे ऐतिहासिक नाटककारों को नई दिशा का संकेत मिला।[1] 'नीलदेवी' गीतिरूपक है जिसमें मुस्लिम काल की ऐतिहासिक घटना को लेकर भारतीय हिन्दू नारी की वीरता पर प्रकाश डाला गया है। भारतेन्दु का अनुगमन कर इस युग के अन्य नाटककारों ने भी अतीत गौरव की अभिव्यंजना के लिए नाटक लिखे। श्रीनिवासदास का 'संयोगिता स्वयंवर,' राधाकृष्ण-दास के 'महाराणाप्रताप'; 'पद्मावती' नाटक ; राधाचरण गोस्वामी कृत 'अमरसिंह राठौर', प्रतापनारायण मिश्र कृत 'हठी हमीर' आदि कुछ प्रसिद्ध नाटक हैं। डा० दशरथ ओझा ने अपने शोध प्रबंध में राधाकृष्णदास के 'महारानी पद्मावती' तथा 'महाराणा प्रताप' नाटक को राष्ट्रीयता से ओतप्रोत देश पर बलिदान होने का आह्वान करने वाला माना है।[2] ये सभी नाटक वीर-रस प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त पौराणिक कथानकों को लेकर भी भारत के चिर पुरातन धर्म तथा नैतिक आदर्शों को प्रतिष्ठित करने वाले नाटक लिखे गए जैसे श्री निवासदास का 'प्रह्लाद-चरित्र' नाटक। इनके द्वारा भारत के चिरपुरातन धर्मादर्श पर प्रकाश डाला गया।

उपन्यास साहित्य तथा छोटी कहानियों का अधिक विकास न होने के कारण, अतीत गौरव की अभिव्यक्ति करने वाले उपन्यास अथवा कहानियां नहीं मिलती हैं।

इस युग के साहित्य मनीषियों ने देशभक्ति की भावना की जागृति के लिए भारत के जिस अतीत काल का गान किया था, वह हिन्दू-काल का स्वर्णयुग था। उनकी अवस्था के प्रतीक हिन्दू इतिहास तथा परम्परा के वीर पुरुष तथा नारी थे। और यदि उन्होंने इतिहास के मुसलमान काल से वीर राजपूतों का चरित्र चुना तो उनका प्रयत्न यही था कि उनकी तुलना में मुसलमान पात्रों का चरित्र अधिक श्यामल दृष्टिगत हो। पूर्व शताब्दियों के मुसलमान शासकों के अत्याचार तथा अन्याय को विस्मरण करना उनके लिए कठिन था क्योंकि जहां 'बिसेसर सोमनाथ माधव के मन्दिर' थे वहां मस्जिदें बन गई थीं और अल्लाह अकबर की ध्वनि सुनाई पड़ती थी।[3] हिन्दी-साहित्य-प्रणेता हिन्दू थे और राष्ट्रवाद के इस अभ्युत्थान काल में उनकी राष्ट्रीय भावना जातीयता या धार्मिकता से मुक्त नहीं हो सकी थी। अतः हिन्दू साहित्यिक अपने धर्म, इतिहास, संस्कृति, वीर चरित्रों की ओर स्वाभाविक रूप में आकृष्ट हुए थे। देशवासियों को अज्ञान, मूर्खता, कूपमण्डूकता से मुक्त करने, उनमें आत्मविश्वास भरने तथा उन्हें साहस प्रदान करने के लिए अतीत गौरव का यह स्मरण पर्याप्त मात्रा में सहायक हुआ।

---

१. डा० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक उद्भव और विकास : पृ० २२९
२. डा० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक उद्भव और विकास : पृ० २६७
३. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ६८४

भारतेन्दु, प्रेमघन आदि लेखकों ने अतीत गौरव के विनाश का कारण भारत-वासियों के चारित्रिकपतन में ढूंढा था। उनके मतानुसार देशवासियों की फूट, आपसी महाभारत, आलस्य आदि का लाभ उठा कर अतीत में यवनों ने मन्दिर फोड़े थे, मूर्तियां तोड़ी थीं और अब अंग्रेजी राज्य में देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ गया था।[1] प्रायः इस युग का अतीत गौरव-गान वर्तमान दुरवस्था के विक्षोभ की भावना से आच्छादित है। डा० केसरी नारायण शुक्ल के शब्दों में --'अतीत के प्रति अनुराग से उद्भूत इनके उद्गार कहीं भारत की भव्यता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं, कहीं प्रकट रूप से उज्ज्वल भविष्य बनाने का संकेत देते हैं और कहीं इन कवियों के अन्तर का क्षोभ प्रकट करते हैं। इस प्रकार अतीत का अनुराग काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है।'[2]

वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ एवं पतन के कारणों का स्पष्टीकरण :

इस युग के साहित्य में अतीत गौरव की स्मृति के साथ वर्तमान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक दुरवस्था के प्रति क्षोभ की भावना भी मिलती है। लेखकों ने युगीन स्थितियों का यथार्थ शैली में वर्णन किया है, जो साहित्य को अपूर्व देन है। प्रेस ऐक्ट जैसे बन्धनों में बंधे होने पर भी, इन लोगों ने तत्कालीन दुर्दशा के कारणों का अपनी रचनाओं में विश्लेषण किया। देश की हीनावस्था के दो मुख्य कारण थे—प्रथम स्वयं भारतीयों का मानसिक, नैतिक, बौद्धिक अधःपतन, द्वितीय पराधीनता का अभिशाप। इस काल के लेखकों ने प्रथम कारण को प्रमुखता दी थी, द्वितीय कारण गौण था। इसका कारण था, उस युग की परिस्थितियां तथा जनता की विशेष मनोवृत्ति जैसा कि राष्ट्रीयता के विकास के इतिहास में स्पष्ट किया जा चुका है।

तत्कालीन हिन्दी साहित्यकारों ने देश के नैतिक पतन, सामाजिक एवं धार्मिक अवनति, सांस्कृतिक ह्रास तथा राजनैतिक अभिशाप का निःशंक भाव से वर्णन किया है। अज्ञान, आलस्य तथा मूर्खता के कारण दीन-हीन देशवासियों को देखकर उन्हें मानसिक क्लेश होता है। भारतेन्दु जी ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहते हैं--

डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो।
आलस-देव एहि दहन हेतु चहुं दिसि सों लागो॥
महामूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो।
कृपा दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो॥
अपनौ अपनायौ जानि कै करहु कृपा गिरिवरधरन।
जागो बलि वेगहि नाथ अब देहु दीन हिंदुन सरन॥[3]

---

१. प्रेमधन सर्वस्व : पृ० ५१ : प्रथम भाग

२. डा० केसरी नारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत : पृ० ११२

३. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ६८३

'प्रेमघन' ने भी इसी प्रकार 'पितर-प्रलाप' काव्य में पितृ पक्ष में आये स्वर्गीय पितर जनों द्वारा देश की दुर्दशा पर प्रलाप दिखाया है।[१] इसके अतिरिक्त निर्ममता पूर्वक देश की अवनति के कारणों पर प्रकाश डाला है। भारतेन्दु के सदृश वह भी आपसी फूट, परस्पर कलह-द्वेष, अमितव्ययिता तथा विलासप्रियता को सर्वनाश का कारण मानते हैं—

भए एक के चार चार घर अलग अलग जब।
भए परस्पर कलह द्वेष तब कुशल होत कब॥
भए दीन बनि सबै मिटी या थल की शोभा।
ताहि एक दिन लखन कौन कौ नहिं मन लोभा॥[२]

इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र ने भी भारतेन्दु तथा प्रेमघन के स्वर में स्वर मिलाते हुए भारत के विनाश के कारणों का उल्लेख किया है। उन्हें दुःख है कि फूट, वैर और स्वार्थ-साधन में रत रहने के कारण हिन्दू देश की दुर्दशा नहीं देखते और मुसलमान धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दुओं का अनर्थ कर रहे हैं। हिन्दुओं के मन्दिर ढहते हैं, गायों का हनन होता है और अंगरेज सरकार मायाजाल रचा कर धन खींचे लिये जा रही है।[३] राधाकृष्ण दास ने देश की दुर्दशा पर दुःख अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि भारत ही एक ऐसा देश है जो रोकर अपना समय खो रहा है; यूरोप, अमरीका, फ्रांस, जर्मनी आदि सभी देश मोद से भरे आनन्द में मग्न हैं।[४] उन्होंने भी भारतेन्दु या 'प्रेमघन' की भांति देशवासियों को रोने का संदेश नहीं दिया है।[५] उन्होंने संवत् १९५३ तथा १९५६ के अकाल का भी वर्णन किया है।[६]

प्रायः राजभक्ति सम्बन्धी कविताओं में भी राजभक्ति की अपेक्षा देशदशा के प्रति विषाद की मात्रा ही अधिक मिलती है। भारतेन्दु ने 'भारत भिक्षा' कविता में जननी के रूप में देश का मानवीकरण करते हुए भारत जननी से राजकुमार के शुभागमन पर उनका स्वागत करने का आग्रह किया है। महारानी विक्टोरिया ने करुणा कर राजकुमार को भेजा था किन्तु भारत माता अपने पूर्व गौरव की स्मृति तथा वर्तमान को दृष्टिगत कर अति व्याकुल हो कहती है—

लखिहैं का कुमार अब धाई।
गोद बैठि हंसिहैं इत आई॥

---

१. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १५४ : प्रथम भाग
२. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० ५१ : प्रथम भाग
३. प्रतापलहरी : विषाद पंचक : पृ० १२९-१३० : प्रथम संस्करण
४. राधाकृष्ण ग्रन्थावली : भाग १ : पृ० १५
संकलन और सम्पादन—श्यामसुन्दरदास : प्रथम संस्करण
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली : भारत दुर्दशा : नाटक
६. राधाकृष्ण ग्रन्थावली : भाग १ : पृ० २०

परन्तु काव्य की अपेक्षा, इस युग के नाटकों में देश के नैतिक पतन, सामाजिक तथा धार्मिक अवनति का अधिक विशद चित्र मिलता है। भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' नाट्य-रासक के नाम से ही यह स्पष्ट है कि इसकी कथावस्तु का विशेष सम्बन्ध देशदुर्दशा से है। इसमें देशवासियों की चारित्रिक-हीनता, आलस्य, मूर्खता, अन्ध-विश्वास, रूढ़िवादिता आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है :

जहं भए शाक्य हरिचंदरु नहुष ययाती।
जहं राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती॥
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या-राती॥
अब जहं देखहु तहं दुःखहि दुःख दिखाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥[1]

इसी प्रकार 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक में भारतेन्दु जी ने हिन्दुओं के धार्मिक तथा चारित्रिक पतन पर क्षोभपूर्ण व्यंग्य कसा है। उस समय देश के राजा, मंत्री, पुरोहित, शैव, वैष्णव सभी की बुरी दशा थी। यमराज की सभा में महाराजा चित्रगुप्त द्वारा गुरु लोगों के सम्बन्ध में कहलाया है—'महाराज ये गुरु लोग हैं इनके चरित्र कुछ न पूछिये, केवल दंभार्थ इनका तिलक-मुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति से मूर्ति को दण्डवत् न किया होगा पर मन्दिर में जो स्त्रियां आईं उनको सर्वथा तकते रहे।'[2] 'विषस्य विषमौषधम्' नाटक में भारतेन्दु ने देश में व्याप्त फूट और वैमनस्य को विदेशी पराधीनता के बन्धन में जकड़े जाने का प्रमुख कारण माना है।[3] भारतेन्दु द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलने के कारण प्रतापनारायण मिश्र ने 'भारतदुर्दशा' नाटक लिखा था, जिसमें देशदशा का यथार्थ चित्र मिलता है।

भारतेन्दु युग समाज सुधार तथा धार्मिक आन्दोलन का काल था। स्वयं भारतेन्दु जी ने समाज में आमूल परिवर्तन कर देश की दशा को सुधारना चाहा था। इसी कारण 'भारत दुर्दशा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेर नगरी', 'प्रेम जोगिनी' आदि नाटकों में सामाजिक कुरीतियों पर विचार किया है। भारतीयों की कूपमण्डूकता दूर करने के लिए वे समुद्र-यात्रा के पक्ष में थे, नारी-शिक्षा को आवश्यक समझते थे। उनके लेख 'वैष्णवता और भारतवर्ष' में इससे सम्बन्धित विचार संरक्षित हैं। 'भारत दुर्दशा' नाटक में मद्य-निषेध पर भी संकेत किया है। 'पूर्ण प्रकाश चन्द्रप्रभा' उपन्यास भारतेन्दुकृत माना जाता है, जिसमें लेखक ने बहुविवाह और अनमेल विवाह की असामाजिक और अकल्याणकारी परम्परा को हिन्दू समाज और देश के लिए अभि-

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली : पहला भाग : पृ० ४६९
२. वही : पृ० ९०
३. वही : पृ० ३६३

शाप माना है तथा उस पर निष्ठुर व्यंग्य किया है ।[१] इस दिशा में भारतेन्दु से अधिक उग्रता बालकृष्ण भट्ट में मिलती है । भट्ट जी राष्ट्र की आधारशिला को सुदृढ़ बनाने के लिये विधवाविवाह के समर्थक थे तथा छुआछूत को मिटाकर देश में नवजीवन का संचार करना चाहते थे । 'वे उस समाज के प्रति विद्रोही हो उठे थे जहां नवयुवकों का दम घुटता है और पुरानी पीढ़ी अमरबेल की तरह नई पौध का जीवन शोषण कर लेती है ।'[२] यद्यपि भारतेन्दुमण्डल द्वारा हिन्दी उपन्यासों का अधिक विकास न हो सका, लेकिन किशोरीलाल गोस्वामी के 'कुसुम कुमारी' उपन्यास में हिन्दू समाज की कुरीतियों का यथार्थ चित्र मिलता है । १८८८ ई० में देवीप्रसाद शर्मा, तथा राधाचरण गोस्वामी ने मिलकर 'विधवाविपत्ति' नामक उपन्यास निकाला था, जिसमें विधवा की दयनीय अवस्था का वर्णन मिलता है ।

सामाजिक एवं धार्मिक पतन के साथ देश सांस्कृतिक हीनता को भी प्राप्त हो रहा था । देशवासी अपनी भाषा तथा आचार-विचार का परित्याग कर अंग्रेजी वेश-भूषा अपना रहे थे । प्रेमघन ने इसी की ओर संकेत किया है :—

अंगरेजी पढ़ि राजनीति यूरप आजादी ।
सीखि, हिन्द में बसि, निरख्यो अपनी बरबादी ।।
करि भोजन मैं कमी किते अंगरेजी बानो ।
बनवत, पै नहिं बनत कैसहू ढंग विरानो ।।[3]

अंगरेजी शिक्षा देश के लिए अहितकर थी तथा देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये आवश्यक था कि शिल्पकला की शिक्षा भी दी जाती । इस सम्बन्ध में प्रेमघन जी ने लिखा था—

विद्या उपकारी जिती, ताहि पढ़ैं कोउ नाहिं ।
कथा कहानी सिखन हित, इस्कूलन में जाहिं ।।
कला कुशलता शिल्प की, क्रिया न सीखन जांय ।
करैं अनत व्यापार नहिं, निज घर बैठै खांय ।।[४]

भारतेन्दु जी ने भी अपनी भाषा की उन्नति को ही सब उन्नति का मूल माना था—'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।'[५] प्रतापनारायण मिश्र ने भी हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान 'बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल' का राग छेड़ा था । श्रीधर पाठक भी हिन्दी प्रेमी थे । अंग्रेजी पढ़े लिखे बाबुओं से पाठक जी

---

१. डा० राजेन्द्र शर्मा : हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट : पृ० ४१
२. वही : पृ० २५४
३. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० ५७ : प्रथम भाग
४. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १५९
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ७३१

की अरुचि थी क्योंकि अंग्रेज भक्त होकर वे हिंदी की उपेक्षा करते थे—

अंग्रेजी पढ़े बाबू को हिन्दी से क्या गरज।
इंगलिश की बराबर तो किसी में मजा नहीं ॥[1]

देशवासियों का मानसिक पतन इतना अधिक हो चुका था कि विदेशी सरकार से 'राजा', 'सितारे हिन्द', 'रायबहादुर', आदि आनरेबुल खिताब अथवा उपाधियां पाने के लिये लालायित रहते थे।[2] 'स्टार आफ इण्डिया' पाने के लिए अंगरेजी सरकार के चित्तानुसार आचरण करते थे।[3]

भारतेन्दु युग राष्ट्रीय भावना के प्रादुर्भाव का युग था, अतः विदेशी शासकों के प्रति विरोध की मात्रा अधिक व्यक्त नहीं की गई। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनमें राष्ट्रीय चेतना का उदय नहीं हुआ था। तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं की भांति वे भी विदेशी दासता के अभिशाप से पूर्णतया अभिज्ञ थे। अंगरेजी साम्राज्य मुगल शासन के अस्तव्यस्त होने के पश्चात् आया था तथा महारानी विक्टोरिया ने देशहित की घोषणा की थी, इस कारण प्रारम्भ में वह सुखदायी प्रतीत हुआ था। हिन्दू जनता के साथ ही हिंदी साहित्यकारों को भी उसमें विश्वास था—

जैसे आतप तपित को छाया सुखद गुनात।
जवन-राज के अंत तुव आगम तिमि दरसात ॥
मसजिद लखि बिसु नाथ ढिग परे हिए जो घाव।
ता कहं मरहम सरिस यह तुव दरसन नर-राव ॥[4]

लेकिन साथ ही विदेशी सत्ता ने भारत की रीढ़ भी तोड़ दी थी। केवल शारीरिक दृष्टि से ही नहीं मानसिक एवं सांस्कृतिक रूप से भी वह देशवासियों को पराधीनता की बेड़ी में जकड़ने के लिए क्रियाशील था। भारतेन्दु जी ने नृपगण, नवाब, अमीरों द्वारा भारतीय संस्कृति के त्याग पर कटु व्यंग किया है—

कहां सबै राजा कुंवर और अमीर नवाब।
आज राज-दरबार मैं हाजिर होहु सिताब ॥
सिरन झुकाइ सलाम करि मुजरा करहु जुहारि।
जटितहु जूतन त्यागि कै स्वच्छ बूट पग धारि ॥
जानु सु पानि नवाइ कै पद वै धरि उसनीस।
चूमि चूमि वर अभय-प्रद कर जुग नावहुं सीस ॥

---

१. हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट : पृ० २००
२. प्रेमघन सर्वस्व : प्रथम भाग : पृ० १७७
३. भारतेन्दु ग्रन्थावली : प्रथम भाग : पृ० ८९
४. भारतेन्दु ग्रन्थावली : द्वितीय भाग : पृ० ६९९

परम मोक्ष फल राज-पद-परसन जीवन माँहि।
बूटन-देवता-राज-सुत-पद परसहु चित माँहि ॥[1]

होलकर, सिंधिया, भूपाल की बेगम; काशीपति; राजा परिमाल, मेवाड़ के मानी नृप; कोल्हापुर, ईजानगर, जोधपुर, जयपुर, त्रावंकोर, कछार, भरतपुर, धौलपुर के शासकों और दक्षिण के निज़ाम-सभी को सम्बोधित कर भारतेन्दु ने व्यंग्यात्मक शैली में कहा था—

राजसिंह छूटे सबै करि निज देस उजार।
सेवन हित नृप बर कुंअर धाये बांधि कतार ॥
तजि अफगानिस्तान को धाये पुष्ट पठान।
हिमगिर को दै पीठ किए काश्मीरेश पयान ॥
नाभा पटियाला अमृतसर जम्बू अस्थान।
कच्छ सिंधु गुजरात मेवाड़रु राजपुतान ॥
कोल्हापुर ईजानगर काशी अरु इंदौर।
धाए नृप एक साथ सब करि सूनो निज ठौर ॥[2]

'करि निज देस उजार', 'हिमगिरि को दे पीठ', 'करि सूनो निज ठौर', आदि शब्दों से यह स्पष्ट है कि कवि को देशी राजाओं द्वारा विदेशी सरकार की सेवा प्रिय नहीं थी। इस कविता में राजभक्ति की अपेक्षा पराधीनता के कारण उद्भूत पीड़ा का स्वर ही प्रधान है।

विदेशी शासन के प्रति उग्र विरोध न होने पर भी शासकों की नीति असह्य हो गई थी। देश का आर्थिक शोषण सर्वाधिक कष्टकर था जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, राष्ट्रीय नेताओं ने इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाया था। भारतेन्दु जी ने भी इस सम्बन्ध में कहा कि 'अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी। पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।[3] भारतेन्दु की अपेक्षा 'प्रेमघन' ने अधिक तीव्र शब्दों में स्पष्टतया कह दिया था कि मुसलमानी राज्य की अपेक्षा अंगरेजी राज्य अधिक दुःखद है।[4] उन्होंने देशवासियों के पतन का कारण विदेशी दासता में खोजा था।[5] लार्ड रिपन के समय में कई सुधार हुए थे, अतः वे अधिक लोकप्रिय हो गये थे किन्तु उनके पश्चात् लार्ड डफरिन की टैक्स-प्रिय नीति ने विदेशी शासन को अप्रिय बना दिया

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ७०३
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली : पृ० ७०४
३. भारतेन्दु ग्रन्थावली : पहला भाग : पृ० ४७०
४. प्रेमघन सर्वस्व : पहला भाग। पृ० १६२
५. वही : पृ० १५६

था।[1] बढ़े हुए कर के प्रति जो असन्तोष तथा क्षोभ की भावना जनता में व्याप्त थी उसे प्रायः सभी साहित्यिकों की रचनाओं में अभिव्यक्ति मिली है—

जब से लागल इ टिकस, हाय उड़ा होस मेरा।
रौवै के चाही हंसी ठी ठी ठठाना कैसा ॥[2]

'प्रेमघन' शासकों की स्वार्थपूर्ण नीति का उद्घाटन करते हुए लिखते हैं :—

लूटि विलायत भारत खाय। माल टाल बहु बिधि फैलाय।
ताको मासूली छुटि जाय। जामैं लागै लाभ दिखाय ॥
देसी माल न इहां बिचाय। घाटा भारत के सिर जाय।
रोश्रो सब मिलि हाय हाय। हय हय टिक्कस हाय हाय ॥[3]

देशी वस्तुओं पर कर बढ़ जाने से व्यापारियों को लाभ के स्थान पर मूलधन की भी प्राप्ति नहीं हो पाती थी।[4] देश का कला-कौशल समाप्त-प्राय हो गया था। भारतेन्दु जी ने भी विदेशी वस्तुओं के उपयोग के सम्बन्ध में देश की विवशता लक्षित कर ईश्वर को स्मरण किया था—

जीवत बिदेए की वस्तु लै ता बिनु कछु नहिं कर सकत।
जागो जागो अब सांवरे सब कोउ रुख तुमरो तकत ॥[5]

भारत की आर्थिक विपन्नता का कारण यह भी था कि विदेशी सरकार अपने सभी युद्धों का व्यय भारत में 'टैक्स' बढ़ा कर पूरा करती थी। सन् १८८६ में 'अपर बर्मा' के राजा तीबो से युद्ध कर अंग्रेजों ने उन्हें पेन्शन देकर भारत भेज दिया था। उसके सम्पूर्ण व्यय की पूर्ति भारतवासियों पर 'टैक्स' बढ़ा कर की गई थी। इसी प्रकार जब रूस बढ़ा चला आ रहा था, उस समय भी टैक्स बढ़ाया गया था। 'प्रेमघन' ने अपनी रचना द्वारा इस ओर देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया था। अन्त में महारानी के हृदय में, मेमने के समान चिल्लाती प्रजा के लिए दया उत्पन्न करने की ईश्वर से प्रार्थना की थी।[6] भारतीय जीवन पर कर की अभिवृद्धि से नौकरशाही का स्वार्थ साधन हो रहा था। घूस की अनिष्टकारी प्रथा बढ़ती जा रही थी—

रोश्रो ! अब मुंह बाय बाय। हय हय टिक्कस हाय हाय ॥
रोज कचहरी धाय धाय। अमलन के ढिग जाय जाय ॥
रोश्रो ! सब मुंह बाय-बाय। हय हय टिक्कस हाय हाय ॥
रोकड़ जाकड़ ल्याय ल्याय। लेखा वही मिलाय आय ॥

---

१. प्रेमघन सर्वस्व : पहला भाग : पृ० १८५
२. वही : पृ० १८३
३. वही : पृ० १८५
४. वही : पृ० १८४
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ६८४
६. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १८६

घुड़की उत्तर पाय पाय। खिसियाने घर आय आय ।।
रीझो ! सब मुंह बाय बाय। हय हय टिक्कस हाय हाय ।।
आमला सब हरखाय हाय। दूना टिकस बताय हाय ।।
स्वान सरिस मुंह बाय बाय। घूस भली विधि खाय हाय ।।
पीछे धता बताय हाय। टिक्कस ले धरि धाय धाय ।।[१]

प्रेमघन के 'कचहरी दीवान' में भी न्यायालयों में फैले व्यभिचार का उल्लेख मिलता है।[२]

भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', प्रताप नारायण मिश्र के 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों में भी विदेशी राजत्व के कारण दुःखी प्रजा का सच्चा चित्र मिलता है। भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' नाटक में भारत दुर्दैव प्रवेश कर कहता है :—

कौड़ी कौड़ी को करूं, मैं सबको मुहताज।
भूखे प्रान निकालूं इनका, तो मैं सच्चा राज ।।
काल भी लाऊं मंहगी लाऊं, और बुलाऊं रोग।
पानी उलटा कर बरसाऊं, धाऊं जग में सोग ।।
फूट बैर और कलह बुलाऊं, ल्याऊं सुस्ती जोर।
घर घर में आलस फैलाऊं, धाऊं दुख घनघोर ।।
काफिर काला नीच पुकारुं, तोड़ूं पैर और हाथ।
दूं इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ ।।
मरी बुलाऊं देश उजाड़ूं, मंहगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊं, धन है मुझको धन्न ।।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी ।।[३]

वस्तुतः पराधीनता भारत का दुर्भाग्य था। इसी कारण इस नाटक में विदेशी शासन का प्रतीक भारत दुर्दैव है। देश के चारित्रिक पतन तथा आर्थिक शोषण का मूल कारण यही था। भारत दुर्दैव के शब्दों से भारतेन्दु जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि देश-दशा के सुधार के लिए जो व्यक्ति अथवा संस्थाएं कार्य कर रही थीं, उन्हें 'डिसलायल्टी' में पकड़ा जाता था।[४] काव्य की भांति नाटकों में भी इस बात का संकेत मिल जाता है कि कचहरियों में घूस ली जाती थी। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाटक में यमराज के दरबार में चित्रगुप्त पुरोहित से कहते हैं—'अरे दुष्ट यह

---

१. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १८३
२. वही : पृ० १४
३. भारतेन्दु ग्रन्थावली : पहला भाग : पृ० ४७३
४. वही : पृ० ४७४

भी क्या मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहां के न्यायकर्त्ताओं की भांति जंगल से पकड़ कर आए हैं कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते। जहां तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेने वालों की भी होगी।'[1] भारतेन्दु काल में राजनीतिक पराधीनता के कारण उद्‌भूत देश दुर्दशा का चित्रांकन करने वाले उपन्यास और कहानियों का प्रायः अभाव है। भारत की भाग्यवादिनी जनता अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा बलात् लादे गये दुःख और कष्टों को अपने जीवन में समेट निश्चेष्ट पड़ी थी। उसकी सोई आत्मा को, देशभक्ति की भावना को जगाने के लिए, साहित्य के माध्यम से देश दशा के प्रति करुणा की धारा बहाना आवश्यक था। करुण रस से अधिक उपयुक्त अन्य अस्त्र नहीं था। अतः उस युग की सर्वांगीण दुर्दशा के चित्रण में साहित्यकारों ने करुण रस को मूर्त रूप प्रदान किया है। भारतेन्दु, 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र आदि हिन्दी साहित्य मनीषियों ने जिस निःशंक एवं निर्भय भाव से देशदशा का वर्णन किया था, वह उनकी परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य था।

देश-प्रेम :

भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रवाद का अन्य प्रबल पक्ष है देशप्रेम। यह राष्ट्रीयता का मूलाधार है। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी इस भावना से ओतप्रोत थे। कवियों ने देश की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर एवं कलापूर्ण चित्रण किया। श्रीधर पाठक ने भी इसी समय काव्य द्वारा देश की नदियों, पर्वतों वृक्षों आदि का स्तवन किया। उनकी उस समय की 'भारतप्रशंसा' तथा 'हिंदवन्दना' में उन्होंने लिखा :—

जय जयति विंध्य—कंदरा, हिंद
जय मलय—मेरु—मंदरा, हिंद
जय चित्रकूट—कैलास, हिंद ॥[2]

—हिंद-वन्दना—(संवत् १९४२)

नागपंचमी, रामलीला, विजयादशमी आदि हिन्दू त्यौहारों के प्रति आस्था देशभक्ति का प्रमुख अंग थी।[3] प्रेमघन ने 'वर्षा ऋतु व्यवस्था' में मेघ की गर्जना के साथ ढोल पर गाये जाते आल्हा द्वारा देशवासियों को वीरता की लहरों से आच्छादित सागर में डुबा देना चाहा था।[4] भारतेन्दु जी ने भी देश की ऋतुओं का मनोहारी वर्णन किया था।[5]

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली : पहला भाग : पृ० ९३
२. श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० ४६ : सम्पादक—श्री दुलारेलाल भार्गव, गंगा पुस्तक माला का छठा पुष्प : द्वितीय संस्करण
३. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० १५३
४. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० २७
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ६६९

देश का मानवीकरण कर 'जननी' के अति पुनीत पद पर प्रतिष्ठित करना इस युग की देशभक्ति का चरम उत्कर्ष था। देश अब भौगोलिक सीमाओं में बद्ध जड़भूमि मात्र नहीं रह गया था। वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि माता भूमि नए युग की देवता है।[१] साहित्यक्षेत्र में भी सरस्वती के वरद पुत्रों की प्रतिभा तथा हृदय की पवित्र भावनाओं के स्पर्श से देश अति पुनीत एवं गौरवमय मातृपद को प्राप्त हुआ। भारतेन्दु ने 'भारत भिक्षा' कविता में भारत का जननी के रूप में मानवीकरण किया है यद्यपि इस काव्य में राजभक्ति देशभक्ति की पुनीत भावना पर कुहरा सी छाई हुई है।[२] उनका 'भारत जननी' नाटक भी इसी के अन्तर्गत रखा जायगा। भारतेन्दु के 'भारत दुर्दशा' नाटक तथा 'प्रेमघन' के 'भारत सौभाग्य' नाटक में भारत नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रतीकवादी रूपक द्वारा भारत के दुर्बल अध्यायों का इतिहास दिखाकर अंगरेजी साम्राज्य की स्थापना में पुनः आशातीत सुव्यवस्था की कल्पना की गई है।[3] अतः भारतेन्दु युगीन देशप्रेम जड़ न होकर चेतन था, निर्जीव न होकर सजीव था। देश-प्रेम के स्पन्दन से वे स्वयं गतिमान् हुए थे तथा उसकी ऐसी तान छेड़ी थी कि निद्रित भारतीय जनता भी जाग कर गतिशील हो उठी। इनके जीवन के सभी पक्ष, सभी भाव देशभक्ति के रंग में रंगे थे। इसी कारण उन्होंने अपनी व्यक्तिगत ईश्वर भक्ति को भी देशव्यापी रूप प्रदान किया। भक्तिभाव पूर्ण कविताओं में व्यक्तिगत मोक्ष की अपेक्षा देश के उद्धार की कामना प्रमुख दृष्टिगत होती है। आध्यात्मिकता तथा देश-प्रेम का समन्वय अपूर्व है। भारतेन्दु जी की यह पंक्ति 'डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो' इसका सुन्दर उदाहरण है। अतीत गौरव की अनुभूति तथा वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ, देशभक्ति के विकसित रूप हैं, जिन्होंने राष्ट्रीयता का पोषण किया। इस प्रकार अपने व्यक्तिगत हित को देशहित में अंतर्भूत कर देना इस युग की प्रमुख विशेषता है। इनकी देशभक्ति मुसलमानों को अपनत्व की सीमा रेखा में न बांध सकी थी, वह हिन्दू धर्म, हिन्दू जनता, आचार विचार तथा हिन्दू संस्कृति तक सीमित थी। इसके अतिरिक्त जैसा कि कई स्थलों पर संकेत किया जा चुका है यह देशभक्ति अथवा राष्ट्रीय चेतना राजभक्ति से मुक्त नहीं थी। अतः इस युग के साहित्य में राजभक्ति किस रूप में मिलती है, इसका विवेचन अति आवश्यक है।

राजभक्ति :

भारतेन्दु तथा उनके सभी सहयोगी साहित्यिकों की राष्ट्रीय भावना राजभक्ति से प्लावित थी। राजभक्ति देशभक्ति का अंग बन गई थी। यह इस युग की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी क्योंकि महारानी विक्टोरिया की घोषणा के उपरान्त बीस वर्ष तक शान्ति पूर्ण वातावरण बना रहा। साथ ही यवनों के अत्याचार, धार्मिक पक्षपात तथा

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल : माताभूमि (लेख संग्रह) : पृ० १
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ७०६
३. डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल : भारतेन्दु जी का नाट्य साहित्य

देशी राजाओं के अव्यवस्थित, अराजकतापूर्ण शासन की अपेक्षा अंगरेजी राज्य में जन-जीवन अधिक सुरक्षित समझा जाता था। रेल, तार, डाक आदि नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों ने जीवन को अधिक सुविधाजनक बना अंगरेजी राज्य के प्रति विश्वास को पुष्टि प्रदान की थी। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ में प्रत्यक्ष रूप में अंगरेजी सरकार भारतीयों के शुभचिंतक की भावना व्यक्त करती रही। समय-समय पर शासन तथा देश के सुधार का झूठा दंभ भरती रही। अतः इस युग के साहित्य में राजवंश के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की अंजलि समर्पित की गई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाकृष्णदास आदि ने महारानी विक्टोरिया तथा उनके वंशजों का गुणगान किया है।

भारतेन्दु जी ने सर्वप्रथम प्रिंस एलबर्ट की मृत्यु पर सन् १८६१ में कविता लिखी थी। कतिपय विद्वानों के मत में यह कवि की बाल-क्रीड़ा मात्र थी।[1] इसके उपरान्त संवत् १९२६ में ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत आगमन के अवसर पर 'राजकुमार सुस्वागत पत्र' लिखा गया था।[2] राजकुमार एडिनबरा ग्रहण के अवसर पर काशी भी गये थे, जहां उनके स्वागतार्थ संवत् १९२७ में भारतेन्दु जी के प्रतिनिधित्व में 'सुमनांजली' (स्वागत-पत्र) भेंट की गई थी।[3] यद्यपि 'सुमनांजली' में भारतेन्दु जी की कोई रचना न थी, लेकिन 'राजकुमार सुस्वागत पत्र' लिखने का यही कारण रहा होगा कि उन्हें काशी में राजकुमार के स्वागत का कार्य-भार मिला था। वस्तुतः यह काव्य कवि हृदय की सच्ची भावना न थी और सामंतवादी संस्कारवश राजवंश के सम्मानार्थ रची गई होगी। संवत् १९२८ में प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर भी उन्होंने कविता लिखी थी और जगदाधार प्रभु से महाराजकुमार के शीघ्र नीरोग होने की प्रार्थना भी की थी।[4] भारतेन्दुजी ने भारत की प्रजा का यह कर्तव्य समझा था कि राजा के सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी होना चाहिये। राजा ईश्वर का अंश होता है, यह विचारधारा इस राजभक्ति की रचनाओं की ओट में कार्य करती लक्षित होती है। इसी कारण भारतेन्दु जी ने संवत् १९३१ में महारानी विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा के विवाह के उपलक्ष में 'मुंह दिखावनी' कविता लिखी थी :—

तब हम भारत की प्रजा मिलि कै सहित उछाह।
लाए 'आशा' दासिका लीजै एहि नर-नाह॥
सेवा में एहि राखियो नवल वधू के नाथ।
यह भाग निज मानिकै छनक न तजिहै साथ॥

---

१. किशोरीलाल गुप्त : भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि : पृ० २०७
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ६२५
३. वही : पृ० ६३०
४. वही : पृ० ६३३

× × ×

जौ यासों जिय नहिं रमै वा कछु जिय अकुलाय।
सौत वधू वा एहि लखै तौ हम कहत उपाय ॥
जब हम सब मिलि एक मत ह्वै तोहिं करहिं प्रनाम।
फेरि दीजिये तब हमैं दै कछु और इनाम ॥[१]

अन्तिम दो पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि राजभक्ति 'कुछ और इनाम' पाने की आशा से की गई थी। कदाचित् इस इनाम से उनका संकेत स्वतन्त्रता से रहा होगा। 'भारत भिक्षा' (१८७५ ई०)[२] कविता में भारतेन्दु की राजभक्ति में देशभक्ति का स्वर अधिक प्रखर हो गया है। 'भारत वीरत्व', 'विजय वल्लरी' आदि कविताओं में, जिनका रचना काल सन् १८७५ ई० के पश्चात् है, राजभक्ति के आवरण में देशभक्ति ही प्रमुख हो गई है। डा० वार्ष्णेय के मतानुसार १८७७ ई० के दिल्ली दरबार में विक्टोरिया को साम्राज्ञी घोषित कर अंगरेजों ने भारत तथा इंगलैंड के बीच परिवर्तित परिस्थिति का स्पष्ट परिचय दे दिया था, अब उनकी नीति स्पष्ट थी कि भारत केवल साम्राज्यवादी इंगलैंड का उपनिवेश मात्र था, अतः राजभक्ति का उत्साह धीमा पड़ गया था।[३] राजवंश के अतिरिक्त केवल लार्ड रिपन का यशगान भारतेन्दु के रिपनाष्टक काव्य में मिलता है। क्योंकि इसी काल विशेष में इलबर्ट बिल का प्रस्ताव हुआ था, अफगान युद्ध समाप्त हुआ था, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट तोड़ दिया गया था और शिक्षित भारतीयों को राज्य प्रबन्ध में लाने का प्रयत्न किया था।[४]

भारतेन्दु के सदृश, उस युग के प्रायः सभी कवियों ने महारानी विक्टोरिया, युवराज अथवा उदार शासक वर्ग के प्रति अपनी कृतज्ञता तथा भक्ति का प्रदर्शन किया था। 'प्रेमघन' ने संवत् १९४९ में अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा करते हुए लिखा था—

जाकी कृपा प्रभाय गयो भारत को दुरदिन।
यह अंगरेजी राज इतै आयो प्रयास बिन ॥
स्वस्थ भये स्वच्छन्द स्वाद लहि हर्षित हम सब।
पाय ज्ञान विद्या नव उन्नति लखन लगे अब ॥
हरे अनेकन दुख राजा बिन कहे हमारे।
बचे अहैं, वा नए भए जे टरत न टारे ॥[५]

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ६७६
२. वही : पृ० ७०१
३. डा० वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य : पृ० ६९
४. भारतेन्दु ग्रन्थावली : दूसरा भाग : पृ० ८१५
५. प्रेमघन सर्वस्व : प्रथम भाग : पृ० २४८

उन्होंने लार्ड रिपन की प्रशंसा भी की थी[1] तथा अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत स्वच्छन्दता, स्वाधीनता और लिबरल एसोसिएशन को धन्य बताते हुए ब्रिटिश राज्य के सुयश का समस्त श्रेय लिबरल दल को दिया था।[2] अतः जब भी देश के कल्याण की कामना से अभिप्रेरित होकर कोई भी कार्य विदेशी शासकों द्वारा किया जाता था, तो कांग्रेस तथा राष्ट्रीय नेताओं के साथ साहित्यकार भी अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते थे। इसी कारण दादाभाई नौरोजी के भारत प्रतिनिधि बन कर इगलैंड जाने पर कवि ने मंगलाशा व्यक्त की थी।[3] 'प्रेमघन' को भी यह विश्वास था कि देशवासियों की यथार्थ स्थिति का सच्चा ज्ञान इंगलैंड के राजा को नहीं है।[4] सं० १९५७ में उन्होंने महारानी विक्टोरिया ही हीरक जयन्ती पर 'हार्दिक हर्षादर्श' काव्य रचा था।[5] इसमें महारानी विक्टोरिया के प्रताप, यश तथा विशाल देश भारत पर अनुशासन की प्रशंसा के साथ भारत के पतन के कारणों का उल्लेख तथा महामारी, अकाल आदि देश-दुर्दशा का चित्रण भी मिलता है।[6] उनकी राजभक्ति देशभक्ति से शून्य नहीं थी। 'प्रेमघन' ब्रिटिश राज्य की प्रजातंत्रात्मक प्रणाली से भी प्रभावित थे। किन्तु उन्हें यह कष्टकर प्रतीत होता था कि ब्रिटेन की प्रजा अपने स्वार्थ के लिए भारतीय शासन संबंधी सब नीति नियम बनाती थी और वही भारत की भाग्यविधाता बनी हुई थी। उनकी सम्मति में भारत के दुर्भाग्य का यह कारण था कि राजा के प्रतिनिधि राज्य करते हैं, स्वयं राजा उनके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता।[7]

प्रतापनारायण मिश्र ने 'युवराज स्वागतंते', 'ब्रैडला स्वागत' तथा लार्ड रिपन से संबंधित कतिपय राजभक्ति की रचनाएं की थीं। राधाकृष्ण दास ने १९०० ई० में न्यायालयों में हिन्दी प्रवेश पर प्रसन्न होकर 'मेकडानेल पुष्पांजलि'[8] तथा महारानी विक्टोरिया की मृत्यु पर 'विजयनी विलाप'[9] कविताएं लिखी थीं। मिश्र जी तथा राधाकृष्ण दास की ये कविताएं राजभक्ति की अपेक्षा अंग्रेजी शासकों की उदारवृत्ति के प्रति कृतज्ञता की भावना को ही अधिक अभिव्यक्त करती हैं।

काव्य के समान उस युग के नाटकों में भी राजभक्ति का प्रदर्शन किया गया

---

१. प्रेमघन सर्वस्व : प्रथम भाग : पृ० १८५
२. वही पृ० २५०
३. वही पृ० २४९
४. वही पृ० २४९
५. वही पृ० २६५
६. वही पृ० २८३
७. वही पृ० २४८
८. राधाकृष्ण ग्रन्थावली : भाग १ : पृ० ३
९. वही पृ० ६

था। 'विषस्य विषमौषधम्' के अन्त में तो भारतेन्दु जी ने भरतवाक्य के रूप में कहा है :—

परतिय परधन देखि न नृपगन चित्त चलावें।
गाय दूध बहु देहिं; मेघ सुभ जल बरसावें।।
हरिपद में रति होई न दुख कोऊ कहूं व्यापै।
अंगरेजन को राज ईस इत थिर करि थापै।।
श्रुति पथ चलैं सज्जन सबै सुखी होहिं तजि दुष्ट भय।
कवि बानी थिर रस सों रहै भारत की नित होइ जय।।'[1]

इन पंक्तियों पर एकाएक दृष्टिपात करने पर ऐसा आभास होता है कि भारतेन्दु जी कट्टर राजभक्त थे। पर केवल इन पंक्तियों के आधार पर भारतेन्दु जी के संबंध में ऐसा विचार असंगत होगा। काव्य की भांति नाटकों में भी प्रच्छन्न रूप में उनकी देशभक्ति राजभक्ति के आवरण में व्यक्त हुई है। सूक्ष्म दृष्टि से इसका अध्ययन करने के पश्चात् इन पंक्तियों की सत्यता संदिग्ध हो जाती है। नाटककार ने इसी नाटक में भारतीय नरेशों के आत्मिक, नैतिक पतन पर क्षोभ प्रकट किया है। देशी राजाओं की आपसी फूट, वैमनस्य तथा कलह के कारण अंगरेजों ने किस प्रकार बुद्धि-चातुर्य के बल पर बिना रक्तपात के देश में अपने पैर जमा लिये थे इसका व्यंग्यात्मक शब्दों में उल्लेख करते हुए उन्होंने यह भी स्पष्ट कह दिया है कि 'ऐसे ही सारे भारतवर्ष की प्रजा का सरकार ध्यान नहीं रखती।' देशभक्ति हर राजभक्ति का मुलम्मा चढ़ाते हुए उन्होंने लिखा है—'सरकार बेचारी कुछ देखने थोड़े ही आती है। धन्य है ईश्वर सन् १५९९ में जो लोग सौदागरी करने आये थे वे आज स्वतंत्र राजाओं को यों दूध की मक्खी बना देते हैं।'[2] इसके अतिरिक्त नाटक संस्कृत नाट्य शैली पर लिखा गया था, जिसमें राजवंश की प्रतिष्ठा तथा स्थायित्व की मंगल-कामना से संबंधित भरतवाक्य लिखने की परम्परा थी।

भारतेन्दु युग में प्रायः ऐतिहासिक, पौराणिक तथा देश दुर्दशा से संबंधित नाटक लिखे गये थे। नाटकों में देशभक्ति तथा राष्ट्रीय चेतना को वाणी मिली है। डा० दशरथ ओझा ने अपने शोधप्रबंध 'हिन्दी नाटक-उद्भव और विकास' में ऐतिहासिक पौराणिक, सामाजिक नाटकों का विस्तृत उल्लेख करते हुए राष्ट्रीय नाटकों के संबंध में लिखा है—'सभी नाटकों में देश-दैन्यरूपी रोग का निदान पराधीनता और तज्जन्य आलस्य, फूट, प्रमाद और पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण बताया गया है।[3]

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली : भाग १ : पृ० ३६८
२. भारतेन्दु ग्रन्थावली : भाग १ : पृ० ३६०
३. डा० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास : पृ० २७७

इनकी देशभक्ति अथवा राष्ट्रीयता को शासकवर्ग से निरोध नहीं था। इसी कारण उनकी राजभक्ति देशदशा की सुधार भावना से आच्छादित थी। 'धनंजय-विजय' नाटक का भरत वाक्य है—

राजवर्ग मद छोड़ि निपुन विद्या में होई।
आलस मूरखतादि तजें भारत सब कोई॥
पंडितगन परकृति लखि कै मति दोष लगावैं।
छुटैं राजकर, मेघ समै पै जल बरसावैं॥[१]

नाटकों में राजभक्ति का प्रदर्शन अधिक मात्रा में नहीं मिलता। साहित्य में अभिव्यक्त राजभक्ति के विशेष कारणों का उल्लेख किया जा चुका है। अंत में यह कहा जा सकता है कि कतिपय रचनाओं के पीछे देश के आतिथ्य सत्कार की भावना कार्य कर रही थी, क्योंकि अतिथि का स्वागत तथा सत्कार देश की प्रधान विशेषता है, कुछ रचनाएं महारानी के पुत्र तथा पति के स्वागत में लिखी गई थीं, इस क्षेत्र में साहित्यकार कैसे पिछड़ सकते थे। राजा ईश्वर का अंश है, यह ध्यान कर उन्होंने राजवंश के कल्याण की कामना से अभिप्रेरित होकर भी कुछ रचनाएं की थीं। इसके अतिरिक्त कांग्रेस में भी शासकों के प्रत्येक अच्छे कार्य के लिए कृतज्ञता प्रदर्शित की जाती थी। उसे स्वर प्रदान करना साहित्यकारों ने अपना कर्तव्य समझा। साहित्यकार स्वभाव से अधिक उदार होता है। अतः इनकी राजभक्ति राष्ट्रभक्ति में बाधक नहीं है।

राष्ट्र निर्माणात्मक कार्यों का साहित्य में उल्लेख :

राष्ट्रीय निर्माण सम्बन्धी जो कार्य किया जा रहा था, उसके उस युग के साहित्यकारों को विशेष हर्ष होता था। यद्यपि १८८५ ई० के पूर्व अनेक धार्मिक, सामाजिक संस्थायें राष्ट्र-निर्माण में सहायक थीं किन्तु सर्वप्रथम कांग्रेस की स्थापना में एक महान राष्ट्रीय संस्था का जन्म हुआ था। राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास में कांग्रेस की स्थापना, उद्देश्य तथा मांगों का विस्तृत विवेचन करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इसके प्रथम अधिवेशन में ही साम्राज्यवाद की स्वार्थपूर्ण नीति का विरोध हुआ था तथा राष्ट्रीय एकता के विकास का प्रयास किया गया था। हिन्दी-साहित्य में प्रतापनारायण मिश्र ने कांग्रेस अधिवेशन को महापर्व कहा तथा उसके सम्मान में काव्य रचा।[२] दुःखी भारत देश के लिए इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्था की स्थापना अति उत्तम कार्य था। उन्होंने लिखा था :—

जुटिहैं तीरथराज में कांगरेस के लोग।
महापर्व सुभ जोग यह मिलिहि न बारहिं बार।

---

१. भारतेन्दुग्रन्थावली : भाग १ : पृ० ११७
२. प्रतापलहरी : पृ० ३५

तातै धावहु वेगि सब भारत सुन समुदार ।।[1]

इसी प्रकार दादाभाई नौरोजी के इंगलैंड की पार्लियामेंट में निर्वाचित होने पर 'प्रेमघन' को अति प्रसन्नता हुई थी। उन्होंने यह 'मंगलाशा' व्यक्त की थी कि उनके द्वारा लोकसभा में यहां की दुर्दशा का वर्णन होने से देश की दशा सुधरेगी।[2] भारत को निज प्रतिनिधि भेजने का जो सम्मान ब्रिटिश लिबरल दल ने दिया था। उसकी प्रशंसा के साथ भारतवासियों को दादाभाई नौरोजी पर अभिमान हुआ था। 'प्रेमघन' ने उन्हें सच्चे अर्थों में भारत का सपूत कहा था।

विजय तुमारी अहै विजय जातीय सभा की।
सिगरे भारत की तासों गौरव अति मा की ।।[3]

आगे चलकर कांग्रेस ने जो मांगें ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रखी थीं, उनका पूर्वाभास 'प्रेमघन' के काव्य में मिल जाता है :—

बृटिश राज की प्रजा बृटिन औ हिन्द उभय की।
लखहु दशा पर मुगल भाग के अस्त उदय की ।।
वै निज देश हेतु विरचत हैं नीति नियम सब।
बिन उनकी सम्मति कछु राजा करत भला कब ।।[4]

प्रतापनारायण मिश्र की राष्ट्रीय भावना राजनैतिक जीवन से अधिक संबंधित थी। इल्बर्ट बिल आन्दोलन के संबंध में उन्होंने एंग्लो इंडियन के मुख से कहलवाया था कि इस बिल ने अनर्थ किया है और छाती को जलाने वाली सौत के समान है। उन्होंने प्रायः व्यंग्यात्मक शैली में अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं, इसी कारण सीधे शब्दों में इल्बर्ट बिल का अनुमोदन नहीं किया है।

राष्ट्रीय भावना शनैः शनैः धार्मिक तथा सामाजिक सुधार कार्यों के माध्यम से मूर्त रूप पाने लगी थी। भारतेन्दु युग के अन्तिम चरण में उसका स्वरूप प्रत्यक्ष होने लगा था। साम्प्रदायिक भेदभाव इस भावना में बाधक था। शासकों की चाटुकारिता को बुरी दृष्टि से देखा जाने लगा था। अतः बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने सर सैयद की साम्प्रदायिक भावना तथा शासकों की चाटुकारिता की प्रतिक्रियास्वरूप 'जातीय राष्ट्रीय भावना' की रचना की थी।[5]

भारतेन्दु युगीन साहित्य में राष्ट्रवाद के सभी प्रमुख तत्व अपने प्रारंभिक रूप में मिल जाते हैं जैसे अतीव गौरव गान, वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति, राष्ट्र निर्माणात्मक

---

१. भारतेन्दु ग्रन्थावली : पृ० ३७, ३८
२. प्रेमघन सर्वस्व : पृ० २४६
३. वही : पृ० २५६
४. प्रताप लहरी : पृ० १६६
५. गुप्त निबंधावली : पृ० ६२१

कार्यों का उल्लेख आदि। अपने युग की राष्ट्रीय चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति साहित्य ने की है। राष्ट्रीय नेताओं के विचारों को साहित्य में मुखरित कर तत्कालीन लेखकों ने अपने दायित्व का पूर्णतया निर्वाह किया है। इस प्रकार साहित्य तथा देशदशा का अनन्य संबंध स्थापित हुआ।

सन् १९००-१९२० ई० तक के साहित्य में राष्ट्रीय भावना

१९०० ई० के बाद उत्तरोत्तर राष्ट्रीय भावना विकसित होती गई और राष्ट्रीय उद्गारों को निःशंक रूप में अभिव्यक्त करने का साहस आ गया। अब अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रति किसी प्रकार की श्रद्धा अथवा भक्ति नहीं रह गई थी। हिन्दी साहित्य ने भी अपने युग की राष्ट्रीय-विचारधारा को विशुद्ध रूप में प्रतिबिम्बित किया। राष्ट्रवाद के विभिन्न अंगों की पुष्टि काव्य, नाटक एवं कथा साहित्य द्वारा हुई। जैसा कि राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास एवं स्वरूप (१९०५-१९१९ ई०) में स्पष्ट किया जा चुका है कि राष्ट्रवादी विचारधारा प्रवल रूप में सम्पूर्ण देश में छा गई थी, प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की धाक भारतीय मस्तिष्क में बैठाई जा चुकी थी और साम्राज्यवादियों की निरंकुशता से मुक्ति पाने के लिए अतीत-गौरव एक सुदृढ़ रक्षा-कवच के समान था। अतः हिन्दीसाहित्य में भी भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष के सुन्दर, प्रभावोत्पादक, पुराण तथा इतिहास सम्मत विषय चुने गये। अतीत-गौरव की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति में तीव्रता आई। भौगोलिक एकता एवं मातृभूमि-स्तवन पर विशेष बल दिया गया। वर्तमान के अभावों—राजनीतिक अभिशाप, सामाजिक कुरीतियों, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक हीनता का चित्रण किया गया। राष्ट्रवाद के भावात्मक पक्ष स्वदेशी आन्दोलन, तिलक की उग्र राष्ट्रवादिता, होमरूल आन्दोलन, अहिंसात्मक सत्याग्रह, बलिदान की भावना की साहित्य में अभिव्यक्ति की गई। भारत के भविष्य के सुन्दर स्वप्न संजोये गये।

अतीत-गौरव गान

अतीव-गौरव जन-जीवन में आत्म-विश्वास एवं स्वाभिमान की भावना भरने में अधिक सहायक होता है। इसी कारण स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द तथा राष्ट्रीय नेताओं ने भारतीय जीवन-दर्शन एवं आध्यात्मिक विचारधारा का आधार ग्रहण किया था। लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्व, भारतीय सांस्कृतिक आदर्श एवं उसकी पुरातन रीति थी। इनके अध्ययन के निमित्त इतिहास, धर्मग्रन्थों, भारतीय जीवन-दर्शन के महत्वपूर्ण तथ्यों का अनुसंधान प्रारम्भ हो गया था।

हिन्दी-साहित्य में भी भारतीय सांस्कृतिक आत्मा अर्थात् भारत के विगत आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष के चित्र मिलते हैं।

हिन्दी कविता में अतीत गौरव-गान

भारत के विगत-गौरव का हिन्दी-कविता में वर्णनात्मक एवं इतिवृत्तात्मक रूप में चित्रण मिलता है। इस युग के काव्य की विशेषता यह है कि पौराणिक, प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक आख्यान लेकर कथा-काव्य अधिक संख्या में लिखे गए, जैसे—मैथिलीशरण गुप्त का 'रंग में भंग', (१६०६), जयद्रथ-वध (१६१०); अयोध्यासिंह उपाध्याय का प्रिय-प्रवास; सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य विजय' (१६१४); जयशंकरप्रसाद का महाराणा का महत्व; लोचनप्रसाद पाण्डेय का 'मेवाड़-गाथा' आदि। मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीय काव्य-पुस्तक 'भारत-भारती' की रचना भी इसी काल में की, जिसमें वर्तमान अधोगति को अतीत गौरव गान से उत्कर्ष की प्रेरणा मिली। अनेक स्फुट रचनाएं भी भारत के गत-गौरव से संबंधित मिलती हैं। इस युग के कवियों ने भारत की पुरातन आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, नैतिक मान्यता पर विशेष बल दिया, जिसने पूर्वजों के भौतिक उत्कर्ष की नियमित कर रखा था।

आध्यात्मिक उत्कर्ष

भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष के उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत कर देशवाशियों को उनकी आध्यात्मिक उच्चता का संदेश देने के लिए राम एवं कृष्ण के चरित्र पर प्रकाश डाला गया। रामचरित्र की विशेषताओं के उद्‌घाटन के लिए माखनलाल चतुर्वेदी ने सन् १६०६ और सन् १६१६ में दो 'रामनवमी' कविताओं की सर्जना की। रामनवमी के पुर्ण्य पर्व पर पुनः रामजन्म का आह्वान करता हुआ कवि आर्यधर्म के विस्तार की आकांक्षा रखता है। १६०६ में रचित 'रामनवमी' कविता में चतुर्वेदी जी ने यह आशा व्यक्त की है कि राम के आगमन से मेघनाद सम शत्रु दब जायेंगे और भारत भूमि पुनः पवित्र हो जायेगी।[१] इस कविता में मर्यादा पुरुषोत्तम राम को आध्यात्मिक वीर-पुरुष के रूप में दृष्टिगत किया गया है। नाथूराम शंकर शर्मा ने पवित्र रामचरित पर काव्य रच देशवासियों से उसे उर में धारण करने का आग्रह किया है।[२] 'रामलीला' कविता में राम की लीला गाई है।[३] कृष्णचरित्र की गौरव गरिमा का गायन अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" के प्रिय-प्रवास महाकाव्य में मिलता है। इस ग्रन्थ में 'हरिऔध' जी ने कृष्ण को एक आदर्श चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। यशोदा मातृत्व रस में पगे हुए शब्दों द्वारा कृष्ण के चरित्र

---

१. **माखनलाल चतुर्वेदी : माता : प्रथम संस्करण सं० २००८, पंकज प्रकाशन, खंडवा**

२. **नाथूरामशंकर शर्मा : शंकर सर्वस्व : पृ० ६६**

३. **नाथूरामशंकर शर्मा : शंकर सर्वस्व : पृ० २७४**

की दिव्य विशेषताओं—शील, सौजन्य, परदुःखकातरता, मृदु-भाषिता आदि का उल्लेख करती है।[1]

'भारत-भारती' मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध राष्ट्रीय कृति है। प्रो० सुधीन्द्र ने इस ग्रंथ के संबंध में लिखा है--'भारत-भारती' ने अतीत-दर्शन का एक गौरव-गर्वित वातावरण बनाया और उसकी प्रतिध्वनि कई वर्षों तक कवियों के कण्ठों से स्फुट कविताओं के रूप में होती रही।'[2] इस काव्य-पुस्तक को कवि ने तीन खण्डों में विभाजित किया है अतीत, वर्तमान एवं भविष्य। अतीत खंड में पूर्वजों का कीति-गान मिलता है। कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हमारे पूर्वज धर्मवीर, गंभीर, वरवीर तथा ध्रुववीर थे। उनका मानसिक स्तर अति उच्च था। उन्नति के उत्तुंग शिखर पर पहुंच कर भी हमारे पूर्व-पुरुष विनीत, परदुःखकातर एवं परमार्थी थे।[3]

देखो हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था।
नर देव थे हम, और भारत देव लोक समान था।।[4]

पुरुष-वर्ग ही नहीं नारी-वृन्द भी आध्यात्मिक एवं दैवी गुणों से विभूषित था। प्रिय-प्रवास की राधा इसका सुन्दर निदर्शन है। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में सावित्री, सुकन्या, अंशुमती जैसी सती एवं सेवार्थ जीवन व्यतीत करने वाली नारियों का उल्लेख किया है। नारी वर्ग में भी दिव्य बल था जैसे गान्धारी, दमयन्ती आदि में।[5]

भारत में अध्यात्म विद्या का आलोक फैला हुआ था। सृष्टि के गूढ़ रहस्य को सर्वप्रथम भारत में समझा गया था। यौगिक विद्या में पारंगत योगी आज भी मिल जायेंगे।[6] गुप्त जी के मत में जगत् ने सर्वप्रथम दार्शनिक सिद्धान्त गौतम, कपिल, जैमिनि, पतंजलि, व्यास और कणाद से पाये हैं। जब संसार में इंजील और कुरान की रचना नहीं हुई थी, वेद ग्रन्थ रचे जा चुके थे।[7]

सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्य-विजय' नामक काव्य ग्रन्थ में इतिहास प्रसिद्ध वीर नृपवर, चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा ली है। इस आख्यान-काव्य में सियाराम जी ने भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के संबंध में लिखा है कि अन्य देशों ने

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : प्रिय-प्रवास : पृ० ७१-७२ : पंचम बार, प्रकाशक—खंग विलास प्रेस, बांकीपुर, बा० रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित
२. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर : पृ० २५८
३. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० १६ : चौबीसवां संस्करण, २००९ वि०
४. वही पृ० १६
५. वही पृ० १३-१४'
६. वही पृ० २८
७. वही पृ० ४३

इसी देश से सदुपदेश-पीयूष का पान किया है :—

है क्या कोई देश यहां से जो न जिया है ?
सदुपदेश पीयूष सभी ने यहां पिया है।
नर क्या, इसको अवलोक कर कहते हैं सुर भी यही—
जय जय भारतवासी कृती, जय जय जय भारत मही ॥[1]

हिन्दी साहित्य में अतीतकालीन भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष के चित्र पुरातन हिन्दू-धर्म, हिन्दू दर्शन एवं आध्यात्मिक भावना को दृष्टि में रखकर रचे गये हैं। वस्तुतः भारत का आध्यात्मिक ज्ञान अति पुरातन है। अन्य अल्पसंख्यक भारतीय जनता के धर्म की उपेक्षा न करने पर भी हिन्दू आध्यात्मिकता के सम्मुख उन्हें अधिक प्राचीन नहीं माना गया है। इस युग के काव्य से यह भी स्पष्ट ध्वनित होता है कि अन्य धर्म भी भारत की ही पुरातन आध्यात्मिक विचारधारा से अनुप्राणित हैं।

नैतिक उत्कर्ष

नैतिकता आध्यात्मिक उत्कर्ष तक पहुंचने का आवश्यक साधन है। इन दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है। इस युग के काव्य में पूर्वजों के नैतिक उत्कर्ष एवं आदर्श जीवन के वर्णन भी मिलते हैं। राम और कृष्ण जैसे ईश्वरावतारों को आधुनिक युग में यथासंभव मानव-चरित्र के रूप में चित्रित किया गया और उनके माध्यम से मानव के उच्च नैतिक गुणों को प्रकाशित कर राष्ट्र-जीवन के उत्थान के लिये मान्य ठहराया गया। आर्य-समाज जैसी संस्थाएं और स्वामी विवेकानन्द जैसी महान आत्मायें देश की आध्यात्मिक नैतिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील थीं ही।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रिय-प्रवास' में कृष्ण का आदर्श चरित्र मिलता है। कृष्ण चरित्र द्वारा नैतिक आदर्शों की पूर्ति की गई है। वे एक आदर्श मानव, समाज सेवक के रूप में सत्याचरण का महान् आदर्श रखते हैं। बृज में घनघोर वृष्टि होने पर, परोपकार-भावना से, बृजवासियों की रक्षा करने के लिए असीम साहस भर कर, मनुष्यों और गौओं को गोवर्द्धन पर्वत की सुरक्षित कंदराओं में पहुंचाते हैं :—

भ्रमण ही करते सबने उन्हें,
सकल काल लखा सप्रसन्नता।
रजनि भी उनकी कटती रही,
स-विधि-रक्षण में ब्रज-लोक के।
लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में,
ब्रज-धराधिप के प्रिय-पुत्र का;

१. सियारामशरण गुप्त : मौर्य-विजय : पृ० ११, २००५ विक्रम, प्रकाशक—साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी

सकल लोग लगे कहने उसे
रख लिया उंगली पर श्याम ने ।।[1]

राम का चरित्र तो नैतिकता का प्रतिरूप है । उन्होंने अधर्म, अन्याय, अत्याचार को मिटाकर अपना राज्य स्थापित किया था । आज भी 'रामनवमी' का पुण्य पर्व देशवासियों को नैतिकता का महत्वपूर्ण संदेश देता है। इस युग में राम-चरित्र को लेकर कई कविताएं लिखी गई हैं । माखनलाल चतुर्वेदी की 'रामनवमी' कविताएं[2] और 'पवित्र रामचरित्र'[3] कवि शंकर की ।

१६००-२० ई० के काल में पुरातत्व विभाग और कर्नल टाड के 'राजस्थान' के फलस्वरूप राजस्थान के अनेक वीरत्व एवं नैतिक उच्चादर्शों से पूर्ण चरित्रों का उद्‌घाटन हुआ । साधारण हिन्दू जनता को अपने देश की वीर जाति राजपूतों पर गर्व होना स्वाभाविक था। कवियों ने इनकी वीरता का गान कर पराधीन, हतोत्साह, अवनत भारत जनता को ओज से ही नहीं भरा वरन् वीर पात्रों के नैतिकतापूर्ण चरित्र द्वारा जनता को संयम और नियम का पाठ भी पढ़ाया। मैथिलीशरण गुप्त ने 'रंग में भंग' (१६०६) नामक ऐतिहासिक कथाकाव्य लिखा। इसकी भूमिका में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, 'देश के विशेषकर राजपूताने के इतिहास में ऐसी अनन्त वीरोचित, गाढ़ देशभक्ति-दर्शक और गम्भीर गौरवास्पद घटनाएं हुई हैं जो चिरस्मरण योग्य हैं । उनको भूलना, उनसे शिक्षा न लेना, उनके महत्व को लेख, पुस्तक और कविता द्वारा न बढ़ाना दुःख की बात है—दुर्भाग्य की बात है ।'[4] द्विवेदी जी के इस परिताप का साहित्यकारों पर विशेष प्रभाव पड़ा होगा, और 'रंग में भंग' के पश्चात् शिक्षा-प्रद, नैतिकता एवं वीरतापूर्ण ऐतिहासिक आख्यानों को लेकर काव्य, नाटक, कथा-साहित्य लिखने की परम्परा द्रुत गति से चल पड़ी। 'रंग में भंग' काव्याख्यान में कवि ने नारी के नैतिक उच्चादर्श की स्थापना की है। बूंदी नरेश नरसिंह के भाई लालसिंह की कन्या का विवाह सीसोदिया वंश के भूप 'खेतल' से होता है लेकिन विदा के समय लालसिंह नृपाल ने वरपक्ष के राजकवि से कह दिया कि मूर्ति को देखकर जो उसने अपने महाराजा की प्रशंसा की थी वह मात्र चाटुकारी थी । राजकवि ने संतापवश शीश काट डाला, जिसने वर-पक्ष को कन्या-पक्ष से युद्ध के लिए प्रेरित किया । वर को भी वीर गति मिली । नव-विवाहिता वधू का सौभाग्य

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : प्रिय-प्रवास : पृ० १५६
२. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ११
३. शंकर : शंकर सर्वस्व : पृ० ६६ : प्रथमावृत्ति : सम्पादक—श्री हरिशंकर शर्मा, प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा
४. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग : भूमिका : द्वादश संस्करण : प्रकाशक—साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी

लुट गया लेकिन उसने पति के साथ भस्म होकर सतीत्व का महान् आदर्श रखा। भारतीय नारी की नैतिकता का यह अनुपम उदाहरण, भारत की विश्वख्याति का कारण है :—

धन्य है तू आर्य कन्ये। धन्य तेरा धर्म है,
देवि तू ! स्वर्गीय है, स्वर्गीय तेरा कर्म है।
प्राण देना धर्म्म पर तेरे लिये क्या बात है,
कीर्ति भारत की तुझी से विश्व में विख्यात है।[1]

मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' के अतीत-खण्ड में भी पूर्वजों के नैतिक उच्चादर्शों का उल्लेख किया गया है। भारत वह देश है जहां अतीत काल में, जब वह किसी भी विदेशी शासक से आक्रान्त नहीं हुआ था, राजा भी भोग से मुक्त रहा करते थे। भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता एवं नैतिकता जीवन का लक्ष्य था। प्रजा को अपनी संतान समझते थे—'होते प्रजा के अर्थ ही वे राज्यकार्यासक्त थे'[2] गुप्त जी के अभिमत में भारतवासियों ने शक्ति का उपयोग अन्याय एवं अत्याचार के दमन के लिए किया था। वह कभी अशान्ति और क्रान्ति का कारण नहीं बना।[3] 'भारत-भारती' को राष्ट्रीय गीता की संज्ञा से विभूषित करना अनुचित न होगा क्योंकि इसमें भारतीयों के उद्बोधन का सफल प्रयास हुआ है।

जयशंकर प्रसाद का 'महाराणा का महत्व' और सियारामशरण गुप्त का 'मौर्यविजय' अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक वीराख्यानक काव्य-ग्रन्थ हैं। प्रसाद जी के 'महाराणा का महत्व' की मूल भावना महाराणा प्रताप के चरित्र की नैतिक श्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराना है। महाराणा का शारीरिक बल-विक्रम नैतिकता की अग्नि में तपकर स्वर्ण-सा दमक गया था। इसी कारण इस काव्य ग्रन्थ में महाराणा. कृष्णसिंह द्वारा वन्दिनी नवाब की पत्नी को सादर नवाब को लौटा देते हैं। उनकी दृष्टि में अनुचित बल से काम लेना सुकर्म नहीं था :—

कहा तमक कर तब प्रताप ने—" क्या कहा
अनुचित बल से लेना काम सुकर्म है।
इस अबला के बल से होंगे सबल क्या ?
रण में टूटे ढाल तुम्हारी जो कभी
तो बचने के लिये शत्रु के सामने
पीठ करोगे ? नहीं कभी ऐसा नहीं,

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग : पृ० २४
२. मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती : पृ० ५३
३. वही, पृ० ५३

दृढ़ प्रतिज्ञा यह हृदय, तुम्हारी ढाल बन
तुम्हें बचायेगा। इस पर भी ध्यान दो।"[1]

प्रसाद जी ने महाराणा द्वारा यह भी कहलाया है कि 'परम सत्य को छोड़ न हटते वीर हैं।'[2] यवनों से महाराणा को शत्रुता थी, युद्ध था, लेकिन यवनीगण से द्वेष नहीं था।

महाराणा प्रताप ने अपने आदर्श-चरित्र का प्रमाण देकर नैतिकता के युद्ध में नवाब को पराजित कर दिया था। 'कर्मयोग—रतन वीर को मिलती सिद्धि सदा अपने सत्कर्म से' यही इस कथा का मूल मन्त्र है।

सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्यविजय' नामक ऐतिहासिक-काव्य में चन्द्रगुप्त मौर्य के तेज, विक्रम, प्रजावत्सलता, न्याय आदि का उल्लेख किया है।

भारत भूपति चन्द्रगुप्त थे तेजोधारी
शासन उनका प्रजावर्ग को था सुखकारी।
थे वे सद्गुणशील और बल विक्रम वाले।'
पद-मर्दित सब शत्रु उन्होंने थे कर डाले।।[3]

मौर्य-कालीन देशवासियों की चारित्रिक श्रेष्ठता के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है:—

दुश्चरित्रता नहीं देखने में आती थी,
नहीं किसी की वृत्ति अकार्यों पर जाती थी।
सब प्रेम सहित थे चाहते एक दूसरे को सदा;
सद्भाव-पद्म-परिपूर्ण थे सबके मानस सर्वदा।।[4]

कवि के मतानुसार उस समय देश अत्यधिक समुन्नत था, जैसा कि अन्य कोई भी देश न था; सब नियमपूर्वक रहते थे, कोई झूठी बात न कहता था और शासन का सब कार्य इस प्रकार होता था जैसे स्वयं धर्म ही राजकाज करता हो।[5] अर्द्ध एशिया खण्ड को विजित करने वाला सिल्यूकस भी भारत के चारित्रिक उत्कर्ष को देख अति प्रभावित होकर कहता है:—

धीर-वीर ये भारतीय होते हैं कैसे,
किसी देश के मनुज न देखे इनके जैसे।

---

१. जयशंकर प्रसाद: महाराणा का महत्व: पृ० ११: तृतीय संस्करण, सं० २००५ प्रकाशक तथा विक्रेता: भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद
२. जयशंकर प्रसाद: महाराणा का महत्व: पृ० १२
३. सियारामशरण गुप्त: मौर्य विजय: पृ० ५: २००५ वि०
४. वही, पृ० ६
५. वही, पृ० ७

क्या ही उज्ज्वल, गेय चरित इनके होते हैं,
ग्रीकों का भी गर्व कार्य इनके खोते हैं ।[१]

इतिहास हमारे इस अतीतकालीन उत्कर्ष का साक्षी है । लोचनप्रसाद पाण्डेय ने भी 'मेवाड़-गाथा' (१९१४ ई०) नामक ऐतिहासिक काव्य में मध्यकालीन देश के नैतिक उत्कर्ष का उल्लेख इन पंक्तियों में किया है :—

शुचि स्वदेश वात्सल्य, सत्य प्रियता, सहिष्णुता ।
आत्मत्याग, श्रमशक्ति, समर दृढ़ता रण पटुता ।।
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता, अखण्ड ।
करती है जिस भूमि की, उज्ज्वल भारत खण्ड,
अखिल भूलोक में ।।[२]

'रत्नाकर' ने भी काव्य द्वारा नैतिकता, धार्मिकता, सत्यता का उच्च आदर्श ब्रजभाषा में रखा है । 'हरिश्चन्द्र' नामक काव्य में पौराणिक कथा में देशभक्ति की झलक स्पष्ट है । राजा हरिश्चन्द्र का सत्यनिष्ठ चरित्र आज भी आदर्श एवं अनुकरणीय है ।[3]

मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, जयशंकर प्रसाद सियारामशरण गुप्त, लोचन प्रसाद पाण्डेय प्रभृति कविगणों को देश के प्राचीन नैतिकादर्शों में पूर्ण विश्वास था । वे देश की आध्यात्मिक, नैतिक श्रेष्ठता के आकांक्षी थे । अतः इतिवृत्तात्मक कथा काव्य अथवा वर्णनात्मक स्फुट कविता द्वारा पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आख्यानों द्वारा देश को आध्यात्मिक, नैतिक आदर्शों से परिचित कराया ।

भौतिक उत्कर्ष :

भारत शताब्दियों से अपनी आध्यात्मिकता, दार्शनिकता एवं नैतिकता के लिए प्रसिद्ध है । इसका यह अर्थ नहीं कि भौतिक प्रसाधनों, कला-कौशल, ऐश्वर्य-वैभव में वह किसी देश से पिछड़ा था । पूर्व-काल में वह भौतिक दृष्टि से भी सुसम्पन्न था । शिल्पकला का इतना विकास हो चुका था कि हमारी प्राचीन मूर्तियां भी ऊँचे चढ़ने और आगे बढ़ने का सन्देश देती थीं जैसा कि 'रंग में भंग' में मैथिलीशरण जी ने एक पंक्ति में इसका संकेत कर दिया है ।[४] 'भारत-भारती' में मैथिलीशरण गुप्त जी ने विशेष रूप से अनेक विषयों के अन्तर्गत देश की भौतिक समृद्धि, कला-कौशल, वाणिज्य आदि का विस्तृत वर्णन किया है । कवि के अभिमत में शिल्प-विद्या का चरमोत्कर्ष ही

१. सियारामशरण गुप्त : मौर्य विजय पृ० ९
२. लोचनप्रसाद पाण्डेय : मेवाड़ गाथा : पृ० ६
३. रत्नाकर : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृ० ५५
४. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग : पृ० ७

महाभारत का कारण बना था। पुरातत्व विभाग की ओर से खुदाई का कार्य प्रारम्भ होने पर अनेक चिह्न प्राचीन शिल्प-कला के मिले हैं। सिन्धु-सेतु, दक्षिण के मन्दिर प्राचीन भारत की कला-कौशल की वृद्धि के स्मारक हैं। 'चित्रकारी', मूर्ति निर्माण, संगीत, अभिनय आदि कलाएँ अत्यधिक विकसित हो चुकी थीं। पुरुष ही नहीं स्त्रियां भी चित्रकारी में निपुण थीं।[1] कवि के अनुसार हम रा साहित्य अति प्राचीन है। वेद, उपनिषद्, सूत्र-ग्रन्थ, दर्शन, गीता, धर्म्मशास्त्र नीति ग्रन्थ, ज्योतिष, अंकगणित, रेखा-गणित, सामुद्रिक और फलित ज्योतिष, भाषा और व्याकरण, वैद्यक सभी विषयों के ग्रन्थों की रचना सर्व प्रथम भारत में हुई थी, जिसका अनुकरण एशिया के साथ पश्चिमी देशों ने भी किया था। इस उल्लेख को पुष्ट तर्कों के साथ गुप्तजी ने रखा है। वाल्मीकि, वेदव्यास और कालीदास के साहित्य-ग्रन्थों की समानता शेक्सपीयर, होमर और फिरदौसी नहीं कर सकते।[2] हमारा प्राचीन इतिहास आज भी बहुत कुछ सुरक्षित है जो हमासे पूर्वजों के जीवन के गौरवमय पृष्ठों का उन्मूल्यन करता है। 'मौर्य-विजय' में सियारामशरण गुप्त ने मौर्यकालीन भारत की भौतिक समृद्धि का सुन्दर वर्णन किया है :

> **उनकी सु-राजधानी विदित पाटलिपुत्र मनोज्ञ थी;**
> **जिसकी उपमा के अर्थ बस अमरपुरी ही योग्य थी ॥[3]**

भौतिक-उत्कर्ष के वर्णन में कवियों का सर्वाधिक ध्यान भारत की प्राचीन वीर-भावना की ओर आकृष्ट हुआ है। इस वर्णन में ओज की मात्रा का प्राधान्य है। यह लोकमान्य तिलक जैसे उग्र राष्ट्रवादियों का प्रभाव था जिन्होंने देशवासियों को अपनी छिपी हुई शक्ति पहचानने के लिए, देश के वीर-चरित्रों की ओर देखने को प्रेरित किया था। राम और कृष्ण जैसे ईश्वरीय पौराणिक चरित्रों के अंकन में भी इस युग के कवि ने, वीरत्व के प्रबल आग्रह से कार्य लिया है। माखनलाल चतुर्वेदी 'रामनवमी, (१९०६ ई०) कविता में लिखते हैं :—

> **पधारो, एक बार फिर सुनें, धनुष की वह अद्भुत टंकार,**
> **पधारो मेघनाद दब जाय हो पड़े जहां कठिन हुंकार ॥[4]**

'प्रियप्रवास' के कृष्ण वीर महापुरुष हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने 'रंग में भंग' की कथा राजपूताने के इतिहास से लेकर और 'जयद्रथ-वध' की कथा 'महाभारत' से लेकर दो सुन्दर वीर-रस पूर्ण करुण कथा काव्य लिखे हैं। 'रंग में भंग' कथा-काव्य में वीर-हाड़ा-कुम्भ की वीरता का आदर्श चित्र चित्रित किया गया है। आन और मान पर मर जाने वाली वीर राजपूत जाति हमारे देश का गौरवमय पक्ष है। बूंदी निवासी

---

१. **मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ४६**

२. **वही, पृ० ४३**

३. **सियारामशरण गुप्त : मौर्यविजय : पृ० ५**

४. **माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० १०**

कुम्भ की वीर-भावना और देश-भक्ति को यह सहन नहीं था कि बूँदी के किले की प्रतिकृति बनाकर उसे तोड़ा जाय :—

स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म भूमि कही गई,
सेवनीया है सभी की वह महा महिमामयी ।
फिर अनादर क्या उसी का मैं खड़ा देखा करूं ?
भीरु हूं क्या मैं अहो । जो मृत्यु से मन में डरूं ।[१]

उसने 'नकली किले' के लिए प्राणोत्सर्ग कर अपनी वीरता का ज्वलंत उदाहरण रखा था । 'जयद्रथ-वध' नामक खंड-काव्य महाभारत युग की वीर-भावना को मुखरित करता है । इसमें चक्रव्यूह तोड़ने के प्रयास में वीरगति पाने वाले षोडश वर्षीय वीर अभिमन्यु तथा अर्जुन द्वारा जयद्रथ-वध कर उसकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने की कथा है । आर्य-वीर विपक्ष के वैभव को देखकर डरते नहीं थे । उनमें अतुलनीय साहस एवं पराक्रम था :—

अभिमन्यु षोडश वर्ष का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं,
क्या आर्यवीर विपक्ष-वैभव देख कर डरते कहीं ?
सुन कर गजों का घोष उसको समझ निज-अपयश-कथा,
उन पर झपटता सिंह शिशु भी रोष कर जब सर्वथा ।।[२]

अभिमन्यु की वीरता की प्रशंसा विपक्षियों ने भी की थी । अर्जुन की वीरता का वर्णन कवि ने आलंकारिक-भाषा में किया है :—

जाज्वल्य ज्वालामय अनल की फैलती जो कान्ति है,
कर याद अर्जुन की छटा होती उसी की भ्रान्ति है ।
इस युद्ध में जैसा पराक्रम पार्थ का देखा गया,
इतिहास के आलोक में है सर्वथा ही वह नया ।।[3]

पुरुषों की भांति नारियां भी वीर थीं । स्वयं ही प्रियजनों को युद्ध के लिए सुसज्जित कर भेजती थीं । जयद्रथ-वध में उत्तरा कहती है—

मैं यह नहीं कहती कि रिपु से जीवितेश लड़ें नहीं,
तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं ?
में जानती हूं नाथ यह मैं मानती भी हूँ तथा—
उपकरण से क्या, शक्ति में ही सिद्धि रहती सर्वथा ।।

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग : पृ० २४
२. मैथिलीशरण गुप्त : जयद्रथ-वध : पृ० ६
३. वही, पृ० ६६-६७

क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही
सज्जित करें पति-पुत्र को रण के लिए जो आप ही ।।[1]

'भारत-भारती' में भी कवि ने देश की विगत वीरता का वर्णन किया है । 'हमारी वीरता' कविता में कवि ने लिखा है कि भारत में चारों प्रकार के वीर थे—कर्मवीर, युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर । इतिहास साक्षी है कि पुरुषों के साथ स्त्रियां भी यहां लड़ी हैं । हमारे वीर-पुरुषों के समर-सिद्धान्त भी औदार्य-पूर्ण तथा पवित्र थे, जिनमें केवल युद्ध-क्षेत्र में ही शत्रु वैरी था अन्यथा मित्र ।[2]

जयशंकरप्रसाद का 'महाराणा का महत्व' और सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य-विजय' भारत की अतीतकालीन वीर-भावना के परिचायक काव्य-ग्रन्थ हैं । राजपूत वीरों की आकृति ही उनके वीरत्व की झलक दिखाने वाली थी । महाराणा के वीर सैनिक 'लू' सदृश विरोधी यवनों पर आक्रमण करते थे ।[3] महाराणा प्रताप तो आर्य जाति के तेज, देशभक्त, जननी के सच्चे वीर पुत्र थे ।[4] सियारामशरण गुप्त ने इतिहास प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा लेकर 'मौर्य विजय' में भारतवासियों की सिल्युकस जैसे विश्व विजय के आकांक्षी वीर पर विजय दिखाई है । इस पुस्तक की भूमिका में मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—"यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और वह उस पर अभिमान करे तो उसका भविष्यत् भी गौरवपूर्ण हो सकता है । जो जिस बात पर अभिमान करता है—अथवा अभिमान करना सीखता है—वह एक न एक दिन उसके अनुकूल कार्य करने की चेष्टा भी कर सकता है । पतित जातियों को उनके उत्थान में उनके अतीत गौरव का स्मरण बहुत बड़ा सहायक होता है ।"[5] निःसन्देह 'मौर्यविजय' जैसी अतीत-गौरव-स्मरण के हेतु लिखी गई कृतियां, पराधीन एवं दलित भारतवासियों को स्वाभिमान एवं उत्साह से भरने में सहायक थीं । कवि ने काव्य के अन्त में लिखा है—

जग में अब भी गूंज रहे हैं गीत हमारे,
शौर्य-वीर्य गुण हुए न अब भी हम से न्यारे ।
रोम, मिस्र, चीनादि कांपते रहते सारे;
यूनानी तो अभी अभी हम से हैं हारे ।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय;
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ।।[6]

---

१. मैथिलीशरणगुप्त जयद्रथ वध : पृ० ७
२. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ५२
३. जयशंकर प्रसाद : महाराणा का महत्व : पृ० ५
४. वही, पृ० ६
५. सियारामशरण गुप्त : मौर्य विजय : भूमिका
६. वही, पृ० ३०

चन्द्रगुप्त मौर्य की वीरता पर मुग्ध होकर ग्रीक सम्राट् ने उनसे अपनी सुता का विवाह किया था। प्रच्छन्न रूप से प्रसाद जी ने इस इतिहास प्रसिद्ध घटना द्वारा भारतीयों को प्रोत्साहित किया है कि उनके पूर्वजों ने विदेशी शक्तियों को परास्त किया था, अतः उनके लिए भी विदेशी शासकों से मुक्त होना असंभव अथवा कठिन नहीं है।

भारन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग में अतीत के अधिक भव्य चित्र कवियों की लेखनी द्वारा प्रस्तुत किये गये। इस युग के कवियों का मनोभाव बदल गया था, इस कारण अतीत की दुर्बलताओं अथवा भूलों पर बल न देकर उज्ज्वल पक्ष के अंकन पर दृष्टि रही। भारतेन्दु युग की निराशा के स्थान पर आशा और विश्वास से भरा हुआ अतीत सम्मुख आया। यह चित्रण देशवासियों की शिराओं में आध्यात्मिकता नैतिकता एवं वीर भावना का रक्त-संचार करने में पूर्ण समर्थ था। अतीत गौरव-गान में भारतीय जीवन-दर्शन, आदर्श, मूल्य और मान्यताओं की प्रतिस्ठा की गई।

काव्य में वर्णित अतीत-गौरव-वर्णन पर यह दोष लगाया जा सकता है कि यह केवल हिन्दू-जाति अथवा हिन्बू-सम्प्रदाय की स्वाभिमान की भावना के उद्रेक अथवा जागृति में सहायक है।[1] हिन्दी के कविगणों ने देश में बसने वाली अन्य अल्प संख्यक जातियों का विचार नहीं रखा जैसा कि इस युग की राष्ट्रीवादी विचारधारा के विकास के इतिहास में स्पष्ट किया जा चुका है मुसलमानों ने राष्ट्रय भावना के विकास में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान नहीं किया था और लार्ड कर्जन की बंग-भंग नीति ने हिन्दू-मुस्लिम-वैषम्य का बीज वपन कर मुस्लिम-लीग जैसी साम्प्रदायिक संस्था को जन्म दिया था। इस कारण इतिहास के मुस्लिम काल और मुसलमान पात्रों के प्रति हिन्दी कवियों की संवेदना जाग्रत न हो सकी थी। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में यह स्पष्ट कह दिया है कि मुसलमान शासकों के युग में ही भारत की स्वतन्त्रता सो गई थी।[2] युग की ऐतिहासिक परिस्थिति में कवि इतना उदार न बन सका कि देश के मुसलमानों की सांस्कृतिक चेतना को अपना सकता। वैसे इस युग के काव्य में यवनों के प्रति विद्वेष का भाव नहीं मिलता। आर्य-समाज, स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवादी नेतागण उदाहरणार्थ लोकमान्य आदि की प्राचीन भारतीय संस्कृति, हिन्दू धर्म, वेद-ग्रन्थों पर अटूट श्रद्धा थी जिनसे अधिकांश कवि प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त गांधी जी के आगमन के पूर्व राष्ट्रवाद का विस्तृत रूप भी नहीं आ पाया था। तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत कर कवियों की अतीतकालीन हिन्दू सांस्कृतिक चेतना न्याय्य एवं संगत लगती है।

---

१. डा० केसरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत : पृ० १३९

२. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ७४

अतीत-गौरव की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति :

इस युग के कवियों की, अतीत-गौरव की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति भी अधिक तीव्र थी। अतीत-गौरव-गान का सबसे बड़ा उद्देश्य यही होता है कि दुर्दशाग्रस्त देशों में अपनी अवनति के प्रति क्षोभ का भाव जाग जाये। इस प्रकार अतीत-गौरव से सम्बन्धित सभी काव्य-ग्रन्थ प्रत्यक्ष रूप में इस ध्येय की पूर्ति करते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, जयशंकर प्रसाद, सियाराम शरण गुप्त सभी ने अतीत-गौरव से भारत के तत्कालीन वर्तमान की तुलना की है।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'रंग में भंग' के प्रारम्भ में ही विगत-गौरव का वर्णन करते समय वर्तमान परिवर्तित दशा का संकेत कर दिया है:—

जिस समय से इस कथा का है यहां वर्णन चला,
था अनल निधि गुण अवनि तव बिक्रमी संवत् भला।
उस समय से इस समय की कुछ दशा ही और है,
पलटता रहता समय संसार में सब ठौर है॥[१]

'भारत-भारती' की रचना का उद्देश्य ही प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन और भविष्यत् के लिए प्रोत्साहन है। अतीत-गौरव की स्मृति की पृष्ठ-भूमि में कवि ने वर्तमान पर विचार किया है और भविष्य का स्वप्न देखा है। कवि ने लिखा है कि भारत भूमि का उत्कर्ष अति प्राचीन है, आज भी इससे पुरातन देश विश्व में नहीं है।। विद्या कौशल के प्रथम आचार्य यहीं हुए, यहां के निवासी आर्य-जन हैं लेकिन आज उनकी सन्तान अधोगति में पड़ी है।[२] कवि ने अपने देश की पुरातन सभ्यता, संस्कृति, राजनीति आदि की श्रेष्ठता का वर्णन कर अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी शासकों की कुटिल नीति की निन्दा भी की है।[3] कवि इस तुलनात्मक विवेचन से निष्कर्ष निकालता है कि आज हम पराधीन हैं तो क्या हुआ, जो स्वाधीन जातियां हैं, उनकी स्वाधीनता की शक्ति भारत से उधार ली हुई है। यूनान के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि उसे दार्शनिकता और अलौकिक ज्ञान का प्रकाश भारत से मिला है।[४] कभी कभी कवि अपने पूर्वजों के शुद्ध, बुद्ध, स्वस्थ एवं कर्तव्य की दृढ़ता से पूर्व जीवन का स्मरण कर और वर्तमान जीवन के आलस्य, व्यभिचार तथा व्याधियों से पूर्ण

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग : पृ० ५
२. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ५
३. वही, पृ० १६
४. वही, पृ० २३

जीवन से तुलना कर अति खिन्न हो जाता है।[1] पतन के कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है।[2]

माखनलाल चतुर्वेदी ने भी अतीत से वर्तमान की तुलना करते हुए क्षोभपूर्ण शब्दों में लिखा था :—

कहां देश में हैं वसिष्ठ, जो तुझको ज्ञान बतायें ?
किये गये नि:शस्त्र, किसे, कौशिक रण-कला सिखायें ?[3]

सियारामशरण गुप्त ऐतिहासिक-कथा-काव्य "मौर्य-विजय" में अतीत-गौरव की स्मृति के प्रकाश में वर्तमान अवनति की कालिमा को नहीं भूले हैं—

धीर वीर उस समय सभी थे भारतवासी,
थे अब के-से नहीं दीन, जड़, रुग्ण, विलासी।
आर्योचित ही कार्य सभी कोई करते थे,
रणक्षेत्र में नहीं काल से भी डरते थे।
आलस्य अनुद्यम आदि का पता न लगता था कहीं;
था देश समुन्नत बिश्व में ऐसा कोई भी नहीं ।।
सब कोई उस समय नियमपूर्वक रहते थे;
कभी न कोई झूठी बात मुंह से कहते थे।
शासन का सब कार्य सदा होता था ऐसे—
स्वयं धर्म ही राज-काज करता हो जैसे ।।[4]

भारतेन्दु युग की निराशा की अपेक्षा द्विवेदी युगीन काव्य में अतीत-गौरव का वर्णन एवं वर्तमान दुर्दशा की अतीतोत्कर्ष से तुलना आशा से भरी हुई है। देश के पुनरुत्थान के लिए देश-जीवन में ऐसा उत्साह था कि काव्य में भी कवियों की वाणी में हाहाकार और रोदन नहीं रह गया था :—

जग में अब भी गूंज रहे हैं गीत हमारे,
शौर्य, वीर्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे ।।[5]

भारतीय सदा अभय हैं, उनका जय-जयकार सदैव विश्व में गूंजता रहेगा।

हिन्दी नाटकों में अतीत-गौरव का चित्रण :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् कुछ काल तक हिन्दी नाट्य-साहित्य की

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ० ५७
२. वही, पृ० ७३-७४
३. माखनलाल चतुर्वेदी : माता
४. सियारामशरण गुप्त : मौर्यविजय : पृ० ६-७
५. वही, पृ० ३०

परम्परा में उच्च कोटि के कलापूर्ण नाटकों का अभाव-सा रहा। जयशंकर प्रसाद के आगमन के पश्चात् ही पुनः हिन्दी नाटकों को सुदृढ़ नेतृत्व मिल सका। इस बीच पारसी थियेटर्स के कारण नाटकों का ढेर तो अवश्य लगा लेकिन नाट्यकला के विकास एवं राष्ट्रीय भावना के प्रसार की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नहीं है। नारायण प्रसाद 'बेताब', हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त 'शैदा', राधेश्याम कथावाचक ने अनेक नाटक लिखे हैं। इस समय लिखे गए नाटकों में सबसे अधिक संख्या पौराणिक नाटकों की है। नाट्यकला के तत्वों से पुष्ट नाटक हैं—बदरीनाथ भट्ट का 'कुरु-वन-दहन' (१९१२ ई०), माधव शुक्ल रचित 'महाभारत' (१९१५), नारायण प्रसाद बेताब का 'महाभारत' (१९१२), जयशंकरप्रसाद का 'सज्जन' आदि। इन पौराणिक नाटकों से अतीतकालीन भारत की धार्मिक श्रेष्ठता का प्रतिपादन होता है। अतीत-गौरव के अन्य पक्षों का चित्रण नहीं मिलता। 'सज्जन' नाटक में जयशंकर प्रसाद ने युधिष्ठिर की सज्जनता एवं सत्यता पर प्रकाश डाला है।

भारत के विगत नैतिकादर्श अथवा वीर-भावना का चित्रण करने वाले ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा जयशंकर प्रसाद से प्रारम्भ हुई, उनके पूर्व इस प्रकार के नाटकों की भी कमी थी।

हिन्दी कथा साहित्य में अतीत गौरव का वर्णन :

इस युग में उपन्यास कला का भी यथेष्ट विकास न हो सकने के कारण, पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आख्यानों को लेकर अतीतोत्कर्ष की झलक दिखाने वाले उपन्यासों का नितान्त अभाव था। किशोरीलाल गोस्वामी ने अवश्य इतिहास से कुछ प्रसंग लेकर 'तारा', 'रजिया बेगम', 'द्रौपदी' आदि उपन्यास लिखे थे, लेकिन ऐतिहासिक तत्वों की न्यूनता के कारण राष्ट्रवाद की दृष्टि से भी इनका विशेष महत्व नहीं है। स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त का 'महाराष्ट्र वीर'[1] उपन्यास मिलता है जो युगीन परिस्थितियों के प्रकाश में लिखा गया दृष्टिगत होता है। इसमें शिवाजी के साथ महाराष्ट्र के एक अन्य वीर युवक 'कुमार' की देशभक्ति और वीरता का ओजस्वी वर्णन मिलता है।

१९०० ई० के पश्चात् 'सरस्वती' मासिक पत्रिका के सहयोग से हिन्दी कहानियों का किकास द्रुत-गति से प्रारंभ हो गया था। वृन्दावनलाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद ने भारत के गत वैभव की झांकी दिखाने वाली सुन्दर लघु कहानियों की रचना की थी। वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखी बन्द भाई' (१९०८) कहानी में यवन द्वारा भारतीय आदर्श की रक्षा करवाई गई है। यह दोनों जातियों की एकताका अद्भुत प्रयास भी है। एक यवन एक कुमारी की राखी स्वीकार कर

---

१. स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त : महाराष्ट्र वीर : तृतीय संस्करण, सं० १९७८ वि० प्रकाशक—रामलाल वर्मा, ३७१ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता

कर्तव्य-पालन का उच्चादर्श रखता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'नकली किला' (१९०९ ई०) में वीर कुम्भा द्वारा मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग का महान् दृष्टान्त रखा गया है। इसमें राजपूतों की आन, मर्यादा और वीरभावना पर प्रकाश डाला गया है।

जयशंकर प्रसाद की १९२० ई० के पूर्व की कहानियों का संकलन 'छाया' है। नाटक की भांति प्रसाद जी ने कहानियों में भी भारत के अतीत-गौरव के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। प्रसाद जी ने नैतिक श्रेष्ठता और परि-भावना को अधिक महत्व दिया है। 'सिकन्दर की शपथ', 'अशोक', 'चित्तौर का उद्धार' कहानियां इसका निदर्शन हैं। 'सिकन्दर की शपथ' कहानी में राजपूत पुरुष और नारियों की वीरता के साथ नैतिक आदर्शों का अपूर्व सम्मिश्रण मिलता है। वीर राजपूतों ने मृत्यु को अंगीकार किया लेकिन 'अपने भाइयों पर अत्याचार करने में ग्रीकों का साथ' नहीं दिया।[1] अफगान रमणी और भारतीय नारी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए प्रसाद जी ने भारतीय नारी को नैतिकादर्श का मूर्त रूप और रणचंडी घोषित किया है। "रणचण्डियाँ भी अकर्मण्य न रहीं, जीवन देकर अपना धर्म रखा।' इसी प्रकार 'अशोक' कहानी में कुणाल एवं उसकी पत्नी धर्मरक्षिता के नैतिकतापूर्ण आचरण, कष्ट-सहन, त्याग पर प्रकाश डाला है।[2] 'धर्मरक्षिता' पत्नी-धर्म का पूर्ण निर्वाह करती है। 'चित्तौर उद्धार'[3] में वीर हम्मीर अपना स्वत्वाधिकार चित्तौड़ अपनी पत्नी की सहायता से ले लेते हैं। प्रसाद जी की धर्म-सहिष्णु-प्रवृत्ति तथा राष्ट्रीय भावना ने मुस्लिम काल के आदर्श मुसलमान पात्रों को भी नहीं छोड़ा था। 'जहानारा' कहानी में मुगल शाहजादी के जीवन की विशेषताओं का प्रकाशन हुआ है। 'तानसेन' कहानी मुस्लिम काल की संगीत-कला के उत्कर्ष की द्योतक है।[4]

उपन्यास की अपेक्षा, इस युग की कहानियों ने अतीतोत्कर्ष के चित्रण में अपना विशेष सहयोग प्रदान किया था। अप्रत्यक्ष रूप से इन कहानियों ने देशवासियों को अतीत के वैभवमय आलोचक में वर्तमान दुर्दशा को देखने के लिए बाध्य किया होगा। प्रसाद जी की कहानियों के अवलोकन के पश्चात् यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि कहानी साहित्य ने राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक पक्ष की अभिवृद्धि में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष—देशभक्ति

देश के भौतिक पक्ष के प्रति अनन्य अनुराग से उद्वेलित होकर भी साहित्यिक रचना हुई। हिन्दीकविता में विशेष रूप से देश की भौगोलिक एकता, प्राकृतिक

---

१. जयशंकर प्रसाद : छाया : पृ० ५६

२. वही, पृ० ६७

३. वही, पृ० ५९

४. जयशंकर प्रसाद : छाया : पृ० १

सुषमा एवं अतुल निधि का निष्पक्ष एवं उन्मुक्त भाव से चित्रण किया गया।

इस क्षेत्र में श्रीधर पाठक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत देश की वन्दना, जय-जयकार एवं प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कई कविताओं में मिलता है। देश गीत (सं० १९७५),[1] जय जय भारत (संवत् १९७४)[2], जय जय भारत (सं० १९७४)[3], नौमि भारतम् (सं० १९७०)[4], भारताष्टक[5], भारत-स्तव (सं० १९७४)[6] स्वदेश पंचक[7] आदि प्रसिद्ध रचनाएं हैं। उनकी दृष्टि में मातृभूमि भारत धरनि 'सकल जग-सुख-श्रेनि, सुखमा-सुमति संपति-सरनि' है, 'ज्ञान धन, विज्ञान-धन-निधि, प्रेम-निर्भर झरनि' है और 'त्रिजग-पावन-हृदय भावन-भाव-जन-मन झरनि' है। भारत की प्राकृतिक शोभा, उसके हिमशृंग, सुरसरि गंगा, साधु-समाज का जय-जयकार करते हुए पाठक जी का देश प्रेम पराकाष्ठा पर पहुंच कर मातृभूमि को तीनों लोकों का स्तम्भ रूप मानता है, जो अत्यधिक सुन्दर, सुख की खान, सती, स्वधर्म में कुशल और जगत् की ज्योति, जग-सृष्टि धुरंधरि है।[8] पाठक जी की देशभक्ति में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी—' की भावना मिलती है। उन्होंने देश को परम पुनीत मातृ रूप में देखा है। उनका प्रेम केवल देशवासियों पर ही नहीं, देश की नदियों, पर्वतों, पेड़ पत्तियों पर भी है। उनकी देशभक्ति अति उदार थी, जिसका ब्रिटेन से कोई विरोध नहीं था—

> **प्रिय भारत देश हमारा है। है हमें स्वर्ग से प्यारा**
> **त्यों ही ब्रिटेन भी सारा। है प्यारा मित्र हमारा**
> **हम दोनों के सेवक हैं, सेवाधर्म निभावेंगे**
> **हम सेवा कर सब भांति जगत् सुख पहुंचावेंगे।**[9]

पाठक जी की देशभक्ति विश्वप्रेम तथा सेवा की भावना से पूर्ण और अति उदार थी। इसी कारण उनका ब्रिटेन से विरोध नहीं था। इसे राजभक्ति नहीं कहा

---

१. श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० २७ : सम्पादक—श्री दुलारेलाल भार्गव, गंगा पुस्तकमाला का छठा पुष्प : द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण
२. श्रीधर पाठक : भारतगीत : पृ० ३०
३. वही, पृ० ३२
४. वही, पृ० ३३
५. वही, पृ० ३६
६. श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० ३८
७. वही, पृ० ४१
८. वही, पृ० २०
९. वही, पृ० १२३

जा सकता। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'जननी जन्मभूमि' का यशोगान किया है।[1]

मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'रंग में भंग' कथा-काव्य में जननी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी महान् कहा है।[2] उनकी देशभक्ति का सांस्कृतिक पक्ष अधिक प्रबल है। भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा के वर्णन की अपेक्षा उसकी सांस्कृतिक श्रेष्ठता के प्रतिपादन में उनकी वृत्ति अधिक रमी है। सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्यविजय' में भारतभूमि के बाह्य सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है।[3] लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'मेवाड़ गाथा' में भारतभूमि का यशोगान करते हुए लिखा है :—

शुचि स्वदेश वात्सल्य, सत्य प्रियता, सहिष्णुता।
आत्मत्याग, श्रमशक्ति, समरदृढ़ता, रणपटुता॥
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता, अखण्ड।
करती है जिस भूमि की, उज्ज्वल भारत खण्ड॥
अखिल भूलोक में॥[4]

नाथूराम शंकर की देशभक्ति में वर्तमान दुर्दशा के विषाद का रंग अधिक गहरा है। देश के भौतिक पक्ष—मातृभूमि का स्तवन, भारत माता की विशेषताओं का स्वच्छन्द चित्रण नहीं मिलता।

गिरिधर शर्मा नवरत्न के वन्देमातरम् की धुन पर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था :—

मेरा देश, देश का मैं, देश मेरा जीव प्रान,
मेरा सन्मान मेरे देश की बड़ाई में।
जियूंगा स्वदेश हित, मरूंगा स्वदेश काज,
देश के लिये न कभी करूंगा बुराई मैं॥[5]

माधव शुक्ल की 'स्वदेश गीतांजलि' और 'भारत गीतांजलि' स्वदेश के प्रति भक्तिभावना की अंजलियां हैं।

भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग में देशभक्ति की अधिक सुपुष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। देश के मानवीकरण के साथ दैवीकरण भी किया गया। अधिक आत्म-विश्वास और अनन्य अनुराग के साथ देश की वन्दना, स्तुति, आराधना, पूजन एवं भक्ति-भाव का समर्पण किया गया। देश को उसकी भौगोलिक एकता की पीठिका में

---

१. जन्मभूमि भारतभूमि : सरस्वती, फरवरी-मार्च १९०३
२. मैथिलीशरण गुप्त : रंग में भंग : पृ० ३४
३. सियारामशरण गुप्त : मौर्य विजय : पृ० ११
४. लोचनप्रसाद पाण्डेय : मेवाड़ गाथा : पृ० ६ (सन् १९१४)
५. गिरिधर शर्मा : पद्मपुंज : पृ० ७८ : सम्पादक—श्रीरामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', प्रकाशक—दत्त ब्रदर्स, अजमेर—प्रथम संस्करण, सन् १९३३ ई०

देखा गया।'[1]

हिन्दी नाटकों में देशभक्ति की भावना :

हिन्दी साहित्य के इस युग विशेष में राष्ट्रीय-भावनासंयुक्त नाटकों की रचना का प्राय: अभाव रहा। पौराणिक नाटकों की रचना का प्राधान्य रहा। देश की भौगोलिक एकता, वन्दना, मानवीकरण अथवा दैवीकरण आदि राष्ट्रवाद के रागात्मक पक्षों का विवेचन प्राय: नहीं मिलता।

हिन्दी कथा साहित्य में देशभक्ति का वर्णन

इस समय तिलस्मी, अय्यारी, जासूसी उपन्यास लिखने की धूम थी। बाबू रामप्रताप गुप्त के 'महाराष्ट्र वीर' नामक वीर-रसपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास में प्रच्छन्न रूप में युगीन परिस्थितियों को प्रकाशित किया गया है। इसमें संन्यासी द्वारा वीर कुमार को देशभक्ति का उपदेश दिलाया गया है जिससे भारत तथा भारतवासियों की भलाई हो।[2] वह देश-भक्त, धर्म-सेवक और जीव-प्रेमी है।

देश के प्रति रागात्मक अनुभूति की अभिव्यंजक कहानियां भी केवल एक दो ही मिलती हैं। उदयनारायण बाजपेयी की 'जननी जन्मभूमिश्चस्वर्गादपि गरीयसी' कहानी देशभक्ति से संबंधित है। अधिकांश कहानियां ऐतिहासिक अथवा सामाजिक लिखी गई थीं।

राजभक्ति

ईसवी सन् १९०० के पश्चात् देश की स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया था। आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान की भावना आ जाने से विदेशी शासकों की अनुनय विनय की नीति में विश्वास नहीं रह गया था। 'स्वराज्य' जन्मसिद्ध अधिकार था उसके लिए भिक्षा क्यों मांगी जाये। इसी कारण हिन्दी साहित्य में भी राजभक्ति से मुक्त देशभक्ति अथवा राष्ट्रीय भावना का उद्भव और विकास प्रारम्भ हुआ था। 'नरम दली' राष्ट्रीयता में विश्वास रखने वाले कवियों की वाणी में ही अंगरेजी राज्य के प्रति मैत्री भावना का स्वर मिलता है। श्रीधर पाठक और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' उदारवादी साहित्यिक नेता थे।

श्रीधर पाठक की राष्ट्रीय-भावना विश्वमैत्री अथवा विश्व-प्रेम की भावना में पगी हुई थी। अतः उन्हें ब्रिटेन से भी कोई विद्वेष नहीं था।[3] 'पूर्ण' जी ने स्वदेशी के साथ राजभक्ति का भी गान गाया था। उन्होंने प्रत्यक्ष कहा था 'राजभक्ति भी चाहिए सच्ची सहित सुकर्म'।[4] हिन्दू विश्वविद्यालय के डेप्यूटेशन के स्वागत में,

---

१. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर : पृ० २३८

२. स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त : महाराष्ट्र वीर : पृ० ६

३. श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० १२३

४. पूर्ण पराग : पृ० १७९

उन्होंने अंगरेजी राज्य को औरंगजेबी राज्य से अच्छा कहा था :—

है अंगरेजी राज नहीं अब औरंगजेबी
सुनौ करै उपदेश देश की वसुधा देवी।
अवसर है अनुकूल किये जो कुछ बनि आवै,
आरत भारत पुनः पुरानी महिमा पावै।[1]

प्रथम महायुद्ध के अवसर पर राष्ट्रीय नेताओं के साथ देश ने अंग्रेजों की पूरी सहायता की थी। इस बीच विदेशी शासन का विरोध बहुत कम हो गया था। अतः इस समय परिस्थितिवश शासकों की कुछ प्रशंसा हो गई थी। भारतेन्दु युग के अतिरिक्त अन्य युगों में राजभक्ति से संबंधित अधिक रचनाएं मिलतीं।

राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष : वर्तमान दुर्दशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

बीसवीं शताब्दी ने देश-जीवन में एक नवीन जागृति-भर दी थी। वह सरकार की राष्ट्र-विरोधी नीति के प्रति पूर्णतया सचेष्ट हो गई और अब विदेशी शासन में आस्था एवं विश्वास की भावना विच्छिन्न हो गई। देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दुर्दशा का पर्यवेक्षण कर उसके कारणों का अन्वेषण किया गया। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के इस अभावात्मक पक्ष की पूर्ण एवं निःशंक अभिव्यक्ति मिलती है।

लार्ड कर्जन की बंग-विभेदक नीति ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की दूषित एवं स्वार्थपूर्ण नीति को खोलकर रख दिया था। राष्ट्रीय नेताओं को यह भली भांति समझ में आ गया था कि स्वराज्य प्राप्ति की आशा दुराशा मात्र है। राजनीतिक पराधीनता का असह्य अभिशाप उग्र राष्ट्रवादिता का कारण बनी। देश का युवक वर्ग विदेशी शासकों की नीति से सर्वाधिक विक्षुब्ध हुआ। हिन्दीसाहित्य में, विशेष रूप से काव्य में तत्कालीन दुर्दशा के विविध रूपों का वर्णन अधिक मिलता है।

हिन्दी कविता में दुर्दशा का चित्रण

माखनलाल चतुर्वेदी ने लार्ड कर्जन की बंग-भंग जैसी विदेशी सत्तावादियों की नृशंस नीति का क्षोभपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है।[2] जुलूस, सभाओं तथा प्रदर्शनों द्वारा शासन-व्यवस्था के प्रति विरोध प्रकट किया गया था। राष्ट्रीयता के साधकों को देश-निकाले का दण्ड मिलता था अथवा चक्की पीसनी पड़ती थी। इस राजनीतिक संघर्ष में उनका धर्म भी संकट में पड़ गया था।[3] देश के वीर पुरुषों की गिनती डाकू और लुटेरों में की जाती थी। प्रथम महायुद्ध में भारत ने अपने जन-मन-धन से अंग्रेजों की सहायता इस आशा से की थी कि कदाचित् उन्हें स्वराज्य का पुरस्कार मिल जायेगा।

---

१. पूर्ण पराग, पृ० १९५
२. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ६१
३. वही, पृ० २३

सन् १६१७ में मान्टेग्यू का वक्तव्य पढ़ कर देश दुखित हो गया था क्योंकि पुरस्कार के स्थान पर कठोर प्रतिबंध ही मिले थे। माखनलाल चतुर्वेदी ने देश की राजनीतिक परिस्थितियों को काव्य द्वारा व्यक्त किया है।[1] सर सत्येन्द्र प्रसन्न द्वारा भारत को राजभक्ति का उपदेश देने पर कवि-हृदय की ग्लानि अभिव्यक्त हुई थी।[2] भारत सरकार ने सन् १६१७ में भी जब अपनी पुरानी बात दुहराई कि हमारे हाथ में भारत का भाग्य सुरक्षित है तो चतुर्वेदी जी ने व्यंग्यात्मक शैली में उनकी कूटनीति का उल्लेख किया था।[3]

राजनीतिक पराधीनता का भीषण परिणाम आर्थिक दुर्दशा में घटित हुआ था। माखनलाल चतुर्वेदी ने प्रच्छन्न रूप में 'रामनवमी' (सन् १६०६) में पराधीनता के कारण उत्पन्न आर्थिक दुर्दशा से मुक्त करने के लिए राम का आह्वान किया है :—

> लगा वह सागर पार अशोक
> शोक ! भारत लक्ष्मी जा पड़ी
> देश ने छोड़े हैं निज स्वत्व
> विश्व कर रहा दुःखों की झड़ी।[4]

इसी प्रकार सन् १६१६ में रचित 'रामनवमी' कविता में कवि ने लिखा है कि देश के जंगल ही नहीं नगर और ग्राम भी अस्थि के ढेर हो गए थे। राम की पुण्य कथा में देश की पराधीनता एवं अन्य अभावों का भावात्मक चित्रण माखनलालजी की विशेषता है। देश तत्कालीन आर्थिक विपन्नता का करुण वर्णन कर, अर्थाभाव को देश के अपमान का कारण माना है।[5]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' के वर्तमान खण्ड में देश के आर्थिक संकट का विशद एवं आर्द्र चित्र प्रस्तुत किया है। भारत के अमित अपकर्ष की कथा कहते हुए कवि के हृदय का रोदन फूट पड़ा है कि श्रीहीन भारत में कमल क्या जल तक नहीं है केवल पंक ही शेष है। विदेशी शासकों ने इसके वैभव का शोषणा कर अत्यधिक दीन हीन अवस्था में पहुंचा दिया है।[6] भारत के दारिद्रय का वर्णन करते हुए राष्ट्रकवि ने कहा था कि जो भारत 'स्वर्णभारत' के नाम से सम्पूर्ण विश्व में विख्यात था, आज वहीं दारिद्रय का दुर्घट नृत्य चल रहा है। दुर्भिक्ष जैसी दैवी

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० २६
२. वही, पृ० ४१
३. वही, पृ० ८१
४. वही, पृ० ११
५. वही, पृ० ४५
६. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ८६

विपत्तियों से त्रसित जनता की अवस्था शोचनीय थी, चहुं ओर से हा अन्न ! हा अन्न ! की पुकार उठती थी, मानो स्वयं दुर्भिक्ष देह धारण कर घूम रहा था।[1] गुप्त जी ने अपना यह स्पष्ट अभिमत दिया था कि दुनिया की लड़ाई में सौ वर्षों में जितने मरे हैं उससे चौगुने भारत में दस वर्षों में अकाल और भूख के कारण मरे थे। भूख के कारण देश की जो दशा हो गई थी उसका यथार्थ एवं रोमाँचकारी वर्णन किया था।[2] अभी भी कवि को विदेशी शासन-व्यवस्था में कुछ विश्वास था, इसी कारण उन्होंने दुर्भिक्ष काल की अव्यवस्था का दोष विदेशी शासकों पर नहीं मढ़ा था।[3] अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य इसका कारण पराधीनता में ही खोजा था। सात सागर पार जिन विदेशी शासकों का 'मार्केट' था और जो अपने को अति सभ्य समझते थे, गुप्त जी ने उन पर तीव्र व्यंग्य कसा था।

रामनरेश त्रिपाठी ने 'मिलन' नामक काव्यात्मक प्रेम कहानी में विदेशी शासन के कारण उत्पन्न आर्थिक विपन्नता, अत्याचार, कुनीति आदि का मार्मिक शब्दों में वर्णन किया है :—

किया जिन्होंने स्वर्णभूमि को
कौड़ी का मुहताज।
किया पद-दलित हाय। हमारा
देव-समर्पित ताज॥
कण-कण में जिनकी कुनीति की।
कथा हो चुकी व्याप्त।
हाय! अभी तक हुआ न जिनका
अत्याचार समाप्त।[4]

पराधीनता के कारण उत्पन्न देश-दुर्दशा में सबसे अधिक संतप्त भारतीय कृषक वर्ग था। कृषकों की दयनीय अवस्था के कारणों का उन्मूलन करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा था कि अब देश में पूर्व-सा अन्न उत्पादन नहीं रह गया था। वैज्ञानिक साधनों के अभाव में भूमि उर्वर होती जा रही थी और साथ ही कर-वृद्धि के कारण उन्हें किसी प्रकार का लाभ नहीं रह गया था। भारत का अन्न अन्य देशों में भेजा जाता था, जबकि पचासी प्रतिशत जनता आधे पेट भोजन पर निर्वाह करती थी। कभी अकाल पड़ता था कभी अति वर्षा और यदि फसल अच्छी भी हो जाती थी तो बहीखाते बीज ऋण से रंगे होने के कारण सारा अन्न महाजन के घर चला जाता था।[5] व्यापार की दशा भी बुरी होने के कारण देश पूर्णतया परमुखापेक्षी हो

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती पृ० ८७

२. वही, पृ० ८८

३. वही, पृ० ९०

४. रामनरेश त्रिपाठी : मिलन : पृ० ४ : पांचवां संस्करण—हिन्दी मन्दिर, प्रयाग

५. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ९६

गया था।[1] मैथिलीशरण गुप्त ने कृषक की दीन-हीन, कष्टकर कथा 'किसान' में लिखी है। अन्नदाता किसान आंसू पीकर रहता था।[2] जमींदार और महाजन रूपी चक्की के दो पाटों में पिस कर वह कृषक से मजदूर बना फिजी भेज दिया जाता है। जमींदारी व्यवस्था में कृषक को बेगारी भी करनी पड़ती थी। कृषक का जीवन अति कष्टकर था। इसी प्रकार 'सनेही' जी का काव्य 'कृषक क्रन्दन' तथा 'आर्त्त कृषक' भी कृषक जीवन का करुण-क्रन्दन है। इसमें कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि जमींदार, साहूकार, महाजन की स्वार्थ, घृणित, लोभवृत्ति के कारण कृषक स्वत्वविहीन हो गया था।[3] उनकी आर्थिक स्थिति अति हीन थी :—

भूख भूख चिल्लाय कभी बालक रोते हैं।
टुकड़े सौ सौ हाय कलेजे के होते हैं॥[4]

नित्य शीत, धूप सहकर भी कृषक के जीवन को जिल्लत और हैरानी थी। उसे भूस्वामी की डांट, लात और कुवाणी चुपचाप सहन करनी पड़ती थी। आर्त्त कृषक में कवि ने कहा है :—

गये गुजरे संसार में हीन हैं हम।
सुदामा से भी सौगुने दीन हैं हम॥
पड़ी भाड़ में हो जो वह मीन हैं हम।
महा घोर अज्ञान में लीन हैं हम॥[5]

कृषक की इस दुर्दशा का कारण था, उसकी अशिक्षा एवं अज्ञान जिसके कारण उसे अपनी उन्नति का मार्ग नहीं सूझता था।[6]

राजनीतिक दासता ने देश की विवेक बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया था। देशवासियों की मानसिक अवस्था भी विकृत होने लगी थी। मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में लिखा है कि यह दैव का अभिशाप था कि शरीर की लाज रखने के लिए विदेशी वस्त्रों का प्रयोग होता था और नारियों के सौभाग्य चिन्ह चूड़ियां भी विदेशों से बनकर आती थीं। विदेशी के सम्मुख स्वदेशी वेश-भूषा, भाषा आदि की उपेक्षा हो रही थी।[7] माखनलाल चतुर्वेदी ने भी इस सम्बन्ध में काव्य द्वारा दुःख प्रकट किया

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती, पृ० १०५
२. मैथिलीशरण गुप्त : किसान : पृ० ८ : षष्ठावृत्ति साहित्य प्रेस, चिरगांव, झांसी
३. सनेही : कृषक-क्रन्दन तथा आर्त्त कृषक : पृ० ४: प्रताप कार्यालय, कानपुर, १९१६
४. वही, पृ० ७
५. वही, पृ० १४
६. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ९६
८. वही, पृ० १०३

था कि देशवासी मानसिक ह्रास को प्राप्त होकर पश्चिमीकरण की ओर प्रवृत हो रहे थे।[1] 'पूर्ण जी' ने भी भारत की अवनति देखकर स्वदेशी के प्रयोग का उपदेश दिया था।

कविवर 'शंकर' ने भी पराधीनता के अभिशाप का विक्षोभपूर्ण वर्णन किया है।[2] उन्हें भी देश की आर्थिक दुर्दशा, राज कर्मचारियों द्वारा घूस लिया जाना और परतन्त्रता के कारण बढ़ती हुई तुच्छ भावना असह्य थी।[3] उन्होंने राजनीतिक दुर्दशा की अपेक्षा सामाजिक दुर्दशा के प्रकाशन पर अधिक बल दिया था। 'शंकर' जी ने सामाजिक दुर्दशा के प्रत्येक पक्ष पर लेखनी उठाई थी। कवि को दुःख था कि समाज में आचार-विचार, धर्मनिष्ठा, प्रण-पालन, प्रेम-प्रतिष्ठा विद्या-बल आदि का अभाव हो गया था।[4] देश-जीवन, अन्धविश्वास, रूढ़ियों और पाखण्ड में जकड़ा हुआ था।[5] धर्म के नाम पर व्यभिचारी पुजारी बाल-ब्रह्मचारी बने हुए थे। विधवाओं की समाज में बुरी दशा थी। विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित न होने के कारण निराश्रय, अशिक्षित विधवा नारी देश के नैतिक पतन में सहयोग दे रही थी।[6] कवि ने बाल-विवाह की बुराइयों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। बूढ़ों द्वारा कुमारी कन्याओं से विवाह कवि की दृष्टि में अनैतिक था।[7] छुआछूत और पाखण्ड के कारण ईसाई धर्म के प्रसार में सहायता मिल रही थी। साम्प्रदायिक विद्वेष राष्ट्रहित में घातक था।[8] अतः शंकर' ने सामाजिक अधःपतन का भण्डाफोड़ किया है। अविद्यानन्द का व्याख्यान[9] समाज पर कटु व्यंग्यात्मक काव्य है। इसी प्रकार 'एरण्ड-वन' विडाल-व्याघ्र[10] पंच-पुकार'[11] आदि कविताएँ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक दुर्दशा से सम्बन्धित हैं।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी सामाजिक ह्रास पर क्षोभ व्यक्त किया था। 'रईस' में भारत के राजा-रईसों के भोग विलासमय जीवन के प्रति दुःख प्रकट

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ४४
२. नाथूराम शंकर शर्मा : शंकर सर्वस्व : पृ० १४७
३. वही, पृ० १५२
४. वही, पृ० १४७
५. वही, पृ० १४८
६. वही, पृ० १४९
७. वही, पृ० १५७
८. वही, पृ० १४९
९. वही, पृ० १५५
१०. वही, पृ० १५९
११. वही, पृ० १६४

किया है। यह धनिक वर्ग राष्ट्रीय हित को भूलकर स्वार्थ-साधन में संलग्न था। देशी राजाओं ने विषयाधीन होकर ही प्रधानता की बेड़ियां कस ली थीं। कवि हृदय वेदना के भार से बोझिल हो कठोर बचन कह उठता है—'होवे न ऐसे पुत्र चाहे हो कुल-क्षय हे हरे।'[1] अविद्या ही सब दुर्गुणों का मूल है। नारियों की दुर्दशा कवि से देखी नहीं जाती। गुप्त जी ने भारतेन्दु के सदृश देशवासियों को नारी के इस पतन पर रोने के लिए आमन्त्रित किया है। कवि की दृष्टि में समाज बेजोड़ विवाह, अन्ध-परम्परा, वर-कन्या-विक्रय का अड्डा बना हुआ था।[2] गुप्त जी ने शिक्षा और साहित्य की दुर्व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला था। शिक्षा तो दासत्व की बेड़ियां कठोर करने के लिए दी जाती थी। विदेशी शासन में दी जाने वाली शिक्षा, धर्म एवं राष्ट्रीयता से च्युत कर दासत्व की ओर प्रेरित करती थी।[3] हिन्दी साहित्य में अश्लील ग्रन्थों की भरमार हो रही थी, जो राष्ट्रजीवन में अविचार की नींव डाल रहे थे। कवि को दुःख था कि चंद्रशेखर आजाद जैसे राष्ट्रीय क्रांतिकारियों की कथा से साहित्य भंडार को क्यों नहीं भरा जाता।[4]

शुकदेव बिहारी मिश्र ने 'भारतविनय' में भारतवासियों के आपसी विद्रोह, धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों, फूट आदि का वर्णन किया था।[5] इन्होंने भारत की अवनत दशा का कारण भारतीयों को माना था। उदारवादी दल के प्रभाव के कारण इन्हें १९१६ ई० में भी ब्रिटिश शासकों से बहुत आशा थी।

महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामचरित उपाध्याय ने भी सामाजिक दुर्दशा, विशेषकर नारियों की स्थिति पर अपनी वेदना काव्य के रूप में मुखरित की थी।[6]

भारत की दुर्दशा के विविध पक्षों के प्रति कविवर्ग ने क्षोभ, आक्रोश, व्यंग्य, वेदना की तीव्र अनुभूति को व्यक्त किया है। कभी उसने समाज अथवा देश के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है, कभी दुःख और कभी कटु व्यंग्य कसे हैं। शंकर कवि के व्यंग्य अधिक तीखे हैं।

हिन्दी नाटकों में वर्तमान दुर्दशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश :

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस समय साहित्य के अन्य अंगों की तुलना में हिंदीनाट्यकला का समुचित विकास नहीं हुआ था, अतः युगीन जीवन की राजनीतिक,

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० १११
२. वही, पृ० ११३, १४५
३. वही, पृ० ११८
४. वही, पृ० १२५
५. शुकदेव बिहारी मिश्र : भारत विनय : पृ० ४
६. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर : पृ० २०९, २१०

सामाजिक, आर्थिक, साँस्कृतिक पक्षों के अभावों को दिग्दर्शित कराने वाले नाटक प्रायः नहीं मिलते।

हिन्दी कथा साहित्य में वर्तमान दुर्दशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

हिन्दी कथा-साहित्य में राजनीतिक दुर्दशा की अपेक्षा सामाजिक दुर्दशा के ही चित्र मिलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी ने समाज के सजीव चित्र खींचने वाले उपन्यास लिखे थे, लेकिन वासनाओं के रूप-रंग और चित्ताकर्षक वर्णनों की प्रमुखता के कारण उन्हें राष्ट्रीयता-उद्‌बोधक-उपन्यास के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। लज्जा राम मेहता ने 'धूर्त रसिकलाल', 'हिंदू रहस्य, आदि पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित लिखे थे। इन उपन्यासों में राष्ट्र की समस्याएँ नहीं थीं। इस क्षेत्र में भी सर्वप्रथम प्रेमचन्द जी ने 'सेवासदन' उपन्यास की रचना द्वारा राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष से सम्बन्धित वेश्यावृत्ति, दहेजप्रथा, रिश्वत जैसी राष्ट्रीयता में बाधक समस्याओं को लिया।

हिन्दी कहानियों में अवश्य तत्कालीन दुर्दशाग्रस्त स्थिति के अनेक पक्षों को लिया गया था। मास्टर भगवानदास ने सन् १९०२में 'प्लेग की चुड़ेल'[१] कहानी सामाजिक अन्धविश्वास के दिग्दर्शन के हेतु लिखी थी।

जयशंकर प्रसाद ने 'ग्राम'कहानी में देश की राजनीतिक दुर्दशा की ओर संकेत किया है। विदेशी साम्राज्यवाद में कृषक वर्ग की दशा अति दीन थी। छल से महाजन उनकी जमीन पर अधिकार कर लेते थे।[२] 'मदन-मृणालिनी' में प्रसाद जी ने भारत की विधवा नारी की दयनीय अवस्था की ओर संकेत करते हुए क्षोभ प्रकट किया है कि ह्रासोन्मुखी समाज बगुला भक्तों को परम धार्मिक समझता था।[३] सामाजिक अंधविश्वास जैसे समुद्र यात्रा-निषेध और अन्तर्जातीय विवाह न होने का उल्लेख भी उन की इस कहानी में मिल जाता है।

चन्दधर शर्मा गुलेरी की कहानियों में भी सामाजिक दुर्व्यवस्था का वर्णन मिल जाता है। अपनी 'सुखमय जीवन' (१९११) नामक प्रेम-कथा में गुलेरी जी ने बालविवाह जैसी प्रथा पर आक्षेप करते हुए लिखा है—'हिंदू समाज ही इतना सड़ा हुआ है कि हमारे उच्च विचार कुछ चल ही नहीं सकते। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। हमारे सद्‌विचार एक तरह के पशु हैं जिनकी बलि माता पिता की जिद और हठ की वेदी पर चढ़ाई जाती है।······ भारत का उद्धार तब तक नहीं हो सकता।'[४] इसी प्रकार 'बुद्धू का कांटा'[५] में भी बालविवाह की प्रथा की ओर ध्यान

१. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन : पृ० १२६
२. जयशंकर प्रसाद : छाया : पृ० २३
३. वही, पृ० १११
४. गुलेरी जी की अमर कहानियां : पृ० ३ : सम्पादक—शक्तिधर गुलेरी
५. वही, पृ० १७

आकृष्ट किया है। यद्यपि समाज में कुछ लोग बाल-विवाह के विरोधी हो गये थे, लेकिन प्रायः समाज में उनकी बदनामी होती थी। विवाह में लोग मकान और जमीन गिरवी रखकर जीवन भर के लिए कंगाली का कम्बल ओढ़ते थे।[1] इसी प्रकार ज्वालादत्त शर्मा ने 'विधवा'[2] कहानी में भारतीय विधवा की दयनीय अवस्था की ओर संकेत किया है। शर्माजी ने समाजसुधार की भावना से प्रेरित होकर अपनी विधवा को 'सेल्फ हैल्प' पुस्तक की सहायता से शिक्षित कर स्वावलम्बन की महत्ता सिद्ध की है। नारी-शिक्षा द्वारा समाज की दुर्दशा का निराकरण हो सकता था। प्रायः यह कहानियां वर्णनात्मक शैली में लिखी गई थीं।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि देश-दुर्दशा का सर्वाधिक वर्णन कविता द्वारा किया गया। तत्पश्चात् कथा-साहित्य द्वारा। सामयिक समस्याओं को लेकर लिखे गए नाटकों का अभाव था।

राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्षः राष्ट्रीयता-उदबोधक विभिन्न साधनों की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ही देश की राष्ट्रवादी विचारधारा कांग्रेस के सभामण्डप से निकलकर जन-जीवन में प्रसारित होने लगी थी। कांग्रेस ने भी अनुनय विनय की नीति का परित्याग कर आत्मतेज और आत्मावलम्बन की नीति ग्रहण कर ली थी। अब अंग्रेजों की न्याय-प्रियता, उदारता आदि से विश्वास उठ गया था। अब राष्ट्रीय नेताओं ने देश की दयनीय अवस्था के सुधार के लिए ठोस कदम उठाया। लार्ड कर्जन की बंग-भंग नीति ने विद्रोहाग्नि में घृताहुति का कार्य किया था। बंगाल का प्रश्न सम्पूर्ण भारत का प्रश्न बन गया था। राष्ट्रीयता, राष्ट्र शिक्षा और नवचैतन्य का कार्य बाबू विपिनचन्द्र पाल ने सम्पूर्ण वेश में घूम घूम कर किया। राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए स्वदेशी आंदोलन छेड़ा गया। अपने युग की राष्ट्रीयता उद्‌बोधक कार्य-प्रणाली को हिन्दी लेखकों ने पूर्ण अभिव्यक्ति दी है।

स्वदेशी आन्दोलन

इस युग के प्रायः सभी राष्टीय साहित्यकारों ने देशवासियों को स्वदेशी के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया है। वे जानते थे कि स्वदेशी से ही भारत का कल्याण हो सकता है। विदेशी वस्तुओं के विक्रय के कारण ही भारत का धन विदेश चला जा रहा है और देश दिन-प्रति-दिन निर्धनता से ग्रसित हो रहा है। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'स्वदेशी कुंडल' की रचना कर स्वदेशी, हिंदू-मुस्लिम एकता सामाजिक समृद्धि का

---

१. गुलेरी जी की अमर कहानियां : पृ० १८ : सम्पादक—शक्तिधर गुलेरी

२. डा० श्रीकृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : पृ० ३२६, प्रकाशक—हिन्दी-परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग, तृतीय संस्करण

प्रयास किया था। उन्होंने स्वदेशी के विषय में लिखा था :—

देशी प्यारे भाइयो ! हे भारत सन्तान।
अपनी माता-भूमि का है कुछ तुमको ध्यान ?
है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी ?
शोभा देती नहीं किसी को निद्रा ऐसी ॥[१]

'पूर्ण' जी की राष्टीय भावना अति उदार थी। अतः उन्होंने परमेश्वर की भक्ति राजभक्ति के साथ सुकर्म संहित सच्ची देमभक्ति का उपदेश दिया था—

मन की सेवा के सुनौ मुख्य चिह्न हैं चार;
१ देश दशा का मनन शुभ २ उन्नति-पत्र-विचार।
३ कार्य समय विश्वास, विदित जो धर्म आर्य का ॥[२]

साम्प्रदायिक एकता भी स्वदेशी का ही प्रमुख अंग थी। अतः 'पूर्ण' जी ने उसके विषय में लिखा था :—

बन्दे हो सब एक के, नहीं बहस दरकार
है सब कौमों का वही खालिक और करतार।
खालिक और करतार वही मालिक परमेश्वर;
है जबान का भेद, नहीं मानी में अन्तर ॥[३]

उनका स्वदेशी का आदर्श था—

पानी पीना देश का खाना देशी अन्न,
निर्मल देशी रुधिर से नस नस हो सम्पन्न
नस नस हो सम्पन्न, तुम्हारी उसी रुधिर से,
हृदय, यकृत, सर्वांग, नखों तक लेकर शिर से ॥[४]

उन्होंने देशवासियों से कहा था कि गाढ़ा, झीना जो भी मिले पर स्वदेशी ही पहनो। इस भारत देश के कोरी और जुलाहे भूखे मर रहे हैं और कला-कौशल विनष्ट हो रहा है क्योंकि स्वदेशी की उपेक्षा हो रही है।

कवि ने स्वदेशी की पुकार मचाते हुए कहा था कि दैनिक व्यवहार की छोटी से छोटी वस्तु भी या तो स्वदेशी होनी चाहिये अथवा उनका प्रयोग न करना चाहिए।[५]

---

१. हरदयालुसिंह : पूर्णपराग : पृ० १७९ : प्रकाशक—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग; प्रथमावृत्ति, सन् १९४१ ई०
२. वही, पृ० १७९
३. पूर्ण पराग : पृ० १८५
४. वही, पृ० १८६
५. वही, पृ० १९१

श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण गुप्त ने भी स्वदेशी से प्रभावित होकर काव्य रचना की थी। पाठक जी ने 'स्वदेश विज्ञान'[1] लिखा था। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती' में विदेशी प्रचार पर क्षोभ व्यक्त कर अप्रत्यक्ष के रूप से स्वदेशी प्रचार पर बल दिया था।[2]

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रसाद जी की 'शरणागत'[3] कहानी में भारतीय सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया था। पाश्चात्य नारी एलिस ठाकुर किशोर सिंह की पत्नी सुकुमारी से प्रभावित हो अन्त में भारतीय वेशभूषा में विदा होती है। अतः कथा-साहित्य में भी भारतीयता अथवा स्वदेशी का स्वर गूंजना आरम्भ हो गया था।

उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा की साहित्य में अभिव्यक्ति

सन् १९०५ से १९०७ तक उग्र राष्ट्रवादियों का प्राधान्य था। सरकार की कठोर दमन नीति ने लोकमान्य तिलक द्वारा प्रसारित उग्र राष्ट्रवादिता को दबाने के लिए कारावास के कठोर दण्ड का विधान किया। यह आन्दोलन दबा दिया गया लेकिन तिलक के महान् एवं दृढ़ व्यक्तित्व ने गांधी जी के आगमन के पूर्व तक भारत की राष्ट्रीय विचारधारा का नेतृत्व किया। हिन्दीसाहित्य अपने युग की उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित अवश्य हुआ था लेकिन प्रेस एक्ट की कठोरता के कारण इसकी अभिव्यक्ति में अधिक समर्थ नहीं था।

हिन्दी कविता में माखनलाल चतुर्वेदी, माधव शुक्ल ने अपने युग की इस राष्ट्रीय विचारधारा की सशक्त अभिव्यक्ति की है। लोकमान्य 'बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय'—राष्ट्रीय जागरण के तीन प्रमुख नाम थे। इनसे भारत माता को बहुत आशा थी।[4] लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्व भारतीयता थी। वे गीता की कर्मण्यता में विश्वास रखते थे। उन्होंने देश को कर्म का संदेश देते हुए पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की थी। माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'देश में ऐसे बालक हों'[5] 'जय गीते' कविताएं तिलक की विचारधारा का व्यक्त रूप हैं। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण और राधा के चरित्रांकन में हरिऔध जी तिलक की राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। उन्होंने कृष्ण का चरित्र नितान्त नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण स्वजाति और स्वदेश के उद्धार में संलग्न दिखाये गए हैं।[6] वियोगी हरि ने गीता रहस्य[7] में गीता को 'राष्ट्र-जहाज' कहा था।

१. श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० ६७
२. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० १०३
३. जयशंकर प्रसाद : छाया : पृ० ४३
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ४२
५. वही, पृ० ४८
६. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : प्रियप्रवास : पृ० १७४
७. वियोगी हरि : वीर-सतसई : पृ० ७५

तिलक के राष्ट्रंवाद का मूल प्रेरक तत्व था भारतीय सांस्कृतिक आदर्श एवं उसकी पुरातन रीति। अतीत-गौरव-गान के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि माखनलाल चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त ने भारतीय आदर्श, संस्कृति, पुरातन रीति के प्रकाशन के लिए पूर्वजों के चरित्रों का अनुलेखन किया था। साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिए उन्हें लोकमान्य तिलक से प्रेरणा मिली होगी। रूपनारायण पांडेय ने 'तिलक तिरोधान'[१] लोकमान्य तिलक के निधन पर लिखा था। निःसंदेह उनकी मृत्यु का साहित्यिकों को भी अतीव दुःख हुआ था।

स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त के 'महाराष्ट्र वीर' नामक ऐतिहासिक उपन्सास में तिलक की विचारधारा को प्रच्छन्न रूप में प्रतिध्वनित किया गया है। तिलक भी महाराष्ट्र वीर थे, इस उपन्यास में उनके सदृश कुमार भी महाराष्ट्र में ही नहीं, सम्पूर्ण भारत में वीरता की पताका फहराना चाहता है। संन्यासी जी कर्मण्यता का उपदेश देते हैं—'महाराष्ट्र-वीर पुंगवों ! प्राणों की माया त्याग, भारत-जननी की सेवा करो। यह तुम्हारा ऐश्वर्य-शाली देश नीच यवनों से कलंकित हो रहा है। तुम्हारे पुरातन धवल-यश में धब्बा लग रहा है। आर्यों की संचित कीर्ति का विनाश हो रहा है। शोक है, कि उत्तर-भारत में कोई भी भारत का सच्चा सेवक नहीं देख पड़ता। नहीं नहीं ! ऐसा क्यों कहें ? वीर अवश्य है पर सब अवसर की ताक में लगे हुए हैं। ....'[२]

हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्रयत्न प्राचीन संस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए किया गया था। यही भारतीय जीवन-दर्शन की स्थापना तिलक को इष्ट थी।

होमरूल आन्दोलन

श्रीमती एनीबेसेण्ट और लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी के साथ स्वराज्य की मांग भी प्रबल रूप में रखी गई थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने इस आन्दोलन के स्वर में स्वर मिलाते हुए लिखा था—

आर्य-कीर्ति का स्तम्भ, अयोध्या में अब गड़ जाने दे,
राम राज्य का झंडा, नभ-से पुनः रगड़ जाने दे।[3]

नारी को भी इस संग्राम में सहयोग प्रदान करने के लिए प्रेरणा दी गई थी। तीरन्दाजी' में सीता राम से तीर चलाने के लिए मांगती है।[४] काव्य-कला के सुन्दर रूप में चतुर्वेदी जी ने अपने युग की नारी जागृति को अभिव्यक्त किया है। 'स्वराज्य'

---

१. रूपनारायण पाण्डेय : पराग : पृ० ८५ : प्रथमावृत्ति, सं० १९८१, गंगा पुस्तक-माला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ
२. रामप्रताप गुप्त : महाराष्ट्र वीर : पृ० ५५
३. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० २७
४. वही, पृ० २८

प्राप्ति के लिए तिलक ने देशवासियों को कर्म करने के लिए, शक्तिचरण आराधना के लिए तत्पर कर दिया था।[1] निराशा छोड़कर, देश के वीर बच्चों को, स्वराज के प्रण के लिए अग्रसित किया।[2] रामनरेश त्रिपाठी ने भी मिलन' नामक प्रेम-कहानी में युगीन स्वाधिकार प्राप्ति की दृढ़ पुकार की थी :—

पद-पद-दलित स्वदेश भूमि का
चलो करें उद्धार।।
हम मनुष्य होकर क्यों छोड़ें
निज पैतृक अधिकार।।[3]

गांधी जी का अहिंसात्मक सत्याग्रह

महात्मा गांधी ने अफ्रीका से लौटकर भारत की राजनीतिक गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण प्रारम्भ किया। कृषकवर्ग में जागृति फैलाकर राष्ट्रीय-आन्दोलन को जन-आन्दोलन का रूप प्रदान करने का श्रेय गांधी जी को है। १९२० ई० के पूर्व ही कृषक अशान्ति के दो प्रदर्शन चम्पारन तथा खेड़ा में सन् १९१७ और १९१८ में हो चुके थे। गांधी जी ने भारतीय किसानों को सत्याग्रह का पाठ पढ़ाकर बढ़े हुए लगान, एकमुश्त रकम तथा अन्य अवैध रकमों का अहिंसात्मक विरोध करना सिखाया था। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में सत्य एवं अहिंसा पर आधारित आन्दोलन का सूत्रपात गांधी जी की नवीन देन था।

हिन्दी काव्य क्षेत्र में माखनलाल चतुर्वेदी ने गांधी जी को सत्य अहिंसात्मक नीति का जय जयकार किया था। अन्योक्ति भाषा में उन्होंने लिखा था :—

जय जय विश्व-स्वरूप,
पार्थ के प्यारे जय जय,
'शस्त्र न लूंगा' वाह
सारथी न्यारे जय जय;
जगमग भारत जगे
नये कृतिकारी जय जय,
पूज्य प्रजापति-रूप,
नये बनवारी जय जय!
जय आंख मिचौनी खेलते
जगती के आवेग जय,

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी माता, पृ० ३०
२. वही, पृ० ३७
३. रामनरेश त्रिपाठी : मिलन : पृ० ९ : संशोधित पांचवां संस्करण, सं० १९८५ प्रकाशक—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग

जय गुमराहों की राह—
जय, उठतों के आवेश जय।[1]

१६१६ ई० में गांधी जी के देश-आगमन के पश्चात् ही चतुर्वेदी जी ने 'जीवित जोश' कविता लिखी थी। गांधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा कष्ट सहन का अपूर्व आदर्श रखा था। सत्याग्रही वीरों को सर्वस्व बलिदान कर सहर्ष कारावास दण्ड सहन करने का आदेश दिया था। चतुर्वेदी जी ने उनकी नीति की पुष्टि में प्रतीकात्मक शैली में कहा था :—

देश के वंदनीय वसुदेव कष्ट में लें न किसी की ओट
देवकी मातायें हों साथ पदों पर जाऊंगा मैं लोट।
जहां तुम मेरे हित तैयार, सहोगे कर्कश कारागार।
वहां बस मेरा होगा धाम गर्भ का प्रियतर कारागार ॥[2]

रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' कथाकाव्य की विजया सत्य-प्रेम, और सेवा का व्रत धारण कर गांव-गांव में घूम कर सेवा-कार्य साधती है।[3] यहां पर गांधी जी का प्रभाव लक्षित होता है।

गांधी जी ने प्रारम्भ से ही साम्प्रदायिक एकता पर बल दिया था। माखनलाल चतुर्वेदी ने हिन्दू और मुसलमानों को हिन्दमाता की 'दोनों आंख' कहा था।[4] 'सनेही' और मैथिलीशरण गुप्त को 'आर्त्त कृषक' तथा 'किसान' लिखने की प्रेरणा गांधी जी से मिली होगी। सत्याग्रह आन्दोलन से सम्बन्धित इन कवियों की अन्य रचनाओं का रचनाकाल नहीं मिलता है, अतः उन्हें शोध विषय के अन्तर्गत नहीं लिया गया है।

बल और बलिदान का प्राधान्य

लोकमान्य तिलक ने कर्मयोग की दीक्षा दी थी। गीता में कृष्ण ने अर्जुन को आत्मा की अमरता और अन्याय के निराकरण के लिए बल प्रयोग का उपदेश दिया था, वही तिलक का भी मूलमंत्र था। तिलक के सिद्धान्तों का पोषण करते हुए 'सनेही' जी ने लिखा था :—

जो साहसी नर है जगत में कुछ वही कर जायगा
निज देश हित साधन करेगा अमर यश धर जाएगा
आत्मा अमर है, देह नश्वर है, है समझ जिसने लिया।
अन्याय की तलवार से वह क्यों भला डर जायगा ?

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ५१
२. वही, पृ० ६६
३. रामनरेश त्रिपाठी : मिलन : पृ० ६६
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता पृ० : ६५

मैथिलीशरण गुप्त ने 'जयद्रथ-वध' की रचना तिलक द्वारा प्रदत्त बल की प्रधानता की पुष्टि के लिए की होगी अभिमन्यु-वध से संतप्त अर्जुन को कृष्ण आश्वस्त करते हुए गीता के उपदेश की ओर संकेत करते हैं। बल की महत्ता उद्घोषित करते हुए कृष्ण कहते हैं :—

रण में मरण क्षत्रिय जनों को स्वर्ग देता है सदा,
है कौन ऐसा विश्व में जीता रहे जो सर्वदा ?

कृष्ण अर्जुन को वैरियों से अन्याय का बदला लेने का आदेश देते हैं। इस खण्ड-काव्य के प्रारम्भ में ही गुप्त जी ने कह दिया था :—

अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है,
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है ॥[1]

युद्ध में अभिमन्यु का प्राणोत्सर्ग बलिदान का महत्व प्रतिष्ठित करता है।

रामनरेश त्रिपाठी ने प्रणय-कथा के माध्यम से 'मिलन' नामक कथा-काव्य में अपनी राष्ट्रीय भावना अति कुशलता एवं कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त की है। इस काव्य ग्रन्थ में स्वदेश-सेवा-व्रत में तत्पर युवा विदेशी शासकों को बल द्वारा प्रतिफल देने में विश्वास रखता है :—

अणु अणु में हैं व्याप्त इस समय उनके विमुख विचार।
उन्हें देख खग भी उठते हैं उनका अन्त पुकार ॥
प्रतिफल देना उन्हें उचित है घर-विकराल-कृपाण
निश्चय है, उनका अब होगा बहुत शीघ्र अवसान ॥[2]

बल और बलिदान का मूल स्रोत स्वराज्य प्राप्ति की असंदिग्ध आशा थी, जिसकी झलक भी इस काव्य-खण्ड में मिल जाती है।

माखनलाल चतुर्वेदी ने भी सफलता प्राप्ति के लिए बल और बलिदान को आवश्यक माना था :—

प्रलय-कारिणी युवक-शक्ति की क्या सुन पाये बात नहीं ?
भीष्म-प्रतिज्ञा, लव-कुश-कौशल पार्थ-पुत्र-बल ज्ञात नहीं ?
भूलो मत, लिख लो निःसंशय इसे हृदय में पक्की मान;
भारत का सब दुःख हरेंगे भारत के भावी विद्वान् ॥[3]

प्रो० सुधीन्द्र ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि उस समय बहुत सी उग्र कविताएं केवल जनता के कण्ठों से ही मुखरित हुई थीं, कठोर प्रतिबन्धों के कारण पत्र-पत्रिकाओं में छप नहीं सकी थीं।[4]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : जयद्रथ वध : पृ० ३
२. रामनरेश त्रिपाठी : मिलन : पृ० ५
३. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ४६
४. प्रो० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर : पृ० २७७

गाँधी जी का राष्ट्रवाद शारीरिक बल की अपेक्षा आत्म बल पर आधारित था, इस कारण बल की अपेक्षा केवल आत्मबलिदान पर उन्होंने विशेष बल दिया था। सत्याग्रह के लिए बलिदान आवश्यक शर्त थी। उनके बलिदान का स्वरूप असहयोग आन्दोलन के समय अधिक स्पष्ट हुआ। अतः साहित्य में गांधीवादी बलिदान की अभिव्यक्ति का विवेचन शोध विषय के अन्तर्गत किया गया है।

भारत का भविष्य

आशा और आत्मविश्वास के नवीन वातावरण में देशवासियों की कल्पनाशक्ति ने स्वराज्य और भारत के भविष्य का भी स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया था। कवियों की लेखनी भी अतीत से वर्तमान पर आकर ठहरी नहीं, वह भविष्य के आलोक से भी अनुरंजित हो गई। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत-भारती में अतीत खण्ड और वर्तमान खण्ड के साथ भविष्यत् खण्ड भी लिखा है। उन्होंने भारतवासियों को जागृति का संदेश सुनाकर आशामय भविष्य की कल्पना की है। उनके मतानुसार यदि भारतवासी अपने पूर्वजों के अलौकिक सत्यशील आदि सद्‌गुणों को अपना लें तो भारत का गौरव-दीप पुनः आलोकित हो सकता है। वह एकता की भावना को अपना कर उन्नति के आसन पर आरूढ़ हो सकता है।[1] गुप्त जी ने भारत के भविष्य को साम्प्रदायिक भेदभाव से मुक्त देखना चाहा था।[2] उनका कथन था कि नवीन वैज्ञानिक साधनों से देश को भविष्य में लाभ हो सकेगा।[3]

भारत के भविष्य के सम्बन्ध में प्रायः सभी साहित्यकार आशान्वित थे, जैसा कि इस युग के साहित्य की राष्ट्रीय-विचारधारा के विवेचन से स्पष्ट है।

निष्कर्ष

भारतेन्दु युग में राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ था। अतः उस युग के साहित्य ने भी अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के प्रारम्भिक रूप को प्रतिबिम्बित किया। द्विवेदी युग में राष्ट्रवाद का समुचित विकास हो चुका था, इस कारण साहित्य में भी अतीत-गौरव-गान, वर्तमान के प्रति क्षोभ और आक्रोश, स्वराज्य प्राप्ति के लिए विविध साधनों और लक्ष्य की एकता आदि राष्ट्रवाद के विविध पक्षों की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। भारतेन्दु काल में आशावादिता का अभाव था, कर्मण्यता के स्थान पर रोदन का आह्वान था लेकिन द्विवेदी युग का साहित्य आशा, कर्म और बल-बलिदान से संवर्द्धित है। अपने युग की विकसित राष्ट्रवादिता की अभिव्यक्ति में साहित्य पूर्णतया सचेत है। कुछ साहित्यकार नरम-दल की राष्ट्रीयता के समर्थक हैं और अन्य उग्र-राष्ट्रवाद के। भारतेन्दु युग की अपेक्षा अंग्रेज शासकों की दमन नीति

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० १५६

२. वही, पृ० १५७

३. मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० १६२

भी अधिक कठोर हो गई थी। कठिन प्रतिबंधों के बीच माखनलाल चतुर्वेदी प्रभृति विद्वानों ने अपने युग की राजनीतिक गतिविधि, शासन सम्बन्धी अन्याय-अत्याचार को जितने निशंक रूप से अभिव्यक्त किया है, वह प्रशंसनीय है। राष्ट्रवाद के विकास के प्रत्येक चरण को वाणी प्रदान कर हिन्दीसाहित्य-प्रणेताओं ने केवल युग-धर्म का ही निर्वाह नहीं किया था, अपितु देशवासियों की राष्ट्रीयता के उद्रेक में भी सहायता पहुंचाई थी।

इस काल के हिन्दीसाहित्य में राष्ट्रवाद की सर्वाधिक अभिव्यक्ति काव्य एवं निबंध अथवा लेखों में हुई थी। नाटक अथवा कथा-साहित्य द्वारा राष्ट्रीय भावना के प्रतिबिबन में अधिक सहायता नहीं मिल सकी। इसका कारण यह था कि कुछ काल तक नाटकों के विकास की गति रुक-सी गई थी और कथा-साहित्य का भी समुचित विकास नहीं हुआ था।

: ४ :

राजनीतिक परिस्थितियां

(१९२० से १९३७ तक)

भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में गांधी जी के प्रवेश के पूर्व ही लोकमान्य तिलक जैसे महापुरुष देशवासियों के सम्मुख भारतीय आध्यात्मिकता की सुदृढ़ आधारशिला पर आधारित राष्ट्रीयता का समुन्नत रूप प्रस्तुत कर चुके थे। जैसा कि भूमिका खंड में उल्लिखित है, सर्वप्रथम तिलक ने राष्ट्रवाद को उदारवादियों की घोषणाओं तथा वक्तृताओं की परिसीमा से मुक्त कर व्यावहारिक सत्य का रूप प्रदान किया था।[1] उनके व्यक्तित्व का राष्ट्र निर्माण पर बहुत प्रभाव पड़ा था। उनकी राजनीति कांग्रेस मण्डल तथा कौंसिल भवन की सीमा में बंधी न रह कर जनता तथा गली बाज़ारों में फैल चुकी थी। देश के राजनीतिक क्षेत्र में स्वार्थरहित देशभक्ति, त्याग तथा नवीन आत्मविश्वास की भावना भर गई थी। तिलक की राष्ट्रीयता प्रजातन्त्रात्मकता थी।[2] वह अधिक मनोवैज्ञानिक भी थी क्योंकि वे इस तथ्य से भली भांति परिचित थे कि जनता से ऐसा निवेदन करना चाहिए जो उनकी बुद्धि का नहीं, उनके हृदयतल का स्पर्श करने वाला हो, उनके राजनैतिक चातुर्य को नहीं, आध्यात्मिक चेतना को छू दे।'[3] अतः उन्होंने भारतीयों का ध्यान उनके अतीत गौरव की ओर आकृष्ट किया, जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नई आस्था, एक नई जागृति और एक नया विश्वास भर दिया।

तिलक के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन गांधी जी ने किया। वे तिलक के परिवर्तित एवं परिशोधित संस्करण थे। उन्होंने अपने युग की विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विचारधाराओं का समन्वय कर राष्ट्रवाद का सुविकसित एवं समुन्नत रूप देश के सम्मुख रखा। स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द की धार्मिक राष्ट्रीयता तथा प्राचीन सांस्कृतिक-पुनरुत्थान-सम्बन्धी आन्दोलन में उनकी पूर्ण आस्था थी, तिलक की प्रजातन्त्रात्मक राजनीति में

1. 'Tilak has contributed more by his life and character than by his speeches or writings to the making of the new nationalism'. Dr. M.A. Buch : The Development of Indian Political Thought. Page 24,

2. ibid, Page 25.
3. ibid, Page 26.

उनका अटूट विश्वास था; अरविन्द घोष की भांति उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए आध्यात्मिकता से प्रेरणा ग्रहण की; और गोपालकृष्ण गोखले के समान वे अत्यधिक उदार विचारों के थे।[१] वे विरोधियों के साथ घृणा नहीं प्रेम, करते थे। गांधी जी की राष्ट्रीयता में नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की मात्रा अधिक थी।[२] उसमें कुटिलता, कूटनीतिज्ञता अथवा चालाकी का कोई स्थान नहीं था।[3] उनकी विचारधारा गीता से विशेष प्रभावित थी तथा टाल्सटाय और थूरो से भी उन्हें उसके निर्माण में सहायता मिली थी।

सन १९२० ई० से सन १९२७ ई०

गाँधीजी के राजनीतिक क्षेत्र में आगमन के साथ ही देश में तीन महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं, जिन्होंने सम्पूर्ण देश को एक स्वर तथा एकमत से उनके साथ कर दिया वे तीन महत्वपूर्ण घटनाएं थीं १९१९ में जनता की इच्छा के विरुद्ध रालेट ऐक्ट का पास होना'[४] जलियांवाला बाग की नृशंस एवं अमानुषिक घटना तथा खिलाफत का प्रश्न। महात्मा गाँधी ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि 'रालेट ऐक्ट' भारत-वासियों के जन्मसिद्ध अधिकारों का बाधक है। ३० मार्च १९१९ को इस कानून के विरोध में दिल्ली में प्रदर्शन तथा हड़ताल की गई जो बहुत सफल रही, किन्तु सरकार की दमन नीति के कारण गोलियां चलीं। १३ अप्रैल को अमृतसर के जलियांवाला बाग में विराट सभा का आयोजन किया गया। अब विदेशी सरकार की क्रूरता सीमा का उल्लंघन कर गई। निरस्त्र जनता पर तब तक गोलियों की वर्षा हुई जब तक कि सेना के पास उनका भंडार अशेष न हो गया। जलियांवाला बाग की दुःखद घटना घटी, जिसमें निरी भारतीय जनता निरपराध मारी गई। पंजाब में मार्शल ला द्वारा शासन हुआ। इससे सम्पूर्ण देश में एक तूफान-सा आ गया और अपराधी शासकों को दण्ड देने की मांग चतुर्दिक उठी। देशवासियों की उत्तेजना को शांत करने लिए और पंजाब की घटनाओं की जांच के लिए हंटर कमेटी की स्थापना हुई किंतु वह अपनी निष्पक्ष राय न दे सकी। भारतवासी असन्तोष तथा विक्षोभ की अग्नि में जल उठे। उन्होंने विदेशी सरकार से न्याय की आशा त्याग दी। जनता ने विद्रोह के उन्माद में

1. "It is only when politics becomes our religion and religion becomes our politics that we in India can solve all our problems."
   Dr. M.A. Buch: Rise and Growth of Indian Nationalism. Page 5
2. ibid, Page 17
3. ibid, Page 15
४. 'कांग्रेस में रालेट ऐक्ट की धज्जियां उड़ा दी गईं, परन्तु सरकार ने इसकी कतई परवाह नहीं की।' भारत सन् ५७ के बाद—पं० शंकरलाल तिवारी 'बेढब': पृ० ७५

कुछ स्थानों पर हिंसात्मक क्रान्ति का आभास भी दिया तथा अहमदाबाद में जोरों का संघर्ष हुआ। गाँधी जी को इन सब घटनाओं से अत्यधिक मानसिक क्लेश पहुंचा। उन्होंने देश की राजनीतिक परिस्थिति को सुधारने के लिए जनता को अनुशासन का पाठ पढ़ाना चाहा। सत्य, अहिंसा तथा आत्म बलिदान द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करने के लिए असहयोग आन्दोलन का प्रचार किया। अब तक वे विदेशी सरकार से सहयोग द्वारा, भारत को स्वतन्त्रता की ओर ले जाना चाहते थे किंतु अब वे असहयोग के दृढ़ समर्थक हो गये थे।[१] खिलाफत के प्रश्न पर भारत की मुस्लिम जनता अंगरेजों के प्रति विक्षुब्ध हो उठी, क्योंकि उससे उनकी धार्मिक भावना को ठेस पहुंची थी।[२] देश का यह सौभाग्य था कि पुनः हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में समान रूप से भाग लिया। गाँधी जी ने सम्पूर्ण देश की जनता का नेतृत्व किया। उन्हें अली भाइयों का सहयोग प्राप्त हुआ तथा सन १९२० ई० में बहुमत से असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इस हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के अनुकूल वातावरण में भी राजनैतिक दलबन्दियों का हो जाना एक अप्रिय तथा खेदपूर्ण घटना थी। यह दलबन्दी पंजाब के अत्याचार तथा खिलाफत के प्रश्न के सम्बन्ध में हुई थी। कुछ नेतागण गांधी जी के असहयोग से असहमत होने के कारण कांग्रेस से पृथक हो गये थे। कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर भी सभी नेता एकमत नहीं थे। असहयोग से सहमत होने पर भी जो नेता काँग्रेस के नेतृत्व में कौंसिल-प्रवेश द्वारा विदेशी साम्राज्यवाद को मिटा डालना चाहते थे, उन्होंने असहयोग आन्दोलन का जोश धीमा पड़ते ही सन १९२२ में, 'स्वराज्य पार्टी' के नाम से कांग्रेस के कार्यक्रम का पालन करते हुए, एक नई पार्टी या दल की रचना कर ली थी। इसके समर्थक देश-बन्धु चित्तरंजनदास, पण्डित मोतीलाल नेहरू आदि थे।

गांधी जी के नेतृत्व में अब कांग्रेस का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वतन्त्रता न रह कर पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन बन गया था। कांग्रेस में एक निश्चित कार्यक्रम

१. "The dramatic shift of Gandhi from Co-operation to non-co-operation changed the whole face of Indian Politics."
Dr. M.A. Buch—The Rise and Growth of Indian Nationalism; Page 30.

२. 'Gandhi soon took the leadership of the Indian Muslims. He felt that grave injustice had been done to the Mohammedans in India. Their religious susceptibilities had been deeply wounded. Here was an opportunity to the Hindus to stand by the side of their Muslim brethren and thus advance the cause of Hindu-Muslim Unity.'
Dr. Buch—The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 27.

निर्धारित किया गया जिसके आधार पर राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन हुआ। इस रचनात्मक कार्यक्रम को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक करोड़ रुपये के एकत्रीकरण का तथा बीस लाख घरों में चर्खा चलवाने का निश्चय किया गया।[1] गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन की सफलता के लिए जनता को त्याग, सहनशीलता तथा अहिंसा का पाठ पढ़ाना प्रारम्भ किया। उनके असहयोग का तात्पर्य था, आत्मबल द्वारा विदेशी सत्ता से असहयोग। सरकारी उपाधियों तथा सम्मानों का त्याग इस आन्दोलन की विशेषता थी।[2] हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, स्वदेशी, हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा बना कर राष्ट्रीय एकीकरण का प्रयास इस आन्दोलन के लक्ष्य थे। उनका मूल अस्त्र था अहिंसा। इसी कारण गांधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार तथा राजनैतिक मताधिकार पर विशेष बल दिया। राष्ट्रीय विद्यापीठ खोले गये, तथा भारतीय विद्यार्थियों को नवीन ढंग की राष्ट्रीय शिक्षा दी जाने लगी, यद्यपि इस दिशा में अधिक सफलता न मिल सकी।[3]

असहयोग आंदोलन

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का ध्येय था सत्य तथा अहिंसात्मक प्रणाली द्वारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना में सम्पूर्ण राष्ट्र की समस्त शक्ति का प्रयोग करके भारत को विदेशी शासनाधिकार से मुक्त करना। गांधी जी के शब्दों में—'वास्तव में मेरा विश्वास तो यह है कि इंगलैंड और भारत जिस अ-प्राकृतिक रूप से रह रहे हैं, मैंने असहयोग के द्वारा उससे उद्धार पाने का मार्ग बता कर दोनों की सेवा की है। मेरी विनम्र सम्मति में जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्तव्य है उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्तव्य है। इससे पहले बुराई करने वाले को क्षति पहुंचाने के लिए असहयोग को हिंसात्मक ढंग से प्रकट किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियों को यह बताने की चेष्टा कर रहा हूं कि हिंसा बुराई को कायम रखती है, इसलिए बुराई की जड़ काटने के लिए यह आवश्यक है कि हिंसा से बिल्कुल अलग रहें। अहिंसा का मतलब यह है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो कुछ भी दण्ड मिले उसे स्वीकार कर लें।[4] वह राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए सुधारों की अपेक्षा सत्य तथा अहिंसा को प्रमुखता देते थे। उनका विश्वास था कि इस साधन को अपना कर स्वशासन सुलभ हो सकता है जिससे अन्य सुधार-कार्य स्वतः पूर्ण हो

१. पं० शंकरलाल तिवारी 'बेढब' : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० ८३
२. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० १५१
'हमें धीरे-धीरे बढ़ना होगा, जिससे बड़े से बड़े उत्तेजन पर भी हम अपना आत्म-संयम बनाये रख सकें।'
३. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३७
४. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० १९७

जायेंगे ।[1] कांग्रेस में प्रेषित असहयोग प्रस्ताव निम्नलिखित थे ।[2]

(१) सरकारी उपाधियों, अवैतनिक पदों और म्युनिसिपल बोर्ड व अन्य संस्थाओं को लोग छोड़ दें ।

(२) सरकारी दरबारों, स्वागत समारोहों तथा अन्य सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इन्कार कर दिया जाये ।

(३) सरकारी तथा सरकार से सहायता पाने वाले स्कूल व कालेजों का बहिष्कार और राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की जाये ।

(४) वकील और मुवक्किलों द्वारा ब्रिटिश अदालतों का बहिष्कार और पंचायती अदालतों की स्थापना की जाये ।

(५) फौजी, क्लर्की व मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटामिया में भर्ती होने से इन्कार कर दें ।

(६) नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें ।

(७) विदेशी माल का बहिष्कार । हाथ कताई व भारतीय उद्योग धंधों को प्रोत्साहन ।

यह प्रस्ताव कांग्रेस द्वारा अनुमोदित हो जाने के पश्चात् गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन के लिए रचनात्मक कार्यक्रम की एक विस्तृत सूची बनाई थी । इस रचनात्मक कार्यक्रम के अनुसार राष्ट्रीय जीवन के नवनिर्माण का उन्होंने सफल प्रयत्न किया । इसके विशेष केन्द्र ग्राम थे । इसकी सफलता के लिए गांधी जी ने स्वयंसेवकों का एक विशाल दल संगठित किया था, जिसने नगरों के साथ ग्रामों में भी रचनात्मक कार्य प्रणाली की सफलता का उद्योग किया । 'आदर्श भारत' की रूपरेखा में गांधी जी ने रचनात्मक कार्यों की सूची इस प्रकार दी है ।[3]

(१) हिन्दू मुस्लिम या साम्प्रदायिक एकता
(२) अस्पृश्यता निवारण
(३) मादक द्रव्य निषेध
(४) खादी
(५) दूसरे ग्राम उद्योग
(६) गांवों की सफाई
(७) नई अथवा बुनियादी शिक्षा

१. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास पृ० १५१
२. वही, पृ० १५६
३. मोहनदास करमचंद गांधी : आदर्श भारत की रूपरेखा : पृ० २१ : अनुवादक—देवराज उपाध्याय

(८) प्रौढ़ शिक्षा
(९) नारियों की उन्नति
(१०) स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी शिक्षा
(११) राष्ट्रभाषा का प्रचार
(१२) स्वभाषा प्रेम की शिक्षा
(१३) धार्मिक समानता की चेष्टा

उन्होंने असहयोगी के कर्तव्य भी निश्चित कर दिये थे—

(१) चर्खा चलाना जानता हो।
(२) विदेशी कपड़ा त्याग चुका हो।
(३) खद्दर पहनता हो।
(४) हिन्दू मुस्लिम एकता में विश्वास रखता हो।
(५) अहिंसा में विश्वास रखता हो।
(६) हिन्दू हो तो अस्पृश्यता को राष्ट्रीयता के लिये कलंक समझता हो।

सन् १९२०-२१ में असहयोग आन्दोलन का उत्साह सम्पूर्ण देश पर छा गया। श्री पट्टाभि सीतारम्मैया के शब्दों में '१९२१ में सरकार का मुकाबला करने की प्रवृत्ति देश के सार्वजनिक जीवन में मुख्य बात थी, और जनता इस प्रवृत्ति का परिचय भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अपने आसपास की स्थिति को देखकर तथा वहां की स्थानिक और नागरिक समस्याओं के अनुसार दे रही थी।'[1] सत्य तथा अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन न हो सकने पर भी देश हित के लिए स्वेच्छया तथा सहर्ष प्राणोत्सर्ग करने वालों की संख्या कम न थी। 'जेल जाना एक खेल हो गया था और सजा काटना मेहमानदारी। असहयोगियों के लिए ब्रिटिश सरकार की जेलों में जगह बाकी न रह गई थी।'[2] गांधी जी ने अपने कार्य को प्रचार, आन्दोलन और संगठन द्वारा गतिशील बनाया। उन्होंने इस आन्दोलन के समुचित प्रचार के लिए भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और असहयोग का संदेश भारत के ग्राम-ग्राम में पहुंचा दिया। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के इतिहास में प्रथम बार ऐसी उत्तेजनादायक घटना घटी थी कि किसी राष्ट्रीय नेता के उपदेश को सुनने के लिए सहस्रों की संख्या में साम्प्रदायिक भेदभाव त्याग कर जनता एकत्रित हो।[3] भारतीय जनता ने गांधीजी को उस अवतार

१. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० १७९
२. ठाकुर राजबहादुरसिंह : कांग्रेस का सरल इतिहास : पृ० ३६
3. 'The call to open rebellion was an entirely new one in the history of India : and the people were swept off their feet by his whirlwind propaganda. The march of Hindus and Muslims under one common political leader was also equally new : and since the great days of Akbar and the days of the Indian Mutiny. India had never seen such a spectacle.'
Dr. Buch : The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 31

या पैगम्बर के रूप में देखा, जो भारत की स्वतंत्रता तथा उसके उत्थान के लिए प्रकट हुआ था। गांधी जी ने जनता को यह विश्वास दिलाया कि विदेशी सरकार भारतीय जीवन-घातक है। उससे मुक्ति प्राप्ति का एक मात्र ईश्वर-सम्मत साधन 'अहिंसात्मक असहयोग' है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि इस साधन के उपयोग से शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त होगा। जनता ने भी उनके इस विश्वास की पुष्टि अपने सहयोग द्वारा की।[१] गांधी जी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, विट्ठल भाई पटेल, वल्लभभाई पटेल, एन०सी० केलकर, डा० मुंजे, राजेन्द्रप्रसाद, राजगोपालाचारी, रंग स्वामी, सत्यमूर्ति, प्रकाशम्, मुहम्मद अली, शौकतअली, अबुल कलाम आजाद, अन्सारी सभी ने उनका नेतृत्व ग्रहण किया। अतः भारतीय जागृति आंशिक नहीं, सामूहिक थी।[२] विदेशी कपड़ों के बहिष्कार तथा मद्य-निषेध के क्षेत्र में अतीव सफलता मिली। नारियों की जागृति एवं असहयोग आन्दोलन में सक्रिय सहयोग इस युग की सबसे बड़ी विशेषता थी।

इस नव जागृति का परिणाम यह हुआ कि सन् १९२० ई० में ड्यूक आफ कनाट का भारतागमन स्वागत की दृष्टि से अत्यन्त विरस रहा। इसके पश्चात् युवराज प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन का पूर्ण बहिष्कार हड़ताल द्वारा किया गया। उनका बहिष्कार भारतीयों की निर्भीकता तथा विदेशी सत्ता के प्रति उग्र विरोध भावना का प्रतीक था। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इस प्रकार की घटना अपूर्व थी, जिसने विदेशी शासन सत्ता की जड़ हिला दी।[3] देश में कुछ मान्य व्यक्तियों ने अपनी पदवी तथा उपाधि त्याग दी थी। सैकड़ों की संख्या में विद्यार्थी सरकारी स्कूलों और कालेजों का परित्याग कर राष्ट्रीय विद्यालयों में प्रविष्ट हो रहे थे, तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक बन रहे थे।

सरकार देश में इस नवीन तथा उग्र राष्ट्रीयता की लहर को देख आतंकित हो गई। इसके दमन के लिए उसने 'सेडिशस मीटिंग', 'क्रिमिनल ला', 'अमेंडमेंट

---

१. 'A new spirit of political self-consciousness and political self-reliance was born, and people under the matchless leadership of Gandhi, boldly began to take their destiny into their own hands.'

Dr. Buch : The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 31.

२. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास, पृ० १९९

३. 'The non-co-operation movement was meant to weaken the prestige of the Government and put a new spirit of self-reliance into the people !'

Dr. Buch : The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 31.

एक्ट', '१४४ धारा', का कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया। राष्ट्रीय नेता तथा स्वयं सेवक राजद्रोह के अपराध में दंडित किये गये तथा जेलखानों में ठूंस दिये गये, जहां 'उन्हें मारना, पीटना, नंगा करके छोड़ देना आदि सभी पुलिस के साधारण खेल थे।'[1] जेलखाना अब पवित्र स्थान तथा दण्ड वरदान बन गया था। जनता ने विदेशी सरकार के अत्याचारों को बड़ी शान्ति के साथ सहन किया।[2] दमन चक्र बड़े भयावह और विस्तृत-रूप में जारी था। विशेष रूप से युक्तप्रान्त में उसका बहुत जोरशोर था। कई जगह तो गोली-काण्ड भी हुए। बहुत से लोग, बिना मुकदमा लड़े, जेलों में पड़े हुए थे। उन सबको बधाई देते हुए कांग्रेस महासमिति ने घोषणा की कि स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन और सफाई या जमानत दिये वगैर जेल जाने से ही हम स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्रसर होंगे।' देश की इस नवीन जागृति तथा नव-आन्दोलन का प्रभाव केवल देश तक सीमित न रहा, विदेशों से भी गांधी जी को सद्भावना के संदेश मिले, अमरीका आदि देशों से महात्मा जी के प्रति सहानुभूति के संदेश आये। भारत के उस महान् आन्दोलन पर संसार की आंखें खुल गईं। विदेशों में रहने वाले भारतीयों ने अपनी पूरी शक्ति भारत को प्रदान कर दी।[3]

इस आन्दोलन को नष्ट करने की जितनी ही योजनाओं का आयोजन हुआ, उतना ही यह आन्दोलन उग्र रूप धारण करता गया—

'गांधी टोपी, खद्दर और बंदेमातरम् सरकार के लिए हौआ-सा हो गया। ये तीन बातें सख्त राजद्रोह समझी जाने लगीं। सैंकड़ों नहीं बल्कि हजारों आदमी इसी अपराध में पकड़े गए।'[4] पंडित मोतीलाल नेहरू, श्री सी० आर० दास, लाला लाजपतराय को भी इसी आन्दोलन में कारावास दण्ड मिला था।

गांधी जी ने देश में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य तथा अहिंसात्मक असहयोग का वातावरण देख, बारडोली में सामूहिक सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन की तैयारी प्रारम्भ की, किन्तु दुर्भाग्यवश इसी समय उत्तरप्रदेश के चौरीचौरा स्थान में हिंसात्मक घटना घटी जिससे वे दुःखित हो गये तथा तत्क्षण आन्दोलन स्थगित कर दिया।[5] जनता की उत्तेजना को गांधी जी के इस निर्णय से ठेस पहुंची और उसकी आग पर ठंडा पानी पड़ गया, जिससे आग बुझ तो गई पर धुएं का गुबार छोड़ती गई। सरकार

१. भारत सन् ५७ के बाद : पृ० ८६
२. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० १७५
३. पं० शंकरलाल तिवारी 'बेढब' : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० ८६
४. पं० शंकरलाल तिवारी बेढब : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० ८५
५. 'At Chauri Chaura 21 constables and a Sub-Inspector perished in the flames, as a result of a fire set to the Police Station by a mob.'

Dr. Buch—The Rise and Growth of Indian Natio alism, Page33.

ने इस अवसर का लाभ उठाया और गांधीजी को कैद कर लिया गया। १९२३ के पश्चात् सन् १९२७ ई० तक देश में स्वराज्य पार्टी की धूम रही, ये लोग साम्राज्यशाही के गढ़ में प्रविष्ट होकर आक्रमण करना चाहते थे। गांधी जी को अस्वस्थता के कारण, जेल से मुक्त कर दिया गया किंतु उन्होंने स्वराज्य पार्टी के कार्य में विरोध नहीं डाला। वह स्वयं कांग्रेस के लिए रचनात्मक कार्यक्रम बनाने में संलग्न रहे। इस प्रकार देश का राजनीतिक वातावरण असहयोग आन्दोलन के पश्चात् १९२७ ई० तक शान्त बना रहा अर्थात उत्तेजना के चिह्न देश के बाह्य वातावरण में दृष्टिगत नहीं होते थे, किन्तु राष्ट्रीय भावना अन्दर ही अन्दर पुष्ट हो रही थी। इसका एक अन्य कारण भी था कि सरकार ने कांग्रेसियों के लिए यह असंभव कर दिया था कि वे स्थानिक संस्थाओं द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम आगे बढ़ा सकते। 'वे जेल हो आने वालों को नौकरी नहीं दिला सकते थे, खादी नहीं खरीद सकते थे, हिन्दी की शिक्षा नहीं दे सकते थे, शालाओं में चर्खा नहीं चला सकते थे, राष्ट्रीय नेताओं को मानपत्र नहीं दे सकते थे, और न म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों पर राष्ट्रीय झंडा फहरा सकते थे।'[1]

असहयोग आन्दोलन के उत्साह की समाप्ति के साथ ही साम्प्रदायिक विद्वेष प्रबल हो गया। हिन्दू मुस्लिम दंगे प्रारम्भ हो गये। सन् १९२५ तथा '२६ में ये दंगे प्रमुखतया दिल्ली, कलकत्ता और इलाहाबाद में हुए। मुस्लिम लीग कांग्रेस से पृथक् हो गई जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू महासभा द्वारा संकीर्ण हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रचार किया जाने लगा।[2]

१९२५ में सिक्खों ने पंजाब-कौंसिल में गुरुद्वारा बिल प्रस्तुत किया। सरकार गुरुद्वारा आन्दोलन के कैदियों को इस शर्त पर मुक्त करने पर प्रस्तुत हुई कि वे नये कानून मानें। गुरुद्वारा कमेटी में इस बात को लेकर फूट पड़ गई और अधिकांश कैदी सरकारी कानून को मानने की शर्त पर मुक्त किये गये। अतः अकाली दल का राष्ट्रीय उत्साह भी क्षीण पड़ गया।[3]

इस अवधि में, देश में क्रान्तिकारी आतंकवादियों का हिंसात्मक कार्यक्रम भी पुन: संगठित हुआ। सम्पूर्ण देश में उनके गुप्त दलों का जाल फैल गया। शस्त्र के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के आकांक्षी वीरों के साहसपूर्ण कृत्यों द्वारा भी देश के जीवन में अधिक उत्साह आया, और राष्ट्रीय भावना को विकास का मार्ग मिला। सन् १९२७ में कुछ घटनाएं घटीं जो राष्ट्रीयता के इतिहास में महत्वपूर्ण हैं। इनमें प्रमुख हैं: प्रथम, सर्व दल सम्मेलन द्वारा नेहरू कमेटी की नियुक्ति जो देश के लिए संविधान बनाने के लिए थी, द्वितीय, मद्रास कांग्रेस में पूर्ण स्वतंत्रता पर विचार और भगतसिंह द्वारा केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकना। तृतीय, भारतीय जीवन में शासकों की राज-

---

१. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २३४

२. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २३९

३. Palme Dutt : India Today. Page 329.

नीतिक तथा आर्थिक नीति के प्रति बढ़ते हुए विक्षोभ को दृष्टिगत कर ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की स्थापना की घोषणा की, जिसका प्रयोजन था ब्रिटिश भारत का भ्रमण कर शासन कार्य, शिक्षा वृद्धि, प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास तथा तत्संबंधी विषयों की जांच करके यह निर्णय देना कि भारत उत्तरदायी शासन के योग्य है या नहीं। इस कमीशन में भारतीयों को कोई स्थान नहीं दिया गया था। अतः कांग्रेस तथा अन्य सभी राजनीतिक दल इसके बहिष्कार के लिए कटिबद्ध हो गये।[1]

अखिल भारतीय नरमदली नेताओं ने भी इसके विरोध में एक घोषणा पत्र प्रकाशित किया। 'मिल विल्किन्सन ने तो यहां तक कह डाला कि अमृतसर-कांड के पश्चात् ब्रिटिश सरकार के किसी भी कार्य की भारत में इतनी भारी निन्दा नहीं हुई जितनी कि साइमन-कमीशन की नियुक्ति की। कांग्रेस के सभापति ने भी कमीशन की निन्दा की और कर्नल वेजवुड के विचारों का हवाला दिया कि कमीशन के बहिष्कार से भारत के पक्ष को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा।'[2]

कमीशन बहिष्कार सम्बन्धी निश्चय के साथ कांग्रेस में कुछ अन्य विषयों पर भी प्रस्ताव अनुमोदित हुए, वे विषय थे—नज़रबन्द, भारत व एशिया, राष्ट्र का स्वास्थ्य, साम्राज्यवाद विरोधी संघ, चीन, पासपोर्ट, हिन्दू मुस्लिम एकता, ब्रिटिश माल बहिष्कार आदि। कांग्रेस ने साम्राज्यवाद के विरोध में अन्तर्राष्ट्रीय संघ से संबंध जोड़ कर कांग्रेस के इतिहास तथा राष्ट्रीय संग्राम को एक निश्चित मोड़ दिया।[3]

सन् १९२८ से ३७ तक की राजनीतिक परिस्थितियां

सन् १९२७ में ही देश के राष्ट्रीय जीवन में विकास के चिह्न दृष्टिगत होने लगे थे। सन् १९२८-१९२९ में पुनः देश के विद्यार्थी वर्ग तथा युवक समूह में राष्ट्रीय भावना प्रबल हुई। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में अखिल भारतीय स्वतन्त्रता समिति की स्थापना हुई, जिससे भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम को सहायता मिली। श्रमिक तथा कृषक भी संगठित हुए और उन्होंने संग्राम में प्रमुख रूप से भाग लिया। श्रमिक

---

१. 'पर बात यह थी कि साइमन कमीशन की घोषणा भारत में ८ नवम्बर सन् १९२७ को की गई। वाइसराय इसके प्रति सद्भावना पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न में थे। कांग्रेस के सिवा भी भारत की सब पार्टियां साइमन कमीशन की नियुक्ति से इसीलिए नाराज हुईं कि उसमें एक भी भारतीय नहीं रखा गया और कांग्रेस का यह मत स्वाभाविक भी था कि साइमन कमीशन तो उसकी अधकचरी मांग के निकट भी नहीं पहुंचता। डा० बेसेण्ट ने कहा कि यह जले पर नमक छिड़कना नहीं है तो क्या है?'

—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २५३

२. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २५४

३. A. R. Desai : Social Background of Indian Nationalism, Page 317.

वर्ग की संगठित शक्ति में भारतीय राष्ट्रवाद को एक महत्वपूर्ण, शक्तिशाली, गतिवर्द्धक तत्व की प्राप्ति हुई। भारत के इतिहास में प्रथम बार एक नई लहर ने जन्म लिया।

३ फरवरी, १९२८ ई० को साईमन कमीशन भारत में आया जिसका स्वागत अखिल भारतीय हड़ताल द्वारा किया गया।[1] उसके विरोध में दिल्ली, मद्रास, पटना, कलकत्ता, लखनऊ आदि नगरों में प्रदर्शन सभाएं तथा स्ट्राइक हुए। 'गो बैक साइमन।' (साइमन वापस लौट जाओ) के नारे लगाये गये। लाहौर में लाला लाजपतराय के नेतृत्व में एक विशाल जनसमूह एकत्रित हुआ। ब्रिटिश सरकार ने पुलिस तथा अन्य साधनों द्वारा जनता को आतंकित कर दबाना चाहा। अन्य प्रतिष्ठित नेतागणों के साथ लाला लाजपतराय को भी लाठी से पीटा गया। उन्हें वीरगति प्राप्त हुई। उनकी मृत्यु के संबंध में निष्पक्ष जांच करने की मांग की गई जो ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं की गई।[2] हिन्दी प्रदेश में यह बहिष्कार विशेषतया प्रबल था। कांग्रेस के इतिहास में पट्टाभि सीतारम्मैया ने लिखा है :—

"लखनऊ में भी कमीशन के आने के दिन निःशस्त्र व शान्त भीड़ पर पुलिस ने कई बार जानबूझ कर अकारण डण्डे बरसाये। युक्तप्रान्त की पुलिस ने तो जवाहरलाल जी तक को न छोड़ा। सब दलों के प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्ताओं पर डंडे व लाठियां बरसाने में तो मानों घुड़सवार व पैदल पुलिस ने अपनी सारी चतुराई ही खत्म कर दी और बीसियों आदमियों को घायल कर डाला।"[3] भारतवासी सरकार के नृशंस एवं बर्बरतापूर्ण कृत्यों से तनिक भी विचलित नहीं हुए। इन अवरोधों से जनता को उत्साह और बलिदान के लिए प्रेरणा मिली। इस कमीशन का बहिष्कार केवल नगर निवासियों ने ही नहीं वरन् ग्रामवासियों ने भी किया था। 'सरकार ने आसपास के गांवों से लारियों में भर-भर कर किसान बुलवाये लेकिन स्वागत कैम्पों में घुसने के बजाय वे बहिष्कार कैम्पों में जा डटे। और स्टेशन पर विराट जन-समूह ने कमीशन के विरोध में जो अहिंसापूर्ण प्रदर्शन किया उसे और स्वागत तथा बहिष्कार पार्टियों के बल को देखकर तो सरकार की आंखें ही खुल गईं।'[4] श्रमिक वर्ग ने भी जलूसों में सम्मिलित होकर इस बहिष्कार को लफल बनाया था।

साइमन कमीशन के बहिष्कार के अतिरिक्त इस वर्ष की एक अन्य घटना है बारडोली का आन्दोलन। बारडोली में सरकार द्वारा २५ प्रतिशत भूमि कर वढ़ा दिया गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि वहां सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में करबन्दी आंदोलन का संगठन किया गया। सरकार ने इस आंदोलन के दमन के लिए कुर्कियां करायीं[5] और पठानों को बुलाकर कृषकों की जायदाद छीनी।

---

1. A. R. Desai ; Social Background of Indian Nationalism P. 317.
२. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २५७
३. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २५८
४. वही, पृ० २५८
५. वही, पृ० २६१

इसी वर्ष सर्व दल सम्मेलन बुलाया गया जिसमें कांग्रेस, उदार दल तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। विभिन्न दलों के सम्मिलन द्वारा राष्ट्रीय एकता का यह प्रयास मात्र था। मोतीलाल नेहरू ने देश के स्वायत्त शासन के लिए संविधान की योजना बनाई। वर्ष के अन्त में कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर ५०,००० कलकत्ता-मिल के श्रमिकों ने जलूस के रूप में आकर राष्ट्रीय स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया था। सन् १९२९ में मिल हड़ताल अपने चरम पर पहुँच गये। कलकत्ता कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को एक वर्ष का समय दिया जिसमें वह पूर्ण 'डोमीनियन स्टेटस' का अधिकार भारत को दे दे, अन्यथा भारत का ध्येय पूर्ण स्वतंत्रता होगा। १९२९ में वाइसराय ने यह घोषणा की कि डोमिनियन स्टेटस ही भारतीय राजनीतिक प्रगति का ध्येय है और यह १९१९ के विधान नियम में समाहित है। यह भी कहा कि शीघ्र ही भारतीय संविधान के संबंध में विचार करने के लिए भारतीय और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का एक गोलमेज सम्मेलन होगा। इसका उद्देश्य था विविध विचार-धाराओं का जानना और उनके अनुसार ब्रिटिश सरकार को सलाह देना जिससे वह संविधान का मसौदा ब्रिटिश संसद के सम्मुख रख सके। गांधी जी ने यह निश्चित करना चाहा कि इस सम्मेलन का तात्पर्य होगा डोमीनियन संविधान बनाना; परन्तु वाइसराय इस प्रकार का कोई आश्वासन न दे सके। परिणामस्वरूप लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव अपनाया गया और उसकी प्राप्ति के लिए सत्याग्रह, जिसमें करवंदी भी सम्मिलित थी, आन्दोलन चलाने का निश्चय किया गया।

मेरठ षड्यन्त्र केस राष्ट्रीय इतिहास में प्रसिद्ध है। इस में ट्रेड यूनियन, कृषक सभा, राष्ट्रीय महासभा के तीन सदस्यों तथा ब्रिटिश साम्यवादी दल के ब्रैडले, स्प्रैट, हचिस्टन पर मुकदमा चलाया गया था।[1] ब्रिटिश सरकार की दमन नीति ने उग्र रूप धारण किया। जवाहरलाल नेहरू जी अन्य राष्ट्रवादी नेतागण तथा कांग्रेस के वाम-पक्षी नेता सुभाषचंद्र बोस पकड़े गये। आतंकवादी नेता भगतसिंह और दत्त को भी कठोर दण्ड मिला। भारत को साम्यवादी प्रभावों से अछूता रखने के लिए सार्वजनिक सुरक्षा बिल पास किया गया।[2] राजनीतिक समस्याएं, परिस्थितियां और उलझ गईं।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कांग्रेस के संबंध बढ़ते जा रहे थे। उसे विदेशों से विशिष्ट व्यक्तियों तथा संस्थाओं के सहानुभूति सूचक संदेशों की प्राप्ति भी हुई थी। देशी राज्यों से भी कांग्रेस ने उत्तरदायी शासन स्थापित करने का अनुरोध किया। इन सबके संगठन के परिणामस्वरूप विदेशी सत्ता भयभीत हुई। दमन की कठोर विभीषिका में भारतवासियों ने जिस आत्म-बलिदान, सहन-शक्ति, धैर्य, दृढ़ निश्चय का प्रमाण दिया था उससे साम्राज्यवाद आतंकित हुआ।

1. Palm Dutt—Indian Today. P. 335.
2. A. R. Desai—Social Background of Indian Nationalism. P. 319.

अस्पृश्यता निवारण, सामाजिक कुरीतियों के निराकरण, साम्प्रदायिकता को मिटाने तथा मजदूरों और किसानों के संगठन का प्रयास किया गया। कांग्रेस को भिन्न वर्गों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए वैध उपायों का सहारा लिया गया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन

असहयोग आन्दोलन के पश्चात सन् १९३०में पुनःस्वतन्त्रता प्राप्ति का सक्रिय उत्साह छा गया। गांधी जी द्वारा प्रचारित रचनात्मक कार्यक्रम ने देश के वातावरण को राष्ट्रीय आन्दोलन के उपयुक्त बना दिया था। स्वराज्य पार्टी की कौंसिल प्रवेश अथवा अड़गा नीति द्वारा सफलता प्राप्ति का साधन असफल सिद्ध हो चुका था अतः काँग्रेस ने कौंसिल बहिष्कारका पूर्ण स्वराज्यके लिए सत्याग्रह आंदोलन संचालित करने का व्रत ठान लिया। इस महाव्रत का द्योतक संकेत स्वरूप २६ जनवरी देश के पूर्ण स्वराज्य मनाने का दिवस निश्चित हुआ। देशवासियों ने सम्पूर्ण उत्साह के साथ इस दिवस का समारोह संपन्न किया। इस पुण्य-दिवस पर जनता के असीम भावना, स्वार्थ-त्याग तथा उत्साह का भाव प्रदर्शित किया जिससे देश पर छाई शिथिलता तथा निराशा की बदली छंट गई। स्वतन्त्रता भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार है तथा इसकी प्राप्ति करके ही राष्ट्र का विकास सम्भव है—यह स्वर पुनः निनादित हुआ। आन्दोलन प्रारम्भ करने के पूर्व एक घोषणा-पत्र द्वारा महात्मा गाँधी ने भारतीय जनता की दृष्टि, विदेशी शासन द्वारा भारत के आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक शोषण की ओर आकृष्ट की थी।[1] उन्होंने आंकड़ों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि जनता की आमदनी के अनुपात में कर अधिक लिया जाता है, उसके हस्त-उद्योग को विनष्ट कर ग्रामीण जीवन को अधिक दयनीय बनाया गया है, एवं भारत-वासियों की शासन संबंधी सम्पूर्ण प्रतिभा को मिटा डालने में तनिक भी कोर कसर नहीं रखी गई है। शिक्षा-प्रणाली दासता की अभिवृद्धि में सहायक थी तथा निःशस्त्रीकरण भारत के आध्यात्मिक पतन में सहयोगी। भारतीय दुर्दशा के अनेकांगों की ओर लक्षित करते हुए घोषणा-पत्र में कहा गया था—

"जिस शासन ने हमारे देशका इस प्रकार सर्वनाश किया है उसके अधीन रहना हमारी राय में मनुष्य और भगवान दोनों के प्रति अपराध है। किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हमें हिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। इसलिए हम बिटिश सरकार से यथा सम्भव स्वेच्छापूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग कराने की तैयारी करेंगे और सविनय-अवज्ञा एवं करबन्दी तक के साज सजायेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सके तो अमानुषी राज्य का नाश निश्चित है। अतः हम शपथपूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय समय पर जो

१. पट्टाभि सीतारम्मैया ; कांग्रेस का इतिहास : पृ० २

आज्ञायें देगी उनका हम पालन करते रहेंगे।"[1] घोषणा पत्र में विदेशी शासकों की भारत-हित-विरोधी नीति का जितने स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया गया था वह अपूर्व थी और भारतीय राष्ट्रवादके विकास का सूचक था। भारतवासियों के सम्मुख विदेशी शासन के राहु द्वारा भारतीय जीवन के चंद्र का ग्रसित रूप रखा एया था। अतः गांधीजी ने भारत के दुर्भाग्य रूपी विदेशी शासन व्यवस्था को मिटाने के लिए आंदोलन का नेतृत्व किया। इस आंदोलन का उद्देश्य भारत के लिए 'पूर्ण स्वतन्त्रता' प्राप्त करना था। इसके पूर्व असहयोग आंदोलन के अवसर पर राष्ट्रवादियों का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता न होकर औपनिवेशिक शासन मात्र था। कांग्रेस के आदेश पर १७२सदस्यों ने असेम्बली तथा राज्य-परिषद् की सदस्यता त्याग दी।

सन् १६२०-२१ के असहयोग आंदोलन की भांति सविनय-अवज्ञा आंदोलन में भी सरकार के साथ स्वेच्छापूर्वक सहयोग करने वाले वकीलों,विद्यार्थियों आदि को सरकार से असहयोग कर संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित किया गया था। गाँधीजी द्वारा यह द्वितीय राष्ट्रीय जन-आंदोलन का आयोजन था। प्रारम्भ करने के पूर्व उन्होंने भली प्रकार निरीक्षण कर लिया था कि यह आंदोलन किसी प्रकार, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसात्मक कार्यों की ओर निर्देश नहीं करेगा।[2] इसकी प्रारम्भिक स्थिति में उन्होंने केवल ७६ चुने हुए सत्याग्रहियों के साथ स्वयं नमक कानून के उल्लंघन द्वारा सविनय अवज्ञा का बीजारोपण करने का निश्चय किया।

६ अप्रैल सन् १६३० को गांधीजी ने आंदोलन के लिए जिस कार्यक्रम का रूपांकन किया था उसकी प्रमुख बातें थीं: (१) गांव गांव में नमक कर मिटाने के लिए नमक का निर्माण, (२) शराब बंदी के लिए दुकानों पर जाकर धरना देना, यह कार्य विशेष रूप से देश की महिलाओं को सौंपा गया था। विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देना। घर घर से विदेशी वस्त्रों का निराकरण कर उन्हें अग्नि में भस्म करना। (३) खादी का प्रचार, युवक तथा वृद्ध सभी के द्वारा चर्खे पर सूत कातना। (४) अस्पृश्यता को मिटाकर समाज के निम्न वर्ग का उत्थान, विद्यार्थियों सरकारी अफसरों द्वारा सरकारी स्कूल तथा पदों का परित्याग करना।

१. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २८६

२. A. R. Desai : Social Background of Indian Nationalism. P. 321.

३. 'The Boycott of foreign cloth and liquor enforced by methods of picketing and propaganda met with success, students in considerable numbers left educational institutions. The Congress Committees organised meetings in defiance of police ban and firings and lathi charges were resorted by the police to break the banned rallies.'

A. R. Desai—Social Background of Indian Nationalism, P. 322.

नमक कानून भंग आन्दोलन

अंग्रेजों की व्यापारिक नीति ने अपने लाभ के लिए देशी नमक कर संविधान बनाया था जिससे विदेशी चेशायर नमक की भारत में खपत हो सके। वस्तुतः उनकी वणिक नीति अत्यधिक प्रबुद्ध एवं स्वार्थपूर्ण थी। भारत से कच्चा माल ले जाने वाले जहाजों को इंगलैंड से खाली लौटना पड़ता था। जहाज के इस व्यय की पूर्ति कूटनीति द्वारा की गई। यदि भारतीय नमक पर कर लगा कर उसके मूल्य में अभिवृद्धि न की जाती तो विदेशी नमक को सस्ते दामों पर बेचकर उसकी खपत की सुविधा न रहती। गांधीजी ने नमक जैसी साधारण, किन्तु दैनिक जीवन के लिए अति आवश्यक वस्तु पर लगे कर को भंग करने का निश्चय किया। साबरमती की बैठक के बाद यह विषय अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। यह कानून भंग करने का संग्राम भौतिक न होकर नैतिक था। भारत की दरिद्रता की दृष्टि से यह नमक कानून अन्याय तथा स्वार्थ पर आधारित था। नमक सत्याग्रह की योजना थी—किसी नमक के क्षेत्र में जाकर नमक बनाया जाये, नमक उठाया जाये और इस प्रकार कानून भंग किया जाये। इस सत्याग्रह को प्रारम्भ करने के पूर्व गांधीजी ने वाइसराय लार्ड इरविन के नाम पत्र लिखा था जिसमें सरकार की नीति, स्वतन्त्रता तथा उसके हेतु और आंदोलन के कारण आदि विषय स्पष्ट कर दिये थे।

१२ मार्च सन् १९३० को फौलादी अनुशासन में सधे ७९ आश्रमवासियों को साथ लेकर गाँधीजी ने समुद्र-तट पर अवस्थित दण्डी ग्राम की ओर प्रस्थान किया। यह शुद्ध नैतिक ढंग का आक्रमण था। उनकी यात्रा आरम्भ होने के पूर्व ही सरदार वल्लभ भाई पटेल मार्गवासियों को जागृत करने के लिए पहुंच गये थे, किन्तु सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर अपनी दमन-नीति का परिचय दिया, जिसके फलस्वरूप गुजरात का बच्चा बच्चा अंग्रेजी सरकार का विरोधी हो गया। गांधीजी की इस नैतिकतापूर्ण दण्डी-यात्रा का भारतीय जन-जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अनेक ग्राम कर्मचारियों ने त्याग पत्र दिये। नगर डरते रहे परन्तु ग्राम आंदोलन के पीछे चल दिये। यह अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ ३३ करोड़ भारतीयों के विद्रोह का परिचायक मात्र था।[1] गांधीजी ने देशवासियों को चेतावनी दे दी थी कि उनके दण्डी पहुंचने के पूर्व देश में कहीं भी सविनय अवज्ञा प्रारम्भ न की जाये। सत्याग्रहियों के लिए प्रतिज्ञापत्र बना। सरकारी नौकरी छोड़ने वालों को बधाई दी गई। इसके अतिरिक्त गांधीजी ने देश को यह आदेश भी दे दिया था कि उनके गिरफ्तार होने पर अत्यन्त सक्रिय अहिंसा को कार्यक्रम दिया जाये। अहिंसा में धार्मिक विश्वास रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति स्त्री अथवा पुरुष, इस पराधीनता को मिटाने के उद्योग में या तो मर मिटे या कारावास में बन्द रहे। श्री मोतीलाल नेहरू ने इसी समय के आसपास अपने शाही भवन का दान दिया। गाँधीजी ने सूत्र रूप से विचार दिया था। उनके शिष्यों ने भाष्यकार

---

१. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३०२

बन कर उसे जनता को समझाया। अनेक कार्यकर्ता राष्ट्रदूत बनकर उसका प्रचार करने दूर दूर निकल पड़े।[1]

६ अप्रैल, १९३० को गांधीजी ने नमक कानून तोड़ा। इस अवसर पर गांधी जी ने कहा था—

"अंग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक, सांस्कृरिक और आध्यात्मिक सभी तरह का नाश कर दिया है। मैं इस राज्य को अभिशाप समझता हूं और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूं। मैंने स्वयं 'गोड सेव दी किंग' के गीत गाये हैं। दूसरों से गवाये हैं। मुझे भिक्षां देहि' की राजनीति में विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। मैं जान गया कि इस सरकार को सीधा करने का यह उपाय नहीं है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है। हम किसी को मारना नहीं चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासन को खत्म कर देना हमारा परम कर्त्तव्य है।"[2]

इस आंदोलन का आश्चर्यकारी प्रभाव हुआ। विदेशी सरकार इस सीधे सादे आंदोलन से आशंक्ति हो गई। अब सरकार का पूरा ध्यान असहयोगियों पर था। उसकी नैतिक प्रतिष्ठा तो मिट्टी में मिल चुकी थी, राजनीतिक दृष्टि से भी उसकी सत्ता मिटाई जा रही थी। जमीदारों, मकानमालिकों, साहूकारों, व्यापारियों आदि को बुलाकर यह धमकी दी गई कि यदि वे सत्याग्रहियों की सहायता करेंगे तो वे सरकार के कोपभाजन बन जायेंगे। लेकिन देशप्रेम की प्रवल धारा इन धमकियों का उल्लंघन करती अबाध रूप से बहती जा रही थी। पट्टाभि सीतारम्मया के शब्दों में 'स्वाधीनता पथ के इन यात्रियों के साथ कई विदेशी संवाददाता, चित्रकार और आस पास के सैंकड़ों लोग तथा भिन्न-भिन्न प्रांतों से आए हुए प्रमुख व्यक्ति भी गये।[3]

इस आंदोलन की चर्चा विदेशों में भी हुई। पेशावर में यह आंदोलन अधिक भयंकर रूप में फूटा। वहाँ जन-समूह ने प्रदर्शन के साथ पुलिस से संघर्ष भी किया। इस राष्ट्रीय चेतना की चरम परिणति थी एक गढ़वाली दस्तेके सैनिकों द्वारा जन-समूह पर गोली चलाने की आज्ञा स्वीकार करना।[4]

५ मई को गाँधी जी कैद किये गये सरकार के इस कृत्य के विरोध में हड़तालें की गई। जिन पत्रों तथा प्रेसों ने इस आंदोलन को सहयोग दिया था, उन्हें बन्द कर दिया गया और पत्रकारों को कारावास दण्ड दिया गया।[5] सन् १९३१ में गाँधी जी

---

१. पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० ३०४
२. वही, पृ० ३०६
३ वही, पृ० ३०५
४. Desai : Social Background of Indian Nationalism. 323.
५. 'Under the press ordinance, 67 news papers and 55 printing presses had been closed down before the end of July.'
Desai : Social Background of Indian Nationalism P. 3-3.

बिना किसी शर्त के मुक्त कर दिए गए। सरकार ने कांग्रेस से समझौते के लिए वार्ता प्रारम्भ की।

गांधी-इरविन पैक्ट

५ मार्च १९३१ को गांधी इरविन पैक्ट पर हस्ताक्षर हुए और राष्ट्रीय संघर्ष स्थगित किया गया।[1] इस पैक्ट के अनुसार काँग्रेस को गोलमेज परिषद् में आमंत्रित किया गया, जिसमें संघीय उत्तरदायी शासन के आधार पर भारत के भावी संविधान के स्वरूप पर विचार होना निश्चित हुआ था। सरकार द्वारा अहिंसात्मक राजनीतिक कैदियों को मुक्त करने तथा प्रजा पर लगाये गये कठोर प्रतिबंधों को मिटाने का भी निश्चय किया गया। कांग्रेस के वाममार्गी सदस्य—सुभाषचंद्र बोस, जवाहरलालनेहरू आदि इस पैक्ट के विरुद्ध थे, केवल राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से ही वे हस्ताक्षर के पक्ष में सहमत हुए थे। इसके पश्चात् गाँधीजी गोलमेज परिषद् में सम्मिलित होने के लिए इंगलैंड गए। वहाँ उन्होंने अल्पसंख्यकों की समस्या पर अपने विचार व्यक्त किए, भारतीयों द्वारा सेना के उत्तरदायित्व लिए जाने के प्रस्ताव को प्रस्तुत किया, काँग्रेस की स्थिति स्पष्ट की तथा साम्प्रदायिकता के आधार पर चुनाव का विरोध किया। परिषद् मध्य में ही बिना किसी निश्चय के समाप्त हो गई। गांधी जी तथा अन्य भारतीय प्रतिनिधि देश वापिस लौट आये।

इस बीच भारतीय ग्रामों की अवस्था अधिक शोचनीय हो गई थी। नित्य प्रति उपज के मूल्य घटने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति कठिन होती जा रही थी। १९३१ के अन्तिम भाग में संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश), गुजरात तथा बर्मा के कुछ भागों में कृषकों ने भूमि कर देना अस्वीकार कर दिया।[2] पैक्ट द्वारा सन्धि करने पर भी सरकार की नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ था।

गांधी जी ने भारत लौट कर फिर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। ४ जनवरी १९३२ को उन्हें पुनः कारावास का दण्ड दिया गया। कांग्रेस पर प्रतिबन्ध लगाये गये। सरकार ने तत्काल ही कुछ विशेष धारायें लागू कर दीं, जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रसार एवं विकास न हो सके। प्रेसों पर प्रतिबन्ध अधिक कठोर हुआ। कांग्रेस के अनुमान के आधार पर अप्रैल १९३३ में राजनीतिक कैदियों की संख्या लगभग १,२०,००० थी।[3] सविनय अवज्ञा आन्दोलन के विकास के फलस्वरूप काश्मीर तथा अलवर जैसी रियासतों में भी संघर्ष हुआ। देशी रियासतों की प्रजा ने भी देश का साथ दिया। आन्दोलन भंग करने के लिए सरकार को ब्रिटिश सेना की सहायता लेनी पड़ी।

ब्रिटिश शासकों ने राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए तथा आन्दोलन को समाप्त करने के लिए पुनः भेद-नीति के अस्त्र का प्रयोग किया। हिन्दू-मुसलमानों के

१. Palme Dutt : India Today. P. 347.
२. A R. Desai—Social Background of Indian Nationalism P. 324.
३. Ibid P. 324

विभेद से ही उसकी तृप्ति न हुई थी, अतः पिछड़ी जातियों एवं अन्य अल्पसंख्यकों के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्र का आयोजन करना चाहा। गांधी जी ने इसका विरोध 'आमरण अनशन' द्वारा किया। उनके प्राणों की रक्षा के लिए पूना में हिन्दुओं का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें अस्पृश्यता निवारण का व्रत लिया गया और परिगणित जातियों के राजनीतिक अधिकारों के लिए 'पूना पैक्ट' पर हस्ताक्षर किये गये। इसके अनुसार सम्मिलित निर्वाचन क्षेत्र रखा गया परन्तु पिछड़ी जातियों के लिए कुछ अधिक स्थान विधानसभाओं में निर्धारित हुए। हरिजनों के उद्धार के गांधी जी ने १९३२ में एक और व्रत किया। इन प्रश्नों में उलझ जाने के कारण और सरकार की दमननीति तथा नये संविधान के कारण जनता सत्याग्रह में पूरा योग न दे सकी। कारावास से मुक्त होने के पश्चात् गांधी जी हरिजनों के उद्धार कार्य में संलग्न हो गये। सन् १९३४ मई के लगभग सविनय अवज्ञा आन्दोलन पूर्णतया समाप्त हो गया।[१]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लक्ष्य में यह आन्दोलन सफल न हो सका। किन्तु राष्ट्रवाद के प्रसार तथा विकास की दृष्टि से यह अत्यधिक उपयोगी रहा। असहयोग आन्दोलन की अपेक्षा, इस आन्दोलन में असहयोगी जनता की संख्या कहीं अधिक थी। कृषकवर्ग ने इसमें सर्वाधिक योग दिया था। श्रमिक वर्ग भी इससे प्रभावित हुआ था और उसने भी सहयोग दिया था। श्रमिक वर्ग की हड़तालों से तथा कृषक वर्ग के भूमि-कर-बन्दी से आन्दोलन में अधिक स्फूर्ति तथा प्रभावोत्पादकता आ गई थी। इस वर्ग के प्रवेश से भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा का मेल हुआ। सन् १९३५ ई० के पश्चात् भारतीय राष्ट्रवाद समाजवाद के प्रगतिशील तत्वों से अनुप्रेरित हुआ।[२] वामपक्षी राष्ट्रवादी युवकवर्ग ने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण १९३४ ई० में कांग्रेस समाजवादी दल का निर्माण किया। यह दल कांग्रेस से पृथक् न था। इसने विदेशी शासन से भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही वर्गसंघर्ष को मिटाने के लिए, पूंजीवाद से श्रमिक वर्ग की मुक्ति का ध्येय भी अपनाया था। श्रमिक तथा कृषकवर्ग इनके राष्ट्रीय संग्राम की सबसे बड़ी शक्ति थे। कांग्रेस के इस वर्ग का गांधी जी के राष्ट्रवाद—उसके आदर्श, कार्यक्रम तथा साधन में विश्वास नहीं रह गया था।[3] सुभाषचन्द्र बोस ने फारवर्ड

१. 'It was not until May, 1934, that the final end came to the struggle which had opened with such magnificent power in 1930 Palme Dutta—India Today. P. 353.

२. 'New accessions of strength were won after the close of the national civil disobedience struggle of 1930 - 34 as the younger national elements proceeded to draw the lessons of that struggle.' Palme Dutta– India today. P. 394.

३. A. R, Desai—Social Background of Indian Nationalism. p. 388

ब्लाक की स्थापना की। सरकार द्वारा मजदूर संगठन तथा साम्यवादी दल को अवैध घोषित किया गया। मजदूर-आन्दोलन को दबाने के लिए गोलियां तक चलवाई गईं।[1]

कृषक-आन्दोलन ने अधिक ध्यान आकृष्ट किया था। उनमें राष्ट्रीय चेतना तथा वर्गचेतना अधिक मात्रा में आई। अखिल भारतीय कृषकसभा ने भी समाजवादी भारत का ध्येय निर्धारित किया।[2] कृषकसभा स्वतन्त्र संघर्षों का संगठन कर राष्ट्रीय आन्दोलन में मिल गई। नवीन विचारधाराओं से प्रभावित होने के कारण कांग्रेस के कार्यक्रम में श्रमिक तया कृषक वर्ग की स्वतन्त्रता तथा आर्थिक अवस्था से सबंधित कुछ बातों का समावेश हो गया था। इस प्रकार राष्ट्रवादियों ने दलित वर्ग के उत्थान के लिए विशेष रूप से आन्दोलन किया।

देशी राज्यों में प्रजातन्त्रात्मक राज्य-विधान के लिए संघर्ष हुआ। यह आन्दोलन व्यापारी-वर्ग द्वारा राजाओं की निरंकुश प्रवृत्ति के विरुद्ध किया गया था। इसी समय मुस्लिम लीग भी अधिक व्यवस्थित हुई। अतः देश में विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के उद्‌गम तथा विविध प्रकार के आन्दोलन से राष्ट्रवाद को अधिक पुष्टता प्राप्त हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्ति मिली, जिससे उसके सभी पक्ष सुदृढ़ हुए।

१६१६ ई० के पश्चात् पुनः १६३५ में ब्रिटिश शासकों ने भारतीय सांवैधानिक परिवर्तन के लिए अधिनियम बनाया। इस अधिनियम के दो प्रमुख भाग थे—प्रथम केन्द्र में संघ शासन अर्थात् अंग्रेजी भारत के प्रान्तो के साथ देशी राज्यों को मिलाकर भारतीय संघ का निर्माण और द्वितीय प्रान्तीय स्वायत्तता। संघ शासन का राष्ट्रीय नेताओं द्वारा एक स्वर से विरोध किया गया, क्योंकि इसके द्वारा पूर्ण उत्तरदायी शासन के स्थान पर द्वैध शासन का ही विधान किया गया था। गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों और व्यक्तिगत शक्तियों के विस्तृत क्षेत्र के सम्मुख संघीय शासन व्यवस्था एक भ्रममात्र थी।[3] इस अधिनियम को १६३७ में कार्य रूप में परिणत किया गया लेकिन संघ योजना लागू न हो सकी, केवल प्रान्तीय स्वायत्तता क्रियान्वित हुई।[4] भारतीयों की यह बहुत बड़ी विजय थी। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक प्रगति के लिये भारत को एकता की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति इसके द्वारा संभव हो सकती थी। प्रान्तीय स्वायत्तता द्वारा प्रान्तों की प्राचीन शासन प्रणाली का अन्त हुआ और प्रान्तीय शासन की एकता स्थापित हुई।[5] लेकिन गवर्नर के विशेषाधिकारों के सम्मुख प्रान्तीय स्वायत्तता नाममात्र को ही थी। जवाहरलाल नेहरू ने इस

१, Palme Dutt— India Today, p. 393

२. A. R. Desai, Social Background of Indian Nationalism p. 389

३. Ibid, p. 464

४. Palme Dutt—India Today, p. 464

५. डा० रघुवंशी : भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० १८४

अधिनियम के अन्तर्गत पदग्रहण करने का स्पष्ट शब्दों में विरोध किया। लेकिन कांग्रेस ने १९३७ में चुनाव में भाग लिया तथा ग्यारह प्रान्तों में से छः में अर्थात् संयुक्तप्रान्त, बम्बई, मद्रास, बिहार, मध्यप्रान्त और उड़ीसा में बहुमत से उसकी विजय हुई।[1] राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं द्वारा चुनाव में भाग लेने का कारण मनोवैज्ञानिक था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त होने के पश्चात् पुनः राष्ट्रीय नेताओं के अन्दर व्यवस्थापिका सभाओं में प्रवेश कर राजनीतिक गतिरोध, दमनकारी कानूनों को रद्द कराने तथा नये सुधारों को क्रियान्वित कराने की भावना सुदृढ़ होने लगी थी। इसके अतिरिक्त गांधी जी भी सहमत हो गये थे।[2] स्वयं गांधी जी ने अपने को इससे पृथक् रखा तथा रचनात्मक कार्यक्रम के कुछ भक्तों को साथ लेकर चर्खा, खादी प्रचार, जातीय एकता, छुआछूत मिटाने तथा मद्यपान निषेध आदि कार्यों में लगे रहे। अतः कांग्रेस ने प्रान्तीय प्रशासन में पदग्रहण कर प्रान्तीय स्वराज्य की योजना को मूर्त किया।

सन् १९२०-१९३७ के काल के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास से यह स्पष्ट है कि प्रमुख रूप से कांग्रेस ने भारत में राष्ट्रीय भावना का संचार एवं प्रसार किया। कांग्रेस ने यह कार्य गांधी जी के नेतृत्व में किया था। गांधी जी ने वस्तुतः सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्त को अपनाया था। कुछ वर्षों तक स्वराज्य पार्टी की धूम रही थी, जिनके सिद्धान्त गांधी जी से कुछ भिन्न थे। मुस्लिम लीग असहयोग आन्दोलन के पश्चात् साम्प्रदायिकता के आधार पर कांग्रेस से अलग हो गई थी। हिन्दू महासभा की स्थापना हिन्दू धर्म तथा जनता की सुरक्षा के लिये की गई थी। अतः इन सब दलोंके सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक जीवन में उनके प्रयोगों के स्वरूप का विस्तृत विवेचन उपयुक्त होगा। साधन के आधार पर इन राष्ट्रीय दलों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :—

(१) अहिंसात्मक साधन द्वारा स्वन्त्रता-प्राप्ति के लिये सक्रिय दल। इसमें गांधी जी के राष्ट्रीय सिद्धान्त तथा राष्ट्रवाद प्रमुख हैं। स्वराज्य पार्टी इसी के अन्तर्गत रखी जायेगी। हिन्दू महासभा की राष्ट्रीयता संकीर्ण है, तथा मुस्लिम लीग का राष्ट्रवाद साम्प्रदायिक।

(२) हिंसात्मक साधन द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सक्रिय दल अर्थात् क्रान्तिकारी दल। इसने शस्त्र-प्रयोग, हिंसा, षड्यन्त्र द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति का सफल उद्योग किया। इसके सिद्धान्त अहिंसावादियों के प्रतिकूल थे। अतः इनका विवेचन पृथक् किया गया है। राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण भी आवश्यक है। विदेशी साम्राज्यवाद ने भारत को सामाजिक तथा आर्थिक दुरावस्था के गर्त में डाल दिया था।[3]

---

१. डा० रघुवंशी : भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास : पृ० २०५
२. वही, पृ० १७९
३. Desai—Social Background of Indian Nationalism. p. 23

सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियां (सन् १९२०-१९३७)

अंग्रेजी राज्य में पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना हुई तथा ग्रामीण आत्म-निर्भर अर्थ-व्यवस्था का अन्त हुआ। कृषकों का भूमि पर अधिकार समाप्त हुआ तथा कृषि सम्बन्धी भूमि जमींदारों की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई। पंचायतों के हाथ से न्याय का अधिकार सूत्र निकल कर जमींदार, तथा सरकारी न्यायालयों के हाथ में चला गया। उनसे सरकारी दलाल मनमाना धन वसूल करने लगे। कृषक ज़मींदार और सरकारी नौकरशाही की दुहरी चक्की में पिसने लगे। लगान के साथ साथ बेगारी डांड, मुचलका आदि अन्य दासता के अभिशाप से ग्रसित हो किसानों का जीवन नरक तुल्य हो गया। आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण लगान न चुका पाने पर भूमि से भी उन्हें वंचित होना पड़ता था। ऋण की व्यवस्था न होने के कारण साहूकारों के शोषण का भी उन्हें पात्र बनना पड़ा। इस नवीन भूमि-व्यवस्था ने ग्रामों के सामाजिक जीवन पर अपना विषाक्त प्रभाव डाला। पंचायत अथवा ग्राम के वृद्ध जनों का भय न रह जाने पर तथा ज़मीन का सीधा सम्बन्ध ज़मींदार से होने के कारण. व्यक्तिगत स्वार्थों ने विकराल रूप धारण किया। भूमि के लिए झगड़े, मनमुटाव और अन्य अनेक प्रकार के संघर्षों ने ग्रामीण जीवन की शान्ति भंग कर दी। न्यायालयों के चक्कर लगाते तथा ज़मींदार और साहूकारों के तलुवे सहलाते हुए कृषक साधारण मजदूर बन जाते थे।

जैसा कि पिछले अध्यायों में स्पष्ट किया जा चुका है, ग्रामों की अर्थ-व्यवस्था की दुर्दशा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण था भारतीय ग्रामोद्योगों का छिन्न भिन्न होना। यातायात की सुविधाओं के कारण ग्रामों में भी विदेशी वस्त्र आदि जीवन के आवश्यक उपकरणों की खपत होने लगी तथा कुटीर-उद्योग विनष्ट होने लगा। कृषक के पास कृषि के अतिरिक्त जीवन का अन्य साधन शेष न बचा। अतः प्राकृतिक साधनों तथा कलाकौशल के होते हुए भी भारत दिन पर दिन निर्धन होता जा रहा था, क्योंकि राजनीतिक पराधीनता के अभिशाप ने उसकी प्रगति तथा विकास के प्रत्येक मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था।[1] भारत की दुर्दशा का यह रूप अत्यन्त करुण था। इसने भारतीय जीवन का संगठन, व्यवस्था तथा एकता की भावना को विनष्ट कर दिया।[2] भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े होते जा रहे थे। अर्थाभाव, अशिक्षा, अज्ञान

१ Palme Dutt-Indian Today. p. 29

२. Historically speaking, the destruction of the self-sufficient village was a progressive event thoug it involved much tragic distruction such as that of collective life among the village population of tender human relations between them and of economic security among its members unless a war or a famine intervened,

Desai–social Background of Indian Nationalism, p. 37

तथा नवीन साधनों के अभाव में कृषकवर्ग पुरानी रीति पर ही आधा पेट भोजन कर किसी प्रकार जीवन चला रहा था। उसके पास दैवी प्रकोपों को सहन करने के लिए कुछ भी शेष नहीं बचता था। अकाल, अतिवृष्टि, बाढ़ आदि के समय उसकी दुर्दशा की कोई सीमा नहीं रह जाती थी।

अंग्रेजी शासन के पूर्व ग्रामवासियों को जंगल की लकड़ी के उपयोग का पूरा अधिकार था। ज़मींदारी व्यवस्था के पश्चात् उसका यह अधिकार भी छिन गया। ग्रामवासियों का अर्थाभाव बढ़ता गया। नमक जैसी अति आवश्यक, किन्तु अत्यन्त क्षुद्र वस्तु पर कर तो असह्य हो गया।

ग्रामवासियों की आय तथा व्यय के बीच का अन्तर निरन्तर बढ़ता गया। सामाजिक मर्यादा के पालन के लिये तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वे ऋण के अथाह सागर में डूबते गये। इससे उद्धार न होने पर उनके बैल बिकने लगे, उनकी पैतृक भूमि छिनने लगी, तथा भोजन के अभाव में या तो उन्हें अपना परिवार मृत्यु के मुख में भेजना पड़ता, अथवा नगर में आकर मजदूरी करनी पड़ती अथवा अन्य अनेक दुष्कृत्यों का सहारा लेकर देश के नैतिक पतन का कारण बनना पड़ता।

ग्रामों में भी दहेजप्रथा, बाल-विवाह तथा अन्य अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों ने अपनी जड़ें गहराई से जमा ली थीं। शिक्षा के अभाव में अन्धविश्वास, रूढ़ियों तथा कुरीतियों में जकड़ कर भारत की अधिकाँश ग्रामवासिनी जनता का जीवन अभिशाप बन गया। इसके अतिरिक्त भारत की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या ने इस अग्नि में घृत का योग दिया।

ग्रामीण जीवन की भांति नागरिक जीवन भी अस्तव्यस्त हो गया। नगरों की हस्त उद्योगकला को विदेशी पूंजीवादी मशीनी उद्योग से अत्यधिक आघात पहुंचा। विदेशी वस्तुओं का भारतीय बाजारों में अधिक विक्रय हुआ, क्योंकि इनका मूल्य कम था। इसके अतिरिक्त भारत में मशीन उद्योग की अभिवृद्धि भी सीमित थी, जहाजी विद्या, तथा अन्य बड़े उद्योगों को विदेशी शासकों ने अभिवृद्ध नहीं होने दिया था।[1] पूंजीवादी शासन व्यवस्था में उद्योगीकरण भी व्यक्तिगत सम्पत्ति था अतः नवीन वर्गों का जन्म हुआ जैसे जमींदार-कृषक, उद्योगपति-मजदूर आदि। इन वर्गों के बीच आर्थिक संतुलन नहीं था, सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक ढांचा अव्यवस्थित हो गया।[2]

विदेशी शासन के अन्तर्गत दी जाले वाली शिक्षा अत्यन्त दूषित थी। उसका भारतीय सामाजिक जीवन पर अस्वस्थ प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ने भारत

1. Desai—Social Background of Indian Nationalism, p. 94
2. Industrialization made the Indian economy more unified, cohesive and organic. It raised the tone of the economic life of India. Desai—Social Background of Indian Nationalism p. 105

के शिक्षित वर्ग में प्राचीन सामाजिक जीवन के विरुद्ध पश्चिमीकरण के सिद्धान्त का आरोपण किया । उसकी मनःस्थिति में अहितकर परिवर्तन हुआ क्योंकि वह अपनी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रहन-सहन के प्रति एक हीन भावना से भर गया । अंग्रेजी भाषा तथा रहन-सहन पर अधिक बल देने के कारण शिक्षित वर्ग तथा साधारण जनता के बीच अन्तर बढ़ गया और सामाजिक संतुलन विनष्ट हो गया ।[१] शिक्षा इतनी व्यय-साध्य थी कि १९३१ तक ९२ प्रतिशत भारतीय जनता अशिक्षित बनी रही ।[२] भारतीय राष्ट्रवादियों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से इस शिक्षा-पद्धति की आलोचना की थी । ए० आर० देसाई के अनुसार यह मत अधिक सत्य नहीं है कि तत्कालीन शिक्षा-पद्धति ने राष्ट्रवाद को जन्म दिया था वरन् राष्ट्रवाद के प्रारम्भ तथा विकास का प्रमुख कारण था भारत की तत्कालीन आर्थिक एवं सामाजिक दुर्दशा ग्रस्त परिस्थितियां ।[३] इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस शिक्षा-पद्धति के कुछ लाभ भी थे ।

ग्रामीण जीवन की भांति नागरिक जीवन में भी आर्थिक संतुलन, सामाजिक पतन तथा राजकीय असंरक्षण ने वेश्यावृत्ति, विधवाओं की समस्या, दहेजप्रथा आदि को भयंकर रूप प्रदान किया । जातिभेद, सम्प्रदायभेद तथा धर्मभेद बढ़ता जा रहा था, जिसे विदेशी शासकों से प्रोत्साहन मिल रहा था । नवीन वर्गों के बीच बढ़ती निर्धनता ने संघर्ष को जन्म दिया । भारतीय सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या थी अछूतों की, जिन्हें सामाजिक अथवा धार्मिक मान्यता दिए बिना राष्ट्रीय प्रगति असम्भव थी । हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष भी विकराल रूप धारण कर रहा था । गांधीजी ने सामाजिक तथा धार्मिक सुधार को राष्ट्रीय आन्दोलन का महत्वपूर्ण अंग बनाया था । ब्रिटिश शासकों ने इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया था । गांधीजी के राष्ट्रवाद के स्वरूप विश्लेषण में इसका विस्तार के साथ विवेचन किया गया है । अतः ब्रिटिश शासन काल की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, परिस्थितियों के परिचय से राष्ट्रवाद के विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप के ज्ञान में सहायता मिलेगी ।

---

१. A. R. Desai—Social Background of Indian Nationalism. P. 125.

२. A. R Desai– Social Background of Indian Nationalism. P. 132.

३. "All Higher education, because of its cost, had been inaccessible to the great majority of the Indian people."—

A. R. Desai– Social Background of Indian Nationalism. P. 137.

राष्ट्रवाद का दार्शनिक पक्ष

गांधीजी के असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का दर्शन :

गांधीजी का असहयोग आन्दोलन मात्र सैद्धान्तिक ही नहीं था । वह मानव-जीवन के लिए अति व्यवहारोपयोगी भी था । उसके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही पक्ष अत्यधिक स्पष्ट तथा पुष्ट थे । भारतीय राष्ट्रीय जीवन में उन्होंने इस असहयोग का सफल प्रयोग किया था ।

असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन का सैद्धान्तिक पक्ष :

गांधीजी का सत्याग्रह आन्दोलन लोकमान्य के राष्ट्रीय आन्दोलन की भांति ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था । सत्य तथा अहिंसा उसके दो सबल पक्ष थे ।

सत्यः—असहयोग आन्दोलन का प्रमुख 'सत्य' था । अहिंसात्मक साधन द्वारा वे इस 'सत्य' को प्राप्त करना चाहते थे । उनके मत में 'सत्य' ही 'ब्रह्म था ।[१] उन्होंने सत्य की व्याख्या करते हुए लिखा था—'सत्य अर्थात् परमेश्वर—यह सत्य का पर अथवा उच्च अर्थ है । अपर अथवा साधारण अर्थ में सत्य के मानी हैं सत्य-आग्रह, सत्य-विचार, सत्यवाणी और सत्य कर्म' ।[२] मनुष्य जीवन का परम ध्येय इसी सत्य अथवा ब्रह्म की प्राप्ति है ।[३] यह सत्य अथवा ब्रह्म जातिवर्ग तथा भेदाभेद से परे है । सत्य का शोधक सत्य की अविश्रांत खोज करता है । संयम, व्रत, उपासना आदि विविध विधान हैं जिनके द्वारा चित्त की शुद्धि की जाती है । इस प्रकार, सत्य के पूर्ण ज्ञान द्वारा मनुष्य अज्ञान तथा अहं को विनष्ट कर पूर्ण मानव में परिणत हो जाता है । आत्मा परमात्मा अभिन्न हैं ।[४]

---

१. Gopinath Dhawan—The political philosophy of Mahatma Gandhi. P. 45.

२—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० १५

३—There is an indefinite mysterious power that pervades every-thing. I feel it, though I do not see it. It is this unseen power that makes itself felt and yet defies proof, because it is so unlike all that I perceive through my senses It transcends reason. But it is possible to reason and the existence of God to a limited extent.'
Nirmal kumar Bose—Selections from Mahatma Gandhi. P. 3.

४—Gopinath Dbawan—The Political philosophy of Mahatma Gandhi. P. 49.

'धर्म तो उच्च और उज्ज्वल प्रकाश-स्तम्भ का नाम है जो मनुष्य के अन्तर के चारों ओर व्याप्त अन्धकार को छिन्न-भिन्न करके उस पथ को आलोकित करता है जिस पर अग्रसर होकर वह अपने स्वरूप का दर्शन कर लेता है।'[१] गांधीजी ने नियंता एवं नियम्य के बीच सच्चे सम्बन्ध का उद्घाटन किया था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि उसी सत्य से समस्त प्राणिमात्र अनुप्राणित हैं। सत्य के अभाव में जीवन अपूर्ण है।[२] उन्होंने आत्मज्ञान के लिए आत्मशुद्धि को आवश्यक माना था एवं आत्मशुद्धि के लिए नैतिकतापूर्ण आचरण को।[३] गांधीजी के नैतिक सिद्धान्त हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य।[४] सत्य का आग्रही अर्थात् सत्याग्रही सत्य की प्राप्ति कर सकता है। गांधी जी का असहयोगदर्शन आस्तिकदर्शन है। ब्रह्म में पूर्ण आस्था और विश्वास इसके आवश्यक अंग हैं। तर्क एवं बुद्धि का स्थान गौण है।[५]

गांधी जी ने सत्य का अनुभव किया था। अपने जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन में इसका प्रयोग किया था—'जो कुछ मुझे आज ऐसा धर्म, न्याय और योग्य प्रतीत होता है कि उसे करते, स्वीकार करते या प्रकट करते मुझे शर्म नहीं लगती, जो कुछ मुझे करना चाहिये और जिसे न करूँ तो इज्जत के साथ जी ही न सकूँ वह मेरे लिये सत्य है। वही मेरे लिये परमेश्वर का सगुण रूप है।[६]

गांधीजी के मतानुसार सत्य की अनुभूति का अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति है। उनकी इस सत्यानुभुति की सर्वप्रमुख व्यावहारिक विशेषता थी कि अपने आस-पास प्रवर्तित असत्य, अन्याय या अधर्म के प्रति उदासीन भाव रखने वाला व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता है :—

'अपने आस-पास प्रवर्तित असत्य, अन्याय या अधर्म के प्रति उदासीन भावना

१—कमलापति त्रिपाठी। बापू और भारत। पृ० ८

२—Gopinath Dhawan—The political philosophy of Mahatma Gandhi. P. 43.

३—'To me God is truth and love; God is ethics and morality; God is fearlessness, God is the source of Light and yet He is above and beyond all these.'
M K. Gandhi—Truth is God.—P. 10.

४. 'This ethical outlook is the backbone of Gandhiji's political philosophy even as his ethics has for its foundation in metaphysical principles.'
Gopinath Dhawan—The political philsophy of Mahatma Gandhi P. 61.

५. 'You can realize the wider consciousness, unless you subordinate complete reason and intellect, and the body.'
Nirmal Kumar Bose—Selections from Gandhi. P. 7.

६—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० १४

रखने वाला व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता। सत्य के शोधक को इस असत्य, अन्याय, और अधर्म के उच्छेद के लिए तीव्र पुरुषार्थ करना होता है और जब तक इसका सत्यादि साधनों से उच्छेद करने में वह सफल नहीं होता तब तक अपनी सत्य की साधना को अपूर्ण ही समझता है। अतः असत्य, अन्याय, और अधर्म का प्रतिकार भी सत्याग्रह का आवश्यक अंग है।"[१]

अहिंसा— गांधी जी के अनुसार सत्य साध्य और अहिंसा साधन है, लेकिन असहयोग दर्शन में साध्य तथा साधन में अन्तर नहीं था।[१] अतः उनका ईश्वर सत्य तथा अहिंसा से पृथक् नहीं था। अहिंसा आचरण का स्थूल नियम मात्र नहीं है, बल्कि मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति में कहीं द्वेष की गंध तक न हो वह अहिंसा है।

ऐसी अहिंसा सत्य के बनाबर ही व्यापक है। इस अहिंसा की सिद्धि हुए बिना सत्य की सिद्धि होना अशक्य है। इसलिये सत्य को भिन्न रीति से देखें तो वह अहिंसा की पराकष्ठा ही है। पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसा में भेद नहीं है; फिर भी समझाने के सुभीते के लिए सत्य साध्य और अहिंसा साधन मान ली गई है।"[२]

गांधीजी अहिंसा को मानव का परम धर्म मानते थे।

अहिंसा परमो धर्मः अहिंसा परमं तपः
अहिंसा परमं सत्यम्, ततो धर्मः प्रवर्तते ॥

अहिंसा का मूल धर्म 'प्रेम' है। प्राणिमात्र से प्रेम वह आत्मिक शक्ति या बल है, जिसके लिए कठिन अभ्यास की आवश्यकता होती है। गांधीजी की अहिंसा दुर्बलों, असहायों या अशक्तों का अस्त्र नहीं थी। सिद्धान्त रूप में हिंसा का परित्याग किया गया था। सहानुभूति, धैर्य तथा कष्ट-सहन द्वारा प्रतिहिंसक के मन पर विजय पाना ही इस अहिंसा का लक्ष्य था। सेवा, त्याग और बलिदान, अहिंसा के मूलमंत्र थे। प्रेम इसका प्राण था।[३] गांधी जी की अहिंसा का सिद्धान्त भावात्मक है, अभावात्मक नहीं, सृजनात्मक है, ध्वंसात्मक नहीं। अनुभव तथा विश्वास द्वारा इस अहिंसा का प्रयोग जीवन में किया जा सकता है। मनुष्य प्रेम तथा अहिंसा द्वारा संचालित

१—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी दोहन पृ० १७ : खंड १—धर्म

१. 'Means and end are convertible terms in my philosophy of life.'
Nirmal Kumar Bose—Selections from Gandhi. P. 13.

२—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० १६ : खण्ड १—धर्म

३. 'Though there is enough repulsion in natures she lives by attraction. Mutual love enables Nature to persist. Man does not live by destruction. Self love complete regard for others.'
M. K. Gandhi—Truth is God. P. 17.

कार्य व्यापार द्वारा जीवन के चरम लक्ष्य सत्य अथवा मुक्ति की प्राप्ति कर सकता है।[1]

गांधीजी की अहिंसा देश में पुरातन काल से चली आ रही 'अहिंसा परमो-धर्मः' के ही अन्तर्गत रखी जायेगी। अहिंसा का उपदेश तो प्रायः सभी देशों में दिया जाता रहा है, किन्तु भारत की यह प्रमुख विशेषता है कि यहां अहिंसा पर विशेष बल दिया गया है। विश्व को भारत की महान् देन 'अहिंसा' है भारत के प्रायः सभी धर्म अहिंसक रहे हैं। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का भी यही उद्देश्य था। ब्राह्मण का धर्म था प्रेम, इसी कारण चतुर्वर्ण में ब्राह्मणत्व को श्रेष्ठता प्रदान की गई थी। महा-भारत तथा रामायण में युद्ध के वर्णन हैं किन्तु निष्कर्ष रूप में अहिंसा को ही श्रेष्ठ माना गया है। बौद्ध तथा जैन धर्म तो पूर्णतया अहिंसक हैं। गौतम बुद्ध ने घृणा के स्थान पर प्रेम का प्रचार किया था। अशोक जैसे महान् सम्राट् ने अहिंसक बौद्ध धर्म का न केवल भारत में वरन् अन्य देशों में भी प्रचार एवं प्रसार कर भारतीय इतिहास में एक विशेष स्थान बना लिया है। गांधीजी की अहिंसा भी उन्हीं की परम्परा में आती है।

गांधीजी ने अहिंसा में तीव्र कार्यसाधक शक्ति का अनुभव किया था। उनके मतानुसार 'अहिंसा केवल निवृत्ति रूप कर्म या अक्रिया नहीं है, बल्कि बलवान प्रवृत्ति या प्रक्रिया है।'[2] वे इसी कार्यसाधक शक्ति द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता या स्वराज्य की प्राप्ति अपना तथा राष्ट्रीय जीवन का परम लक्ष्य मानते थे। राष्ट्रीय एकता के लिये वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग करना चाहते थे। उनके विश्वबंधुत्व या मानवतावाद का मूलाधार अहिंसा धर्म ही था।

गाँधी जी की अहिंसात्मक नीति का पालन राष्ट्रीय नेताओं और साधारण जनता के साथ भारत की वीर जाति अकालियों ने भी 'गुरु-का-बाग' की घटना में किया था। पुलिस द्वारा पीटे जाने पर भी उन्होंने हाथ नहीं उठाया था। अकाली दल के आत्म-नियंत्रण की प्रशंसा सरकार ने भी मुक्तकंठ से की थी।[3] निःसन्देह अहिंसा में महान शक्ति अन्तर्भूत थी।

असहयोग का व्यावहारिक पक्ष

असहयोग का रचनात्मक अथवा व्यावहारिक रूप भी अत्यधिक सबल था। गांधीजी देश-जीवन में आत्मशक्ति तथा नैतिक श्रेष्ठता उत्पन्न कर, देशवासियों को धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में उन्नत करना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि सत्यानुभूति द्वारा देशवासियों को दासता के प्रत्येक रूप से मुक्ति मिल

---

१. 'Gandhiji's Truth and non violence or 'Ahimsa' were not abstract ideals or cloistered virtues. They were to be realized in life.' Pyarelal—A Nation Builder At Work. P. 7.

२—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन। पृ० १७

३—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २०६

सकती है। उनके रचनात्मक कार्यक्रम के केन्द्र में यही आत्मशक्ति कार्य करती लक्षित होती है।

गाँधी जी की धार्मिक विचार-धारा

गांधी जी की धार्मिक विचारधारा केवल सिद्धान्त मात्र नहीं थी, वह जीवन-दर्शन तथा जीवन-मार्ग के रूप में विकसित हुई थी। उन्हें धर्म का सक्रिय रूप इष्ट था अर्थात् वे धर्म को जीवन की गति बना देना चाहते थे। गांधी जी का सत्य प्राणिमात्र को अनुप्राणित कर एक निश्चित दिशा का दिग्दर्शन कराने वाला भी था। उनके अनुसार धर्म वह अस्त्र था, जिसके द्वारा प्राणिमात्र को एकता के सूत्र में आबद्ध किया जा सकता था।

गांधी जी जन्म से हिन्दू थे, उनके विचार, कार्य और वचन भी हिन्दूधर्म में रंगे हुए थे। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है उन्हें स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द एवं लोकमान्य तिलक की विचार परम्परा की ही एक कड़ी कहना चाहिये क्योंकि उन्हें भी अपने पुरातन धर्मग्रन्थों से जीवन के लिए प्रेरणा मिली थी। इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी धार्मिक विचारधारा संकीर्ण थी। राजा राममोहनराय की भांति उनका धर्म अति विशाल एवं उदार था, जिसमें सभी को आत्माभिव्यक्ति तथा आत्म-विकास का पूर्ण अधिकार था।[1] गांधी जी के हिन्दू धर्म के विशेष तत्व हैं—(१) ईश्वर में विश्वास, (२) जीवन की एकता या अद्वैतता में विश्वास, (३) अवतारवाद में विश्वास (४) आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास, (५) आध्यात्मिक मूल्यों, विशेषकर सत्य एवं प्रेम की श्रेष्ठता में विश्वास, (६) आत्म-निग्रह में विश्वास, (७) वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास, (८) गोरक्षा में विश्वास, (९) वेद, उपनिषद् पुराण में विश्वास, (१०) अपनी चेतना की आवाज़ में विश्वास। गाँधी जी मूर्तिपूजा के विरोधी नहीं थे। उनकी धार्मिक विचारधारा नैतिकता से पूर्ण तथा परम्परागत थी।[२] उन्होंने 'गीता' और तुलसी कृत 'रामचरित मानस'—हिन्दू धर्म के दो महान् धार्मिक ग्रन्थों को विशेष महत्व दिया था। यही कारण था कि गांधी जी की धार्मिक भावना ने धर्मप्राण

1 Dr. Buch – The Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 40.

२—गांधीजी ने लिखा था :—

'A man's own religion, a man's own past, a man's own culture ought to be a great extent sacred to him. They have first claim upon his attention and regard, because they have deep roots in the soil, in the consciousness of his people. It is folly, it is madness to expect the country to shake off its past as so much bad legacy. The past can not be absolutely isolated from its present or future. It is not only not possible, it is not desirable to do so. India today suffers largely from the disintegration of her ancient culture and the consequent weakening of its hold over the Indian mind.

Dr. Buch – The Rise and Growth of Indian Nationalism, P. 42,

हिन्दुओं की आध्यात्मिक चेतना का स्पर्श कर उन्हें गांधी जी का सहयोगी बना दिया था। सांस्कृतिक दासता अथवा भारतीय मस्तिष्क में गहरे होते हुए पश्चिमी सांस्कृतिक प्रभाव को मिटाने के लिए, हिन्दुत्व प्रेम ही एकमात्र साधन था। अतः गांधी जी ने हिन्दुओं का ध्यान अतीत-कालीन भारती सांस्कृतिक चेतना से आवृत्त धर्म की ओर आकृष्ट कर उसके प्रति विशेष आस्था उत्पन्न की। जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष वा युक्ति मानते थे। यह मोक्ष की धारणा व्यक्तिवादी होते हुए भी कर्ममार्ग द्वारा नियंत्रित थी। उनके मतानुसार सत्कार्य ही आध्यात्मिकता या नैतिकता की कसौटी थे। सत्कर्म मानव-सेवा के उच्च आदर्श से परिपूर्ण था।

गांधी जी की विचारधारा में हिन्दुत्व का पक्षपातपूर्ण अनुरोध नहीं था। वह ऐकान्तिकन होकर लोकसंग्रह की भावना से पूर्ण थी। इसी कारण वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। गांधी जी अन्य धर्मों का उतना ही सम्मान करते थे जितना हिन्दू धर्म का। उनके अनुसार विविध धर्म सत्यप्राप्ति के विविध मार्ग थे।[1] वे सिद्धान्त रूप में एक धर्म तथा एक ईश्वर को सम्भव मानते थे लेकिन व्यवहार-रूप में व्यक्ति का अपनी पृथक् इकाई में एक भिन्न धर्म था। वस्तुतः गांधीजी ने समस्त धर्मों के मूल तत्व अथवा समान तत्व की खोजकर सहृयता तथा सहिष्णुता के आधार पर मानवता की भावना की पुष्टि की थी। वे किसी भी धर्म को पूर्ण नहीं मानते थे। उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया था कि गीता के सदृश बाइबिल और कुरान भी आध्यात्मिकता से पूर्ण ग्रन्थ हैं।[2] उनकी दृष्टि में कृष्ण, ईसा और मुहम्मद साहब समान रूप से अपना आध्यात्मिक महत्व रखते थे। अपने धर्म के वास्तविक रूप से परिचित व्यक्ति अन्य धर्मों का सम्मान कर उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है, ऐसा उनका दृढ़ विश्वास या। वे अपने गम्भीर एवं गहन अध्ययन तथा अनुभव के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे :—

(१) सभी धर्म सत्य हैं।

(२) सभी धर्मों में कुछ न्यूनताएं या भूलें हैं।

---

1. 'Religions are different roads converging to the same point what does it matter that we take different roads, there are as many religious as there are individuals.'
   Shri M. K. Gandhi—My Religion. P. 19.

2. 'The scriptures of a nation represent the best religious national traditions. All great religions are more or less true. No religion is perfect. God has inspired the Bibles of the faiths. There is divine inspiration in not only the Gita, but also in Christ. No religion has the monopoly of truth. But each religion is the best for the people who have inherited it or evolved it. There is only one God, one truth, one Law, and one reason : but the divine truth appears different to different people.'
   Dr. Buch—The Rise & Growth of Indian Nationalism. P. 42.

(३) सभी धर्म समान रूप से प्रिय हैं जितना हिन्दू धर्म ।

इस प्रकार गांधीजी ने सभी धर्मों का मूल्य तत्त्व प्रेम माना था और लक्ष्य शान्ति ।[1] प्रेम अहिंसात्मक होता है, जिसमें त्याग अथवा बलिदान की भावना प्रमुख होती है । सहनशक्ति जीवन का आन्तरिक भाव है । अतः त्याग, बलिदान तथा सहनशक्ति द्वारा आनन्दमय जीवन के रहस्य का उद्घाटन होता है । धर्म के इसी उदात्त एवं कल्याणकारी रूप को ग्रहण कर गांधीजी ने धार्मिक विद्वेष के विष को मारने के लिए हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त अपनाया था ।

'फूट डालो और राज्य करो ।' विदेशी साम्राज्यवाद का मूल अस्त्र था । धार्मिक विद्वेषाग्नि को प्रज्ज्वलित करने के सभी साधनों का प्रयोग किया जा रहा था । ऐसी परिस्थितियों में गांधीजी ने धर्मप्रधान देश की विविध धर्मावलम्बी जनता की धार्मिक अन्तश्चेतना को नियन्त्रित तथा संयमित रखने के लिए और बाह्य विरोध मिटाने के लिए, सत्य तथा धर्म के इस रूप का अन्वेषण किया था । उनकी धार्मिक भावना अनुभूति पर आधारित थी, तर्क अथवा बुद्धि पर नहीं । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है–खिलाफत आन्दोलन का समर्थन तथा सहयोग आन्दोलन में मुसलमानों का सहयोग । धर्म सहिष्णुता होने के कारण ही वे हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाइयों के समान रूप से प्रिय थे । उनकी धार्मिक नीति राष्ट्रीय एकता के अनुकूल थी । यह हमारे देश का अतीव दुर्भाग्य था कि गांधी जी अधिक काल तक हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने में समर्थ न हो सके ।

गाँधीजी की धार्मिक नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष था–अस्पृश्यता निवारण । ऊंच-नीच, छुआ-छूत की भावना को मिटा कर वे एक आदर्श समाज और आदर्श राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे । वे अस्पृश्यता को धर्मसम्मत नहीं मानते थे ।[2] गांधीजी को वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था मान्य थी, किन्तु उसका रूढ़ अथवा विकृत रूप मान्य नहीं था । उनकी दृष्टि में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जीवन के चार महत्वपूर्ण और आवश्यक अंग थे । वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था को वे समता का धर्म मानते थे ।[3] उनका विश्वास था कि हमें अपनी उच्चतम शक्तियों के विकास के लिए निकृष्टतम

---

1. 'I do regard Islam to be religion of peace in the sense as christianity, Budhism and Hinduism are. No doubt there are differences in degree, but the object of these religions is peace.'
   M.K. Gandhi—My Religion. P. 15.

२. 'Untouchability is not a sanction of religion it is a device of satan. The devil has always quoted scriptures. but scriptures can not trascend reason and truth.
   M. K. Gandhi—My Religion. P. 15.

३—'इस प्रकार वर्ण-धर्म समता का धर्म है; केवल साम्यवाद नहीं । जगत में विषमता फैली हुई है उसकी जगह समता का राज्य हो जाये । सब धंधे प्रतिष्ठा और मूल्य में समान माने जायें ।'

—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० ३८

प्रवृत्तियों का निग्रह करना चाहिए, जिससे समाज का समुचित विकास हो सके । वे मनुष्य का मनुष्य पर शासन अथवा शूद्रत्व पर ब्राह्मणत्व का शासन मानवहित के लिए बाधक मानते थे ।

इस प्रकार गांधीजी ने जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान सत्य की अनुभूति द्वारा करना चाहा था । वस्तुतः वे सत्य को मनुष्य के दैनिक जीवन की वस्तु बना देना चाहते थे ।[1] उनका 'सत्य' धर्म, जाति, वर्ग से परे था । राष्ट्रीय जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी पक्षों को वे नैतिकता तथा सत्यानुभूति द्वारा नियंत्रित रखना चाहते थे । गांधीजी के धर्म के महत्वपूर्ण साधन हैं—(१) अहिंसा (२) अस्वाद, (३) ब्रह्मचर्य, (४) अस्तेय, (५) अपरिग्रह, (६) शरीरश्रम, (७) स्वदेशी, (८) नम्रता, (९) व्रतप्रतिज्ञा, (१०) उपासना-प्रार्थना आदि । उनका धार्मिक आदर्श ईशोपनिषद् का यह मन्त्र था—

ईशावास्यमिदं सर्वं । यत्किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः । माः गृधः कस्यस्विद् धनम् ।।

भारतीय जीवन के आर्थिक क्षेत्र में असहयोग :

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए गांधीजी ने भारत की आर्थिक नीति को सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित रूप प्रदान करना आवश्यक समझा था । उनकी आर्थिक नीति मानव जीवन के परम्परागत नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित थी । वह भी उनकी आध्यात्मिकता द्वारा नियंत्रित थी । उन्होंने भारतीय संस्कृति की आत्मा के सत्य स्वरूप का दिग्दर्शन कर लिया था । इसी कारण वे इस तथ्य से भी परिचित हो गये थे कि पश्चिमी राष्ट्रों की भांति भारत धन का आराधक नहीं है । भारत का लक्ष्य अमेरिका की भाँति धनप्राप्ति नहीं है, अपितु आध्यात्मिक श्रेष्ठता की प्राप्ति है ।[2] अतीत-काल से भारतवासी आध्यात्मिक तथा नैतिक उत्कर्ष की प्राप्ति में इच्छुक रहे हैं, इसी कारण गांधीजी भी सत्य के अनुसंधान में समस्त आर्थिक समस्याओं का हल ढूंढते थे । उनका सत्य मानव प्रेम या सेवा का ही पर्यायवाची था । यही कारण था कि गाँधीजी ने हस्तकला उद्योग के सम्मुख मशीन या लौह यन्त्रों का विरोध किया था इस विरोध का कारण यह था कि वे मानव-श्रमशक्ति का मशीनों के उपयोग द्वारा अपव्यय नहीं चाहते थे । उनकी दृष्टि में बड़ी मशीनें या कल यन्त्र ही समाज के लिए अहितकर पूंजीवादी व्यवस्था का मूल कारग हैं, जिनसे वर्गभेद जैसी

---

1. 'The realisation of God here and now is the supreme ambition of Gandhi's life All the problems of life can be solved, all earthly desires disappear only when one sees God face to face. The process is not intellectual merely. It is the vision of God in our whole soul, in our daily lives'
   Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 49.
2. Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism, P. 200.

अस्वास्थ्यकर विचारधारा का जन्म होता है।[1] इसके अतिरिक्त गांधीजी विदेशी साम्राज्यवाद की स्वार्थपूर्ण वाणिज्य वृत्ति से उत्पन्न भारतीय आर्थिक पंगुता के रोग का उपचार स्वदेशी, कला कौशल, हस्त-उद्योग तथा कुटीर-उद्योग द्वारा करना चाहते थे।

गांधीजी ने भारत के आर्थिक इतिहास का अध्ययन कर, उसके प्रकाश में तत्कालीन आर्थिक दुरावस्था के कारणों को खोजा था। उनके मत में आर्थिक विपन्नता का कारण भारतीयों की अकर्मण्यता या उद्योगहीनता में नहीं था । बल्कि विदेशी सत्तावाद की स्वार्थपूर्ण व्यापार नीति में था। गांधीजी के पूर्व स्वदेशी आन्दोलन अपनी पूर्ण गति से चल चुका था। उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी के प्रचार का कार्य क्रियान्वित रक्खा। उन्होंने स्वदेशी के मूल स्रोत ग्राम उद्योग के विकास की भी पूरी योजना बनाई। इस योजना द्वारा देश की बेकारी की समस्या तथा गरीबी की समस्या भी हल हो जाती थी। पंडित कृष्णदत पालीवाल ने उनकी आर्थिक नीति के विषय में लिखा है—'परन्तु इससे कहीं अधिक युगान्तरकारी और सन्निहित सम्भावनाओं से भरा हुआ लाभ वह है जो महात्मा गान्धी ने चरखा-खादी तथा ग्रामोद्योगों, घरेलू उद्योग-धन्धों के रूप में हमें दिया। उन्होंने हमें यह बता दिया कि भारतीय अर्थशास्त्र पाश्चात्य शहरी अर्थशास्त्र नहीं—भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र है जो धर्म द्वारा अर्थ उपार्जन करके ही अपनी कामनाओं की सिद्धि का प्रतिपादन करता है। वह न केवल भारत की गरीबी की समस्या को, हमारी आर्थिक समस्या को, जीवन को समस्त आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा कर सकने वाले प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय विभाज्य की समस्या को ही सफलतापूर्वक हल करता है बल्कि शोषण, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, फासिस्टवाद आदि की उन समस्त विभीषिकाओं से भी हमारी जान बचाता है जो आज तक पाश्चात्यों को पतन और विनाश की ओर लिये जा रही हैं। उनमें मानवी सांस्कृतिक नौर आध्यात्मिक मूल्यों के लिए समुचित स्थान है वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों का सुन्दरतम समुच्चय है। वह विश्व शांति, विश्व संघ, मानव-स्वाधीनता और लोकतन्त्र तथा सर्वोदय का सुन्दर साधन है।'[2]

इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि गांधीजी ने कल मशीनों तथा बड़ी बड़ी मिलों का विरोध इसलिए किया था कि वे नागरिक जीवन की अपेक्षा ग्रामों की ओर उन्मुख थे और अपने युग की विपरीत दिशा में जा रहे थे। उनके इस विरोध का कारण था कि हमारा देश गांवों का देश है, जिनकी आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए यह आवश्यक

---

1. 'Gandhi's reasoning is that if there had been no machines, no use of steam and electricity, no large—scale production, there would not have been the whole-sale exploitation of labour by capital, of poorer countries like India by capitalist nations of the west, no unhealthy social life which disfigures the big cities of Europe and America.'
Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 209.

१—पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल : हमारा स्वाधीनता संग्राम पृ० ५

था कि गांवों में बसने वाली भारतीय जनता में, छोटे-छोटे उद्योग धंधों के विकास द्वारा एक नई आर्थिक चेतना को जन्म दिया जाये।[१] हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि अंग्रेजी साम्राज्य के पूर्व हमारे गांव स्वावलम्बी तथा सम्पन्न थे। गांधी जी की आर्थिक नीति भारतीय जीवन की समस्त आर्थिक समस्याओं को अपने में आवृत्त किये थी।

गांधीजी ने स्वदेशी का प्रचार एवं प्रसार किया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रबल आन्दोलन चलाया। स्थान-स्थान पर विदेशी कपड़ों की होलियां जलीं। विदेशी माल की दूकानों पर स्वयं सेवकों ने धरना दिया। असहयोग आन्दोलन को क्रियान्वित रूप प्रदान करने के लिए उन्होंने व्यापारियों से अनुरोध किया था कि वे विदेशी व्यापारिक सम्बन्धों को छोड़ कर हाथ कताई बुनाई को प्रोत्साहन दें।[२] इस प्रकार देश की तत्कालीन अर्थ व्यवस्था को सुधारने तथा राष्ट्रीय आर्थिक संतुलन को बनाये रखने के लिए गांधीजी ने इस अन्यतम मार्ग को प्रश्रय दिया। यह स्वदेशी का प्रस्ताव तथा विदेशी का बहिष्कार केवल क्षणिक आवेश का परिणाम नहीं था। इसे नियमित रूप से सुगमतापूर्वक चलाया जा रहा था।[३] गांधीजी स्वदेशी को भारतवासियों का स्वधर्म मानते थे जिसका समर्थन गीता द्वारा होता है।[४] इसी कारण गांधीजी ने स्वदेशी लीग की स्थापना की। उनकी राष्ट्रीयता के लिए चर्खा चलाना एवं नियमित रूप से सूत कातना आवश्यक था। असहयोग आंदोलन के काल में उन्होंने बीस लाख घरों में चर्खा चलवाने का प्रयत्न किया था।[५] चर्खा उनकी दृष्टि में नैतिक अस्त्र था जिसके प्रयोग द्वारा वे सच्चा स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे।[६]

ग्रामीण समाज की कलात्मक प्रतिभा के पुनर्जीवन में उनकी हरिजन-समस्या भी हल होती थी। यही उनकी स्वतन्त्रता का मूलमंत्र था, जिससे भारतीय स्वतन्त्रता चिरस्थायी हो सकती थी।

---

१. 'I have no doubt in my mind that we add to the national wealth if we help the small scale industries, I have no doubt also that true swadeshi consists in encouraging and revising these home industries. It also provides an outlet for the creative faculties and resourcefulness of the people. It can also usefully employ hundreds of youths in the country who are in need of employment'

M. K. Gandhi—Centpercent Swadeshi. P. 5.

२—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास पृ० १३२

३—वही. पृ० १७५

४. 'What the Geeta says with regard to Swadharma equally applies to Swadeshi for Swadeshi is Swadharma applied to one's immediate invironment.'

M.K Gandhi—Centpercent Swadeshi. P. 7.

५—पं० शंकरलाल तिवारी बेढव : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० ८३

६. 'The spinning-wheel means for Gandhi, above all a moral weapon.

Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 217.

राजनितिक पक्ष में सहयोग :

गांधी जी जीवन के एकत्व में विश्वास रखते थे। उनके विचार में राजनीति, अर्थशास्त्र, कला, विज्ञान, धर्म आदि जीवन के विभिन्न विभाग आत्मा की विविधता की अभिव्यक्ति के साधन थे। वे राजनीति को जीवन के अन्य विभागों से पृथक् रखने में विश्वास नहीं करते थे। उनकी राजनीनिक विचारधारा भी धर्म द्वारा नियंत्रित थी।[1] राजनीति को वे धर्म मानते थे क्योंकि उसके द्वारा स्वतंत्रता तथा न्याय की पूर्ति होती है। गांधी जी की राजनीतिक विचारधारा उदारवादी राष्ट्रीय नेताओं और उग्र राष्ट्रीय दल से कुछ भिन्न थी। सत्य, अन्याय तथा अहिंसा में विश्वास रखने के कारण वे राजनीतिक क्षेत्र में भी धर्म की शक्ति को सर्वोपरि मानते थे। गांधी जी मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण बना देना चाहते थे।[2] इस आध्यात्मिकता में कर्म की प्रधानता थी। उनकी राजनीति ही नहीं सम्पूर्ण जीवन-दर्शन कर्म की श्रेष्ठता पर आधारित था। इस कर्म का अर्थ था शाश्वत आनन्द अथवा मोक्ष की प्राप्ति। इसी कारण वे देशभक्ति को शाश्वत आनन्द अथवा मोक्ष की एक विशेष अवस्था या स्थिति मानते थे।[3] सत्य की प्राप्ति में बाधक देशभक्ति उन्हें ग्राह्य नहीं थी। इसलिए गांधी जी ने सत्य तथा अहिंसा पर आधारित असहयोग आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति का आह्वान किया था।[4] वे साधन और साध्य को एक सिक्के के दो पक्षों के समान अभिन्न एवं एक दूसरे का पूरक मानते थे। इसी सत्य तथा अहिंसा के अमूल्य आदर्श के कारण गांधी जी की देशभक्ति अन्तर्राष्ट्रीयता की परिधि तक विस्तृत थी। उनका यह स्पष्ट मत था कि एक राष्ट्र तभी निःशंक रूप से अपनी उन्नति तथा समृद्धि में समर्थ होता है, जब वह अन्य राष्ट्रों का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर लेता है। यह सहयोग केवल सत्य, प्रेम तथा अहिंसा द्वारा

1. 'Gandhi does not believe in secularisation of politics. Polictis will inevitably degenerate into a scramble for loave and fishes, it is divorced from higher idealism The libral tried to rationalise politics. The militant Nationalist tried to emotionalise politics : Gandhi tried to spiritualise it. The driving force in Gandhi's life is the religious force This religious force does not mean the force of Hindu dogma or any dogma ; it is nothing but his faith in the ideal of truth and justice.
Dr. Buch—Rise & Growth of Indian Nationalism. P. 72.
2. Ibid, P. 73.
३. Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 75.
४. 'This is the non-violent approach to the question of freedom, democracy and equality which Gandhiji introduced.
Pyarelal—A Nation Builder At Work. P. 4.

प्राप्त किया जा सकता है।[1]

गांधी जी राजनीतिक आन्दोलन द्वारा भारत में सच्चे अर्थों में प्रजातन्त्रात्मक स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे, जिसमें राजनीतिक शक्ति राष्ट्रीय जीवन को राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व द्वारा नियमित रखे। अहिंसा उनके आंदोलन का मेरुदण्ड थी क्योंकि अहिंसा द्वारा स्थापित प्रजातन्त्रवाद में ही राष्ट्र की प्रत्येक इकाई को सच्ची स्वतन्त्रता का आनन्द लाभ हो सकता है। उन्होंने राष्ट्र की उस आदर्श स्थिति की कल्पना की थी जिसमें राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त होकर स्वनियंत्रित हो जाता है, उसे किसी संस्था की आवश्यकता नहीं रहती।[2] सबका नैतिक आचरण राष्ट्रीय विकास के हित में होता है और प्रत्येक स्वतंत्र इकाई अपने संयत आचरण द्वारा राष्ट्रीय व्यवस्था की आरक्षा में संलग्न रहती है। गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन इसी स्वप्न को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील रहा।

राजनीतिक क्षेत्र में, गांधी जी, राष्ट्रीय हित के सम्मुख ब्राह्मण-अब्राह्मण हिन्दू-मुस्लिम, ऊँच-नीच, वर्ण-भेद आदि विषयों को हेय समझते थे। वे हिन्दू मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों को भारतीय सांस्कृतिक एकता के विविध प्रतीक मानते थे। उन्होंने भारतवासियों की आपसी फूट का कारण विदेशी साम्राज्यवाद की राजनीति में खोजा था। इसी कारण वे साम्प्रदायिकता के आधार पर निर्वाचन-प्रणाली के विरुद्ध थे। साम्प्रदायिक एकता उनकी राजनीतिक विचार-धारा का महत्वपूर्ण अंग था।

अतः राजनीतिक क्षेत्र में सर्वप्रथम गांधी जी ने स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्रात्मकता तथा समानता की स्थापना के लिये सत्य एवं अहिंसा पर विशेष बल दिया।[3] जनता को धर्म-संयुक्त राजनीति में दीक्षित कर विदेशी दासता के विरुद्ध जन-आन्दोलन किया। इस प्रकार गांधी जी ने देश के राजनीतिक क्षेत्र में एक नवीन आत्मशक्ति एवं जागृति का प्रसार किया जिससे सामान्य जनता में भी वह साहस भर गया कि वह अधर्म, अन्याय और अत्याचार का विरोध करने में समर्थ हो सकी।[4]

---

१. 'My religion and my patriotism derived from my religion embraced all life. I want to realize brotherhood or identity not merely with the beings called human, but I want to realize identity with all life, even with such things as crowl upon earth.'
M. K. Gandhi—My Religion. P. 132.

२. 'Political power means capacity to regulate national life through national representation. If national life becomes so perfect as to become self regulated no representation becomes necessary.
M. K. Gandhi—My Religion. P. 130.

3. 'This is non-vio ent approach to the question of freedom, democracy and equality which Gandhiji introduced.'
Pyare Lal—A Nation Builder at Work. P. 4.

४. ibid, P. 29

असहयोग का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष

गांधी जी जनता की मनोवृत्ति से भली भांति परिचित थे, वे जानते थे कि समाज के मस्तिष्क पर अपने अतीत का रहस्यपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः इन्होंने भारतीय मस्तिष्क के परिष्करण तथा सांस्कृतिक आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए भारत के इतिहास तथा अतीत की गौरवपूर्णआत्मा से प्रेरणा ग्रहण की।[1] देश में धर्म के आधार पर संगठित हिन्दू मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी, सिक्ख आदि सभी समाजों के परस्पर सहयोग एवं सहिष्णुता के वे आकांक्षी थे। विविध धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय समन्वित भारतीय समाज की मनोवृत्ति में परिवर्तन कर, सामाजिक अधर्म, अन्याय, अत्याचार और रूढ़ियों को मिटाना उनके सहयोग आन्दोलन का लक्ष्य था। वे मानव-प्रेम तथा मानव-सेवा को सामाजिक प्राणी का 'स्वधर्म' मानते थे। उनकी दृष्टि में धार्मिक विद्वेष महान् पाप था। साम्प्रदायिक एकता उनके रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख अंग और असहयोगी का कर्तव्य था।

राजनीतिक दासता के साथ गांधी जी सामाजिक दुर्बलताओं को भी राष्ट्र की प्रगति में बाधक मानते थे।[2] उनके मत में भेदभावमय बुद्धि सामाजिक मस्तिष्क का सबसे बड़ा विकार था। इसी कारण वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था, जाति संगठन अर्थात् प्राचीन सामाजिक व्यवस्था, में पूरी आस्था होने पर भी गांधी जी अस्पृश्यता को हिन्दू समाज का कलंक मानते थे। उनके अनुसार वर्णाश्रम धर्म समता का धर्म था, सत्य रूप का पालन न होने के कारण भारत की सामाजिक अवस्था अति दयनीय हो गई थी।[3] स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द की भांति उनकी समाज सम्बन्धी विचारधारा पूर्णतया वैदिक थी। वे भारतीय समाज के चतुवर्णों को मानव जीवन का आवश्यक कर्म मानते थे। गांधी जी अछूत वर्ग को समाज के अन्य वर्णों के समान पद पर प्रतिष्ठित कर सामाजिक साम्य स्थापित करने के पक्ष में थे। गाँधी जी के शब्दों में अछूतों की स्थिति सुधारने के लिए यह जरूरी नहीं है कि उनसे उनके परम्परागत पेशे छुड़वायें अथवा उन पेशों के प्रति उनके मन में अरुचि पैदा की जाय। ऐसा नतीजा पैदा करने के लिए की गई कोशिश उनकी सेवा नहीं, असेवा होगी। बुनकर बुनता रहे, चमार चमड़ा कमाता रहे और भंगी पाखाना साफ करता रहे और तब भी वह अछूत न समझा जाय तभी कह सकते हैं कि अस्पृश्यता का निवारण हुआ।[4] गांधीजी ने धर्मानुसार निर्मित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण के अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य-भावना को अधिक महत्व दिया था क्योंकि कर्तव्य अथवा समाज-सेवा ही इन वर्णों की एकता का मूल तत्व था। उन्हें मनुष्य पर शासन

१. Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 49.
२. Ibid, P. 91.
३—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० ३८
४—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० ४५

अभीष्ट नहीं था। ब्राह्मण का अन्य वर्णों पर प्रभुत्व अथवा शूद्रों के सेवा-कर्म को हेय दृष्टि से देखना, उन्हें रुचिकर नहीं था। वे अपने वर्णाश्रमधर्म-व्यवस्था सम्बन्धी विचारों को पूर्णतया वेदानुकूल मानते थे और उसके वर्तमान रूप को विकृत।[१] समाज सुधारक गांधी वर्ण-भेद, वर्ग-भेद मिटाकर आध्यात्मिक तथा नैतिक उच्चादर्शों पर अवलम्बित समाज की रचना का आदर्श रखते थे।[२]

वर्ण-व्यवस्था के सदृश ही गांधी जी को आश्रम-व्यवस्था भी सामाजिक और राष्ट्रीय हित के लिए मान्य थी। ब्रह्मचर्य को उन्होंने विशेष महत्व दिया था, क्योंकि इसी की सुदृढ़ आधारशिला पर अन्य तीन आश्रमों—गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास, की उज्ज्वलता, पवित्रता तथा संयम पर निर्भर है।[३]

गांधी जी ने हिन्दू समाज के लिए हिन्दू-धर्म के एक सुन्दर तत्व गोरक्षा को आवश्यक माना था गोरक्षा के अभाव में स्वराज्य अर्थहीन है क्योंकि गौ राष्ट्र के निर्बलों तथा मूक प्राणियों का प्रतीक है। गोरक्षा द्वारा कृषि-प्रधान देश की उन्नति तथा समृद्धि सम्भव है। वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था की भांति गोरक्षा भी हिन्दू-धर्म की विश्व को एक महान देन है।

भारतीय नारी की स्थिति में परिवर्तन द्वारा सामाजिक उन्नति हो सकती है। गांधी जी नारी का सम्मान करते थे। वे नारी की स्वतंत्रता, शिक्षा तथा पुरातन आदर्शों के समर्थक थे। भारतीय नारी को वे सामाजिक अत्याचार, रूढ़ियों एवं अन्ध-विश्वास की सीमा से मुक्त कर पुनः 'सीता देवी' के उच्चासन पर विभूषित करना चाहते थे। उनका यह स्पष्ट मत था कि देश की स्वतंत्रता तथा आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति में नारी की अवरुद्ध गति बाधक है।[४] गांधी जी ने हिन्दू समाज की विकृति के सम्बन्ध में कहा था—'स्त्री जाति के प्रति रखा गया तुच्छ भाव हिन्दू समाज में घुसी हुई सड़न है, धर्म का अंग नहीं है। धार्मिक पुरुष भी इस प्रकार के तिरस्कार भाव से मुक्त नहीं है, यह बात बतलाती है कि यह सड़न कितनी गहराई तक पहुंच है।'[५] उनका

---

१. 'I believe in the Varnashrama Dharma in n sense, in my opinion, strictly vedic but not in its present popular and crude sense.'
M. K. Gandhi – Hindu Dharma. P. 4.

२. Dr. Buch – Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 55.

३ — किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० ४६

४. 'Let us not live with one limb completely or partially paralysed. Rama would be no where without sita, free and independent even as he himself was. By seeking today to interfere with the free Growth of the womenhood of India, we are interfering with the growth of free and independent spiritual man.'
Dr. Buch – Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 57.

५ — किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० ४२

नारी की सद्वृत्ति में अटूट विश्वास था। वे नारी की दुर्वृत्ति का कारण पुरुष की संकीर्णता अथवा अनुदारता में खोजते थे। उनके शब्दों में 'स्त्री-जाति में छिपी हुई अपार शक्ति उसकी विद्वता अथवा शरीर-बल की बदौलत नहीं है, इसका कारण उसके भीतर भरी हुई उत्कट श्रद्धा, भावना का वेग और अत्यन्त त्याग-शक्ति है। वह स्वभाव से ही कोमल और धार्मिक वृत्ति वाली होती है, और पुरुष जहां श्रद्धा खोजकर ढीला पड़ जाता है, अथवा झूठे हिसाब लगाने में उलझा रहता है, वहां वह धीरज रखकर सीधे रास्ते पर स्थिर भाव से बढ़ती है।'[१]

यही कारण था कि गांधी जी बाल-विवाह, अनमेल विवाह तथा इच्छा के विरुद्ध विवाह के घोर विरोधी थे। वे हिन्दू विधवा को त्याग एवं पवित्रता की प्रतिमूर्ति मानते थे किन्तु कठोर सामाजिक नियमों द्वारा बलपूर्वक कराया गया त्याग उनकी दृष्टि में असंगत एवं अन्याय था। उन्होंने स्वयं कहा था—'किन्तु स्त्री-जाति के प्रति पोषित प्रचारित तुच्छ भाव ने विधवा के साथ अन्याय करने में कोई कसर उठा नहीं रखी। इससे हिन्दू-विधवा की स्थिति अछूतों के समान ही दयाजनक हो गई है।

विधवा त्याग की मूर्ति है, पर इस कारण वैधव्य जबरदस्ती पालन कराने की चीज नहीं है। बलात्कार से कराया हुआ त्याग उसमें रहने वाली दिव्यता का नाश करता है और उसे पूजनीय तथा आदर्श बनाने के बदले दया का पात्र बना डालता है।

इस कारण विधुर हुए पुरुष का पुनर्विवाह करने का जितना अधिकार माना गया है उतना ही, विधवा को भी है।'[२] इसके अतिरिक्त वर्णान्तर-विवाह भी गांधीजी को अप्रिय नहीं थे।

समाज की सर्वाधिक पतित मनोवृत्ति की द्योतक एवं नारी जीवन से सम्बंधित वेश्या की समस्या का निराकरण कर गांधी जी ने भारतीय समाज तथा राष्ट्र को आध्यात्म-भाव से पूरित करने का उद्योग किया था। उनकी दृष्टि में वेश्यावत्ति महान पाप थी। उन्होंने नारी की इस पतित अवस्था का समस्त दोष पुरुष जाति पर मढ़ा था, जो असंयम, असद् तथा वासना के वशीभूत होकर समाज में ऐसी नीच वृत्ति को प्रश्रय देता है। जब तक समाज नारी की दिव्यता में विश्वास नहीं करेगा तब तक इस प्रकार की समस्याओं का समाधान असम्भव है।[३]

गांधी जी भारतीयों द्वारा पश्चिमी सभ्यता संस्कृति के अनुकरण के विरोधी थे। वे पश्चिम के अति भौतिकवादी दृष्टिकोण को भारतीय समाज, राष्ट्र और परम्परागत जीवन के लिए घातक मानते थे। उन्हें पश्चिमी जगत् की भांति पदार्थ

१—गाँधी विचार दोहन : पृ० ४३

२—वही, पृ० ४९

1. Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 62.

की साधना इष्ट नहीं थी। क्योंकि उसके द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष, त्याग, बलिदान आदि भारतीय आदर्शों की प्राप्ति नहीं हो सकती। उनके विचार में पश्चिमी उद्योगीकरण का सिद्धान्त और पूँजीवादी व्यवस्था, भारतीय नागरिक तथा ग्रामीण के लिए अशिव थी। इसका कारण यह था कि आधुनिक सभ्यता कुछ देशों को अन्य देशों के पतन पर सभ्य बनाती है, धनिक वर्ग निर्धनों के बल पर संस्कृत कहलाता है। गांधीजी की सभ्यता का अर्थ आत्मा का परिष्कार मानते थे, न कि बाह्य-प्रसाधनों का।[1] अतः उन्हें भारतीय समाज के लिए प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के आदर्श ही मान्य थे। इसके अतिरिक्त वे शिक्षित नागरिकों द्वारा ग्रामीण समाज की अशिक्षा, अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, अस्वस्थता, निर्धनता आदि समस्याओं का निराकरण करवाना चाहते थे। राष्ट्रीय जीवन को एकत्व तथा घनत्व प्रदान करने के लिए गांधीजी ने स्वयं सेवकों के दलों को ग्राम-ग्राम भेजकर ग्राम-सुधार कार्य को क्रियान्वित किया था। सरकारी न्यायालयों की अपेक्षा ग्राम-पंचायतों में उनका विश्वास था।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि गांधीजी की सामाजिक विचारधारा भी आध्यात्मिकता, नैतिकता, त्याग, बलिदान तथा एकता के गुरुतर आदर्शों पर आधारित थी।

गाँधीजी के राष्ट्रवाद का स्वरूप

गांधीजी महान राष्ट्रवादी थे। उनका राष्ट्रवाद ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था। उन्होंने देश के नित्य-प्रति के जीवन में, सत्य तथा अहिंसा का प्रयोग कर मनुष्य को उसके उच्चतम स्वरूप तक ले जाने का प्रयत्न किया था।[2] उनका आध्यात्म अथवा जीवन-दर्शन पूर्णतया भारतीय था। अतः उनके राष्ट्रवाद का विकास भी जीवन-दर्शन अथवा जीवन-मार्ग के रूप में हुआ था। भारतीय जीवन-दर्शन का लक्ष्य मोक्ष अथवा मुक्ति है। गांधीजी को यह मोक्ष की धारणा पूर्णतया मान्य थी लेकिन यह व्यक्तिवादी होते हुए भी कर्म-मार्ग द्वारा नियंत्रित थी। उनके अनुसार सत्कार्य ही आध्यात्मिकता अथवा नैतिकता की कसौटी थें, जो मानवता अथवा मानव सेवा के उच्चादर्श से मंडित थे। इसके अतिरिक्त उनकी आध्यात्मिक विचारधारा एकान्तिक नहीं थी, प्रत्युत लोक-संग्रह की भावना से पूर्ण थी। वे राजनीति, राष्ट्रीय हित तथा धर्म में अन्तर नहीं मानते थे। इस कारण उनके मतानुसार पराधीनता, अन्याय एवं अत्याचार से राष्ट्र की मुक्ति, भारतीय जीवन का सर्वप्रमुख ध्येय था। इसके लिए

2. 'Exploitation of them any by the few, in the interest of the earthly greed for money and power of the few, is the essence of modern civilisation. Gandhi askes India not to copy this western civilisation blindly. That way lies, ruin, moral and material. The genius of India will do well to built on her ancient foundations.'

Dr. Buch – Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 67.

2. M. K. Gandhi – Satyagrah. P. 14.

एकमात्र उपयुक्त साधन अहिंसा थी। सत्य तथा अहिंसा की रक्षा के लिए आत्म-त्याग अथवा बलिदान की आवश्यकता थी। देश-सेवा में इस त्याग अथवा बलिदान को मूर्त रूप मिलता था।

गांधीजी का राष्ट्रवाद भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा से अनुप्रेरित था। उनका यह पुष्ट मत था कि अपने सांस्कृतिक मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों के पालन द्वारा ही कोई राष्ट्र उन्नत हो सकता है। इसी कारण वे भारत की प्राचीन संस्कृति में विश्वास रखते थे।[1] असहयोग आन्दोलन अथवा सत्याग्रह द्वारा वे भारत की प्राचीन सांस्कृतिक आत्मा की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते थे। अतीत गौरव की स्मृति तथा प्राचीन सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, नैतिक सिद्धान्तों की स्थापना द्वारा गाँधीजी देशवासियों में पराधीनता के कारण उत्पन्न हीन भावना को मिटाना चाहते थे। वस्तुतः गांधीजी वैदिक साहित्य, वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था, गोरक्षा, मूर्तिपूजा आदि में विश्वास रखते थे।[2] इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे पुरातनवादी अथवा रूढ़िवादी थे, अन्य धर्मों तथा धर्म-ग्रन्थों में भी उनकी पूरी श्रद्धा थी। अतः गांधी जी का राष्ट्रवाद अति पुरातन हिन्दू-धर्म समन्वित राष्ट्रवाद था, लेकिन उनका हिन्दूत्व इतना विस्तृत एवं उदार था कि उसमें विश्व के सभी धर्मों को समाहित कर लेने का विशेष गुण था।[3] गांधी जी ने देश में व्याप्त पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के विष को मारने के लिए भी यह आवश्यक समझा था कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना से आवृत्त धर्म का संबल ग्रहण किया जाये, जिसमें अन्य धर्मावलम्बी अल्पसंख्यक जनता की धार्मिक भावना की उपेक्षा न हो।

गांधीजी के राष्ट्रवाद का मूल तत्व 'प्रेम' है। उनका यह विश्वास था कि सभी धर्मों के मूल में प्रेम तत्व विद्यमान है, अतः प्रेम सम्पूर्ण मानवता की कल्याण-

---

१. 'It is self evident to Gandhi that Indians are one Nation that there is one Indian culture, and that the struggle of Indians is to revive the spirit of ancient culture in our midst.'
Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 76.

२. 'I believe in the Vedas, the upnishdas, the puranas and all that goes by the name of Hindu scriptures and therefore in Avtaras and rebirth.'
M. K. Gandhi—Hindu Dharma

३. 'Hindu is not an exclusive religion. In it there is room for the worship of all the prophets of the world. It is not a missionary religion in the ordinary sense of the term. It has no doubt absorbed many tribes in its fold, but this absorption has been of an evolutionary imperceptible character. Hinduism tells everyone of worship God according to his own faith or dharma, and so it lives at peace with all the religious.'
M. K. Gandhi—Hindu Dharma—P. 8, 9.

परिधि तक विस्तृत हो गया था। राष्ट्र की सीमारेखा में रहकर मानव मात्र के प्रति दया एवं सेवा-भाव के गुरुतर आदर्श से उनकी राष्ट्रीय भावना अभिभूत थी।[1] गांधी जी एक राष्ट्र का यह प्रमुख कर्त्तव्य मानते थे कि वह दूसरे राष्ट्र के लिए त्याग अथवा बलिदान करे। उनकी दृष्टि में एक राष्ट्र की सच्ची स्वतन्त्रता का अर्थ था विश्व-कल्याण के लिए सर्वस्व समर्पण करना। जातिगत घृणा का उसमें कोई स्थान न था। राष्ट्र की इसी उच्च स्थिति में व्यक्ति को मोक्ष सत्य अथवा ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। संकीर्णता, स्वार्थपरता आदि राष्ट्रवाद की विकृतियाँ थीं, जिनसे गांधी जी मानवमात्र को दूर रखना चाहते थे। राष्ट्रवाद का इतना उच्च एवं त्यागमय रूप इसके पूर्व दुर्लभ था।

महात्मा गांधी का राष्ट्रवाद भारतीय जीवन की शिवं भावना से प्रेरित था। उन्होंने स्वतन्त्रता की साधना को भारतीय-जीवन का महान् लक्ष्य निर्धारित किया था। वे देश को विदेशी शासन की दासता से मुक्त कर, आध्यात्मिक नैतिक आदर्शों से उन्नत, उदार सामाजिक विचारों से पूरित तथा सहिष्णु धार्मिक भावना से मंडित करना चाहते थे। अतः उन्होंने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी दशा का सूक्ष्म निरीक्षण किया। वे राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष की ओर से सजग एवं सचेष्ट हो गए। भारतीय जीवन के लिए अहितकर सामाजिक कुरीतियां जैसे वेश्यावृत्ति, अनमेल विवाह, विधवाओं पर घोर नियंत्रण, छुआछूत आदि उन्हें अप्रिय थीं। धर्म-सम्बन्धी मतभेद, विद्वेष, अन्ध-विश्वास, रूढ़िवादिता, संकीर्णता आदि का उन्होंने विरोध किया। भारत की आर्थिक विपन्नता का एकमात्र कारण वे पूंजीवादी व्यवस्था को मानते थे। राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए उन्होंने राष्ट्रव्यापी आन्दोलन किये थे। रचनात्मक कार्यक्रम की विस्तृत योजना को क्रियान्वित कर देश में स्वराज्य के लिए अनुकूल वातावरण बनाया।[3] गांधी जी के

---

१. Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism. P. 77.

२. 'Just as the cult of patriotism teaches us today that the individual has to die for the family, the family has to die for the village, the village for the district, the district, for the province and province for the country, even so, as couutry has to be free in order that it may die, it is necessary for the benefit of the world. There is not room for race—hatered there.'
M. K. Gandhi—My Religion—P. 132.

३—'जब तक अनुकूल परिस्थिति न हो, तब तक चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रम तथा दूसरी लोकोपयोगी सेवा करते रहना हीं स्वराज्य की साधना है। बहुत वर्षों तक ऐसा करना पड़े तो भी इसमें हानि नहीं है। इसे प्रगति ही कहेंगे पीछे हटना नहीं।'

—किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० ७५

राष्ट्रवाद में देश के वर्तमान जीवन को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली थी। वह देश-जीवन के सभी पक्षों के सुधार, विकास एवं उन्नति के लिए क्रियाशील थे।

अतीत एवं वर्तमान की सीमा पर गांधी जी ने अपने राष्ट्रवाद को भविष्य के सुन्दर स्वप्नों से भी सुसज्जित किया था। उन्होंने देश के सम्मुख स्वराज्य की रूप-रेखा रख दी थी। उनके स्वराज्य का अर्थ था सत्य, न्याय तथा प्रेम पर आधारित प्रजातन्त्रात्मक राज्य। विश्व शान्ति सहयोग और विश्व बंधुत्व स्वराज्य की आवश्यक मान्यताएं थीं जिसमें जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य को नैतिक आधार प्रदान किया गया था।[1]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गांधी जी ने अपने राष्ट्रवाद में भारतीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को सन्निहित कर, उसे घर्म, नीति न्याय, प्रेम, एकता, मैत्री आदि उच्चादर्शों पर प्रतिष्ठित किया था।[2] देश की अधिकांश जनता को गांधी जी का राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीय विधारधारा मान्य थी। भारतीय जनता के क्रियात्मक सहयोग द्वारा उनके आन्दोलन को सफल बनाया था। इसका कारण यह था कि गांधी जी ने राष्ट्रवादी सिद्धान्तों के निर्धारण में मनोविज्ञान का सहारा लिया था।

स्वराज पार्टी तथा उसकी राष्ट्रवादी नीति

राष्ट्रवादियों का एक दल गांधीजी के असहयोग आन्दोलन की नीति से पूर्णतया सहमत नहीं था और लोकमान्य तिलक को भी असहयोग नीति की सफलता के संबन्ध में संदेह था। ये राष्ट्रवादी, अंग्रेजी सरकार द्वारा निर्मित, अन्याय तथा अत्याचारों पर आधारित कानूनों का विरोध कर, उनके अस्तित्व को मिटा डालना चाहते थे। वे कौंसिल प्रवेश द्वारा नौकरशाही के गढ़ पर आक्रमण करना चाहते थे। सन् १९२०-२२ के दो वर्षों में, देश के राजनीतिक प्रभाव के कारण कौंसिल बहिष्कार की नीति सफल हुई। किन्तु शीघ्र ही चौरीचौरा की घटना के कारण गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित किया और इस दल की नीति के प्रसार का उपयुक्त वातावरण उपस्थित हुआ। देश सत्य और अहिंसा की शिक्षा में पारंगत नहीं हो सका। आन्दोलन की सफलता में विदेशी शासकों के दमनकारी कानूनों की बाढ़

---

१. 'Free India, therefore, is nationalised India. All interests, internal or external, will have to bow down to the national idea. All the classes may be required to bow down their necks to national interests. A new democractic state is in the process of being born.''
Dr. Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism—P. 113.

२—'गांधीजी की राष्ट्रीयता की परिधि किसी एक धर्म, संस्कृति अथवा समाज-विशेष तक सीमित नहीं थी, उसमें तो हिन्दुस्थान में रहने वाले सभी धर्मों, संस्कृतियों और समाजों का मुक्त समावेश था।'
—शान्ति प्रसाद वर्मा ; स्वाधीनता की चुनौती : पृ० १४८

सी आ गई। अतः देशबन्धुदास, विट्ठलभाई पटेल, मोतीलाल नेहरू जैसे मान्य नेता गणों ने आन्दोलन के सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक मूल्यों में परिवर्तन करने का निश्चय किया। चित्तरंजनदास के मस्तिष्क में अंग्रेजी शासन विधान के विरोध का विचार प्रबल रूप धारण कर बैठा था। उन्होंने कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिमूर्ति हकीम अजमलखां ने भी सम्पूर्ण देश का भ्रमण कर असहयोग आन्दोलन की असफलता की घोषणा की। इस प्रकार चित्तरंजनदास को हकीम अजमलखां, मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। इन लोगों ने यह निश्चय किया कि कौंसिल प्रवेश द्वारा सरकार की स्वार्थपूर्ण नीति का विरोध किया जाये। इसी समय स्वराज पार्टी के निर्माण का समस्त कार्यक्रम बना।[1] ये कांग्रेस से पृथक् नहीं थे। अहिंसात्मक सत्याग्रह के अन्य सभी सिद्धान्त इनको मान्य थे, केवल कौंसिल बहिष्कार के प्रश्न पर ही इन्होंने नवीन दल की स्थापना की थी।

कांग्रेस दो दलों में बंट गई, प्रथम—अपरिवर्तनवादी अर्थात् जिन्हें गांधीजी के असहयोग सम्बन्धी सिद्धान्तों में किसी प्रकार का परिवर्तन ग्राह्य नहीं था; द्वितीय परिवर्तनवादी अर्थात् स्वराज पार्टी, जो कौंसिल प्रवेश की समर्थक थी। श्री पट्टाभि सीतारम्मैया ने कांग्रेस के इतिहास में लिखा है–'इस पर यह स्पष्ट है कि असहयोग के पुराने और नवीन दल समान-रूप से बंटे हुए थे। पर दोनों थे असहयोग के ही दल, और सरकार से सहयोग करने को दोनों में से कोई दल तैयार न था। अन्तर केवल इतना ही था कि नवीन दल असहयोग की कमान में एक दूसरी डोरी चढ़ाकर उससे नौकरशाही के गढ़ कौंसिलों के भीतर से ही तीर छोड़ने का समर्थक था।'[2]

स्वराज पार्टी ने कौंसिल प्रवेश के सम्बन्ध में निम्नलिखित उपायों से काम लेने की योजना बनाई—

(१) असहयोगियों को उम्मीदवारी के लिए पंजाब और खिलाफ़त की नीति और तत्काल स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से खड़ा होना चाहिये और अधिक से अधिक संख्या में पहुंचने की कोशिश करनी चाहिए।

(२) यदि असहयोगी इतनी अधिक संख्या में पहुंच जायें कि उनके बगैर कोरम पूरा न हो सके तो उन्हें कौंसिल भवन में जाकर बैठने के बजाय एक साथ वहां से चले आना चाहिये और फिर किसी बैठक में शरीक न होना चाहिये। बीच-बीच में वे कौंसिल में इसलिये जायें कि उनके रिक्त स्थान पूरे न हो सकें।

(३) यदि असहयोगी इतनी संख्या में पहुंचें कि अधिक होने पर भी उनके बिना कोरम पूरा हो सकता हो, तो उन्हें हर एक सरकारी कार्रवाई का जिसमें बजट

---

1. Dr. Raghuvanshi—Indian Nationalist Movement and Thought. —P. 177.

२—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २०१

भी शामिल हो, विरोध करना चाहिये और केवल पंजाब, खिलाफ़त और स्वराज सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने चाहिये।

(४) यदि असहयोगी कम संख्या में पहुंचें तो उन्हें वही करना चाहिये जो नं० २ में बताया गया है, और इस प्रकार कौंसिल के बल को घटाना चाहिये।'[1]

इस प्रकार वे चुनाव द्वारा सभी प्राप्त पदों को अधिकृत करने के पक्ष में थे। कांग्रेसियों और असहयोगियों ने कौंसिलों, म्युनिसिपैलिटियों तथा स्थानिक बोर्डों के लिए खड़ा होना प्रारम्भ कर दिया।

गांधीजी स्वराजियों के कौंसिल प्रवेश की अडंगा नीति की अपेक्षा रचनात्मक कार्यक्रम की सफलता के आकाँक्षी थे। वे तभी कौंसिल प्रवेश को उचित ठहराते थे जबकि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार (१) हाथ कते-बुने खद्दर के व्यवहार, (२) विदेशी कपड़ों पर भारी चुंगी, (३) सेना विभाग और शराब के अपव्यय में कमी आदि राष्ट्रीय हितकारक कार्यों का समर्थन करें। देशबन्धु चित्तरंजनदास तथा पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य में यह स्पष्ट कर दिया था कि वे कौंसिल प्रवेश द्वारा विदेशी सत्ता की नौकरशाही को पूर्णतया पराजित कर स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं चाहे इसके लिए उन्हें असहयोग का भी बलिदान क्यों न करना पड़े।

हमें अफसोस है कि हम गांधीजी को कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में स्वराजियों की स्थिति के औचित्य का कायल न कर सके। हमारी समझ में यह नहीं आता कि कौंसिल प्रवेश नागपुर कांग्रेस के असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुकूल क्यों नहीं है। परन्तु यदि असहयोग मनोवृत्ति से ही सम्बन्ध रखता हो और हमारे राष्ट्रीय जीवन की गति-विधि नौकरशाही के हमेशा बदलते रहने वाले रंग-ढंग पर निर्भर रहती है, तो हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का बलिदान करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। हमारी राय में इस सिद्धान्त में उन सभी कामों में, जिनके द्वारा राष्ट्रीय जीवन की समुचित वृद्धि हो और स्वराज्य के मार्ग में बाधा डालने वाली नौकरशाही का सामना किया जा सके, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है।....[2]

स्वराज पार्टी ने 'अड़ंगा नीति' का पालन किया था। 'अड़ंगा' शब्द का भी स्पष्टीकरण श्री दास तथा पंडित नेहरू ने इन शब्दों में कर दिया—

'हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमने अपने कार्यक्रम में 'अड़ंगा' शब्द का जो व्यवहार किया है सो ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट के इतिहास के वैधानिक अर्थ में नहीं। मातहत और सीमित अधिकारों वाली कौंसिल में अड़ंगा डालना असम्भव है क्योंकि सुधार कानून के अन्तर्गत असेम्बली और कौंसिल के अधिकार गिने-चुने हैं। पर हम यह कह सकते हैं कि हमारा विचार अड़ंगा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही द्वारा डाली गई रुकावटों का मुकाबला करने का अधिक है। 'अड़ंगा' शब्द का व्यवहार करते समय हमारा मतलब इसी मुकाबले से

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २०२

२—वही पृ० २१९

है। हमने स्वराज पार्टी के विधि-विधान की भूमिका में सहयोग की परिभाषा करते हुए इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है।'[1]

स्वराज्यवादियों की नीति कौंसिल के भीतर भिन्न थी तथा कौंसिल के बाहर भिन्न।

कौंसिल अन्तर्गत स्वराज्य पार्टी का कार्यक्रम

(१) बजट रद्द करना—वर्तमान भारत के विधान में परिवर्तन तथा भारतीयों के अधिकारों की मान्यता के लिए बजट रद करना। क्योंकि जनता का न बजट बनाने में हाथ है न कर बढ़ाने के सम्बन्ध में या खर्च के मामले में अधिकार। इस कारण वे क्यों बजट पास करें ?

(२) कानून सम्बन्धी प्रस्तावों को रद करना—क्योंकि कानूनों द्वारा नौकरशाही की जड़ मजबूत होती है।

(३) रचनात्मक कार्यक्रम—जो प्रस्ताव योजनायें और बिल हमारे राष्ट्रीय जीवन की वृद्धि करने के लिये और फलतः नौकरशाही की जड़ उखाड़ने के लिए आवश्यक हों, उन सबको पेश करना।

(४) आर्थिक नीति—एक ऐसी निश्चित आर्थिक नीति का अवलंबन जो पूर्वोक्त सिद्धान्तों पर तय की गई हो जिसका उद्देश्य भारत से बाहर जाते हुये धन-प्रवाह को रोकना हो। इसके लिये धन-शोषण करने वाले सारे कामों में रुकावट करना आवश्यक है।[2]

इस प्रकार स्वराज्यवादी, सरकार द्वारा खादी के व्यवहार पर विशेष बल देने, राष्ट्रीय पताका फहराने का आग्रह करने और स्थानिक और म्युनिसिपल स्कूलों में चर्खा तथा हिन्दी के प्रचार की सिफारिश करने पर बल देते थे।[3]

कौंसिल के बाहर स्वराज्यवादियों की नीति

स्वराज्यवादी कौंसिल के बाहर महात्मा गांधी के कार्यक्रम का हृदय से स्वागत तथा समर्थन करते थे। कांग्रेस से पृथक् अपनी संस्था स्थापित करने के विरुद्ध थे क्योंकि वे राष्ट्रीय महासमिति (नेशनल कांग्रेस) की शक्ति से पूर्णतया परिचित थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि कौंसिल के भीतर उनकी सफलता कांग्रेस के समर्थन पर निर्भर करती है। स्वराज पार्टी के प्रमुख नेताओं ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि यदि उन्हें इस साधन द्वारा स्वराज्य प्राप्ति में सफलता प्राप्त न हुई तो वे इस नीति का परित्याग कर देंगे और सत्याग्रह के ठोस कार्थक्रम की सफलता का उद्योग करेंगे।[4] ये लोग देश भर के मजदूरों तथा किसानों का संगठन

१—पट्टाभि सीतारम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २१९
२—वही : पृ० २२०
३—वही : पृ० २०४
४—वही : पृ० २२१

कर कांग्रेस के काम की पूर्ति के आकांक्षी थे जिससे सरकार, पूंजीपति तथा जमींदार इस वर्ग का शोषण न कर सकें।

प्रस्ताव—स्वराजियों के दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव थे—(१) सम्राट् की सरकार को पार्लियामेंट में तत्काल ही यह घोषणा करने का प्रबन्ध करना चाहिए कि भारत की शासन-व्यवस्था और शासन प्रणाली में ऐसे परिवर्तन किये जायेंगे कि देश की सरकार पूर्णतया उत्तरदायी हो जायेगी।

(२) एक गोलमेज परिषद् या इसी प्रकार कोई उपयुक्त साधन पैदा किया जाय जिसमें भारतीय, यूरोपीय और अधगोरों के हितों का पूरा प्रतिनिधित्व रहे।

यद्यपि स्वराज पार्टी कौंसिलों में किसी ठोस राष्ट्रीय कार्य की पूर्ति न कर सकी, लेकिन नौकरशाही की नींव हिला देने की सफलता का अधिकांश श्रेय इन्हीं को मिलना चाहिये। अब देश में विदेशी शासकों का आतंक जड़ से उखड़ गया था। सरकार भी इनसे डरने लगी थी। पण्डित श्री कृष्णदत्त पालीवाल, जो सन् १९२४ ई० में कौंसिल के स्वराजी मेम्बर थे, ने लिखा है कि उन्होंने अपने कानों से वहां के उच्चतम हुक्काम के चपरासियों को यह कहते सुना कि अब तो ज़माना बिल्कुल ही उलटा हो गया है। इससे पहले जब सिर्फ राजा और नवाब मेम्बर बीस रुपये बख्शीश देते थे तब मिल पाते थे लेकिन अब ये स्वराजी लोग चिक उठा कर सीधे बड़े से बड़े हुक्काम के दफतर में दनदनाते हुए घुस जाते हैं और कोई हुक्काम भी चूं नहीं करता।[1] अब कौंसिल के यूरोपीय मेम्बरों को डर यह रहता था कि कहीं कोई ऐसी बात मुंह से न निकल जाय कि ये स्वराजी सदस्य उनके पीछे चैंथ डालें।[2] निःसन्देह कौंसिल प्रदेश की नीति द्वारा स्वाभिमान, निर्भयता तथा आत्मनिर्भरता की भावना प्रबल हुई। स्वराज्यवादियों को कई प्रस्तावों की स्वीकृति में सफलता मिली जैसे भारत में सैनिक विद्यालय खोलने का प्रस्ताव। कुछ प्रस्ताव स्वीकृत कराने में अथवा कुछ कानून रद्द करने में ये असफल भी रहे। आपसी मतभेद के कारण भी कभी कभी इनकी हार हुई। पट्टाभि सीतारम्मैया के शब्दों में—'बड़ी कौंसिल में स्वराज पार्टी १९२४ और १९२५ में विरोधी दल का काम करती रही। स्वराजियों ने 'सिलेक्ट कमेटी' में भाग लिया और लाभदायक कानून पास करने में सहयोग दिया। कभी किसी पार्टी का साथ दिया, कभी किसी का और यदाकदा सरकार का भी।'[3]

गांधी जी ने जेल से छूटने के पश्चात् विभिन्न राष्ट्रीय दलों में समझौता

१—पंडित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल : हमारा स्वाधीनता संग्राम : पृ० १
२—वहीं : पृ०५
३—पट्टाभि सीतारम्मैया ; कांग्रेस का इतिहास : पृ० २२७

कराना चाहा। उन्हें साम्प्रदायिक दंगों से अत्यधिक दुख हुआ। स्वराज पार्टी की कौंसिल प्रवेश नीति में उन्होंने किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली। १९२५ तक तो स्वराज पार्टी कांग्रेस का अंग मात्र थी किन्तु १९२५ में स्वयं कांग्रेस बन गई थी। अब वे पुनः स्वराजी से कांग्रेसी बन गये थे, क्योंकि गांधीजी ने बचा खुचा सहयोग भी समेट लिया था और अपनी सम्पूर्ण शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम में लगा दी थी। 'उन्होंने राजनैतिक अवस्था का सामना करने के लिये स्वराज्य-पार्टी को कांगेस का अधिकार दे दिया।'[1]

स्वराज्यवादियों ने गांधी जी की सूत कातने की शर्त को भी हटा दिया। इस बात को लेकर पुनः कांग्रेस दो विभागों में बंट गई—प्रथम खद्दर के समर्थक, द्वितीय कौंसिल के समर्थक। अपरिवर्तनवादियों में आन्तरिक मतभेद तथा यद्यपि ऊपर से देखने में यह स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। स्वराज पार्टी या परिवर्तनवादी आपस में भी एकमत नहीं थे, उनके विरुद्ध मध्यप्रान्त तथा महाराष्ट्र में झंडा गाड़ा गया। सन् १९२६ कौंसिल के कार्य के लिए अधिक शुभ वर्ष नहीं था। स्वराजी सदस्य कौंसिल प्रवेश द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के कार्य में सफलता प्राप्त होते न देख, इस साधन में थकावट का अनुभव करने लगे।

'वास्तव में १९२५ के अन्त में ही प्रतियोग सहयोग की आवाज निश्चयात्मक रूप से सुनाई देने लगी थी।'[2]

अन्त में कौंसिल भवन से बजट की चर्चा के समय पंडित मोतीलाल नेहरू और उनके सहयोगियों द्वारा वाक आउट हुआ।

कांग्रेस ने १९२६ ई० में अपनी सम्पूर्ण शक्ति कौंसिल के मोर्चे पर लगा दी थी। इस प्रकार अंगेज सरकार से असहयोग सहयोग में परिणत हो गया था। विदेशी सरकार ने इसका लाभ 'फूट डालो' की नीति द्वारा उठाया। उन्होंने साम्प्रदायिक वैषम्य की बढ़ती हुई अग्नि में घृताहुति दी, जिसका परिणाम था हिन्दू-मुस्लिम दंगों का भीषण रूप। स्वामी श्रद्धानन्द की बलि लेकर भी यह अग्नि शान्त नहीं हुई।

सन् १९२५-२७ के बीच स्वराजियों की अड़ंगा नीति भी असफल होती दिखाई दी। अब उनमें दृढ़ता, एकता और तीव्रता की कमी हो गई थी। सन् १९२६ में पं० मोतीलाल नेहरू ने साबरमती में स्वराजियों की सभा बुलाई जिसमें लाला लाजपत-राय, केलकर, जयकर, डा० मुंजे, श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा महात्मा गांधी

१—पट्टाभि सीता रम्मैया : कांग्रेस का इतिहास : पृ० २३३

२—वही : पृ० २४०

भी उपस्थित थे । इसमें कुछ विशेष प्रस्ताव रखे गये ।[१] कांग्रेस कमेटी ने भी ये प्रस्ताव स्वीकृत कर लिए । इन प्रस्तावों से स्वराज पार्टी में एकता नहीं रही । गांधीजी के अनुयायी इस समय अखिल भारतीय चर्खा संघ बनाने में व्यस्त थे । श्री मदनमोहन मालवीय तथा उनके सहयोगी हिन्दू जाति की आकांक्षा से प्रेरित होकर हिन्दू महासभा का संगठन कर रहे थे । जिन्ना तथा अन्य कट्टर मुस्लिम नेता मुस्लिम लीग या मुस्लिम कान्फ्रैंस बनाकर मुसलमानों के विशेष अधिकारों के संरक्षण में व्यस्त होकर साम्प्रदायिकता की अग्नि धधका रहे थे । स्वराज पार्टी का राष्ट्रवाद गांधीजी के राष्ट्रवाद से भिन्न न था । केवल राजनीतिक क्षेत्र में स्वराज्यवादी कौंसिल-प्रवेश द्वारा राष्ट्र-हित विरोधी कानूनों का प्रतिकार करना चाहते थे और तत्कालीन संविधान को नष्ट करना चाहते थे । इनका साधन गांधीजी से कुछ भिन्न था । रचनात्मक कार्यक्रम और सत्य तथा अहिंसा का साधन भी मान्य था । वस्तुत: ये कांग्रेस से भिन्न न थे ।

हिन्दू महासभा का राष्ट्रीय सिद्धान्त

गांधीजी के असहयोग आन्दोलन की असफलता ने धार्मिक विद्वेष तथा जातीयता की भावना को अधिक उत्तेजित किया । विदेशी सरकार की विभाजक नीति ने हिन्दू और मुसलमानों की साम्प्रदायिक भावना को अभिवृद्ध किया । लार्ड कर्जन तथा लार्ड मिंटो की 'फूट डालो' नीति के परिणाम-स्वरूप 'मुस्लिम लीग' की स्थापना हो चुकी थी । हिन्दू राष्ट्रीय नेताओं—लाला लाजपतराय, मदनमोहन मालवीय ने उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप और साम्प्रदायिक दंगों से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म, जाति एवं समाज के पुनस्संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया । हिन्दू जाति की कल्याण-कामना से अभिप्रेरित होकर, उन्होंने ऐसी संस्था के निर्माण की आवश्यकता का अनुभव किया, जिसके द्वारा हिन्दू धर्म तथा जाति को संरक्षता प्राप्त हो । अत: सन् १९२५ में इनके उद्योग से कलकत्ते में हिन्दू महासभा की स्थापना की गई । लाला लाजपत राय ने हिन्दू जाति से यह आवेदन किया था कि वे सुसंगठित होकर ऐसी संस्थाओं की स्थापना करें जो हिन्दू-समाज सेवा, हिन्दू नारी के उद्धार का कार्य सफलतापूर्वक कर सकें । इसके अतिरिक्त इन्होंने विधर्मियों द्वारा बलात् हिन्दुओं को विधर्मी बनाने का भी तीव्र विरोध किया था ।[२]

१—(1) 'That the Ministers should be made fully responsible to the Legislative, free from all control of control.

(2) 'That an adequate proportion of the revenue be allotted for the development of nation building departments ;

(3) 'That Ministers be given full control of the services in transferred Department.

Dr. V.P.S. Raghuvanshi—Indian Nationalist Movement and Thought—P. 189.

२. Dr. Raghuvanshi—Indian Notionalist Movement and Thought P. 171,

हिन्दू महासभा की राष्ट्रीय-भावना केवल हिन्दू-धर्म, हिन्दू-समाज तथा हिन्दी भाषा की उन्नति तक सीमित थी। धार्मिकता के रंग में राष्ट्रीय एकता का विचार धूमिल पड़ गया था। राष्ट्रवाद का उदात्त, सर्वांगीण, विकसित रूप नहीं मिलता। इनकी राष्ट्रीय भावना, संकुचित, संकीर्ण एवं एकांगी थी। राष्ट्रीयता में अन्य पक्षों के सम्बन्ध में ये गांधीजी के साथ थे।

मुस्लिम लीग

हिन्दू समाज की अपेक्षा मुस्लिम समाज में राष्ट्रीयता की लहर बहुत बाद में पहुंची थी।[1] कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् देश के राष्ट्रीय जागृति के चिह्न आने लगे थे लेकिन इस मनोवांछित वातावरण में भी सर सैयद अहमद ने भारतीय मुसलमानों को कांग्रेस से पृथक् रखने का प्रयत्न किया, यद्यपि इसमें उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली।[2] उनके जीवन काल में ही कुछ प्रगतिशील, विवेकवान् एवं राष्ट्रीय प्रवृत्ति के मुसलमान नेतागण राष्ट्रवादी बन गये थे, लेकिन शीघ्र ही कालान्तर में लार्ड कर्जन की हिन्दू-मुस्लिम विभेदक नीति ने क्रियान्वित होकर मुसलमानों को साम्प्रदायिक आधार पर संगठित होने के लिए प्रेरित किया। मुस्लिम लीग की स्थापना द्वारा यह कार्य सम्पन्न हुआ। प्रथम महायुद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन (१९२०-२२) के समय कांग्रेस के साथ ख़िलाफ़त सभा के अनुयायियों को एक कर दिया था, लेकिन यह आदर्श परिस्थिति अधिक काल तक न रह सकी। आन्दोलन शिथिल होते ही साम्प्रदायिकता के आधार पर चुनावों ने दोनों को ऐसा विरोधी बना दिया कि उसका अन्तिम परिणाम देश के दो टुकड़ों के रूप में आया। गाँधीजी ने दोनों को मिलाने का उद्योग किया किन्तु असफल रहे।

मुस्लिम लीग को सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय संस्था कहना असंगत होगा। इसमें अल्पसंख्यक मुसलमान जाति एवं धर्म के संरक्षण का भाव ही प्रमुख था। यह साम्प्रदायिक संस्था थी। राष्ट्रीय-हित की अपेक्षा जाति तथा धर्मगत वैषम्य को इससे बढ़ावा मिला। हिन्दी साहित्य से इसका विशेष सम्बन्ध नहीं है। हिन्दी और उर्दू, साम्प्रदायिकता के आधार पर पृथक्-पृथक् हिन्दुओं और मुसलमानों की भाषाएं हो गई थी।[3] अतः इसका विस्तृत विवेचन अपेक्षणीय नहीं है।

समाजवाद और उसकी राष्ट्रीय विचारधारा

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् श्रमिक वर्ग ने स्वतन्त्र रूप से, एक आदर्श को लेकर संगठित होना आरम्भ कर दिया था। '१९१८ से १९२१' ई० की कई स्ट्राइकें

१—शान्तिप्रसाद वर्मा : हमारी राजनैतिक समस्यायें : पृ० २६
२—शान्तिप्रसाद वर्मा : हमारी राजनैतिक समस्यायें : पृ० २७
३—शान्तिप्रसाद वर्मा : हमारी राजनैतिक समस्यायें : पृ० २५७

उसी का परिणाम थीं, जिनसे असहयोग आन्दोलन को भी बल मिला।[1] १९२४ ई० में बम्बई से 'सोशलिस्ट' पत्रिका निकलने लगी थी। १९२४ ई० में पुनः अखिल भारतीय स्ट्राइक हुई, जिससे राष्ट्रवाद को नवीन गति मिली।[2] भारतीय श्रमिक आन्दोलन से समाजवादी विचारधारा का विशेष रूप से पोषण हुआ। १९२९ में कृषक एवं श्रमिक सम्मेलनों से समाजवाद के सिद्धान्तों पर बल दिया गया। मेरठ-षड्यन्त्र केस में श्रमिक वर्ग के नेताओं को दंड दिया गया था। इससे अप्रत्यक्ष रूप में समाजवादी एवं साम्यवादी विचारधारा का प्रचार हुआ था। यद्यपि मेरठ केस के उपरान्त समाजवादी दल को अवैध घोषित कर दिया गया था, लेकिन मार्क्सवादी विचारधारा साम्यवाद और समाजवाद को रोका न जा सका था। १९३३ ई० में १४६ स्ट्राइकें हुई थीं। १९३४ में वामपक्षी राष्ट्रवादी युवक दल ने कांग्रेस के अन्तर्गत मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना की। इसकी सदस्यता के लिए काँग्रेस का सदस्य होना आवश्यक था।[3] अतः राष्ट्रवाद में समाजवाद के प्रगतिशील तत्त्वों का आरोपण हुआ।

भारत में श्रमिक आन्दोलन, साम्यवादी एवं समाजवादी विचारधारा के आगमन का प्रमुख कारण था पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों की दयनीय, अभावग्रस्त, नारकीय स्थिति। समाजवाद में श्रमिक एवं कृषक वर्ग की स्थिति के सुधार की आशा थी।

समाजवाद के विषय में डा० भारतन् कुमारप्पा ने लिखा है, 'खेतों और उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार हो और उत्पादन से जो कुछ प्राप्त हो उसे समाज के विभिन्न अंगों में कम-बेश बराबर बाँट दिया जाय। इस उपाय से आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों का पूरा लाभ समाज को प्राप्त होगा और अरक्षित असमान विभाजन, गरीबी, बेकारी, वर्गद्वेष आदि बुराइयों से समाज की रक्षा होगी। उत्पादन व्यक्तिगत लाभ के लिए न होकर समाज के कल्याण के लिये होगा। प्रतिस्पर्द्धा के कारण जो बरबादी उत्पादन की होती है वह रुक जायेगी। मजदूरों का दुरुपयोग नहीं होगा और कमजोर राष्ट्र पर बलवान राष्ट्र की गृद्ध दृष्टि नहीं पड़ेगी। युद्ध के लिये प्रेरणा का अन्त हो जायगा। पूँजीवादी व्यवस्था में लाभ के लिये पागल समाज के हृदय से मानवीय विचारों का जो सर्वथा लोप हो गया था, उसका पुनः उदय होगा और आर्थिक व्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य आवश्यकता के अनुसार उत्पादन रह जायगा। संघर्ष, कलह और मारपीट का स्थान सहयोग, सद्भाव और शान्ति ग्रहण करेंगे और परस्पर मेल के भाव का उदय होगा। समाजवाद का यही

1. Palme Dutt—India Today—P. 357.
2. 'By 1927 the trade union congress united fifty-seven affiliated unions, with a recorded membership of 150, 155.'
Palme Dutt—India Today—P. 381.
3. Palme Dutt—India Today.—P. 394.

आधार-स्तम्भ है। अर्थात् उत्पादन और विभाजन का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ न होकर समुदाय का लाभ होगा। इसलिये इस व्यवस्था का नाम समाजवाद है जो पूंजीवाद अथवा व्यक्तिवाद का विरोधी है।'[1] मानव जगत् को मनुष्य समाज बनाना, उत्पीड़न और शोषण के स्थान पर समता और शान्ति की स्थापना कर वर्गभेद मिटाना इसका लक्ष्य है। अतः समाजवाद का जीवन-दर्शन भौतिकवादी है। मार्क्स, एंगिल्स तथा उनके शिष्यों ने समाजवाद के विषय में बहुत कुछ लिखा है। डा० सम्पूर्णानन्द (जिनका १९३५ में कांग्रेस-संगठन के अन्तर्गत समाजवादी दल की स्थापना में प्रमुख स्थान था) ने अपनी पुस्तक 'समाजवाद' में मार्क्स सम्मत वैज्ञानिक समाजवाद के विषय में लिखा है—'वह मनुष्य समाज की हजारों खराबियों को देखता है, पर इनमें से एक के पीछे नहीं दौड़ता क्योंकि वह समझता है कि इनमें से अधिकांश गौण और उपलक्षण मात्र हैं। वह मूल रोग को पकड़ने का प्रयत्न करता है कि समुदाय के भीतर वह कौन-सी शक्तियाँ हैं जो स्वतः इस रोग के उच्छेद का प्रयत्न कर रही हैं।'[2] 'समाजवाद न्याय और मनुष्यता के नाते पीड़ितों की अवस्था में सुधार नहीं करना चाहता। वह धनिकों और अधिकार वालों से दया की भिक्षा नहीं माँगता और न उनके हृदयों के परिवर्तन की चेष्टा करता है। वह संसार के लिये क्या उचित और न्याय है इसका आदर्श बनाने भी नहीं बैठता और न किसी को अपना लक्ष्य मानता है। उसकी परिपाटी वही है, जो कुशल वैद्य की होती है। वैद्य रोगी की परीक्षा करते समय अपने मस्तिष्क के किसी सिद्धान्त से काम नहीं लेता; यह देखता है कि रोगी का शरीर क्या बतलाता है।...'

वस्तुतः समाजवाद एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति की अपेक्षा समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को महत्व दिया जाता है। राष्ट्रवाद सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता, गौरव और स्वतन्त्रता का विचार है। निःसन्देह दोनों व्यक्तिवाद के विरोधी हैं। समाजवाद राष्ट्रवाद का एक पोषक तत्व बन सकता है। राष्ट्रवाद की भावना की पुष्टि में भी इससे सहायता मिल सकती है। इसका कारण यह है कि समाजवाद में राष्ट्र का अधिक से अधिक हित अन्तर्हित है। इसे राष्ट्रवाद का कल्याणकारी उपाय भी कह सकते हैं।

गाँधीजी के राष्ट्रवाद का मूल दर्शन अध्यात्मिक है, जिसमें उचित-अनुचित और न्याय-अन्याय का पूरा ध्यान रखा गया था। इसकी अपेक्षा समाजवाद का मूलाधार भौतिकतावादी है, वह पीड़ित-वर्ग की दशा सुधारने के लिए कोई भी साधन अपनाने में हिचकता नहीं है। समाजवाद गांधीजी की राष्ट्रीय विचारधारा से बहुत भिन्न है।

१—डा० भारतन् कुमारप्पा : पूंजीवाद-समाजवाद ग्रामोद्योग : पृ० ९४

२—डा० सम्पूर्णानन्द : समाजवाद : पृ० ८८

निष्कर्ष

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के इतिहास पर दृष्टि डालने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय चेतना उच्च वर्ग से प्रारम्भ होकर निम्न वर्ग तक फैल गई थी तथा सम्पूर्ण भारत उसमें समाहित हो गया था। राष्ट्रवाद के प्रमुख तत्व भौगोलिक एकता, इतिहास, सभ्यता, संस्कृति की एकता, वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ, उसके निराकरण के प्रयत्न; तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य की एकता आदि थे। हंस कोन्ह ने राष्ट्रवाद की उत्पत्ति मस्तिष्क की एक विशेष दशा मानी है। निःसन्देह गांधीजी तथा अन्य राष्ट्रीय शक्तियों से सम्पूर्ण भारतवासियों को एक विशेष मनः-स्थिति में पहुंचा दिया था जिसमें स्वतन्त्रता के लिए उत्साह था और भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान तथा राजनीतिक क्रांति के लिए आह्वान था। बर्न के मत में राष्ट्रीयता के लिए रक्त की एकता से अधिक महत्वपूर्ण तत्व ध्येय की एकता और ऐतिहासिक समानता है। भारत जैसे विशाल देश में अनेक जातियों तथा धर्मों का सम्मिलन हुआ है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध आदि विभिन्न धर्मावलम्बी जातियाँ बसी हुई हैं किन्तु इनकी राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद के संबंध में किसी प्रकार का विवाद नहीं उठ सकता, क्योंकि इस सबमें ध्येय की एकता थी, एक देशवासी होने के कारण इतिहास में समानता थी। भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसका अन्तर्राष्ट्रीयतावाद से विरोध नहीं था। वह मानवतावाद के महान आदर्श पर आधारित था। अन्य राष्ट्रों के प्रति उसमें उपेक्षा की भावना नहीं थी। अतः राष्ट्र-वाद की सभी मान्य परिभाषाओं की कसौटी पर कस कर भारतीय राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद खरा उतरता है। पराधीनता के अभिशाप से त्रस्त भारतीय जनता ने सामूहिक रूप में अभ्युदय के लिए उद्योग किया था। राष्ट्रवाद के अवरोधक तत्वों की ओर से राष्ट्रीय चेतना पूर्णतया सजग थी। इस युग में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए दो भिन्न साधनों का प्रयोग किया गया—(१) अहिंसात्मक—जिसका नेतृत्व गांधीजी ने किया। (२) हिंसात्मक—इसके दल सम्पूर्ण भारत में फैले थे। अहिंसात्मक साधन प्रमुख साधन था, जिसमें भारत की सामान्य जनता का विश्वास था। इस प्रकार राष्ट्रवाद के प्रमुख अंग निम्नलिखित थे—

१. अतीत गौरव गान—

(क) अध्यात्मिक उत्कर्ष (ख) नैतिक उत्कर्ष (ग) भौतिक उत्कर्ष

इसके चित्रण द्वारा जन-जीवन में आत्म-गौरव, वीरता तथा उत्साह की भावना भरी गई। देशवासियों को अपने इतिहास का सच्चा परिचय दिया गया, जिससे वे अपनी अति प्राचीन ऐतिहासिक परम्परा को सुरक्षित रख सकें।

२—**अतीत गौरव तथा वर्तमान अवस्था की तुलना**—इसके द्वारा वर्तमान के प्रति असन्तोष, क्षोभ, ग्लानि, घृणा की भावना को तीव्र किया गया, जिससे राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-युद्ध को बल मिला।

३—**राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष**–देशभक्ति अर्थात् देश के प्रति अनन्य अनुराग, मातृभूमि का स्तवन, देश की भौगोलिक एकता की पुष्टि ।

४–**राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष**–देशवासियों का ध्यान राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष, जैसे:– राजनीतिक अन्याय एवं अत्याचार, सामाजिक कुरीतियां, आर्थिक दुर्दशा, सांस्कृतिक हीनता आदि की ओर आकृष्ट किया गया, जिससे वे राष्ट्रीयता में अवरोधक तत्वों के घातक परिणामों का ज्ञान प्राप्त कर उनके निराकरण का प्रयत्न करें ।

५–**राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्ष**–राष्ट्रीयता-उद्‌बोधक विविध साधनों का उपयोग किया गया, जिससे भारतीय जीवन में राष्ट्रवाद के पूर्ण विकास में सहायता मिली । प्रमुख साधन गांधीजी की सत्य-अहिंसा नीति थी, जिसके फलस्वरूप सत्याग्रह आन्दोलन हुए और रचनात्मक कार्यक्रम को क्रियान्वित किया गया । कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज पार्टी ने कौंसिल प्रवेश द्वारा साम्राज्यवाद के गढ़ को जीतने का प्रयास किया । हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग साम्प्रदायिकता से पूर्ण एकांगी साधन थे । इनका राष्ट्रवाद पूर्ण नहीं था क्योंकि उसमें राष्ट्र की अपेक्षा जाति एवं धर्म हित का लक्ष्य प्रमुख था । क्रान्तिकारी अथवा आतंकवादियों को हिंसात्मक साधन इष्ट था । वैसे सभी दलों का समान रूप से एक ही लक्ष्य था 'स्वराज्य' ।

६—**यह राष्ट्रवाद अतीत और वर्तमान** पर ही आधारित नहीं था, इसने भविष्य के भी सुन्दर स्वप्न देखे थे । गांधीजी ने स्वराज्य के पश्चात् 'रामराज्य' के स्वप्न को सत्य करने की आकांक्षा की थी ।

राष्ट्रवाद के इन तत्त्वों को दृष्टि में रखकर हिन्दी साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है ।

—००—

: ५ :

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति

(१९२०—१९३७ ई०)

भारत में राष्ट्रीय ग्रान्दोलन के प्रारम्भिक काल से ही दो प्रकार की विचार-धारायें कार्य करती दृष्टिगत होती हैं। प्रथम दल के समर्थक पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों ग्रौर ग्रादर्शों को राष्ट्रीय उत्थान के लिए ग्रावश्यक मानते थे किन्तु इनकी संख्या ग्रति ग्रल्प थी। ग्रौर दूसरे दल की दृष्टि भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, साहित्य की ग्रोर थी। पहला वर्ग ग्रंग्रेजी शक्ति में विश्वास रखता था ग्रौर ग्रंग्रेजी राज्य को उन्नति का सुग्रवर मानता था, लेकिन दूसरे वर्ग ने भारत की शक्ति में विश्वास रख कर देश को ग्रपने बल पर स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए ग्रभिप्रेरित किया था। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है। इस द्वितीय वर्ग के राष्ट्रवादियों की विचारधारा पर ग्रार्य समाज, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव पड़ा था। इन्होंने भारत की ग्रति प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, नैतिक ग्रादर्शों के द्योतक धर्मग्रन्थों, साहित्य एवं ऐतिहासिक खोजों द्वारा उपलब्ध जीवन-दर्शन का ग्राधार ग्रहण किया ग्रौर उसे राष्ट्रीय ग्रान्दोलन का प्रमुख प्रेरक तत्व बना दिया। इस वर्ग के राष्ट्रीय नेताग्रों, लोकमान्य तिलक ग्रादि ने, केवल विचार-स्वातन्त्र्य के लिए स्वायत्त-शासन की ग्राकांक्षा नहीं की थी, प्रत्युत भारतीय सांस्कृतिक जीवन-दर्शन का स्वाभाविक विकास उनका लक्ष्य था।[1]

---

1. 'Freedom is made beneficial and lawful because the individual can order his life by his Swadharma. Thus it is that the classcial ideal was not lawless freedom but rather lawful freedom–selfrule, 'Swaraj'. Lawfull freedom, 'Swaraj', meant living in accordance with Swadharma

   Theodore L. Shay: The Legacy of the Lokamanya : The Political Philosophy of Bal Gangadhar Tilak—P. 10.

गांधी जी ने इसी भारतीय जीवन-दर्शन तथा अध्यात्मिकता को राष्ट्रीय आन्दोलन का सम्बल बनाकर जन-आन्दोलन का रूप दिया था। इसका कारण यह था कि मनुष्य की सहज प्रवृत्ति सामाजिक होने के साथ ही अध्यात्मिक भी है। सोद्देश्य जीवन-यापन के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य का आचरण धर्मानुकूल हो। स्वतन्त्रता को नियमित तथा न्यायपूर्ण बनाने के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। इसी कारण गांधीजी ने युग-युग से चले आ रहे भारतीय सांस्कृतिक जीवन-दर्शन के प्रमुख तत्व सत्य और अहिंसा को देश के लिए हितकारी माना था। श्री राधाकृष्णन् ने लिखा है—'गाँधी जी ने हमें सभ्यता के इतिहास में एक नवीन मार्ग का प्रदर्शन कराया है, जो हमारे देश की गौरवमयी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुकूल है। हमारे आधुनिक युग को यदि बर्बरता से मुक्त होना है तो उसे अहिंसा के मार्ग का आश्रय लेना होगा।'[१] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उस युग के प्रायः सभी राष्ट्रवादियों का भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, धर्म, दर्शन, इतिहास में विश्वास था। वे उन्हें पुनरुज्जीवित कर, आधुनिक युग के प्रकाश में, कुछ परिवर्तन तथा परिशोधन के साथ स्थापित करना चाहते थे।

आधुनिक हिन्दी साहित्य ने स्वतन्त्रता-संग्राम और राष्ट्रीय विचारधारा को अपना पूर्ण सहयोग दिया है। सरस्वती के वरदान से हमारी राष्ट्रीय भावना की गति में तीव्रता आई है। अतीत-गौरव राष्ट्रवाद का प्रमुख प्रेरक तत्व है। अतः सर्व-प्रथम हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के इस अंग का विवेचन द्रष्टव्य है।

अतीत-गौरव-गान

भारत का स्वर्णिम अतीत, अथवा अध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष का इतिहास देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना तथा स्वाभिमान का स्रोत रहा है। गांधीजी तथा सभी राष्ट्रीय दलों का, भारत के प्राचीन गौरव के प्रतिपादन में विश्वास था। अतः अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के अनुकूल हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी लेखन शक्ति द्वारा भारत के विगत गौरव, अध्यात्मिक और दर्शन, नैतिक आदर्शों, शारीरिक बल तथा भौतिक ऐश्वर्य का चित्रण, ऐतिहासिक अनुसंधान तथा प्रामाणिक धर्मग्रन्थों के आधार पर किया है। धर्मग्रन्थों से उन विषयों को चुना, जो कि सम्पूर्ण राष्ट्र के एकीकरण के मुख्य तन्तु हैं। इतिहास के उस चेतन-स्वरूप को अपनाया, जो पुनः राष्ट्र की रग-रग में नवीन जीवन का संचार करने वाला था। प्राचीन उन्नति के दर्पण में, वर्तमान अवनति का प्रतिबिम्ब अवलोक कर भविष्य के लिए प्रोत्साहन प्राप्त हो सके ऐसी अनेक रचनाएं साहित्य-भंडार में भरी पड़ी हैं। जैसा कि भूमिका खंड में स्पष्ट किया जा चुका है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने सर्वप्रथम इस प्रकार की पुस्तक

३—प्रो० इन्द्र : गाँधी गीता अथवा अहिंसा योग : पृ० ३

'भारत-भारती' (१९१२ ई.) लिखी थी।[1] इसके पश्चात् अतीत-स्तवन की परम्परा-सी चल पड़ी। काव्य, नाटक, उपन्यास और कहानी में, अनेक रूपों तथा शैलियों में, अतीत की गौरव गाथा का वर्णन मिलता है।

भारत का अतीत आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक सभी दृष्टियों से उज्ज्वल रहा है। सर्वप्रथम हिन्दी कविता, नाटक और कथा साहित्य में अतीत गौरव के इन पक्षों की अभिव्यक्ति का स्वरूप-विश्लेषण किया गया है।

काव्य में अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष

भारत धर्म-प्रधान देश है, जिसकी रग-रग में उसका अध्यात्म तथा दर्शन व्याप्त है। भारतीय जीवन-दर्शन भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को अधिक महत्व देता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भारतीय जीवन के चार पुरुषार्थ हैं; लेकिन अर्थ तथा काम को धर्म द्वारा नियंत्रित किया गया है और मोक्ष अन्तिम लक्ष्य है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भौतिक पदार्थों तथा सुखों को नियमित रखने के लिए धर्म का मेरुदंड आवश्यक माना गया है। सत्य-धर्म के पालन से सच्ची स्वतन्त्रता अथवा मुक्ति प्राप्त हा सकती है। गांधी जी ने अपने राष्ट्रवाद को भारत की चिर-पुरातन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा पर आश्रित किया था। जैसा कि गांधी जी की राष्ट्रीय-विचारधारा के प्रकरण में स्पष्ट किया जा चुका है वेद-ग्रन्थ तथा भारत की अति पुरातन धर्म-व्यवस्था में उनका पूर्ण विश्वास और श्रद्धा थी। उदारवादी नेताओं की भी इसमें विशेष आस्था थी और आतंकवादी अथवा क्रान्तिकारी तो गीता के अध्यात्म एवं दर्शन में विश्वास रखते ही थे। अतः हिन्दी-साहित्यकारों की भी दृष्टि ऋषियों, मुनियों द्वारा प्रसारित धर्म तथा दर्शन के उत्कृष्ट सिद्धान्तों की ओर गई, जिसकी साहित्य में सुन्दर ढंग से अभिव्यंजना की गई है।

सन् १९१२ में रचित 'भारत-भारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने यह स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि विश्व को आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करने वाला प्रथम देश भारत ही है। अपनी उसी मान्यता की पुनरुक्ति उन्होंने १९२० ई० के बाद भी की है। उनके अनुसार निःसन्देह हमारे पूर्वज अन्तर्जगत के सभी रहस्यों से परिचित थे। 'हिन्दू' में गुप्तजी ने लिखा है :—

करके जगती का आह्वान
गाया अनुपम वैदिक गान

१—बड़े खेद की बात है कि हम लोगों के लिए हिन्दी में अभी तक ढंग की कोई कविता-पुस्तक नहीं लिखी गई, जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन भी हो और भविष्यत् के लिए प्रोत्साहन भी।
मैथिलीशरण गुप्त : प्रस्तावना : भारत-भारती

2. Theodore L. Shay : The Legacy of Lokmanya—P. 11.

देकर सबको प्रथम प्रकाश
किया सभ्यता का सुविकास ।[१]

यूरोप, जिसका भविष्य अति उज्ज्वल है, वह तो भारत के शिष्यों का शिष्य है। आर्यों की धूम समस्त भूमण्डल में फैली थी। तिब्बत, श्याम, चीन, जापान, लंका, यवद्वीप, ईरान, काबुल, रूस, रोम, यूनान सभी जगह आर्यों की आन थी।[२] आज का शक्तिशाली देश अमरीका हर्षपूर्वक सीता रामोत्सव मनाता था।[३]

अतीत काल में भारत की आध्यात्मिक उन्नति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी, इसी कारण हमारे पूर्वज सरलता से जगत् जाल तोड़ दिया करते थे।[४] आज भी आध्यात्मिक उत्कर्ष के प्रतीक वेद-ग्रन्थ न केवल भारतीय जीवन को, वरन् सम्पूर्ण विश्व को स्वधर्म की शिक्षा देकर आध्यात्मिक शक्ति से अनुप्राणित करते हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने वेदों की धार्मिक सहिष्णुता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है कि अन्य सभी धर्म वैदिक विचारधारा से प्रभावित हैं।[५] 'हरिऔध' के सदृश पं० रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि राष्ट्रीय कवियों को वेदों की महानता पर पूर्ण विश्वास था। पंडित रामचरित उपाध्याय ने लिखा है :—

ब्रह्म विनिर्मित वेद मुखों से मिलता है उपदेश तुझे,
इसलिए तू ज्ञान गेह है चिन्ता कैसी देश तुझे ?[६]

ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी भारत की भूतकालीन आध्यात्मिक उच्चता का वर्णन करते हुए कहा है :—

जिसने जग को था मुक्ति-मार्ग दिखलाया,
जिसने उसको था कर्मयोग सिखलाया,
था जिसका दिव्यालोक लोक में छाया,
जिसका गुण सबने मुक्त कंठ से गाया,
था जिसका सारा विश्व सदैव पुजारी,
वह भारत भूमि है यही, हमारी प्यारी।[७]

धर्म-ग्रन्थों के साथ आध्यात्मिक महापुरुष, ऋषि-मुनियों के जीवनचरित्र भी अनुकरणीय हैं, जिन्होंने भारत-भूमि पर जन्म ग्रहण कर इसका मान बढ़ाया है। इस

१—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ३३ :
२—वही, पृ० ४१ :
३—वही, पृ० ३२ :
४—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : चुभते चौपदे : पृ० २१
५—वही, पृ० १६
६—पं रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० ४ प्रथम संस्करण, राष्ट्रीय शिक्षा ग्रन्थमाला, ग्रन्थ २
७—ठाकुर गोपालशरणसिंह : संचिता पृ० ६३

काल के कवियों की दृष्टि भी गौतम, कणाद, पतंजलि, व्यास आदि ऋषियों, राम, कृष्ण जैसे दिव्य पात्रों तथा महापुरुषों के चरित्र की आध्यात्मिक विशेषताओं पर भी गई। रामनरेश त्रिपाठी ने भारत देश के अतीत गौरव का वर्णन करते हुए लिखा है कि यही वह देश है, जिसने सबसे पहले सभ्य होकर विश्व को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया और यहीं अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी गौतम, पतंजलि हुए हैं।[१] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'खंडहर के प्रति' कविता में देशवासियों को विस्मृति की निद्रा से जगाने के लिए जैमिनी, पतंजलि, व्यास आदि ऋषि-मुनियों का स्मरण किया है :—

आर्त्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनी-पतंजलि-व्यास ऋषियों का;
मेरी ही गोद पर, शैशव विनोद कर—
तेरा है बढ़ाया मान
राम-कृष्ण-भीमार्जुन-भीष्म नरदेवों ने।
तुमने मुख फेर लिया,
सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल,
हो बसे नव छाया में
नव स्वप्न ले जगे
भूले वह मुक्त प्रान साम-गान, सुधा-पान
तव चरणों में प्रणाम।[२]

पण्डित रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरितचिन्तामणि' महाकाव्य की रचना कर राम के दिव्य चरित्र की कथा कही थी। इसमें राम के चरित्र की वे विशेषताएँ नहीं उभर सकी हैं, जिनसे राष्ट्रीय-चरित्र का निर्माण हो सकता। फिर भी इस पुस्तक द्वारा अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के चित्रण में कुछ योग तो मिला ही है।

'द्वापर' में मैथिलीशरण गुप्त ने कृष्ण-बलराम आदि के दिव्य चरित्रों का आलेखन किया है। 'साकेत' महाकाव्य में राम, लक्ष्मण आदि का आध्यात्मिक चरित्र सम्मुख आता है। गुप्त जी ने राम के चरित्र को देवत्व की अपेक्षा आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है किंतु उनकी आध्यात्मिक श्रेष्ठता, अक्षुण्णता का संकेत करते हुए कह दिया है कि राज्याभिषेक के समारोह की तैयारी के बीच राम के हृदय में संघर्ष चल रहा था। वह अपार अधिकार उन्हें भार-सा दिखाई दे रहा था।[३]

१—रामनरेश त्रिपाठी : मानसी : पृ० ३८ : दूसरा परिवर्द्धित संस्करण अक्तूबर, १९३४

२—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : अनामिका : पृ० ३०

३—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० ५६ : संवत् २०१२, साहित्य प्रेस, चिरगाँव, झाँसी

सत्य-धर्म पालन के लिए राजा दशरथ प्राण-सम प्रिय पुत्र राम को वनवास का दण्ड देते हैं।[1] भारतीय इतिहास के मध्यकाल में तुलसीदास ने आध्यात्मिकता की पुण्यधारा प्रवाहित की थी। अतः उनके वन्दनीय चरित्र को लेकर सियारामशरण गुप्त ने तुलसीदास' कविता लिखी थी —

अन्तर्बाह्य प्रकाशक तुमने दिव्य-दीप दिखलाया,
तुमने हमें मुक्त होने का, राम-मन्त्र सिखलाया ॥[2]

इसी प्रकार सन् १९३७ में राम की कथा लेकर रामनाथ ज्योतिषी ने 'रामचन्द्रोदय' नामक प्रबन्ध-काव्य लिखा था।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने सन् १९३७ के लगभग 'तुलसीदास[3]' नामक पद्य-प्रबन्ध में तुलसी की जीवन-गाथा को नवीन सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की दृष्टि से लिखा था।[4] अनूप शर्मा ने सन् १९३७ में 'सिद्धार्थ' नामक महाकाव्य में गौतम बुद्ध के आध्यात्मिक चरित्र पर प्रकाश डाला था।

उदयशंकर भट्ट द्वारा रचित 'तक्षशिला' में भारत के विगत अशोककालीन इतिहास के प्रतिपादन में अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कृष्टता का भी वर्णन मिलता है :—

अधर सुधारस भासित मुखछवि, ऋषि जन जिस पल करते गान
वैदिक गीतों का अतीत में, जहां सभ्यता का उत्थान ॥[5]

ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् रचे गये थे और सत्याग्रह तथा सत्य ज्ञान की शुद्ध नीतिमय मूर्तियां हुई थीं।[6] भट्टजी ने इतिहास द्वारा भारत की गत आध्यात्मिक श्रेष्ठता की पुष्टि की है।

भारत का अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष ज्ञान-कर्म-भक्ति समन्वित था। कृष्ण द्वारा प्रसारित गीता कर्मण्यता, प्रवृत्त्यात्मकता एवं मानव-हित का संदेश देती है। पंडित रामचरित उपाध्याय ने 'गीता' की आध्यात्मिक विचारधारा और जीवन-दर्शन का प्रकाशन 'मुक्ति-मन्दिर' नामक कथा-काव्य में किया है। महाभारत में कृष्ण ने अर्जुन को धर्म के सत्य स्वरूप से परिचित करा कर संघर्ष के लिये प्रेरित किया था। उसी कथा का आधार ग्रहण कर कवि ने इस पुस्तक में दासता से मुक्ति के लिए संघर्ष

१—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० ६४ :
२—सियारामशरण गुप्त : दूर्वा-दल : पृ० ५० : भाद्र पूर्णिमा १९८६, साहित्य सदन, चिरगांव (झाँसी)
३—सूर्यकान्र त्रिपाठी 'निराला' : तुलसीदास : तृतीय संस्करण : भारती भंडार
४—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : तुलसीदास : पृ० ५१
५—उदयशंकर भट्ट : तक्षशिला : पृ० ४ : द्वितीय संस्करण १९३५, इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद
६—वही, पृ० ६

को धर्म-सम्मत एवं देशवासियों का स्वधर्म माना है।[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी राष्ट्रीय उत्थान के लिए गीता की कर्ममय आध्यात्मिकता का आश्रय लेते हुए कहा है :—

क्या यह वही देश है—
भीमार्जुन आदि का कीर्ति-क्षेत्र,
चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य-दीप्त
उड़तीहै आज भी जहाँ के वायुमण्डल में
उज्ज्वल, अधीर और चिरनवीन ?
श्रीमुख से सुना था जहां भारत ने
गीता-गीत—सिंहनाद
मर्मवाणी जीवन-संग्राम की
सार्थक समन्वय ज्ञान-कर्म-भक्ति योग का ?[2]

मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में राम कथा के माध्यम से और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' में कृष्ण-कथा के माध्यम से इसी क्रियाशील आध्यात्मिकता का उत्कृष्ट रूप मिलता है।

श्रीधर पाठक (जिनका रचना-काल भारतेन्दु-युग से छायावाद-युग के प्रारम्भिक वर्षों तक चलता रहा) ने भी मातृभूमि की वन्दना के साथ अतीतकालीन आध्यात्मिक गौरव की स्मृति में अपना योग दिया था।[3] श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'विजया दशमी' कविता में धर्मभीरु, सात्विक तथा निश्छल राम की कथा लिखी है। 'विजया दशमी का महान् पर्व आज भी भारतवासियों को भारत के धार्मिक महा-पुरुषों की विजय का रहस्य बताता है।

भारत के धर्म-ग्रन्थ तथा इतिहास इस बात की पुष्टि करते हैं कि देश के आध्यात्मिक गौरव की अभिवृद्धि में नारियों ने भी पूर्ण सहयोग दिया था। सावित्री, सुकन्या, अंशुमती जैसी सती एवं सेवार्थ जीवन व्यतीत करने वाली देवियों में पुरुषों के समान दिव्य-शक्ति थी। उन्होंने पुरुषों के समान स्वधर्मों का पालन किया था। रामनरेश त्रिपाठी ने 'सीता'[5] काव्य में सीता देवी के पातिव्रत-धर्म-संवेष्टित आध्यात्मिक चरित्र का दिव्य चित्रण किया है।' देवी पतिव्रता श्रीसीता जहां हुई थीं'[6] वह देश आज भी सम्मान के योग्य है। 'पंचवटी' खण्डकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने सीता के

१—पं० रामचरित उपाध्याय : मुक्ति-मन्दिर : पृ० ६० : पहली बार. सन् १६३४
२—सर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : जागो फिर एक बार (१६२१) : अपरा : पृ० १०
३—श्रीधर पाठक : भारत-गीत : पृ० ६१
४—सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ६२ षष्ठ संस्करण
५—रामनरेश त्रिपाठी : मानसी : पृ० १२३
६— ,, : ,, : पृ० ३८

चरित्र की आध्यात्मिक विशेषताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। भारत की नारियों में राष्ट्रीय जागृति के लिए धर्म तथा इतिहास की महान् एवं त्यागशील नारियों के दिव्य चरित्र का आलेखन था। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' में यशोधरा के त्यागमय जीवन की कथा लिखी है। गौतम बुद्ध ने सिद्धिप्राप्ति के लिए राजपाट और भौतिक वैभव का परित्याग किया था लेकिन यशोधरा ने उनके बीच रहते हुए, भौतिक कर्तव्यों को पूर्णतया निभाते हुए जिस त्याग एवं संयम का आदर्श रखा था वह अनुकरणीय है। भारतीय आध्यात्मिक उत्कर्ष के इतिहास में यशोधरा का जीवन चरित्र कर्ममय आध्यात्मिकता का सुन्दर निदर्शन है।

आज भी खुदते हुए खंडहरों में यही वाणी गूँज रही है कि 'भारत जननी स्वयं सिद्ध है सब देशों की रानी।'[1] अध्यात्म तथा दर्शन के क्षेत्र में विश्व के अन्य देश उसकी बराबरी नहीं कर सकते। यह आध्यात्मिक उत्कर्ष समानाधिकार पर टिका हुआ था। व्यक्ति मात्र की स्वतन्त्रता की संरक्षा के लिए ही महाभारत हुआ था। सच्चे अर्थों में मुक्ति या मोक्ष का जन्म भारत में हुआ है। मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है :—

उत्पन्न मुक्ति भी हुई अहा ! भारत में,
मनु ने स्वतन्त्र को सुखी कहा भारत में !
अधिकार गर्व यों अटल रहा भारत में !
भाई-भाई तक लड़े महाभारत में।।
शर शय्या पर भी राजनीति समझाई।
हम हैं भारत सन्तान करोड़ों भाई।।[2]

उनके मत में हमारे पूर्वजों की आध्यात्मिक चेतना इतनी स्पष्ट थी कि वे निःस्वार्थ, निर्द्वन्द्व और निर्लिप्त जीवन व्यतीत करते थे। वे इतने योग्य और उदार थे कि विश्व की सुख, शान्ति एवं समृद्धि की शुभकामना से परिपूरित होकर समस्त जगत् को दिव्य संदेश सुनाते थे :—

वे थे ऐसे योग्य उदार, तथा कुटुम्ब उनका संसार।
जगती की सुख शान्ति समृद्धि, और उन्होंने की शुभ वृद्धि।।[3]

इस युग में राष्ट्रवाद के उद्बोधन के लिए अतीतकालीन आध्यात्मिकता का जो रूप प्रस्तुत किया गया था, वह लोकमंगल की कामना से पूर्ण था। निःसन्देह यह गांधी जी की राष्ट्रवादी-धार्मिक-भावना का प्रभाव था। कवि वर्ग ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया था कि आज भी इस विषम-युग में जीवन के कठिन कर्मक्षेत्र

१—मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेशी संगीत : पृ० ७७ : प्रथम संस्करण सं० १९८२ वि०
२—मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेशी संगीत : पृ० ८७ : प्रथम संस्करण सं० १९८२ वि०
३— " : हिन्दू : पृ० २६

से पार उतरने के लिए विश्व का कोई भी देश भारत से आचार-विचार, त्याग-भाव तथा शक्ति-भावना की शिक्षा ले सकता है।[1] इस आध्यात्मिक श्रेष्ठता की प्राप्ति का प्रमुख कारण था पूर्वजों द्वारा कठिन ब्रह्मचर्याश्रम का पालन।[2] गांधी जी ने विशेष रूप से राष्ट्रीय प्रगति के लिए ब्रह्मचर्य धर्म के पालन पर बल दिया था, जैसा कि उनकी आध्यात्मिक विचारधारा के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की आध्यात्मिकता कर्मण्यता का संदेश देती है। उदाहरणार्थ :—

गावें द्विजनेता वह गान—
जिससे हो जावे उत्थान,
गूँजे आत्म-तत्व की तान
सत्यालोक सुमार्ग दिखावें ॥[3]

वह पूर्णतया भारतीय संस्कृति के रंग में रँगी है। गीता द्वारा प्रचारित ज्ञान भक्ति एवं कर्म से समन्वित है। उनके अतीत का आध्यात्मिक उत्कर्ष भारत के वर्तमान और भविष्य का मानदंड है। उन्होंने अपने पूर्वजों के दिव्य-चरित्र का गान करते हुए, अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी साम्राज्यवाद की पाशविकता एवं स्वार्थपरता की ओर भी इंगित किया है। इसके अतिरिक्त पराधीनता के अभिशाप से उत्पन्न हीन भावना को मिटाने के लिए, युग-युग से चले आ रहे आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर देशवासियों को उन्मुख किया है :—

कर्मयोगी किस लिए तू दुःखभोगी ?
लक्ष्य तेरा मुक्ति है, स्वाधीनता है ॥[4]

गुप्त जी की दृष्टि में सिकन्दर, नेपोलियन आदि महान विजेताओं का वह आदर नहीं है, जो बौद्ध धर्म प्रचारक गौतम बुद्ध का है।[5] इसका कारण यह है कि आज भी गौतम बुद्ध चीन, जापान, स्याम आदि में आध्यात्मिक दृष्टि से राज्य कर रहे हैं। भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का इससे अधिक ज्वलंत उदाहरण नहीं मिल सकता। गुप्तजी ने आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन नवीन युग की विचारधारा के प्रकाश में कुछ परिशोधित रूप में प्रस्तुत किया है। इसके द्वारा उन्होंने अपने युग की गांधीवादी विचारधारा सत्य-अहिंसा का प्रतिपादन भी किया है। इनका काव्य पराधीन भारत को पुनः गौरव तथा स्वाभिमान के उच्चासन पर आरूढ़ करने में समर्थ है।

१—मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेशी संगीत : पृ० २९
२—वही, पृ० ३०
३—वही, पृ० ५
४—वही, पृ० ६३
५—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ३८
६—वही, पृ० ३३, ३४

पंडित रामचरित उपाध्याय का अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण भी नवीन प्रेरणा देने वाला है। उन्होंने देशवासियों को गीता का उपदेश देकर स्वतन्त्रता-संग्राम में रत हो जाने का आह्वान किया है। उनकी विचारधारा पर आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द और लोकमान्य तिलक का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे वैदिक युग और ऋषि-मुनियों के आदर्शों की पुनःस्थापना करना चाहते हैं।[1]

मैथिलीशरण गुप्त तथा पंडित रामचरित उपाध्याय के सदृश अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का भव्य चित्र खींचा है। इनकी विचारधारा पर भी आर्यसमाज का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है क्योंकि स्वामी दयानन्द 'सरस्वती' का यह दृढ़ विश्वास था कि वेद संसार की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है।[2] इन्होंने मैथिलीशरण गुप्त तथा पंडित रामचरित उपाध्याय की अपेक्षा भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन एक विशेष उद्देश्य से किया है। अपनी धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता के कारण केवल मात्र वेदों या ऋषि-मुनियों की दिव्यता का प्रचार नहीं किया है अपितु उनके उदात्त रूप को प्रस्तुत कर, विश्व-बन्धुत्व की भावना की अभिवृद्धि कर, धार्मिक संकीर्णता और विद्वेष-भावना को मिटाना चाहा है। वेदों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :—

सभी जाति से प्यार वे हैं जताते।
सभी देश से नेह वे हैं निभाते॥[3]

'हरिऔध' ने समय के परिवर्तन को दृष्टि में रख कर अध्यात्म के सक्रिय एवं चेतन रूप को ग्रहण किया है। आध्यात्मिक प्रगति के लिये, वे लोकसेवा के मार्ग को आवश्यक मानते हैं। उनकी आध्यात्मिकता का सर्वोत्कृष्ट ध्येय है —व्यक्तिगत जीवन के राग-द्वेष को लोकहित में समाहित कर देना। राष्ट्रीय-हित को ध्यान में रख कर भारत की परम्पराप्राप्त आध्यात्मिकता का स्वरूप, बौद्धिक व्याख्या एवं विश्लेषण द्वारा परिवर्तित कर, हरिऔध जी ने लोक-सेवा, लोक-रक्षा आदि नये आदर्श तथा मूल्य, समाज और देश को प्रदान किये हैं। उनका 'प्रियप्रवास' इसका प्रमाण है। अतीतकालीन आध्यात्मिक-उत्कर्ष का यह नवीन रूप राष्ट्र की उन्नति को दृष्टिगत कर किया गया था।[4]

ठाकुर गोपालशरण सिंह अत्यधिक भावुक कवि थे। उनके वर्णन में करुणा और मार्मिकता का अधिक समावेश हुआ है। भारत की भूतकालीन उन्नति को उन्होंने

१—पं० रामचरित उपाध्याय : राष्ट्र-भारती : पृ० ७

२—डा० केसरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का साँस्कृतिक स्रोत : पृ० १३५

३—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : पद्म प्रसून : पृ० १६

४—'उन्नति की भावना से प्रेरित होने के कारण ही कवि अपनी प्राचीन संस्कृति के भक्ति जैसे तत्व का भी देशहित में प्रयोग कर रहा है।'

—डा० केसरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का साँस्कृतिक स्रोत : पृ० १४८

स्वप्नवत् मान लिया है, अब जिसका सत्य होना कठिन ही नहीं असम्भव है। अतीतौत्कर्ष की तुलना में वर्तमान का पतन असह्य होने के कारण ही वे 'सिर कूटने' या 'विष घूंटने' की बात कह कर अपने को अभिशप्त करते हैं।[१] वस्तुतः इनका अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण सृजनात्मक नहीं है। उसमें निराशा की मात्रा अधिक है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन अधिक सबल तथा चेतन शब्दों में किया है। वह पूर्णतया भारतीय संस्कृति के अनुकूल होते हुए भी ओज से परिपूर्ण है। उनकी राष्ट्रीयता का आध्यात्मिक और दार्शनिक रूप भी प्रबल है।[२]

जयशंकर प्रसाद ने गांधीजी से प्रभावित होकर, भारत के विगत आध्यात्मिक उत्कर्ष के चित्रण में, सत्य, अहिंसा तथा त्याग पर विशेष बल दिया है :—

धर्म का ले लेकर जो नाम, हुआ करती बलि कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शान्तिसंदेश, सुखी होने देकर आनन्द॥
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट्, दया दिखलाते घर-घर घूम॥[३]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में भी कहीं कहीं भारत के अतीतोत्कर्ष के वर्णन मिलते हैं। वैसे प्रायः चतुर्वेदीजी का आध्यात्मिक उत्कर्ष का स्वरूप वर्तमान विषमता के साथ तुलनात्मक ढंग का है—

कहाँ देश में हैं वसिष्ठ, जो तुझको ज्ञान बतायें ?
किये गये निःशस्त्र, किसे कौशिक रणकला सिखायें ?[४]

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने 'पाटलीपुत्र की गंगा से' कविता में यह अभिव्यंजित किया है कि आज भी गंगा के तट पर गौतम के उपदेश और उसकी लहरों में अहिंसा के संदेश ध्वनित हो रहे हैं।[५]

इस युग की हिन्दी कविता में भारत की अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कृष्टता का चित्रण करने वाले अनेक महाकाव्य, खंडकाव्य, कथा-काव्य, गीत आदि लिखे गये जैसे 'साकेत', 'तक्षशिला', 'सिद्धार्थ', 'पंचवटी', 'तुलसीदास' आदि।

हिन्दी-कविता में अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष

नैतिक आचरण द्वारा ही धर्म-प्रधान भारत देश अतीतयुगीन आध्यात्मिक

१—ठाकुर गोपालशरण सिंह : संचिता : पृ० ६२
२—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : अनामिका : पृ० ५८
३—श्रीचन्द्र : सम्पादक : जयहिन्दकाव्य : पृ० ६६
४—माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० २३
५—रामधारीसिंह दिनकर : पाटलिपुत्र की गंगा से इतिहास के आंसू पृ० ३७

उत्कर्ष प्राप्त कर सका था। नैतिकता मनुष्य के आध्यात्मिक विकास का प्रथम आवश्यक सोपान है, जिसके अभाव में किसी प्रकार की श्रेष्ठता अथवा उच्चता की प्राप्ति असंभव है। नैतिकता की कठोर शृंखला में कस कर ही भारतीय-जीवन विश्व में अपना मस्तक ऊंचा कर सका था। देश के राष्ट्रीय जीवन को अधिक सबल बनाने के लिए गांधी जी, आर्यसमाज तथा सभी प्रमुख नेताओं की दृष्टि भारत के सुदूर अतीत को भेद अपने पूर्व पुरुषों के संयमित तथा नियमित जीवनादर्शों तथा नैतिक मूल्यों को खोज लाई। गांधीजी के मन में नैतिकता मनुष्य में सबसे बड़ा धर्म थी। हिन्दी-साहित्य में, विशेषतया काव्य में भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ ही नैतिक उत्कर्ष की भी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

गत काल में हमारे पूर्वजों का आचरण नैतिक आदर्शों से प्रेरित था। वे सत्यासत्य, न्याय-अन्याय, धर्माधर्म, उचित-अनुचित का पूर्णतया ध्यान रखते थे। उनका चरित्र पवित्रता तथा अध्यवसाय से पूर्ण था, इसी कारण उनको सम्मान और महत्व प्राप्त हुआ था। इसी भाव को गुप्त जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

वह गौरव वह मान महत्व, वह अमरत्व, तत्वमय सत्व,
सबके ऊपर चारु चरित्र, पवित्रता का जीवन चित्र
वह साधन वह अध्यवसाय, नहीं रहा हम में अब हाय।
इसीलिये यह अपना हास, चारों ओर त्रास ही त्रास ॥[1]

नैतिकता के दो पक्ष हैं। प्रथम बाह्याचरण का शुद्ध रूप अर्थात् मन के अन्दर छिपी हुई शक्तियों का प्रकाश। आलस्य, प्रमाद, तन्द्रा, असत्य आदि दुर्वृत्तियों का दमन और सत्य, धृति, अभय, ज्ञान, मैत्री आदि सद्वृतियों का उन्नयन, मानसिक प्रकाश के उदाहरण हैं। नैतिकता के आवश्यक आधार स्तम्भ हैं, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में—

'वस्तुतः ये और इसी प्रकार के और दूसरे गुण मनुष्य-जीवन और सामाजिक जीवन के टिकाऊ खम्भे हैं; जीवन इनके दृढ ठाठ पर सब देश और सब कालों में पनपता हुआ चलता रहता है।'[2]

सत्य और धर्म के उच्चादर्शों को कर्म के मार्ग से अपने जीवन में प्रत्यक्ष कर दिखाना ही नैतिकता है।

'चरित्र के आदर्श में शरीर और मन में दोनों का विकास सम्मिलित है।'[3] हमारे ऋषि-मुनियों का जीवन धर्म और सत्यता के उच्चासन पर स्थित था। उन्होंने

१—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० २५
२—वासुदेवशरण अग्रवाल : माता भूमि : पृ० २१०
३—वही, पृ० २१२

नैतिकता के महत्व को भली भांति समझ लिया था।

'प्रियप्रवास' महाकाव्य की रचना द्वारा श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने सन् १६२० के पूर्व ही लोकसेवा तथा लोकरक्षा के लिये जीवनोत्सर्ग का एक नवीन आदर्श रखा था। कृष्ण और राधा का चरित्र मनुष्योचित शिष्टता, व्यवहार-शुद्धि, न्याय तथा प्रेमपूर्ण है। देशहित के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग वर्तमान काल में भी अनुकरणीय एवं वंदनीय है। राम का जीवन तो अतीतकाल नैतिक उत्कृष्टता का उदाहरण ही है। रामनवमी महान् पर्व आज भी हमें नैतिकता का संदेश देता है। इस काल के कवियों की विशेष दृष्टि रामचरित पर थी। अतः राम-जीवन से सम्बन्धित अनेक काव्य रचनायें उपलब्ध हैं। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत', महाकाव्य तथा 'पंचवटी' खंडकाव्य की सर्जना कर मर्यादा पुरुषोत्तम राम, लक्ष्मण, सीता, उर्मिला आदि के नैतिक जीवनादर्शों की स्थापना की है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'विजयादशमी'[1] कविता लिखी, मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य के अतिरिक्त 'रामनवमी'[2] काव्य की रचना भी की 'कि स्वदेशस्य हिताय सहर्ष करें सभी कुछ हम प्रति वर्ष, जिससे राम के अमृतोपम चरित्र के ज्ञान द्वारा भारत वर्तमान दुरवस्था का विनाश कर विजय प्राप्त करे और ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी 'विजयदशमी' कविता लिखी है।

केवल अतीतकालीन महान् पुरुषों के जीवन में ही नैतिकता चरितार्थ नहीं हुई थी, साधारण जनता का जीवन भी नैतिकादर्शों से पूर्ण था। 'साकेत' में गुप्त जी ने साधारण पुरवासियों के नैतिकतापूर्ण चरित्र के सम्बन्ध में लिखा है :—

एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
पौर जन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट उद्योगी सभी,
बाह्यभोगी आन्तरिक योगी सभी ॥[3]

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के पूर्व पुरुषों के सद्‌गुणों का वर्णन वर्तमान-कालीन जीवन के अभावों के उल्लेख द्वारा भी किया है। आज हमारे जीवन में उन सद्‌गुणों का अभाव है जो हमारे पूर्वजों के रक्त के साथ घुले हुए थे। अब हमारा जीवन उस प्राचीन सत्य-सरल शिक्षा से हीन ; आत्म विश्वास, साहस-शौर्य, अविचल उद्योग और उत्साह से विहीन है।[4] इसके अतिरिक्त 'सिद्धराज' नामक ऐतिहासिक खण्ड-काव्य में उन्होंने मध्यकालीन वीरों की झांकी प्रस्तुत करते हुए भौतिकता की अपेक्षा नैतिकता को अधिक महत्व दिया है। मातृभक्त राजा जयसिंह ने कर के उस

१—सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ९२
२—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ७१
३—मैथिलीशरणगुप्त : साकेत : पृ० २२
४—मैथिलीशरणगुप्त : हिन्दू : पृ० २४, २५

निदेशपत्र को फाड़ फेंका था, जिससे प्रति वर्ष लाखों का लाभ होता था। उस काल का आदर्श था :—

राजकोष रिक्त हो, तो चिन्ता नहीं मुझको,
राज्य में प्रजा की सुख-सिद्धि, निधि-वृद्धि हो,
पुष्ट प्रजा-जन ही हैं सच्चे धन राजा के।[1]

यह नैतिकता आत्म-सम्मान की भावना से शून्य नहीं थी। गाँधी जी ने राजनीति को आध्यात्मिकता एवं नैतिकता के सिद्धान्तों पर प्रतिपादित कर नियंत्रित करना चाहा था। उनकी उसी भावना को गुप्त जी ने काव्य में मुखर रूप प्रदान किया है। भारत बह देश है जहां पूर्वकाल से नैतिकता का राज्य था। राजा और प्रजा का सम्बन्ध नैतिकता की आधारशिला पर स्थित था। मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

यहां पूर्व से ही सविवेक,
राजा-प्रजा प्रकृति थी एक
तब तो राम-राज्य सुख भोग
करते थे तुम हिन्दू लोग॥[2]

राजनीति नैतिकता से शून्य नहीं थी। इसी कारण मानव-मात्र की स्वतन्त्रता अधिकार-गर्व पर विशेष बल दिया गया था। 'साकेत' महाकाव्य में गुप्तजी ने राजा दशरथ के समय की, राजा-प्रजा के नैतिकतापूर्ण प्रीति सम्बन्ध के विषय में लिखा है। 'तक्षशिला' महाकाव्य में उदयशंकर भट्ट ने भी राजा-प्रजा सम्बन्ध में मान्य नैतिकादर्शों के सम्बन्ध में लिखा है—

थी अनुरक्त प्रजा राजा में नृपति प्रजा साधन में
था सार्थक अद्वैतवाद अविकल गति से जीवन में॥[3]

भट्टजी ने अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष के वर्णन में, अप्रत्यक्ष रूप से अपने युग की अनैतिकतापूर्ण साम्राज्यवादी नीति की ओर इंगित किया है।

'सिद्धराज' खण्ड-काव्य में गुप्त जी ने ऐतिहासिक कथा के माध्यम से नैतिकतापूर्ण आचरण पर बल दिया है। रानकदे के उज्ज्वल चरित्र द्वारा भारतीय नारी के सम्मुख पतिव्रत-धर्म, शील, शक्ति आदि का उज्ज्वल आदर्श रखा है।[4] 'प्रिय प्रवास' में 'हरिऔध' जी राधा के प्रेम को नैतिकता के बंधन में बांध कर प्रस्तुत कर चुके थे। अतः मैथिलीशरण गुप्त ने ऐतिहासिक कथा के आधार पर 'यशोधरा' में यशोधरा के

१—मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज: पृ० २३ :
२—मैथिलीशरण गुप्त : पृ० ३९-४०
३—उदयशंकर भट्ट : तक्षशिला : पृ० ३३
४—मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज : पृ० ७२

सत्याचरण का महान् आदर्श रखा है। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहां की वीर राजपूत नारियों ने अपने धर्म तथा सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि में भस्म होकर आत्म-बलिदान का अपूर्व उदाहरण रखा है। 'निराला' जी की 'दिल्ली' कविता में देश की वीर-नारियों के आत्म-बलिदान का महान नैतिक आदर्श मिलता है :—

क्या यह वही देश है—
यमुना—पुलिन से चल
'पृथ्वी' की चिता पर
नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने
किया आहूत जहां विजित स्वजातियों को
आत्म बलिदान से :—
पढ़ो रे पढ़ो रे पाठ,
भारत के अविश्वस्त अवनत ललाट पर
निज चिताभस्म का टीका लगाते हुए—
सुनते ही रहे खड़े भय से विवर्ण जहां
अविश्वस्त संज्ञाहीन पतित आत्म विस्मृत नर ?[1]

भारतीय नारी की नैतिक उच्चता का आदर्श प्रस्तुत किया गया। श्री रूप-नारायण पांडे ने लिखा है—

सावित्री, सीता आर्या
ऐसी हैं कहां सुभार्या
जिनसे यम भी हो हारा ।।[2]

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने काव्य-क्षेत्र में उदित होकर भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के नैतिक पक्ष का चित्रण अधिक गौरवमय शब्दों में किया है। १९३३ ई० में लिखित 'मिथिला' काव्य में कहा है—

मैं जनक—कपिल की पुण्य जननि, मेरे पुत्रों का महा ज्ञान;
मेरी सीता ने दिया विश्व की रमणी को आदर्श दान ।।[3]

पंडित रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' रचित 'राखी' नामक ऐतिहासिक खण्ड-काव्य की कथा इतिहास के मुगल काल से ली गई है। इसमें भी कवि ने वीर राजपूत नारियों के उच्चतम नैतिक आदर्श, वीरता, सेवा, त्याग की प्रतिष्ठा की है, जिन भावनाओं से प्रेरित होकर राणा सांगा की विधवा रानी राजमाता करुणावती, अन्य

१—निराला : दिल्ली : अनामिका : पृ० ६०
२—रूपनारायण पाँडेय : पराग : पृ० ४२
३—रामधारीसिंह दिनकर : इतिहास के आँसू : पृ० ४३

वीर रानियाँ तथा १३००० राजपूत बालाएं आत्मरक्षा के लिए बारूद में आग लगा कर भस्म हो गई थीं।[1] इसके अतिरिक्त इस कथा-काव्य में मुगल बादशाह हुमायूं के चरित्र की नैतिक उत्कृष्टता पर प्रमुख रूप ने प्रकाश डाला गया है। असहाय रानी करुणावती ने दिल्लीश्वर मुगल शासक हुमायूं को अपनी रक्षा के लिये 'रक्षा-बन्धन' का उपहार भेजा था, यह इतिहास विदित है। हुमायूं अपनी हिन्दू बहन की पुकार सुन जाति-धर्म-भेद भूलकर अपनी अन्तश्चेतना की नैतिकता से प्रेरित होकर तत्काल चल पड़ा था। उसके चित्तौड़ पहुंचने के पूर्व ही वीर राजपूत नारियां आत्मा-हुति कर चुकी थीं, लेकिन उसने नैतिक धर्म के निर्वाह के लिए करुणावती के बालक उदयसिंह को, उसके चाचा के संरक्षण में सिंहासन पर बिठाया और आक्रमणकारी बहादुरशाह को चित्तौड़ से ही नहीं गुजरात से भी निकाल भगाया। हुमायूं के नैतिकतापूर्ण चरित्र के उल्लेख द्वारा[2] कवि ने भारत के दोनों अंगों, हिन्दुओं तथा मुसलमानों को समान रूप से राष्ट्रीय भावना से भरना चाहा है :—

है श्रेष्ठ धर्म से मनुष्यता
पूर्वज इसको हैं रहे बता।
अथवा यदि तुममें शक्ति नहीं—
अपनी बहनों में भक्ति नहीं।।[3]

अतीत गौरव की यह गाथा हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष मिटाने में सहायक हो सकती है। गांधी जी ने राष्ट्रीय चेतना के उद्बोधन के लिये हिन्दू-मुस्लिम एकता को आवश्यक माना था।

गाँधी जी ने राष्ट्रवाद के लिये अतीत के जिस नैतिक आधार को अपनाया था उसकी पूर्ति इन कवियों की वाणी द्वारा हुई।

हिन्दी कविता में अतीतकालीन भौतिक उत्कर्ष

भारत वह देश है जहाँ तत्व चिंतन ने जीवन-विकास के भौतिक उपकरणों की अवहेलना नहीं की थी। अतीतकाल में जब भारतवासी पूर्णतया स्वतन्त्र थे, देश में धन-धान्य का अभाव नहीं था। भारत देश स्वर्ण प्रतिमा के नाम से विख्यात था। समृद्ध भौतिक ऐश्वर्य के कारण ही वह विदेशियों द्वारा आक्रान्त हुआ। अति प्राचीन युग से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात् चतुर्वर्ग की साधना को चरम पुरुषार्थ माना गया है। अर्थ और काम की धर्म द्वारा सिद्धि भारतवासियों का कर्म पक्ष था और मोक्ष अन्तिम ध्येय।

हिन्दी साहित्यकारों ने भौतिक उत्कर्ष के भी सुन्दर चित्र खींचे हैं। अन्य विधाओं के साथ कला-कौशल के प्रथम आचार्य भी भारत में ही हुए थे। पुरातत्व

१—पं० रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' : राखी : पृ० १३९, १४०
२—पं० रामकरण द्विवेदी 'अज्ञात' : राखी : पृ० १०३
३—वही : पृ० १२४

विभाग द्वारा जो खुदाई का कार्य हुआ है उससे अतीतकालीन शिल्पकला की समृद्धि के चिह्न आज भी मिले हैं। सिन्धु-सेतु, दक्षिण के मन्दिर प्राचीन भारत की कला—कौशल के निदर्शन हैं। चित्रकला, वास्तुकला, संगीत, अभिनय आदि विविध कलायें अपने चरम विकास को प्राप्त हुई थीं। केवल पुरुष ही नहीं, नारियां भी निपुण थीं इतिहास इसका साक्षी है। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की सभ्यता की प्राचीनता के सम्बन्ध में लिखा है :—

तुम हो सबसे पहले सभ्य, जिन्हें न कुछ भी रहा अलभ्य।
तुम हो उनके ही कुलशील, जो थे सर्व समर्थ सलील॥

'साकेत' महाकाव्य में गुप्त जी ने राजा दशरथ के समय की साकेत नगरी का जो भव्य चित्र अंकित किया है, वह सहस्रों वर्ष पूर्व भारत के भौतिक उत्कर्ष का प्रमाण है :—

देख लो साकेत नगरी है यही,
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।
केतु—पट अंचल—सदृश हैं उड़ रहे,
कनक-कलशों पर अमर-हय जुड़ रहे।
सोहती हैं विविध शालायें बड़ी,
छत उठाये भित्तियां चित्रित खड़ी॥[1]

शिल्प कला अपने पूर्ण विकास को प्राप्त हो चुकी थी, इसी कारण देव-दम्पत्ति भी वहां विश्राम करना चाहते थे। उस युग के शिल्प-कौशल के आदर्श के सम्बन्ध में गुप्त जी ने लिखा है :—

कामरूपी वारिदों के चित्र से,
इन्द्र की अमरावती के मित्र—से,
कर रहे नृप-शोध गगन-स्पर्श हैं—
शिल्प-कौशल के परम आदर्श हैं॥[2]

सभी घरों में सुख समृद्धि की प्रतीक गौशालाएं थीं और अश्व थे।[3] 'सिद्धराज' खण्ड-काव्य के प्रथम सर्ग में ही भौतिक ऐश्वर्य का चित्र मिल जाता है। इसकी कथा द्वादश शताब्दी की है। अतः इतिहास के मध्यकाल में जब देश स्वतन्त्र था और राजा अपना था, देशवासी सुखी और सम्पन्न थे। महोबे के प्राकृतिक सौन्दर्य, भूमि की उर्वरता, प्रजा की सुख-वृद्धि, राजा का धन कुबेर और सुकर्मी होना तथा ललित कला आदि के वर्णन में अतीत गौरव की अनुभूति में देशभक्ति का स्वर प्रमुख है। भारत के प्राचीन ऐश्वर्य के वर्णन से कवि ने आदर्श राष्ट्र का स्वप्न देखा है।[4]

१—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० १६
२—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ २०
३—वही, पृ० २१
४—मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज : पृ०

पंडित रामचरित उपाध्याय और ठाकुर गोपालशरणसिंह ने भौतिक उत्कर्ष की दृष्टि से भी अतीतकालीन भारत को अन्य देशों की अपेक्षा श्रेष्ठ ठहराया है। उपाध्यायजी के मतानुसार सर्वप्रथम भारत देश में ही विद्या, बल, बुद्धि का आगमन हुआ था।[१] गोपालशरण सिंह के अनुसार भारत की सुख-सम्पदा सुरलोक सदृश थी।[२]

धर्म तथा नीति द्वारा भौतिक उत्कर्ष की सिद्धि भारतवासियों का स्वधर्म था। इसी कारण पूर्व पुरुष भौतिक प्रसाधनों की अवहेलना कर सरल जीवन यापन करते थे। मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह प्रभृति विद्वानों ने अतीतकालीन भौतिक उत्कर्ष के वर्णन में आध्यात्मिकता तथा नैतिकता का प्राधान्य दिखाया है। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत महाकाव्य से यह स्पष्ट है कि पूर्वजों की शिल्प कला का विकास, धार्मिक एवं नैतिक रुचि के अनुकूल हुआ था :—

गेहियों के चारु-चरितों की लड़ी छोड़ती है छाप, जो उन पर पड़ी।
स्वच्छ, सुन्दर और विस्तृत घर बनें, इन्द्र धनुषाकार तोरण हैं बनें ॥[३]

ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी पूर्व-पुरुषों के आदर्श चरित्र का वर्णन इस प्रकार किया है :—

अपने वश में ही जहां सभी का मन था,
तन हृष्ट-पुष्ट था और विमल आनन था,
धन के रहते भी जहां सरल जीवन था,
सब जन थे जहां स्वतन्त्र न कुछ बन्धन था,
रक्षक थे जिसके देव-वृन्द सुखकारी
वह भरत-भूमि है यही हमारी प्यारी ॥[४]

भौतिक-उत्कर्ष के मद में राज या प्रजा अपना विवेक नहीं खोते थे।[५] 'निराला' जी ने 'यमुना के प्रति' कविता में यमुना की कल-कल ध्वनि में देश के विगत सौभाग्य की गाथा सुनी है। इसमें भारतीय संस्कृति के भौतिक पक्ष की प्रेम-प्रधान प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है। यमुना को देखकर कवि अतीत काल की शत-शत प्रणय कथाओं, ऐन्द्रिय सुख और मादक राग की स्मृति में डूब जाता है। विगत काल में भौतिक क्षेत्र में भी जीवन और जगत् के अनेक रहस्यमय द्वार खुले थे।[६] रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी भारत की पूर्व उच्च संस्कृति के सम्बन्ध में अत्यन्त कलात्मक भाषा में लिखा है :—

१—पं० रामचरित उपाध्याय : हिन्द हमारा : राष्ट्रभारती : पृ० ५
२—ठाकुर गोपालशरण सिंह : संचिता : पृ० ६४
३—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० १९
४-५—ठाकुर गोपालशरण सिंह : संचिता : पृ० ६५
६—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : परिमल : पृ० ५३

नीरव निशि की गंडकी विमल कर देती मेरे विकल प्राण,
मैं खड़ी तीर पर सुनती हूं, विद्यापति-कवि के मधुर गान ।।[1]

डा० रामकुमार वर्मा ने प्रमुख रूप से छायावादी कविता लिखी है लेकिन १९३३ ई० में प्रकाशित दो कविताओं—'नूरजहां' और 'शुजा' में उन्होंने मुस्लिम इतिहास के दो प्रसिद्ध पात्रों को चुना है और मुगल शासकों के भौतिक ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य का वर्णन किया है।'नूरजहां' का सौन्दर्य, अभिमान और वैभव इतिहास-प्रसिद्ध है। उनके सौन्दर्प के सम्बन्ध में कवि ने कहा है :—

कहता है भारत तेरे गौरव की एक कहानी
वैभव भी बलिहार हुआ था तेरे मुख का पानी
नूरजहां! तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी
तेरी इच्छा ही बनती थी जहाँगीर की रानी ।।[2]

'शुजा' कविता में कवि ने शाहजहां द्वारा अतीत वैभव का स्मरण कराया है।[3] इतिहास का हिन्दू काल ही नहीं मुस्लिम-काल भी हमारे लिए गौरव का विषय है। गांधीजी की उदारवादी राष्ट्रीयता के फलस्वरूप हिन्दी कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम समन्वित जनता के लिए समान रूप से हिन्दू तथा मुसलमान शासकों के उज्ज्वल चरित्रों का चयन करना प्रारम्भ कर दिया था। गुरुभक्तसिंह का 'नूरजहाँ' महाकाव्य इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है।

हिन्दी साहित्य में अतीतकालीन भौतिक उत्कर्ष के अन्तर्गत सबसे अधिक वर्णन वीर-भावना का हुआ है। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं से वीर-चरित्रों को चुना गया, जिनसे देशवासियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष-रत होने के लिये प्रोत्साहन मिल सकता था। नाटक अथवा उपन्यास की अपेक्षा काव्य में शौर्य भावना का अंकन कम हुआ है क्योंकि कवि-हृदय का अधिक सामंजस्य आध्यात्मिकता तथा नैतिकता के उच्च आदर्शों से हुआ था। वैसे ओजपूर्ण वीर-रस प्रधान कविताओं के साथ ही कुछ वीर-रस पूर्ण काव्य भी लिखे गये हैं।

'मुक्ति-मंदिर' में पंडित रामचरित उपाध्याय ने स्वत्वापहारी दुर्जनों के युद्ध करना धर्म माना है।[4] कृष्ण ने महाभारत में अर्जुन को यही उपदेश दिया था। उपाध्याय जी ने 'रामचरित चिन्तामणि' महाकाव्य में भी राम-कथा के वर्णन में

१—रामधारीसिंह दिनकर : इतिहास के आंसू : पृ०
२—डा० रामकुमार वर्मा : रूपराशि : पृ० ६३
३ —डा० रामकुमार वर्मा : रूपराशि : पृ० ६३
४—रामचरित उपाध्याय : मुक्ति-मन्दिर : पृ० ६

वीर-रस का प्रदर्शन किया है । मैथिलीशरण गुप्त ने सिद्धराज' खण्ड-काव्य की रचना वीर-पूजा के हेतु की थी । स्वयं लेखक ने निवेदन में लिख दिया है कि मध्य-कालीन वीरों की झलक देने वाला यह काव्य है। उस समय वीर क्षत्राणी नारी स्वदेश और स्वतन्त्रता के रक्षार्थ ही पुत्र को जन्म देतीं थीं :—

देवि, मैं हूं, एक क्षत्राणी;
जनती हैं जूझने के अर्थ ही जो पुत्र को ।।[२]

गुप्त जी ने जयसिंह की उदारता, वीरता, उच्चता एवं शारीरिक पुष्टता का भी उल्लेख किया है । रामनरेश त्रिपाठी ने भारत के पूर्व पुरुषों के विषय में कहा है 'विजयी, बली जहां के बेजोड़ सूरमा थे ।'[३] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'जागो फिर एक बार' कविता में गुरुगोविन्द सिंह की वीरता का घोर स्वर निनादित कर उनकी वीर-प्रतिभा का स्मरण कराया है :—

सवा सवा लाख पर एक को चढ़ाऊंगा,
गोविन्दसिंह निज नाम जब कहाऊंगा ।।[४]

इस काव्य की रचना १९२१ में हुई थी जैसा कि कविता द्वारा नीचे दिये गये रचना काल से स्पष्ट है। यह गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का काल था। अतः जनता को जागृत कर स्वतन्त्रता-संग्राम की ओर उन्मुख करने के लिए भारतीय इतिहास के वीर चरित्रों का काव्य में वर्णन आवश्यक था ।

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में जिस वीर-भावना का विशद् चित्र अंकित किया है, उसे काव्य में भी स्थान दिया है। 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।[४] सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'झांसी की रानी'[५] कविता में वीर रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य का ओजस्वी वर्णन किया है, जिसने १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में पुरुषोचित वीरता का प्रदर्शन कर अंग्रेजों से युद्ध किया था :—

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झांसों के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेण्ट वोकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में ।।[६]

२—मैथिलीशरण गुप्त : सिद्धराज : पृ० ७
३—रामनरेश त्रिपाठी : मानसी : पृ० ३९
४—निराला : अपरा : पृ० ९
१—जयशंकर प्रसाद : लहर पृ ५१
२—सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ६४ :
३—सुभद्रा कुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ७१

आज भी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की समाधि भारत की नारियों को वीरता का पाठ पढ़ाती है। इसके अतिरिक्त इस प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेकर वीर गति पाने वाले नाना धुन्धू पन्त, तांतिया, चतुर अली मुल्ला, अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुंवरसिंह आदि भारतीय इतिहास के अमर सैनिकों को भी कवयित्री की श्रद्धांजलि मिली है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने भी 'झांसी वाली रानी की समाधि पर' कविता में वीर रानी के बलिदान की अमर-गाथा गाई है। ओजपूर्ण शब्दों में कवि ने झांसी की रानी की वीर-मूर्ति का स्मरण करते हुये लिखा है :—

आज भी स्मरण तुम्हारा, देवि, मचा देता हड़कंप प्रचंड
विजय के कोहनूर कर म्लान, झुका देता मस्तक उद्दण्ड।
स्वप्न में सहसा तुमको देख डगमगाते रक्षित भू-खंड;
त्रस्त होते विस्तृत साम्राज्य, डोलते सिंहासन दुर्दंड।
काँप उठते मिथ्या इतिहास, धसकते युग-युग के पाखंड;
थरथराते हाथों से छूट भूमि पर गिरते शासन-दंड।
प्रकंपित कर महलों की नींव, दर्प दुर्गों का शत शत खंड
जाग उठता स्मृतियों के साथ तुम्हारा भय, आतंक अखंड॥[1]

वियोगी हरि ने 'वीर सतसई' में ब्रज-भाषा में पौराणिक तथा प्राचीन और निकट इतिहास से वीर-चरित्रों को लेकर, उनके द्वारा युद्ध के समय की गई प्रतिज्ञाओं का ओजपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है। सौमित्र प्रतिज्ञा, भीष्म-प्रतिज्ञा, प्रताप प्रतिज्ञा आदि में देश के वीरों की प्रतिज्ञाएं हैं जो देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये की गई थीं।[2] इसके अतिरिक्त वियोगी जी ने उन स्थानों का भी उल्लेख किया है जो अतीतकालीन भारत की वीरता के रूप में आज भी विद्यमान हैं जैसे चित्तौड़, मारवाड़, हल्दीघाटी, मांडवगढ़, भरतपुर दुर्ग, बुन्देलखण्ड आदि।[3]

छायावाद-युग के उत्तरार्द्ध में रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भारत की अतीत कालीन वीर-भावना का चित्रण कर अपनी प्रखर-प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ कर दिया था। इतिहास, काव्य-कला और ओज का जितना सुन्दर सम्मिलन 'दिनकर' के काव्य में मिलता है वह अपूर्व है—

मैं वैशाली के आसपास खंडहर की धूल में अजान,
सुनती हूं साश्रु नयन अपने लिच्छवि-वीरों के कीर्तिगान॥[4]

१—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द : जीवनज्योति : पृ० १०० :
२—वीर सतसई : वियोगी हरि : पृ० :
३—वियोगी हरि : वीर सतसई : पृ० ३२ :
४—रामधारीसिंह दिनकर : इतिहास के आंसू : पृ० ४३

काव्य में छायावादी प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण कवि ने चेतन एवं बुद्धिशील मानव को ही नहीं, भारत की जड़ प्रवृत्ति को भी अतीत की स्मृति में डूबे देखा है। इसी कारण वह पाटलीपुत्र की गंगा से पूछता है कि हे गंगे क्या तुम्हारी पलकों के भीतर गत विगत स्वप्न-सा घूम रहा है। क्या मगध का महान् सम्राट अशोक याद आता है, या संन्यासिनी के सदृश विजन में अतीत-गौरव का ध्यान धर रो रोकर हे देवि गुप्तवंश की गरिमा का गान गा रही हो :—

तुझे याद है, चढ़े पदों पर कितने जय—सुमनों के हार ?
कितनी बार समुन्द्रगुप्त ने धोयी है तुझमें तलवार ?[१]

'चन्द्रगुप्त' नाटक की रचना द्वारा जयशंकर प्रसाद ने अतीतकालीन भारतीय वीर-भावना के जिस उत्कृष्ट रूप को रखा था, जिसमें भारतीयों ने असीम शक्तिशाली विदेशी शक्ति सिकन्दर पर विजय पाई थी, उसी की अभिव्यक्ति 'दिनकर' ने भी काव्य में की है :—

विजयी चन्द्रगुप्त के पद पर सैल्यूकस की वह मनुहार,
तुझे याद है, देवि ! मगध का वह विराट् उज्ज्वल शृंगार ?
जगती पर छाया करती थी कभी हमारी भुजा विशाल;
बार बार झुकते थे पद पर ग्रीक, यवन के उन्नत भाल ।।[२]

राष्ट्रवाद और काव्यात्मक छायावाद का सम्मिलन 'दिनकर' की अनुपम देन है। इसके अतिरिक्त 'दिनकर' की राष्ट्रीय-चेतना ने मुस्लिम संस्कृति को भी भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग बना दिया है। बढ़ते हुए हिन्दू-मुस्लिम विद्वेषाग्नि को शान्त करने के लिए दोनों का अतीतकालीन सांस्कृतिक एकीकरण आवश्यक था। गांधीजी ने इस बात पर विशेष बल दिया था। अतः 'दिनकर' ने भी 'नई दिल्ली के प्रति' (दिल्ली—१९२९ ई०) कविता में मुस्लिम शासन काल की दिल्ली के वैभव एवं शृंगार का अत्यधिक आत्मीय भाव के साथ सुन्दर एवं उत्कृष्ट चित्रण किया है।[३] काव्य में वर्णित भौतिक-उत्कर्ष के संबंध में यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इस काल के कवियों ने इतिहास के सभी कालों से भौतिक समृद्धि अर्थात् ऐश्वर्य, वैभव, वीर-भावना आदि के सुन्दर चित्र अंकित किये हैं।

नाटकों में वर्णित अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष

हिन्दी-साहित्य के नाट्यकारों ने भी अतीत भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष के विशद चित्र प्रस्तुत किये हैं। बेचन शर्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा' नामक नाटक एक सुन्दर प्रयोग है। उन्होंने प्राचीन भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष को महात्मा ईसा की

१—रामधारीसिंह दिनकर। इतिहास के आँसू। पृ० ३७
२—वही, पृ० ३८
३—रामधारीसिंह दिनकर दिल्ली : पृ० ५

आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्ति-हेतु भारत भेजते हैं।[1] भारत वह महान् देश है, जहां ईसा को भगवद्गीता और बुद्ध-चरित का ज्ञान प्राप्त हुआ था। उनसे विवेकाचार्य ने कहा था—'स्वदेश का उद्धार करने के लिए तुम्हें कर्मयोग का अभ्यास करना पड़ेगा। आओ शुभस्य शीघ्रम्।'[2] निःसन्देह भारत अपने आध्यात्मिक उत्कर्ष, दार्शनिक विचारधारा और शिक्षा-पद्धति के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। इस नाटक में उग्र जी ने भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष का चरम रूप प्रस्तुत किया है। स्वयं ईसा से कहलाया है—क्या पृथ्वी के अन्य किसी भाग में ऐसे मनुष्य मिल सकते हैं ? कदापि नहीं। यहां का एक-एक प्राणी देवता है—हर एक स्थान स्वर्ग।'[3] विवेकाचार्य की पाठशाला में ईसा को त्याग, सेवा-मार्ग और मुक्ति का पथ स्पष्ट हुआ था। भारत को आध्यात्मिकता संकीर्ण नहीं थी। ईसा ने जब सफलता का उपाय पूछा तो विवेकाचार्य ने उत्तर दिया है—'अपने और पराये का भेद भूल जाने से, छोटे और बड़े का विचार छोड़ देने से और संसार भर को अपना कुटुम्ब माने लेने से। ईसा ! सेवा मुक्ति की बड़ी बहन है। सेवकों की मुक्ति वैसे ही निश्चित है जैसे जन्म लेने वालों की मृत्यु। वे मनुष्य धन्य हैं जो दूसरों की सेवा करने में अपना अहोभाग्य समझते हैं।'[4]

नाटकों में अतीतकालीन—आध्यात्मिक—उत्कर्ष के उज्ज्वल एवं समुन्नत रूप प्रस्तुत करने वालों में जयशंकर प्रसाद का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने प्रायः अपने सभी नाटकों की सामग्री भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग से चुनी है। सत्य तथा अहिंसा को मानव जीवन का आवश्यक तत्व माना है। 'अजात शत्रु' के मूल में गौतम बुद्ध की 'अहिंसा परमोधर्मः' की महान् भावना कार्य करती है। बुद्धदेव ने अपने उपदेशों द्वारा सत्यमार्ग का प्रदर्शन किया था :—

'राजन्, शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है। केवल साक्षीरूप से वह सब दृश्य देखती है। तब भी, इन सांसारिक झगड़ों में उसका उद्देश्य होता है कि न्याय का पक्ष विजयी हो—यही न्याय का समर्थन है। तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्व से प्रेरित होकर समस्त सदाचारों की नींव विश्व में स्थापित करती है। यदि वह ऐसा न करे तो अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय का समर्थन हो जाता है हम विरलों को भी राज-दर्शन की आवश्यकता हो जाती है।'[5]

क्षणिक सुख प्रदान करने वाले सांसारिक ऐश्वर्य तथा उसके नश्वर चमकीले

१—पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० ३५

२—वही, पृ० २८

३—पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० २०

४—वही, पृ० ४८

५—जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ३२-३३

प्रदर्शन हमारे पूर्वजों को आकर्षित नहीं कर सके थे। भारतीय जीवन ने सदैव से भौतिकता को तुच्छ तथा आध्यात्मिकता को श्रेष्ठ माना है। प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में दाण्ड्यायन के शब्दों में इसकी पुष्टि मिलती है—

'दाण्ड्यायन—भूमा के सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है, उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते, दूत! वह किसी बलवान् की इच्छा का क्रीड़ा कन्दुक नहीं बन सकता। तुम्हारा राजा अभी झेलम भी नहीं पार कर सका फिर भी जगद्विजेता की उपाधि लेकर जगत् को वंचित करता है। मैं लोभ से, सम्मान से किसी के पास नहीं जा सकता।'[1]

चन्द्रगुप्त नाटक में जगत् विजय की महत्वाकांक्षा से पूर्ण वीर सिकन्दर को भी भारतीय आध्यात्मवाद से प्रभावित दिखाया गया है। ऐतिहासिक कथानकों के आकलन द्वारा प्रसाद जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि अध्यात्म या सत्य धर्म भारतीय जीवन दर्शन का मेरुदंड था। प्रायः उनके सभी नाटकों—अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, राज्यश्री आदि में सत्-असत्, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, नीति-अनीति का संघर्ष दिखाया गया है और अन्त में सत्य, धर्म, न्याय-नीति की विजय होती हे। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में धर्मराज्य अथवा सत्य की स्थापना के लिए कौटिल्य सम महान् ब्राह्मण और चन्द्रगुप्त जैसे वीर क्षत्रिय ने मिलकर विदेशियों तथा नंद सम स्वदेशी अधार्मिक शक्तियों से संघर्ष किया था।

भारतीय जीवन का लक्ष्य 'मुक्ति' है। अतः राज्याधिकार की आकांक्षा भी इस मुक्ति के सम्मुख हेय है। 'अजातशत्रु' नाटक में गौतम बुद्ध महाराजा बिम्बसार को आध्यात्मिक जीवन के हेतु राज्य परित्याग का उपदेश देते हैं, जिसका वे पालव करते हैं।[2]

'विशाख' नाटक में आध्यात्मिक एवं नैतिक उच्चादर्शों के प्रतीक प्रेमानन्द जी हैं, जो प्रेम, दया, सत्य का पालन करते हैं। प्रेमानन्द जी कहते हैं—'सत्कर्म हृदय को विमल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियां स्थान पाने लगती हैं; इसलिये सत्कर्म कर्मयोग का आदर्श बनाना आत्मा की उन्नति का मार्ग स्वच्छ और प्रशस्त करना है।'[3]

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र लिखित 'अशोक' नाटक में कलिंग के महाराज सर्वदत्त, कलिंगविजय के उपरान्त युद्ध की विभीषिका से व्यथित एवं पश्चाताप की अग्नि से दग्ध अशोक को सत्य-प्रेम के प्रचार का उपदेश देते हैं, जिसका पालन अशोक

१—जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त : पृ० ५२ : तृतीय संकरण

२—वही, अजातशत्रु : पृ० ३४

३—जयशंकर प्रसाद : विशाख : पृ० ३७

ने अपने जीवनकाल में किया था।"[1]

सियारामशरण गुप्त ने भगवान गौतम बुद्ध के पूर्व की कथा लेकर इन्द्रप्रस्थ के राजा बोधिसत्व सुतसोम के आचरण द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्र खींचा है। सुतसोम की आध्यात्मिकता मनुष्यमात्र की सद्भावना के विश्वास पर आश्रित है।[2]

अंग्रेजी शासक वर्ग ने, भारतीय जनता पर अपनी श्रेष्ठता और प्रभुत्व का ऐसा कुप्रभाव जमा रखा था कि वह भौतिक दृष्टि से ही नहीं, आध्यात्मिक दृष्टि से भी अपने को हीन समझने लगी थी। देशवासियों को अपने अतीत गौरव की आध्यात्मिक श्रेष्ठता के प्रति गौरवान्वित करने के लिये उग्र जी का 'महात्मा ईसा' नाटक अचूक मन्त्र है। पश्चिमी जगत् की श्रेष्ठता की भ्रान्त धारणा का उन्मूलन करने में भी यह नाटक अति सहायक था। उग्र जी ने इस नाटक द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि ईसाई-धर्मानुगामी अंग्रेज, जिस भारत को हीन दृष्टि से देखते हैं, उसी भारत देश में उनके धर्म-प्रवर्त्तक, उनके ईश्वर के पुत्र ईसा को सत्य-अहिंसा, सेवा-त्याग आदि की शिक्षा मिली थी। निःसन्देह उग्र जी का यह प्रयत्न हिन्दी-साहित्य को शाश्वत देन है, जो युग युग तक पश्चिमी देशों की तुलना में भारत के गौरव को अक्षुण्ण रखेगा।

हिन्दी-नाट्य-क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भारतीय इतिहास की महान् आत्माओं द्वारा, भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष का जो रूप प्रस्तुत किया है, वह भारत की आत्मा के अमृत मन का निचोड़ है। हमारे पूर्वजों ने जिस सत्य-ज्ञान, यज्ञ, तप, अहिंसा, सर्वभूतहित-न्याय, धर्म आदि दिव्य भावों को अपने आचरण द्वारा मूर्त किया था, उनकी अभिव्यक्ति भी प्रसाद जी के नाटकों में मिलती है जैसे विशाख में प्रेमानन्द, अजातशत्रु में गौतम बुद्ध और चन्द्रगुप्त में दाण्ड्यायन आदि के चरित्र। भारत की प्राचीन संस्कृति और धर्म के इस महत्वपूर्ण अंग का दृश्य काव्य द्वारा दिग्दर्शन कराकर, प्रसाद जी और मिश्र जी ने अपने युग के ह्रासोन्मुख जीवन को आध्यात्मिकता के उच्चादर्श पर प्रतिष्ठित किया है। प्रसाद जी की आध्यात्मिक अनुभूति देश-जीवन में नव-चेतना का संचार करने वाली है और प्राणि-मात्र के कल्याण की कामना से परिपूर्ण है।

हिन्दी नाटकों में अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष के चित्र

नाट्य साहित्य में चित्रित भारतीय आध्यात्मिक उत्कर्ष के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस देश में आध्यात्मिकता के मूलाधार नैतिक आदर्श भी

१—लक्ष्मीनारायण मिश्र : अशोक : पृ० १६५

२—सियारामशरणगुप्त : पुण्य-पर्व : पृ १०८

श्रेष्ठ थे। बेचन शर्मा 'उग्र' के महात्मा ईसा नाटक में नाटककार ने इस ओर विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है कि महात्मा ईसा की नैतिकादर्शों की शिक्षा भारत में विवेकाचार्य के आश्रम में मिली थी।[१] उन्होंने इस नाटक में स्वयं ईसा के मुख से भारतवासियों की सभ्यता, उदारता, सहृदयता आदि विशेषताओं का उल्लेख एवं प्रशंसा कराई है।[२] महात्मा ईसा ने जिस नैतिकता तथा आत्मिक श्रेष्ठता का आदर्श रखकर समस्त पश्चिमी जगत् को अपना अनुयायी बना लिया था उसकी शिक्षा उन्हें इसी देश में मिली थी। लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोक' नाटक में विदेशी नारी डायना भारतवासियों की अतिथि-सत्कार-भावना, सरलता आदि विशिष्ट गुणों की प्रशंसा करती है। आज जो भारत हीन समझा जाता है, उसकी नैतिकतापूर्ण आदर्शवादिता युग-युग से अभिनन्दनीय रही है।

जयशंकर प्रसाद ने अपने सभी नाटकों में ऐसे कथानकों की योजना की है, जिनसे भारतवासियों को अतीत के आदर्श और इतिहास की तुष्टि पर नैतिक एवं चारित्रिक उत्कर्ष की शिक्षा मिलती है। 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसाद जी ने मल्लिका के प्रसंग को इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इतना विस्तार दिया है। उसके नैतिक आदर्शों तथा चारित्रिक दृढ़ता से युक्त व्यक्तित्व से प्रसेनजित्, विरुद्धक, दीर्घकारायण जैसे मानवीय दुर्बलताओं से युक्त पात्रों का हृदय परिवर्तन हो जाता है। गौतम बुद्ध तो नैतिक आदर्शों के मूर्त रूप हैं। ऐतिहासिक घटनाओं, संघर्ष तथा द्वन्द्व के बीच प्रसाद जी ने नैतिकता और आदर्श की रक्षा की है।[३] 'विशाख' नाटक में प्रेमानन्द के सद्-उद्योग और विशाख के चारित्रिक आदर्श से पिघल कर नरदेव के चरित्र का उत्थान होता है। राज्यश्री तथा हर्ष 'राज्यश्री' नाटक में नैतिकता के प्रतीक हैं। चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, भारतीय इतिहास के वीर राजा ही नहीं हैं, प्रत्युत् नैतिकता के आदर्श भी हैं। गांधी जी ने जन-जीवन के कल्याण के लिए नैतिकता के जिस आदर्श को राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक माना था, प्रसाद जी ने उसको ऐतिहासिक कथाओं द्वारा मुखर-रूप प्रदान किया है।

मुस्लिम-काल में महाराणा प्रतापसिंह तथा अन्य राजपूतों ने आदर्श का जो ज्वलंत रूप प्रस्तुत किया था, उसका ओजपूर्ण वर्णन 'महाराणा प्रताप सिंह व देशोद्धार'

१—बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ ४८

२—वही : पृ २०

३—'प्रसाद के नाटकों में आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों शक्तियों के सामंजस्य से मानव की गहनतम नैतिकता विकासोन्मुख बनती है। प्रसाद ने एक सिद्धहस्त कलाकार के समान इसी नैतिकता के बल से मानवत्व और देवत्व को एकाकार कर दिया है। यह प्रसाद के नाटकों की बहुत बड़ी विशेषता है।'

दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास : पृ ५०९

नामक नाटक में मिलता है। पद्मावती अकबर से कहती है :—

सीता की आह से दशानन जला था।
द्रौपदी के तेज से दुर्योधन बला था॥
सावित्री के सत्य से यमराज फंसा था।
नर्मदा के तेज से दिनराज नसा था।
यदि मेरा कहा न मान कर पाप करोगे।
तो शीघ्र ही इस कर्म से बिन मौत मरोगे॥[1]

गोविन्दवल्लभ पंत ने राजपूताने की एक प्राचीन गौरव-गाथा लेकर 'राजमुकुट' नाटक की रचना की है। इस नाटक में वीरांगना पन्ना धाय स्वामिभक्ति की वेदी पर अपने दुधमुंहे बच्चे का बलिदान देकर मेवाड़ की वंश-वेलि को विनष्ट होने से बचा लेती है। क्षत्राणी पन्ना का अनुपम त्याग, अपूर्व देश-भक्ति, नैतिकतापूर्ण चारित्रिक उत्कर्ष आज भी राजस्थान की महिलाओं के आदर्श का जीवित रूप है।[2]

श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने हिन्दी नाट्य क्षेत्र में अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष के चित्रण में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों और धर्मों का समान एवं उदार भाव से ध्यान रखा है। भारत में सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय जागृति के लिए उन्होंने पक्षपात-विहीन दृष्टि से भारतीय इतिहास की उच्चत्तम मुसलमान आत्माओं के नैतिकतापूर्ण आदर्श जीवन का भी चित्रण किया है। 'रक्षा-बन्धन' नाटक इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है। राणा सांगा की विधवा रानी कर्मवती ने जातीयता अथवा धार्मिकता का विचार छोड़ कर अपनी रक्षा के लिए मुगल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजी, तो नैतिक धर्म के नाते ही वह तत्काल उनकी रक्षा के लिए चल दिये थे। 'सच्चे मुसलमान का काम सच्चाई का साथ देना है।'[3] हुमायू के यह शब्द उसके नैतिकतापूर्ण आदर्श चरित्र का उद्घाटन करते हैं। नैतिक सिद्धान्तों के समक्ष उसने 'सल्तनत' को भी नगण्य समझा था—'सल्तनत जाय, पर मैं दुनिया को यह कहते नहीं सुनना चाहता कि मुसलमान बहन की इज्जत करना नहीं जानते। तख्त से उतर कर अगर किसी सच्ची बहन के दिल में जगह पा सकूं, तो अपने आपको दुनिया का सबसे बड़ा खुशकिस्मत इन्सान समझूंगा। बहन कर्मवती तुम्हारी राखी मुझे वही ताकत दे, जो वह राजपूतों को देती आई है……[4] इसी प्रकार मेवाड़ के महाराणा विक्रमादित्य

१—महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक : पृ० २७,
२—गोविंदवल्लभ पंत : राजमुकुट : पृ० ६३,
३—हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ० ४६,
४—हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ ४६,

ने मुसलमान अतिथि चांदखां की अतिथि-सेवा के लिये बहादुरशाह के रण का निमन्त्रण स्वीकार किया था।[1] महारानी कर्मवती तथा अन्य वीर राजपूत क्षत्राणियों ने सतीत्व-धर्म की रक्षा के लिए जौहर की ज्वाला में भस्म होकर नैतिकता का जो उत्कृष्ट उदाहरण विश्व की नारी के सम्मुख रखा था, उसका भी ओजपूर्ण चित्र नाटक में मिलता है।

'शिवा-साधना' नाटक में 'प्रेमी जी' ने शिवाजी के चरित्र को अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा भिन्न रूप में चित्रित किया है। शिवाजी की नैतिकता में धार्मिक विद्वेष की तनिक भी गंध नहीं थी। कट्टर हिन्दू होते हुए भी वे इस्लाम धर्म का आदर करते थे। कोंकण के सूबेदार मौलाना अहमद की रूपवती पुत्रवधू को जब शिवाजी के अनुचर आबाजी सोनदेव ने प्रस्तुत कर उपपत्नी के रूप में ग्रहण करने का आग्रह किया तो उन्होंने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसे दंडित किया। मौलाना की पुत्रवधू को सादर सम्मान सहित मौलाना को लौटा कर शिवाजी ने अपनी चारित्रिक दृढ़ता एवं महानता का उच्चत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है।[2]

गांधी जी ने राष्ट्रवाद का जो उदात्त एवं महान् रूप देश के सम्मुख रखा था, उसमें भारत में वसने वाली सभी जातियों तथा धर्मों का समाहार हो जाता था। उसी की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रेमी जी के ऐतिहासिक नाटकों, 'रक्ष-बन्धन, 'शिवा-साधना' आदि में हुई है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिये प्रयत्नशील गांधी जी के प्रयासों को 'प्रेमी जी' ने मुस्लिम-काल से ली गई ऐतिहासिक कथाओं में मूर्त किया है। 'रक्षा-बन्धन' जैसे नाटकों में समान रूप से हिन्दुओं तथा मुसलमानों की अतीत-कालीन नैतिक उत्कर्ष की भावना परितुष्ट हो सकती है। दोनों ही जीवन के लिए धार्मिक एवं जातीय संकीर्णता से मुक्त पूर्व पुरुषों के नैतिक आदर्शों को अपना सकते हैं।

सेठ गोविन्ददास ने इतिहास के अनुरूप हर्ष का चित्रण करते हुए, वीरता और सच्चरित्रता का अद्भुत सम्मिश्रण दिखाया है। इतिहास साक्षी है कि हर्ष की वीरता सच्चरित्रता एवं नैतिकता से नियंत्रित थी।[3]

अन्त में यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि नाटकों में भी अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष का उज्ज्वल चित्र मिलता है।

भौतिक उत्कर्ष :

हिन्दी नाटकों में भी भारत की प्राचीन समृद्धि और वीर-भावना का उल्लेख मिलता है। यह देश अपने भौतिक वैभव तथा वीर-भावना के लिये विश्व-विख्यात था। हिमालय, ब्रह्मपुत्र, गंगा आदि प्राकृतिक-गौरव से युक्त देश की विभूति असीम

१—हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन, पृ० २३

२—हरिकृष्ण प्रेमी : शिवा-साधना : पृ० ३८,

३—गोविन्ददास ग्रंथावली खण्ड—१ पृ० ३१२,

थी ।[१] महात्मा ईसा नाटक के प्रथम दृश्य में ही उग्र जी ने भारत की धन-सम्पत्ति के उत्कर्ष का उल्लेख कर दिया है ।[२]

यद्यपि भारतीय जीवन ने 'लौकिक-सम्पत्ति' की अपेक्षा आध्यात्मिकता और नैतिकता को जीवन का लक्ष्य माना था, लेकिन भारत भौतिक ऐश्वर्य की दृष्टि से समृद्ध था। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में आध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही मूलाधार है किन्तु उनके प्रायः सभी नाटकों से भारत की विभूति, समृद्धि, सम्पत्ति की ध्वनि अप्रत्यक्ष रूप से गुंजित होती है। 'राज्यश्री' नाटक में हर्षवर्द्धन अपनी समस्त सम्पत्ति दान दे देते हैं। भौतिक धन-सम्पत्ति के साथ प्राण-दान देने में भी उन्हें संकोच नहीं है। चीनी यात्री हुएनच्वांग द्वारा भारत के इस आदर्श की प्रशंसा में कहलाया गया है—'यह भारत का देव-दुर्लभ दृश्य देखकर सम्राट् ! मुझे विश्वास हो गया कि यही अमिताभ की प्रसव भूमि हो सकती है।'[३] चतुरसेन शास्त्री के 'राजसिंह' नाटक में तुलादान के अभूतपूर्व दृश्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुस्लिम काल तक भारत अत्यन्त समृद्ध था ।

भौतिक उत्कर्ष के अन्तर्गत सर्वाधिक चित्रण भारत की वीर भावना का हुआ है। बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' नाटक में इतिहास प्रसिद्ध वीर नारी दुर्गावती का अकबर से युद्ध करने का प्रशस्त वर्णन मिलता है ।[४]

> झुक सकता है सूरज, लेकिन दुर्गावती नहीं झुक सकती,
> रुक सकती है जमना, पर रानी की तेग़ नहीं रुक सकती ।
> बिजली है वह, बाज बहादुर तक को झुलसाया है जिसने,
> अनगिनती रजवाड़ों को पामाल किया—खाया है जिसने ।।[५]

हमारे इतिहास ने वीर पुरुष ही नहीं, वीर-नारियों को भी जन्म दिया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'उत्सर्ग' नाटक में राजपूती वीरता का वर्णन और देश पर बलिदान हो जाने की प्रचंड भावना मिलती है ।[६] इस नाटक में राजपूत वीर

१—'हमारे हिमालय के मस्तक-सा और किसी भी भूधर का मस्तक ऊँचा नहीं है। हमारे ब्रह्मपुत्र से बड़ा और कोई भी नद नहीं है। हमारी गंगा से अधिक स्वास्थ्यकर सुस्वादु और पवित्र पानी वाली और कोई भी नदी नहीं है।'

—बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० ६०

२—बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० १६

३—जयशंकर प्रसाद : राज्यश्री : पृ० ७२

४—आचार्य चतुरसेन शास्त्री : राजसिंह : पृ० १

५—बदरीनाथ भट्ट : दुर्गावती : पृ २१

६—आचार्य चतुरसेन शास्त्री : उत्सर्ग : पृ० १६

नारियों की वीरता एवं त्याग का भी प्रदर्शन किया गया है। गोविन्दवल्लभ पन्त के 'वरमाला' नाटक में वीरता का सुन्दर प्रदर्शन मिलता है। जयशंकरप्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध वीर पुरुषों के शौर्य का ओजस्वी वर्णन मिलता है, जिन्होंने विदेशी शक्तियों से टक्कर लेकर उन्हें अपदस्थ किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने विश्व-विजय के आकांक्षी सिकन्दर को पराजित कर इतिहास में अपना विशेष स्थान बनाया है, जिसका विस्तृत उल्लेख प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक में मिलता है। चन्द्रगुप्त, हर्षवर्धन, स्कंदगुप्त आदि उनके नाटकों के इतिहास-प्रसिद्ध वीर पुरुष हैं और 'ध्रुवस्वामिनी', 'राज्यश्री' वीर नारियाँ। चाणक्य की नीति भारत के राजनीतिक उत्कर्ष का उदाहरण हैं जिसका सफल प्रतिपादन प्रसाद जी के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में हुआ है। प्रसाद जी के नाटकों को भारतीय इतिहास के हिन्दू काल की साँस्कृतिक उत्कृष्टता का आलेख कहा जा सकता है, जिनमें उनकी कलात्मक प्रतिभा के संयोग से मणिकाँचन योग उपस्थित हुआ है।

जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए, महाराणा प्रताप द्वारा किये युद्ध, कष्ट-सहन, त्याग आदि का ओजपूर्ण चित्र अंकित किया है। 'महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार' नाटक में भी देश के लिए प्रताप द्वारा किये उत्सर्ग का वर्णन मिलता है। जयशंकर भट्ट के 'दाहर अथवा सिंध पतन' में भारतीय जनता के वीरत्व का प्रदर्शन हुआ है। इस नाटक में लेखक ने इस तथ्य की ओर विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है कि केवल क्षत्रिय जाति ही वीर नहीं थी अन्य जातियों में भी वीरता की कमी नहीं थी। सिंध के राजा दाहर की वीरता की प्रसिद्धि अरब तक फैली हुई थी। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'अशोक' नाटक में देश के लिए प्रियजनों का उत्सर्ग भारतीय नारी की विशेषता मानी है। हमारा इतिहास इसका साक्षी है कि एकमात्र पुत्र को सेना में भर्ती कर देना मातृत्व की सबसे बड़ी आकांक्षा थी।[1] वीरत्व क्षत्रिय बालकों का सौभाग्य था—'राजकुमारी मैं क्षत्रिय बालक हूं, सैनिक बनना सौभाग्य समझता हूं। माता का बन्धन था, सो वह भी यही चाहती है। कैसा सुयोग है।'[2] उदयशंकर भट्ट के नाटक 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' में भारतीयों की वीरता का उद्घाटन हुआ है।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक मुस्लिम-कालीन भारतीय इतिहास के वीरों का मूर्त रूप हैं। उन्होंने निष्पक्ष-भाव से इतिहास के हिन्दू और मुसलमान वीर राजाओं और बादशाहों का सजीव चित्र खींचा है। 'रक्षा-बन्धन', 'शिवा-साधना', 'प्रतिशोध' आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'रक्षा-बन्धन' नाटक में एक ओर राजपूत वीर पुरुषों और नारियों की वीरता का प्रदर्शन है तो दूसरी ओर मुगल बादशाह हुमायूं के शौर्य का

१—लक्ष्मीनारायण मिश्र : अशोक : पृ० ११३

२—वही : पृ० ११३

उल्लेख। यदि राजपूतों ने 'कर्तव्य पथ पर प्रेम का उत्सर्ग करना सीखा था।'[1] तो मुगल बादशाह हुमायूं ने भी कर्तव्य-पालन के लिए जातीयता और धार्मिकता को ठुकरा कर वीरत्व का प्रदर्शन किया था, सच्चा वीर वही है, खरा राजपूत वही है, जो न हिन्दुओं के अन्याय का हिमायती है और न मुसलमानों के। वह न्याय का साथी है और आजादी का दीवना।'[2] मेवाड़ के महाराणा विक्रमादित्य के यह शब्द हुमायूं के चरित्र पर पूर्णतया घटित हो जाते हैं, क्योंकि उसने अन्यायी मुसलमान बहादुरशाह की अपेक्षा हिन्दू रानी कर्मवती के धर्म का बन्धन स्वीकार किया था। हुमायूं की वीर-भावना एक सच्चे मुसलमान और एक सच्चे इन्सान की वीर-भावना थी। निःसन्देह 'प्रेमी' जी ने इसके द्वारा हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य का उच्चतम उदाहरण रखा है। भारतीय राजपूतों की वीर-भावना का प्रदर्शन करने वाले कुछ एकांकी नाटक भी मिलते हैं जैसे सुदर्शन कृत 'राजपूत की हार', 'प्रबला' आदि।[3]

इस काल में रचित प्रायः सभी नाटकों में देश, जाति, वंश के सम्मान के लिए प्राणोत्सर्ग का आदर्श मिलता है। देशवासियों को इन नाटकों द्वारा, साम्राज्यवाद के उन्मूलन के लिए साहस, ओज तथा संगठन की शक्ति का संदेश दिया गया है। नाटककारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत युग युग से एक राष्ट्र है, उसे राष्ट्र बनना नहीं है। 'महात्मा ईसा' नामक नाटक में 'उग्र' जी द्वारा अंकित यह शब्द यथार्थ एवं सत्य हैं—'हमने संसार के इतिहास का यथासाध्य मंथन किया है। परन्तु हमें दधीचि के टक्कर के दान-वीर, हरिश्चन्द्र के टक्कर के सत्य-वीर, रामचन्द्र के टक्कर के आदर्श-पुरुष तथा युद्धवीर और भगवान कृष्ण के टक्कर के कर्मवीर कहीं भी नहीं मिले। हनुमान और अर्जुन की चरण धूलि भी कहीं नहीं नजर आई।'[4]

कथा-साहित्य में अतीतकालीन उत्कर्ष का चित्रण

हिन्दी साहित्य के इस युग में अतीतकालीन भारतीय उत्कर्ष का दिग्दर्शक कथा-साहित्य अधिक मात्रा में नहीं मिलता। ऐतिहासिक एवं पौराणिक उपन्यासों तथा कहानियों द्वारा यह कार्य संभव हो सकता था। भारत के प्राचीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण जिन एकाध उपन्यासों में हुआ है वे साहित्य तथा कला-दृष्टि से अधिक उच्चकोटि के नहीं हैं। पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी लिखित 'महर्षि प्रह्लाद' (ज्येष्ठ संवत् १९८० विक्रमी), उपन्यास में प्रह्लाद के उच्च आध्यात्मिक-नैतिक गुणों का अनुलेखन हुआ है। इस उपन्यास में वर्तमान को दृष्टि में रख कर सत्य तथा अहिंसा के महत्व का प्रकाशन किया गया है।

१—हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ० १७
२—वही, पृ० २१
३—सुदर्शन : तीर्थ यात्रा : पृ० २००
४—बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० ९०

ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम मिलते हैं। इस काल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा है।[१] इनके उपन्यासों का क्षेत्र प्रायः बुन्देलखंड रहा है। 'गढ़-कुण्डार' इस समय का प्रसिद्ध उपान्यास है। इसमें क्षत्रियों की वीरता उनके आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान का वर्णन किया गया है। खंगार एवं बुन्देले अपनी आन पर मर मिटे। इस उपन्यास में अग्निदत्त नारी की मर्यादा और घायल शत्रु की रक्षा में प्राण देता है।[२]

गढ़ कुण्डार में वर्माजी ने अपने युग की कतिपय देश दुर्दशा से सम्बन्धित समस्याओं को भी प्रच्छन्न रूप में लेकर उनसे देशवासियों को सावधान रहने का संदेश दिया है। वर्मा जी ने प्रसाद जी के नाटकों की भांति संघर्ष एवं राजनीतिक उथल-पुथल का शान्ति में पर्यवसान कर संगठित राष्ट्र, एक राष्ट्र तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक गौरव का उत्कृष्ट रूप नहीं रखा है।

जयशंकर प्रसाद की 'सालवती' कहानी में अतीतकालीन भारत की गणतन्त्रात्मक शक्ति का वर्णन मिलता है। 'ममता' कहानी में भारतीय विधवा नारी का उत्कृष्ट नैतिक चरित्र चित्रित किया है।[३] प्रेमचन्द ने भी राजपूतों की वीर-भावना के प्रदर्शन के हेतु कुछ सुन्दर ऐतिहासिक कहानियां लिखी हैं। जैसे 'राजा हरदौल'[४], 'रानी सारन्धा'[५], 'राज्य भक्त'।[६] राज्यभक्त कहानी में राजा बख्तावरसिंह की वीरता के साथ देशभक्ति भी प्रशंसनीय है।

सुदर्शन ने भारतीय इतिहास के अति निकट युग से, सिक्ख महाराजा रणजीत सिंह से संबंधित कहानी 'पंथ की प्रतिष्ठा' लिखी है। इस कहानी द्वारा उन्होंने महाराज रणजीतसिंह तथा सिक्ख पंथ की न्यायप्रियता का उत्कर्ष दिखाया है। महाराजा रणजीतसिंह 'न्याय के सम्मुख व्यक्तित्व की परवा करना शासन के लिए घातक समझते थे।'[७] अतः पंथ की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल तथा प्रजा की इच्छा के विरुद्ध

१—'वर्तमान काल में ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में केवल डा० वृन्दावनलाल वर्मा दिखाई दे रहे हैं। उन्होंनें भारतीय इतिहास के मध्ययुग के प्रारम्भ में बुन्देलखंड की स्थिति लेकर 'गढ़कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी' नामक दो बड़े सुन्दर उपन्यास लिखे हैं। 'विराटा की पद्मिनी' की कल्पना तो अत्यन्त स्मरणीय है।'
—रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० ४९४

२—वृन्दावनलाल वर्मा : गढ़कुंडार : पृ० २१७

३—जयशंकरप्रसाद : आकाश-दीप : पृ० १९

४—प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग ६ : पृ० १२

५—वही, पृ० ४५

६—वही, पृ० २५१

७—सुदर्शन : प्रभात : पृ० ३८

नर्तकी मोरां से विवाह कर लेने पर उन्होंने साधारण प्रजा की भांति संगत में आकर क्षमा प्रार्थना की और दण्ड स्वीकार किया। भारतीय राजनीति दर्शन में सत्य के सम्मुख राजा तथा प्रजा, शासक तथा शासित समान रूप से दण्डित थे। अकाली फूलसिंह की सच्चरित्रता, न्यायनिष्ठा तथा सत्यता अद्भुत है।[1] यह नैतिक उत्कर्ष का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त महाराणा रणजीतसिंह की वीरता का भी उल्लेख मिलता है।[2]

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य में अंकित अतीतकालीन भारत के आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष के चित्र देश-जीवन में आत्मगौरव और स्वाभिमान की भावना का संचरण करने में समर्थ हुए। साहित्य-मनीषियों ने अपनी लेखनी द्वारा पौराणिक कथाओं तथा इतिहास की महान् आत्माओं, वीर-पात्रों और आदर्श नारियों की जीवन गाथाओं को सजीव रूप प्रदान किया है। पतनोन्मुख देशवासियों के लिए अतीत गौरव का चित्रण शक्तिदायक, होता है, जिससे अभिमान से भर कर वे पुनः पूर्व उत्कर्ष की प्राप्ति के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। अपनी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति अभिमान की भावना राष्ट्रवाद का आवश्यक तत्व है। गांधीजी ने देशवासियों में राष्ट्रीय जागृति के लिए अपने प्राचीन धर्म, इतिहास तथा गौरव को आवश्य माना था।[3] अतीत की गहरी जड़ों पर ही वर्तमान और भविष्य अवस्थित है।

भारतेन्दुयुगीन साहित्य में अतीत-गौरव-गान की परम्परा का बीजारोपण हुआ था। परन्तु उस युग के साहित्यकारों की दृष्टि अतीत की अपेक्षा वर्तमान पर अधिक थी। उनकी कृतियों में पूर्व-पुरुषों के उत्कर्ष पूर्ण जीवन के चित्रण में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का रंग अधिक गहरा था। इसमें निराशा की मात्रा अधिक थी। अतः अतीत-गौरव-गान का उत्साहवर्द्धक विशुद्ध रूप नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त इतिहास के दुर्बल पक्ष की ओर भी इनका ध्यान अधिक आकृष्ट हुआ था। भारत के पतन के कारणों का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है, जिसमें अतीत-गौरव कुछ धूमिल पड़ जाता है। भारतेन्दुयुगीन हिन्दी साहित्यकार मध्ययुगीन शासकों के अत्याचारों को नहीं भूले थे। उनमें मुसलमानों के प्रति सहिष्णुता नहीं मिलती। अतः इस संकुचित मनोवृत्ति के कारण भारतीय इतिहास के मुस्लिमकाल के मुसलमान पात्रों की विशेषताओं का वर्णन अछूता रह गया। केवल हिन्दू इतिहास का ही उत्कृष्ट रूप मिलता है। द्विवेदी युग में आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक जैसे भारतीयता के समर्थक राष्ट्रीय नेताओं के उपदेशों तथा राजेन्द्रलाल मित्र और भंडारकर की ऐतिहासिक खोजों के फलस्वरूप वैदिक-धर्म, संस्कृति, प्राचीनादर्श तथा इतिहास

१—**सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ३५**

२—**वही, पृ० ४६**

3—Dr. Buch : The Rise and Growth of Indian Nationalism–P. 42.

का अधिक उज्ज्वल रूप सम्मुख आया। हिन्दी साहित्य में भी पूर्व पुरुषों की भूलों अथवा न्यूनताओं की अपेक्षा अतीत के उज्ज्वल पक्ष का विशुद्ध रूप में प्रतिपादन किया गया। अतीतकालीन आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष का प्रांजल रूप प्रस्तुत किया। इसमें सर्वाधिक बल वीर-पुरुषों के ओजस्वी चरित्र के वर्णन पर दिया गया। अब देश में स्वाभिमान की भावना आ गई थी। लेकिन द्विवेदी युग के अतीत-गौरव का सम्बन्ध हिन्दुओं के धर्म, इतिहास, दर्शन एवं साहित्य की उज्ज्वलता में ही निहित रहा।

आलोच्य-काल के अतीत-गौरव को गांधीवादी विचारधारा से प्रेरणा मिली। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, गांधीजी की धार्मिक विचारधारा भारत के पुरातन धर्म-ग्रन्थों से अभिप्रेरित थी और नैतिकता से पूर्ण तथा परम्परागत थी। अतः हिन्दी साहित्यकारों ने वेद-ग्रन्थों के महत्व का प्रतिपादन किया, हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति का उत्कृष्ट चित्र खींचा और ऐतिहासिक व्यक्तियों की आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक विशेषताओं का वर्णन किया। इस काल के अतीत-गौरव-गान में आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की प्रधानता मिलती है। हिन्दी काव्य क्षेत्र में पंडित रामचरित उपाध्याय, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, आदि ने ऋषियों, मुनियों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक युग-पुरुषों एवं नारियों के चारित्रिक उत्कर्ष का भावात्मक चित्रण किया है। इस दिशा में राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने 'साकेत', 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'सिद्धराज' आदि महाकाव्य और खण्ड काव्य के साथ अनेक स्फुट कविताओं द्वारा भारत के अतीत-गौरव का उत्कृष्ट चित्र रखकर देश को सांस्कृतिक जागरण का संदेश दिया है। वैष्णव कवि गुप्त जी की विचारधारा में हिन्दुत्व का पक्षपातपूर्ण अनुरोध नहीं है। 'गुरुकुल' की रचना द्वारा सिक्खों के धर्म गुरुओं के महान् चरित्रों का उद्घाटन कर और 'यशोधरा' की रचना द्वारा बौद्धों को साथ लेकर गुप्त जी ने अतीत के आधार पर हिन्दू, बौद्ध और सिक्खों के एकीकरण का प्रयास किया है। मुसलमान तथा ईसाई धर्म के प्रति इनमें विद्वेष भाव नहीं था। गांधीजी के प्रभाव के कारण गुप्त जी ने हिन्दू-धर्म का विकसित रूप लिया है, जिसमें अन्य धर्मों के समाहित होने के लिए स्थान है।

हिन्दी नाट्यकारों ने भी पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों से अपने कथा-वृत्त चुने हैं। ऋषि-मुनियों के जीवन-चरित्र की अपेक्षा भारतीय ऐतिहासिक परंपरा के उन्मूलन में इनकी वृत्ति अधिक रमी है। वीर-पुरुषों के संघर्षमय जीवन के चित्रण में नाट्य कला की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। नाटकों में अंकित ऐतिहासिक महा-पुरुषों की वीरता आध्यात्मिकता तथा नैतिकता द्वारा नियंत्रित है। इसी कारण डा० दशरथ ओझा ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास' के ऐतिहासिक नाटकों को दो वर्गों में विभाजित किया है—आध्यात्मिक शक्ति प्रधान तथा आधिभौतिक

शक्ति प्रधान। अधिभौतिक शक्ति प्रधान नाटकों के मूल में भी नैतिकता का सुदृढ़ आधार है जिसमें स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष को देशवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार एवं स्वधर्म उद्घोषित किया गया है। इसका यह कारण है कि प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय महासभा द्वारा संचालित स्वातन्त्र्य-संग्राम में नैतिकता का आधार ग्रहण किया गया था और गांधीजी ने सम्पूर्ण राष्ट्र-जीवन को ही आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक शक्तियों के सामंजस्य में भारतीय संस्कृति की नैतिकता विकासोन्मुख लक्षित होती है। उग्र जी का 'महात्मा ईसा' नाटक भी इसी वर्ग में रखा जायगा। अन्य नाट्यकारों ने मुस्लिम काल के वीर हिन्दू राजाओं और रानियों के चरित्र लेकर नैतिक एवं भौतिक आदर्शपूर्ण उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि अधिकांश नाटककारों ने इतिहास के हिन्दूकाल से (जबकि भारत किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं हुआ था) अथवा मुस्लिम काल से हिन्दू वीर-चरित्रों को ही चुना है, तथापि इनमें मुसलमान शासकों के प्रति अधिक कटु भावना नहीं मिलती। सन् १९३० के लगभग हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक एकता को दृष्टि में रख कर, दोनों जातियों के सम्मिलित इतिहास से उत्कृष्ट व्यक्तित्व लेकर नाटक लिखने की परम्परा का प्रारम्भ किया। राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से इनका प्रयास प्रशंसनीय है। इस समय हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बढ़ गया था, और गांधीजी तथा अन्य राष्ट्रीय नेतागण दोनों जातियों की एकता के लिए प्रयत्नशील थे। अब तक हिन्दी साहित्य के अतीत गौरव-गान की परम्परा में जो नाटक लिखे गये थे वे हिन्दुओं की जातीय भावना की ही परितुष्टि कर सकते थे। 'प्रेमी' जी ने राष्ट्रवादी साहित्य को नवीन दिशा में मोड़ा।

उपन्यास अथवा कहानियों में आध्यात्मिकता की अपेक्षा आधिभौतिक गुणों का ही वर्णन हुआ है। वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखण्ड की कथाओं एवं विशिष्ट व्यक्तित्व को लेकर उपन्यास लिखे हैं। राष्ट्रीय भावना के उद्बोधन की दृष्टि से इनके ऐतिहासिक नाटक अधिक उपयोगी नहीं हैं। शौर्य-प्रदर्शन में जातीयता, झूठे-सम्मान और मर्यादा का स्वर मिल जाने से इनके 'गढ़-कुण्डार' उपन्यास को राष्ट्रीय उपन्यास की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इनके द्वारा भारतीय इतिहास के अन्य पक्षों का स्पर्श नहीं किया गया है। इस काल में रचित ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या भी अति अल्प है। जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, सुदर्शन आदि ने अवश्य कुछ सुन्दर ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं। प्रसाद जी की कहानियों में कल्पना, भावुकता और काव्यात्मकता का प्राधान्य है। राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से लिखा कथा-साहित्य नहीं मिलता।

अतीत-गौरव के वर्णन में हिन्दी साहित्यकारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत के पास केवल भौगोलिक एकता ही नहीं है प्रत्युत् उनके धर्म के मूल रूप में भी एकता है। रामायण, महाभारत, गीता आदि आदर्श-राष्ट्रीय ग्रन्थ हैं और राम, कृष्ण, अर्जुन, महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि आदर्श पुरुष। अतीत-गौरव की

भावना ने आत्मविश्वास को जन्म दिया और जैसे आत्मविश्वास राष्ट्रीयता का रूप लेता गया हमारी दंभ भावना ने भारतीयता को सर्वश्रेष्ठ तथा अन्य संस्कृतियों को अपने सम्मुख हीन समझा। हिन्दीसाहित्य में भी अन्य संस्कृतियों की तुलना में भारतीय अध्यात्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास आदि की श्रेष्ठता का निरूपण किया है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'उग्रजी' का 'महात्मा ईसा' नाटक है।

इस युग के अधिकांश हिन्दीसाहित्य में अतीत-चित्रण हिन्दू-भावना, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-इतिहास को लेकर किया गया है। इसके कई कारण स्पष्ट लक्षित होते हैं। हिन्दीसाहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति से है। प्रायः सभी साहित्य-प्रणेता हिन्दू थे और उन्होंने अपने धर्म, संस्कृति, जातीयता की भावना से आवृत्त होकर अतीत को देखा था। इसके अतिरिक्त गांधी जी के अथक प्रयत्नों के उपरान्त भी साम्प्रदायिक भेदभाव न मिट सका था। अल्पसंख्यक मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि ने राष्ट्रीय संग्राम को अपना पूरा सहयोग भी प्रदान न किया था। इस कारण इनसे सम्बन्धित इतिहास अथवा अतीत-गौरव की ओर हिन्दी साहित्यकारों का अधिक ध्यान नहीं गया। हिन्दी साहित्य में अतीत गौरव का जो रूप मिलता है उसकी मुसलमानों पर अथवा भिन्न धर्मावलम्बी अल्प-संख्यक जनता पर क्या प्रतिक्रिया होगी, इस पर साहित्य-सेवियों ने अधिक विचार नहीं किया था। रचयिता के लिए इस प्रश्न पर विचार करना अनिवार्य भी नहीं था, क्योंकि यह राजनीति का विषय था।

अतीत गौरव-गान एक विशेष उद्देश्य से किया गया था कि देशवासी अतीत के उज्ज्वल प्रकाश में अपनी वर्तमान दुर्दशा के अंधकार की सघनता से भली भांति परिचित हो सकें। अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का मार्मिक चित्र हिन्दीसाहित्य में मिलता है।

अतीत की तुलना में वर्तमान की दुर्दशा की अनुभूति

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन के रूप में हुआ था। देशवासियों ने इस आन्दोलन के फलस्वरूप अपनी हीनावस्था की ओर दृष्टिपात किया, और स्वभावतया उसके कारणों की खोज की। स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द घोष जैसे धार्मिक तथा श्री लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय जैसे राजनैतिक महापुरुषों की वक्तृताओं तथा रचनाओं से यह स्पष्ट हो गया था कि भारतवासियों का अतीत, विशेषतया वह हिन्दूकाल जबकि भारतवासी किसी भी विदेशी दासता के अधीनस्थ नहीं हुए थे, आध्यात्मिक, नैतिक तथा भौतिक अर्थात् जीवन की सभी दृष्टियों से अत्यधिक सम्पन्न था। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मानव स्वभाव किन्हीं दो वस्तुओं की तुलना में अधिक आनन्द एवं सन्तुष्टि प्राप्त करता है। इसी कारण

भारत के समुन्नत अतीत की, उसकी वर्तमान विपन्न अवस्था से तुलना की गई। इस तुलना द्वारा जहां एक ओर भारतवासी अपने उज्ज्वल अतीत के उत्कर्ष पर स्वाभिमान से भर गए, वहीं दूसरी ओर अतीत के प्रकाश में उनके वर्तमान विषमता की कालिमा अधिक सघन हो गई। भारतवासी अपने देश के अतीत और वर्तमान के दो विरोधी चित्र देख विक्षुब्ध हो उठे।

आधुनिक हिन्दीसाहित्य में और प्रमुखतया काव्य में, भारत के अतीतोत्कर्ष की तुलना में वर्तमान विषमता का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, पंडित रामचरित उपाध्याय, श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, ठाकुर गोपालशरणसिंह, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, श्री माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने, अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति को अत्यधिक विशद एवं मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने १९१२ में 'भारत-भारती' ग्रन्थ की रचना इसी उद्देश्य से की थी। इस पुस्तक का विभाजन तीन खंडों में है। प्रथम खंड का सम्बन्ध उसकी वर्तमान दुरवस्था तथा अवनति से तथा तृतीय का आशामय भविष्य से है। अतीतोत्कर्ष की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति, कवि हृदय में विभिन्न भावों को उद्बुद्ध करती है। कभी वे उज्ज्वल अतीत की तुलना में वर्तमान हीनावस्था को देख ग्लानि से भर जाते हैं, कभी उनका भव्य अतीत उन्हें वर्तमात दुरवस्था को विनष्ट कर देने के लिए शक्ति एवं ओज से भर देता है, कभी वर्तमान की कठोर विभीषिका असह्य हो जाती है और वे दुःखोदधि में निमग्न हो जाते हैं और कभी अतीत गौरव गाथा उनका मस्तक गर्व से ऊँचा कर देती है। आज प्राचीन गौरव के चिह्नस्वरूप अवशिष्ट खंडहर अपनी संतति के विनाश में पुकार-पुकार कर कह रहे हैं :—

सोते रहो हे हिन्दुओं ! हम मौज करते हैं यहाँ
प्राचीन चिह्न विनष्ट यों किस जाति के होंगे कहाँ।[1]

भारतीय हृदय अपने इस पतन पर ग्लानि से भर जाता है। इस युग के कवियों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि हमारी अवनति बहुमुखी है. केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, सांस्कृतिक तथा चारित्रिक दृष्टि से भी हमारा पतन हुआ है। प्राचीन काल में भारत स्वतन्त्र था, यहां के निवासी धनधान्य से पूर्ण, रोगशोक से मुक्त और कलाकौशल में निपुण थे। सम्पूर्ण विश्व में यह देश वन्दनीय था। आज भारत बन्दी, सदाचार से हीन, नित्य नवीन रोग से ग्रसित तथा दरिद्रता की मूर्ति है।[2] भारतवासियों में उन चारित्रिक सद्गुणों का अभाव हो गया है। उनके पूर्वजों की उन्नति के विशेष कारण थे :—

१—मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती : पृ० ८६
२—मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ०३९

वह गौरव, वह मान महत्व, वह अमरत्व, तत्वमय सत्व,
सबके ऊपर चारु चरित्र,—पवित्रता का जीवित चित्र,
वह साधन वह अध्यवसाय, नहीं रहा हम में अब हाय।
इसीलिये अपना यह ह्रास, चारों ओर त्रास ही त्रास ।।[१]

भारतवासियों की ग्लानि का केवल यही कारण नहीं था कि पूर्वजों की तुलना में उनका चरित्र सद्‌गुण, आचार-विचार से शून्य हो गया है[२] बल्कि उसका सबसे बड़ा कारण यह था कि अंग्रेजों ने भारतीयों में, जो कि एक दिन गुणों की खान समझे जाते थे, चुन चुन कर अवगुण ढूँढे और उन्हें पशुवत् गिना।[३] हरिऔध जी ने अपनी ग्लानि इन शब्दों में अभिव्यक्ति की है :—

हमको भले बुरे का
अब ज्ञान कुछ नहीं है
शिशु हो गये सभी हम
किस भाँति हो भलाई ?[४]

श्री मैथिलीशरण गुप्त का कवि-हृदय तब ग्लानि और विक्षोभ से हाहाकार कर उठता है जब वे आध्यात्मिक भारत के निवासियों को प्रतिहिंसा और विद्वेष की भावना से भरा देखते हैं। ग्लानि का अतिरेक शोक और वेदना की अनुभूति में परिणत हो जाता है। उसकी पीड़ा का प्रमुख कारण है, विदेशी दासता या अधीनता-

जहाँ थे साम्यवाद के सिद्ध जहाँ का था स्वतंत्रता—मंत्र,
वहन कर पराधीनता-वृत्ति वहाँ का जन-जन है परतंत्र ।।[५]

ठाकुर गोपालशरण सिंह की अन्तरात्मा अतीत की तुलना में भारत की वर्तमान अवनति के पतन से अत्यधिक विकल हो जाती है। उनकी वेदना की अनुभूति अत्यधिक तीव्र एवं मार्मिक है। उन्हें वर्तमान कष्टों से मुक्ति का मार्ग नहीं सूझता और उन पर एक ऐसा उन्माद-सा छा जाता है कि वे 'सिर कूटने' तथा 'विष घूंटने की बात कह बैठते हैं।[६] दुःख के अतिरेक में वे पूर्वोन्नति का वर्णन करते हुए भी उसे स्वप्नवत् मान लेते हैं और वर्तमान परिताप को जीवन का सत्य :

हमें विलपना और सदा भय से कंपना है;
तन मन के अति तीव्र ताप से तपना है।

१—मैथिलीशरणगुप्त हिन्दू : पृ० २४, २५
२—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : चुभते चौपदे : १५
३—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : चुभते चौपदे : पृ० २३
४—वही, संचिता पृ० ११२
५ —वही, कल्पलता : पृ० ३९ :
६—ठाकुर गोपालशरण सिंह : संचिता : पृ० ६२

इस तममय दिन में क्या रहा, सन्ध्या हो जाती न क्यों
हे भारत जननी ! आज तू बन्ध्या हो जाती न क्यों ?[१]

अतीत की तुलना में वर्तमात दुर्दशा की अनुभूति का करुण पक्ष स्थायी नहीं था। अतः साहित्यिकों ने इस वेदना से मुक्ति का उपाय भी अपने गौरवमय अतीत में ही पाया। उन्होंने गर्व से भर कर आशामय भविष्य का आह्वान किया—

था अतीत निज गौरव-गेह फिर भविष्य का क्या सन्देह ?
प्राची का प्रकाश प्राचीन, लेगा, लेगा जन्म नवीन ।।[२]

अतीत का प्रताप वर्तमान को साथ लेकर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने वाला है :—

रहा अतीत तुम्हारा आप, जिसका अब भी प्रकट प्रताप ।
कर लो वर्तमान को साथ, है भविष्य तो अपने हाथ ।।[३]

हमारा भव्य अतीत आज भी भारतवासियों को उत्साह से भर कर नव-निर्माण तथा पुनरुत्थान का सन्देश देता है। इसी कारण श्री मैथिलीशरण गुप्त देशवासियों को त्राण पाने के लिए उद्यत करने को प्रोत्साहित करते हैं—

हे अपार हिन्दू-संसार तेरा एक एक तिथि—वार
रखता है सौ सौ इतिहास उद्यत हो तू, न हो उदास ।।[४]

अतीत गौरव की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति भारतवासियों को सजग कर क्रान्ति मचाने के लिए आत्मिक बल प्रदान करने में भी समर्थ है। इसी कारण 'विजया दशमी' कविता में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने कहा है—

दो विजये ! वह आत्मिक बल दो, वह हुंकार मचाने दो ।
अपनी निर्बल आवाजों से, दुनिया को दहलाने दो ।।[५]

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' भारतवासियों को उनके अतीत की स्मृति के भैरवनाद द्वारा उन्हें पुनः एक बार जगाना चाहते हैं। 'जागो फिर एक बार' में गुरु गोविन्दसिंह जी की प्रतिज्ञा का स्मरण कराके कहते हैं कि आज शेरों की मांद में स्यार आया है।[६]

तुम हो महान्
तुम सदा हो महान्

१—ठाकुर गोपालशरणसिंह : संचिता : पृ० १५५
२—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ५८
३—वही : पृ० ४४
४—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ७९
५—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ९५
६—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा : पृ० ९

है नश्वर यह दीन भाव
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार ।।[१]

इस प्रकार ओजपूर्ण भाषा में भारत के इतिहास में से वीरता भरे स्थलों को उद्धृत कर भारतवासियों को पुनः वीर रस मंडित करना चाहा है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने वर्तमान काल में अतीत गौरव के चिन्हों के मिटते रूप का वर्णन 'विद्रोही' कविता में किया है—

त्रिपुरी की नगरी जमीन में
गड़ी नर्मदा तट पर
महलों के महराज खड़े
रोते देखे पनघट पर
मांडवगढ़ गड़ता जाता है
नित्य धूल खाता है
जन समूह उसका शव—
दर्शन, हाय ! लूट जाता है,
आज बना इतिहास विचारा
निठुर प्रकृति का हास ;
ले बैठी, स्वातन्त्र्य—भावना,
मिट्टी में सन्यास ।।[२]

चतुर्वेदी जी की, वर्तमान की तुलना में अतीत गौरव की अनुभूति अत्यधिक भावात्मक है। उसका विषाद-पक्ष भी अधिक मूर्त है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की, अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति तीव्र होने पर भी संयत तथा गंभीर है। इसी कारण वे ठाकुर गोपालशरण सिंह जी की भांति 'सिर कूटने' या 'विष घूंटने' की बात नहीं कहते। गुप्तजी की दृष्टि भारत के स्वर्णिम अतीत, उसके सांस्कृतिक मूल्यादर्शों से अनुप्राणित होती हुई, भारत की वर्तमान दुरवस्था पर पहुंचती है। अतः वे अधिक सक्रिय तथा सचेतन वाणी में यह तुलनात्मक विवेचना करते हैं। गुप्त जी भावावेश में बह नहीं जाते, भावनाओं पर उनके संयम का नियंत्रण है। इसी कारण वे अतीत की तुलना में वर्तमान विभीषिका का जो वर्णन करते हैं वह उनकी विचारशक्ति द्वारा संतुलित होता है। उनके काव्य

१—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा : पृ० १०
२—माखनलाल चतुर्वेदी : हिमकिरीटिनी : पृ० ५४

ग्रंथों में भारतीय इतिहास के अनुसंधान के अनेक पृष्ठ अनावृत हुए हैं किन्तु इतिवृत्तात्मक रूप में नहीं, काव्यात्मकता के आग्रह तथा मौलिक प्रतिभा के संयोग के साथ। इसके अतिरिक्त उनकी संवेदना, कल्पना अथवा प्रतिभा ने भारतीयों की राष्ट्रीय भावना को जागृत करने के लिए, वर्तमान अथवा अतीत के अतिरंजिततापूर्ण चित्र नहीं खीचे हैं। अतीत की बढ़ती हुई खोज के साथ भारत के गौरवमय इतिहास का जो रूप स्पष्ट होकर आया था, उसी की पृष्ठभूमि में उन्होंने वर्तमान यथार्थ का चित्रण किया था।

गुप्तजी ने भारत के अतीतकालीन उत्कर्ष का अंकन और वर्तमान विषमता की उससे तुलना करना ही अपना एकमात्र धर्म नहीं समझा था। उनकी सजग राष्ट्रीय चेतना ने पतन के कारणों की खोज कर उसे निश्चित रूप प्रदान किया है। उनके मतानुसार हमारी सांस्कृतिक अवनति का प्रमुख कारण है—चारित्रिक पतन। उनके अनुसार आज हम आध्यात्मिकता, नैतिकता तथा अध्यवसाय के उन विशेष गुणों से शून्य हैं, जो हमारे पूर्वजों की बहुमुखी उन्नति का मूल कारण था, जिसके द्वारा उन्होंने समस्त विश्व में अपनी कीर्ति ध्वजा फहराई थी :—

वह गौरव, वह मान महत्व, वह अमरत्व, तत्वमय सत्व,
सबके ऊपर चारु चरित्र, पवित्रता का जीवित चित्र;
वह साधन वह अध्यवसाय, नहीं रहा हम में अब हाय !
इसीलिये अपना यह ह्रास चारों ओर त्रास ही त्रास ॥[1]

गुप्त जी ने अतीतकालीन उत्कर्ष के प्रभावोत्पादक वर्णन द्वारा भारतवासियों को उनकी वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है। इसके अतिरिक्त पूर्वजों के कीर्तिगान में उन्होंने आशामय भविष्य की भी कल्पना की है।[2] भारतवासियों को हीन भावना से मुक्त कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग का प्रदर्शन भी किया है। काव्य द्वारा कर्मण्यता का संदेश दिया है :—

हे अपार हिन्दू संसार तेरा एक एक तिथि-वार
रखता है सौ सौ-इतिहास उद्यत हो तू, न हो उदास ॥[3]

ठाकुर गोपालशरणसिंह का तुलनात्मक विवेचन अधिक भावात्मक है। उनकी संवेदनशीलता में पीड़ा अथवा वेदना की मात्रा अधिक है। इसी कारण उनकी विचारशक्ति थक जाती है। उनकी अतीतोत्कर्ष से वर्तमान अपकर्ष की तुलना कहीं-कहीं ध्वंसात्मक होती है, उन्हें राष्ट्रीय कल्याण का उपाय नहीं सूझता।[4] ठाकुर गोपालशरण सिंह जी ने भारत के पतन अथवा अवनति का कारण उसके शोषण में

१—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ २४-२५
२—वही, : पृ० ५८
३—वही, : पृ० ७९
४—ठाकुर गोपालशरणसिंह : संचिता : पृ० ६२

खोजा है।[1]

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय के हृदय में तत्कालीन पराधीनता का अभिशाप कंटक-सा चुभता है। अतीत गौरव की स्मृति में वर्तमान की पीड़ा बढ़ती जाती है। इनके अतीत-गौरव के सुखद एवं मनोहारी दृश्य आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान की भावना को जिस तीव्रता से संवर्द्धित करते हैं, उसी मात्रा में अतीत की तुलना में वर्तमान की विभीषिका, उसके करुण चित्र हृदय को असह्य पीड़ा अथवा वेदना से भर देते हैं। 'क्या रहे और हो गये अब क्या'[2] में कविहृदय की मार्मिक वेदना सजल तथा सजग हो उठी है। श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा ठाकुर गोपालशरणसिंह की भांति श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी भारतीयों की वर्तमान दुरवस्था के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। उनकी दृष्टि में भारतीयों की क्षीण शक्ति, दीनता-हीनता का कारण फूटवैर आदि मानव अहितकारी भाव हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अतीत की तुलना में वर्तमान भारत की दुरवस्था का मूल कारण विदेशी साम्राज्य की अधीनता में ढूंढा था—

> जहां थे साम्यवाद के सिद्ध जहां का था स्वतन्त्रता-मन्त्र
> वहन कर पराधीनता-वृत्ति वहां का जन जन है परतंत्र॥[3]

अंग्रेज भारतीयों की हीन भावना के मूल कारण हैं।[4] 'हरिऔध' जी की सी स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता श्री मैथिलीशरण गुप्त अथवा ठाकुर गोपालशरण सिंह जी में नहीं मिलती। इसका कदाचिद् यह भी कारण था कि विदेशी साम्राज्यवाद के प्रति उनकी प्रतिहिंसात्मक भावना अत्यधिक तीव्र थी। गांधीवादी विचारधारा की सहिष्णुता, अहिंसा तथा हृदयपरिवर्तन के सिद्धान्तों से वे सहमत नहीं थे।

पंडित रामचरित उपाध्याय ने अतीत से भारत के वर्तमान की तुलना एक विशेष उद्देश्य से की थी। उनके ऊपर आर्यसमाजी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि वे हिन्दू जाति और धर्म के विशेष पोषक थे। इसी कारण इस तुलनात्मक विवेचन में उपाध्याय जी को हिन्दुओं के धार्मिक पतन, जाति-पांति से विश्वास उठना, आचरण हीनता, तिलक आदि न धारण करना असह्य था।[5] वे पुनः वैदिक धर्म एवं ऋषि मुनियों के आदर्शों की प्रतिष्ठा द्वारा भारत का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। श्री उपाध्याय जी की राष्ट्रीयता में हिन्दू जातीयता की भावना की प्रमुखता थी, इसी कारण उन्होंने कहा था :—

१—ठाकुर गोपालशरण सिंह : संचिता : पृ० १११
२—अयोध्यासिंह उपाध्याय : चुभते चौपदे : पृ० ३९
३—अयोध्यासिंह उपाध्याय : कल्पलता : पृ० ३९
४—अयोध्यासिंह उपाध्याय : चुभते चौपदे : पृ० २३
५—पंडित रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० ७

हिन्दू हो पर हिन्दूपन का कुछ भी तुम्हें न रहता ध्यान,
धन्य ! बनाते हो भारत को मानो काला इंगलिस्तान ।।[1]

श्री उपाध्याय जी ने भारत की अवनति का कारण पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति का दूषित प्रभाव माना था । इनके मत में प्राचीन वैदिक संस्कृति की स्थापना द्वारा ही भारत का उद्धार हो सकता है ।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने भी भारत की पतित अवस्था का प्रमुख कारण देश की विपन्न आर्थिक व्यवस्था अथवा शोषण में खोजा था । लक्ष्मी का अपहरण ही दुर्दशा का मूल कारण था—

हो असहाय भटकते फिरते वनवासी-से आज सखी ।
सीता-लक्ष्मी हरी किसी ने गई हमारी लाज सखी ।।[2]

श्री निरालाजी की अतीत गौरव की अनुभूति का धरातल भी वर्तमान का खंडहर है । उनकी अनुभूति में मार्मिकता की अपेक्षा तीव्रता एवं खोज की मात्रा अधिक है, जिसमें व्यंग का भी कुछ पुट मिल गया है—

खंडहर खड़े हो तुम आज भी ?
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज ।
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें—
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ?
पवन-संचरण के साथ
परिमल-पराग-सम अतीत की विभूति-रज—
आशीर्वाद पुरुष पुरातन का
भेजते सब देशों में,
क्या है उद्देश तव ?
बन्धन-विहीन भव ।
ढीले करते हो भव बन्धन नर-नारियों के ?
अथवा,
हो मलते कलेजा पड़े,जरा जीर्ण;
निर्निमेष नयनों से
बाट जोहते हो तुम मृत्यु की
अपनी सन्तानों से बूंद भर पानी को तरसते हुए ?[3]

अतीत गौरव के वर्णन में वर्तमान का अभाव ध्वनित है—

शाही दीवान-आज स्तब्ध है हो रहा,

१—पंडित रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० ७
२—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ९२
३—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अनामिका : खंडहर के प्रति : पृ० २९

दुपहर को, पार्श्व में,
उठता है भिल्ली रव,
बोलते हैं स्यार रात यमुना कछार में,
लीन हो गया है रव
शाही अंगनाओं का,
निस्तब्ध मीनार,
मौन हैं मकबरे—
भय में आशा को जहां मिलते थे समाचार,
टपक पड़ता था जहां आंसुओं में सच्चा प्यार ।।[1]

निराला की राष्ट्रीय भावना जातीयता अथवा धार्मिकता से परे थी । इसी कारण मुस्लिम इतिहास के प्रतीक शाही दीवाने-आम, मीनारें आदि भी राष्ट्रीय गौरव के चिह्न हैं जिनकी सुहाग-गाथा आज भी यमुना की ध्वनि में गूंज रही है । 'निराला' द्वारा प्रदत्त यह तुलनात्मक विवेचन देश में बसने वाली हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही जातियों में, वर्तमान के प्रति तीव्र विक्षोभ की भावना के विकास में नितान्त समर्थ है ।

रामधारीसिंह 'दिनकर का तुलनात्मक विवेचन भी अधिक ऐतिहासिक, कलात्मक एवं मार्मिक-भावुकता से संयुक्त है । अपने इतिहास से विशेष मोह होने के कारण कवि ने वर्तमान विभीषिका की चित्रपटी पर अतीत के वैभव का काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है । 'दिनकर' में इतिहास अपनी सम्पूर्ण वेदनाओं को लेकर बोलता है ।'[2] इस वेदना का कारण है—कवि का अपना वर्तमान, जब कि देश अनेक प्रकार की दुर्दशाओं से ग्रस्त था । इतिहास के बल पर वर्तमान की पीड़ा को अधिक प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत किया है :—

तूने सुख सुहाग देखा है उदय और फिर अस्त, सखी ।
देख, आज निज युवराजों को भिक्षाटन में व्यस्त सखी !
एक एक कर गिरे मुकुट, विकसित तन भस्मीभूत हुआ,
तेरे सम्मुख महासिन्धु सूखा सैकत उद्भूत हुआ—[3]

कवि को वर्तनान की असीम पीड़ा सहना अत्यधिक दुःखद था, इसलिए उसने अतीत की सुखद संस्मृति में रत रहना श्रेयकर समझा था ।[4] प्रियदर्शन इतिहास को काव्य के रूप में ध्वनित कर पुनः अतीत-गौरव को वर्तमान में प्रत्यक्ष करने की

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अनामिका : दिल्ली : पृ० १
२. प्रो० कामेश्वर वर्मा : दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि : पृ० २१
३. रामधारीसिंह दिनकर ; इतिहास से आँसू : पृ० ३९
४. वही : पृ०

कवि ने आकांक्षा की थी।[1] कवि को पूर्ण आशा थी कि अतीत-गौरव की वर्तमान दुर्दशा की तुलना का चित्र रखने से देश में नव-जागृति आएगी—

अंकित हैं इतिहास पत्थरों पर जिनके अभियानों का,
चरण-चरण पर चिह्न यहाँ मिलता जिनके बलिदानों का,
गुंजित जिनके विजय-नाद से हवा आज भी बोल रही,
जिनके पदाघात से कम्पित धरा अभी तक डोल रही।
कह दो उनसे जगा, कि उनकी ध्वजा धूल में सोती है,
सिंहासन है शून्य, सिद्धि उनकी विधवा सी रोती है।[2]

अंग्रेजी सभ्यता ने दिल्लीवासियों पर ऐसा जादू फेरा था कि वे अपना स्वत्व खो बैठे थे। अतः दिनकर ने दिल्ली के पूर्व-गौरव, मुस्लिम, संस्कृति के उत्कर्ष, वीर पात्रों और ऐतिहासिक स्थानों की स्मृति दिला कर देशवासियों को उनके पतन की ओर से सचेत किया है।[3] दिनकर के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी अभिव्यंजना शैली। भाषा का एक-एक वर्ण, एक-एक शब्द जन-मानस का स्पर्श करने वाला है। उनकी राष्ट्रीय भावना ने इतिहास के अतीत-गौरव को आकारमात्र ही नहीं दिया है वरन् सच्चे अर्थों में मूर्त एवं मुखर किया है। विगत वैभव की चित्रपटी पर वर्तमान के फीके रंग कष्टकर प्रतीत होते हैं। 'दिनकर' ने सम्पूर्ण इतिहास का स्पर्श किया है अर्थात् हिन्दू-काल एवं मुस्लिम-काल दोनों को समान रूप से अपनाया है।

अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का सर्वाधिक उपयुक्त साधन काव्य था। नाटक अथवा कथा-साहित्य की अपेक्षा काव्य में अधिक सरलता के साथ तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। राष्ट्रवाद के इस अंग विशेष के निरूपण में भी कवियों ने अपनी प्रतिभा एवं कौशल का परिचय दिया है।

हिन्दी नाटय-साहित्य में अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति

हिन्दी-नाट्य-साहित्य में भी ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से यह कार्य संपन्न किया गया है। वर्तमान की विभीषिका से ऊबकर नाटककारों ने अतीत के उज्ज्वल पक्ष अर्थात् भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के उत्कृष्ट रूप का गौरवयुक्त शब्दों में वर्णन किया था। उनकी दृष्टि अतीत में खो नहीं गई थी, प्रत्युत अतीत-गौरव का अनुभव करती हुई वर्तमान पर आकर टिक गई थी। अतीत के सुन्दर स्वप्नों में वे वर्तमान को भूले नहीं थे। उग्र जी के 'महात्मा ईसा' नाटक में वर्तमान ध्वनित है। बदरीनाथ भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क के ऐतिहासिक नाटकों का भी यही लक्ष्य रहा है कि अतीत के उत्कृष्ट

१—रामधारीसिंह दिनकर : इतिहास के आँसू : पृ० ३
२—वही : पृ० ३०
३—रामधारीसिंह दिनकर : दिल्ली पृ० ७

चित्रों द्वारा वर्तमान जीवन का कुंठा तथा हीन-भावना को मिटा कर देश का सांस्कृतिक उत्थान किया जाये, प्राचीन संस्कृति के उच्चादर्शों के ज्ञान द्वारा देशवासियों को अपने युग की दुर्दशा ग्रस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों के प्रति विक्षुब्ध करें।

हिन्दी के कतिपय नाटकों में प्रतीकात्मक शैली में भी अतीत गौरव एवं वर्तमान दुर्दशा के चित्रों को प्रस्तुत किया गया है। उग्र जी के 'महात्मा ईसा' नाटक में भारत के आध्यात्मिक नैतिक उत्कर्ष का वर्णन अतीतकालीन है लेकिन ईसा के अपने देश की दुर्दशाग्रस्त स्थिति वस्तुतः लेखक के अपने युग की स्थिति है। एक ही नाटक में, एक कथा के माध्यम से, एक ही काल की कथा लेकर उग्र जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर पाठकों के सम्मुख अतीत एवं वर्तमान के दो विरोधी चित्र रख दिए हैं।

कुछ नाटकों में स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप से अतीत के साथ वर्तमान की तुलना पात्रों द्वारा करवाई गई है, उदाहरणतया 'महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक' में अतीत-गौरव से वर्तमान की तुलना करते हुए लेखक ने कहलाया है।—

एक दिन वह था कि भारत विश्व में बलवान था।
सारे देशों का यही सिरताज हिन्दोस्तान था॥
आज निर्बल हो गई उनकी सभी संतान हैं।
न वह शक्ति गौरव है न उनमें अब जान है॥

तुलना के साथ ही लेखक ने वर्तमान दुर्दशा के कारणों पर भी प्रकाश डाला है। देशवासियों के पतन का मूल कारण है कि वे अपने अतीत गौरव को भूल गए हैं—'हमारा क्या कर्तव्य है, इसका ज्ञान जब जाता रहा, संगठन का मूलमन्त्र जब विस्मृत हुआ, तो देश भी दूसरों के हाथ में जाता रहा।' साहित्यिक दृष्टि से इस नाटक का अधिक मूल्य नहीं है, लेकिन राष्ट्रीय भावना के उद्रेक की दृष्टि से इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

अधिकांश नाटकों में अतीत एवं वर्तमान की तुलना ध्वनित मिलती है, लेकिन प्रत्यक्ष तुलनात्मक वर्णनों की न्यूनता है।

कथा-साहित्य में अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति

काव्य एवं नाटकों की भांति कथा-साहित्य में अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का प्रत्यक्ष वर्णन केवल कुछ स्थलों पर कथोपकथन द्वारा अथवा स्वयं कथाकार के शब्दों में सम्भव होता है। प्रायः अतीतकालीन उत्कृष्ट चित्रों को सम्मुख रखकर ही उपन्यासकार अथवा कहानीकार अप्रत्यक्ष रूप से पाठक को अतीत के सुखद जीवन से वर्तमान परिस्थिति की तुलना करने के लिये बाध्य करता है। अतीतोत्कर्ष के प्रत्येक वर्णन से उसके इस लक्ष्य की ध्वनि मुखरित होती रहती है। कभी-कभी उपन्यास अथवा कहानियों में ऐतिहासिक कथानकों द्वारा वर्तमान सम-

स्याओं तथा दुर्व्यवस्था के अनेक रूपों को भी प्रतिध्वनित किया जाता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या अति सीमित होने पर भी श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास जैसे 'गढ़ कुण्डार', प्रेमचन्द, प्रसाद, सुदर्शन तथा अन्य ऐतिहासिक कहानीकारों की रचनाओं में अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति ध्वनित हुई है।

प्रेमचन्द जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास में कुछ स्थलों पर अतीत से तत्कालीन भारत की दुर्दशा का उल्लेख मिलता है जैसे अमर वर्तमान शिक्षा पद्धति से अतीत के आदर्श की तुलना करता है—'तब अमर को उस अतीत की याद आती, जब हमारे गुरुजन झोंपड़ों में रहते थे, स्वार्थ से अलग, लोभ से दूर, सात्विक जीवन के आदर्श, निष्काम सेवा के उपासक। वह राष्ट्र से कम से कम लेकर अधिक से अधिक देते थे। वह वास्तव में देवता थे। और एक यह अध्यापक हैं, जो किसी अंश में भी एक मामूली व्यापारी या राज्य कर्मचारी से पीछे नहीं। इनमें भी वही दंभ है, वही धन-मद, वही अधिकार-मद। हमारे विद्यालय क्या हैं राज्य के विभाग हैं और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अंग है। ये खुद अन्धकार में पड़े हैं, प्रकाश क्या फैलायेंगे।'[1] इसी प्रकार अमर वर्तमान युग के बुद्धिवाद से अतीत नारियों के वीरत्व की तुलना भी करता है।[2] भारत की वीर नारियों का वर्णन करते हुए यूरोप के आदर्श से भी भी उनकी तुलनात्मक समीक्षा करता है।[3]

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की एकाध कहानियों में वर्तमान में अतीत गौरव का वर्णन मिलता है। 'तांगेवाला' कहानी में तांगे वाला कहता है—'हां, 'हुजूर तांत्या टोपे नदी के पार जाना चाहता था। फिरंगियों की सेना ने उसे चारों तरफ से घेर लिया था। फिर भी हुजूर वह इतना तेज, इतना फुर्तीला था कि चार पांच बड़े-बड़े फिरंगी अफसरों के सामने से निकल गया। अपने सेना समेत और उसका कोई कुछ भी न कर सका।'[1] आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'स्वदेश' नामक गद्य काव्य सी स्वदेश की कहानी में अतीत गौरव की पृष्ठभूमि में दुर्दशा का चित्र खींचा है। अतीत की स्मृति में लेखक की व्यथा स्पष्ट है—'क्या कहा ? 'पूर्व स्मृति' सर्प की तरह डसती है, बिच्छू की तरह डंक मारती है, बिजली की तरह नाशकारी है और मृत्यु की तरह भयानक है। हाय ! कहां गया वह भूत, कहां गया वह अतीत।

जिन्होंने तुम्हारा यौवन देखा है, वे कहते हैं कि तुम अगाध समुद्र के फेनों की उज्ज्वल करधनी पहन कर खड़े होते थे तो संसार की जातियां तुम्हारे बांकपन

१—प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १०४
२—वही, पृ० १७३
३—वही, पृ० १७४
४—सुभद्राकुमारी चौहान : सीधे-सादे चित्र : पृ० ३०

पर लट्टू हो जाती थीं।'[१] इसी प्रकार भारत की प्राचीन शक्ति और वैभव से भी अपने युग की पतित अवस्था का अत्यन्त करुण शब्दों में लेखक ने वर्णन किया है।[२]

कथा-साहित्य में भी तुलनात्मक विवरण यत्र-तत्र अनेक रूपों में बिखरे मिल जाते हैं।

अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति की साहित्य में अभिव्यक्ति से राष्ट्रीय जागरण को उत्तेजना मिली थी। देशवासियों के सम्मुख अतीत एवं वर्तमान के दो विरोधी चित्र प्रस्तुत कर साहित्यकारों ने वर्तमान दुर्दशा-ग्रस्त परिस्थिति के प्रति विद्रोह को तीव्र करने में सहायता पहुंचाई। निम्न गति देशवासियों को जागृत करने का यह अत्यधिक मनोवैज्ञानिक उपचार था। जो कार्य राष्ट्रीय नेता अपने उपदेशों द्वारा कर रहे थे, वही साहित्यकारों ने कलात्मकता के आग्रह के साथ लेखनी द्वारा किया। राष्ट्रवाद के विकास में उनका यह सहयोग महत्व रखता है।

१—चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय : पृ ६
२—वही, पृ० ७

: ६ :

राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष--देशभक्ति

देशभक्ति राष्ट्रवाद का आवश्यक तत्व है क्योंकि एक देश अथवा राष्ट्र की निश्चित सीमारेखा में ही राष्ट्रवाद का पोषण होता है। राष्ट्रवाद की मान्य परिभाषाओं के विवेचन एवं स्वरूप में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि भौगोलिक एकता राष्ट्रवाद का मूल बिन्दु है। डा० आबिद हुसैन ने इस विषय में लिखा है—'अतः हम उन परिस्थितियों का अध्ययन करें, जिनसे गुजर कर राष्ट्रों का निर्माण हुआ है और होता है तो अधिक यही कहा जा सकता है कि भौगोलिक एकता और सामान्य सांस्कृतिक दृष्टिकोण की एकता ही राष्ट्रीयता की आवश्यकता और पूर्व-शर्तें हैं। जाति, धर्म और भाषा की एकता या समान इतिहास महत्वपूर्ण जरूर है पर अनिवार्य नहीं।'[1]

भारत देश को 'माता भूमि' के रूप में देखा गया है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'माता भूमि' में लिखा है—'माता भूमि नए युग की देवता है। सुन्दर संकल्प, सशक्त कर्म और त्याग भाव, जिसके लिए समर्पित हों वही देवता है।'[2] मातृभूमि के दो रूप हैं, एक उसका भौतिक रूप और दूसरा दूसरा उसका आन्तरिक रूप या मानस जो वास्तव में उसकी सांस्कृतिक मूर्ति है। हिन्दी साहित्य में मातृभूमि भारत देश के दोनों ही पक्षों का सबल चित्रण किया गया है। अतीत-गौरव—अर्थात् देश का सांस्कृतिक पक्ष मन है जिस पर विचार किया जा चुका है इस प्रकरण में देश के भौतिक पक्ष अर्थात् भौगोलिक-पक्ष के प्रति साहित्य की भक्ति भावना का अनुशीलन अपेक्षित है।

हिन्दी-कविता में देशभक्ति की भावना

मातृभूमि के प्रति भक्ति में उसके पर्वतों, नदियों, पशु-पक्षी, ऋतुओं सभी को एक विशेष गौरव की दृष्टि से देखा जाता है। वासुदेवशरण जी ने लिखा है—

---

१. डा० आबिद हुसैन : राष्ट्रीय संस्कृति : पृ० ८

२. वासुदेवशरण अग्रवाल : माता भूमि : पृ० १

'जिनके हृदय में मातृ-भूमि के प्रति भक्ति नहीं उनके लिये पृथ्वी मिट्टी का ढेला है।'[१] देशभक्ति के उन्मेष में देश की प्राकृतिक विभूति अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित कर देश की महानता का प्रतीक हो जाती है। भारत की भौगोलिक एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए उत्तर में उन्नत हिमशृंग हिमालय है और तीन ओर समुद्र। वस्तुतः हिमालय देवभूमि है, भारत-माता का हिम-नग-जटित मुकुट है, भारत का उन्नत ललाट है और देश का सशक्त प्रहरी है।

द्विवेदी युग से देश-भक्ति-काव्य की अजस्र-धारा प्रवाहित करते हुए श्रीधर पाठक ने इस युग में भी देश के प्रकृति-सौन्दर्य की महत्ता और भौगोलिक एकता प्रदान करने वाले तत्वों का उल्लेख करते हुए लिखा है:—

हिमनगविभूषितभालां, सुरधुनिजलधौतजानपदजालाम्
प्रकृति-विभूतिविशालां वंदे त्वां त्रिदशकोटिजनपालाम्
अभिनवजीवनपूर्णां परहितपूर्णां परार्थिपरिकीर्णाम्
साधितदीनोद्धरणां बाधितसर्वाधि संध—संसरणाम्।[२]

पाठक जी ने भारतभूमि को त्रैलोक्य-वंदनीय माना है। 'पुन्य मातृ धरे', 'भारत वसुन्धरा' आदि उनकी प्रसिद्ध देशभक्ति पूर्ण कविता है। हिन्दुस्तान के जंगल, नदियां, आसमान, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, पारसी, मंदिर, मूरत, तीरथ, मस्जिद, मक्का, प्रयाग, हज्ज, हरद्वार, सबसे वे दिल से प्यार करते थे। उनकी देशभक्ति साम्प्रदायिकता से मुक्त नरमदली राष्ट्रीय नेताओं की भक्ति थी, जिसमें ब्रिटेन से किसी प्रकार का विद्वेष नहीं था, जो विश्व-प्रेम तथा सेवा-भावना से पूर्ण थी।[३]

मैथिलीशरण गुप्त ने भी देश-प्रेम, देश की भौगोलिक एकता की अभिव्यंजक कविताओं की रचना की है। 'भारतवर्ष'[४] कविता में भारत-भूमि के उज्ज्वल भाग्य सम-उन्नत-मस्तक हिमालय, सरयू-तट, ब्रज-वंशीवट आदि का उल्लेख मिलता है। देवताओं की पवित्र भूमि भारत की सत्यता, शुचिता, धार्मिकता आदि का उल्लेख करते हुए कवि ने इस देश को कर्म-भूमि एवं धर्म-भूमि माना है। 'मेरा देश'[५] 'मातृ-भूमि'[४] कविताओं में भी भारत-भूमि की भौगोलिक स्थिति, प्राकृतिक सौन्दर्य तथा आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन मिलता है—

---

१. वासुदेवशरण अग्रवाल : माता भूमि : पृ० १८
२. श्रीधर पाठक : भारत-गीत : पृ० ९३ :
३. वही, पृ० ९९
४. श्रीधर पाठक : भारत-गीत : पृ० १२३ :
५. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० ११, १२
६. वही, पृ० १२
७. वही, पृ० १३२

मस्तक में रखता है ज्ञान,
भक्तिपूर्ण मानस में ध्यान।
करके तू प्रभु कर्म विधान
हे सत् चित्—आनन्द निधान॥
मेटे तूने तीनों क्लेश,
मेरे भारत ! तेरे देश ![1]

गुप्त जी की देशभक्ति पूर्णतया धार्मिकता के रंग में रंगी हुई है। वे भारत माता के सुन्दर स्वरूप का वर्णन करते हुए उसे 'स्वर्ग-सहोदर' मानते हैं। 'पर भारत के सम भारत है।'[2] अन्य देश उसकी समता के अधिकारी नहीं हैं। आध्यात्मिकता के अतिरेक में कवि ने जन्मभूमि भारत को सर्वेश की मूर्ति और ब्रह्मरूप भी कहा है।[3] मातृभूमि के गुणों का विशद् रूप अंकित करते हुए गुप्त जी ने लिखा है—

क्षमामयी, विश्वपालिनी, तू प्रेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है,
विभवशालिनी, विश्वपालिनी दुखहर्त्री है
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि, तू करती सबका त्राण है।
हे मातृभूमि, सन्तान हम, तू जननी, तू प्राण है॥[4]

मातृभूमि के प्रति कवि की अनन्य प्रेम भावना सांस्कृतिक आवरण में आवेष्ठित है—

जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे॥[5]

'साकेत' महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने वनगमन के अवसर पर राम द्वारा जन्मभूमि प्रेम के महान् भाव का प्रदर्शन किया है। राम कहते हैं—

जन्मभूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे,
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे।
तेरे कीर्ति-स्तम्भ, सौध, मन्दिर यथा—
रहें हमारे शीर्ष समुन्नत सर्वथा॥[6]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० १३
२. वही, पृ० १६
३. वही, पृ० २४
४. वही, पृ० २६
५. वही, पृ० २८
६. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० १३३

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अपने देश की विशेषताओं को सूक्ष्म रूप से संवेष्ठित किये रहता है। राम द्वारा गुप्त जी ने कहलाया है—

हम में तेरे व्याप्त विमल जो तत्व हैं,
दया, प्रेम, नय, विनय, शील शुभ सत्व हैं,
उन सबका उपयोग हमारे साथ है,—
सूक्ष्म रूप में सभी कहीं तू साथ है।
तेरा स्वच्छ समीर हमारे श्वास में
मानस में जल और अनल उच्छ्वास में।[1]

कवि के अपने युग की देशभक्ति का प्रबल उच्छ्वास राम के माध्यम से अभिव्यक्ति हुआ है।

माखनलाल चतुर्वेदी, जयशंकरप्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रामधारी सिंह दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी ने भारत की भौगोलिक एकता के सुन्दर एवं भावात्मक चित्र खींचे हैं, जिनमें देश का मानवीकरण भी किया गया है। माखनलाल चतुर्वेदी ने उत्तर में हिमालय एवं तीन ओर से सागर द्वारा रक्षित भारत देश, जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख धर्मावलम्बी बसते हैं, की पराधीनता से क्षुब्ध होकर, विषादात्मक स्वरों में कहा है—

हो मुकुट हिमालय पहनाता,
सागर, जिसके पद धुलवाता
यह बंधा बेड़ियों में मन्दिर
मस्जिद गुरुद्वारा मेरा है।
क्या कहा कि यह घर मेरा है ?[2]

माखनलाल चतुर्वेदी ने भारत देश का मानवीकरण करते हुए 'मुझको कहते हैं।' 'माता' काव्य में आलंकारिक भाषा में माता-भूमि की भावात्मक अभिव्यक्ति की है। देशभक्ति से वात्सल्यभाव की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।[3]

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में, देश की भौगोलिक एकता के परिचायक अनेक गीत मिलते हैं। कार्नेलिया द्वारा भारत देश की प्राकृतिक सुषमा एवं महानता का गीत गाया गया है—

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहां पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर।

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : १३३
२. माखनलाल चतुर्वेदी : हिमकिरीटिनी : पृ० १४४
३. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ८६

छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा ॥
दे.....................................।[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'भारती-वन्दना' में देश की भौगोलिक सीमा प्राकृतिक सुषमा, सम्पन्नता, आध्यात्मिकता आदि विशेषताओं का उल्लेख, देश को पवित्र मूर्ति के रूप में देखते हुए किया है—

भारति, जय, विजयकरे
कनक-शस्य—कमल धरे।
लंका पदतल—शतदल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण—युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे।
तरु-तृण-वन-लता-वसन
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशायें उदार,
शतमुख-शतरव मुखरे।'[2] (सन् १९२८ ई०)

सोहनलाल द्विवेदी की देशभक्ति का प्रमुख लक्ष्य है, वंदनी भारत माता को बंधन विमुख करने के लिये शीश दान देना—

वंदना के इन स्वरों में, एक स्वर मेरा मिला लो :
वंदिनी मां को न भूलो,
राग में जब मत्त झूलो;
अर्चना के रत्नकण में, एक कण मेरा मिला लो।
जब हृदय का तार बोले,
शृंखला के बन्द खोले;
हो जहां बलि शीश अगणित, एक शिर मेरा मिला लो।[1]

हिन्दी कवियों ने 'हिमालय' और 'गंगा', 'यमुना' नदियों का विशेष रूप से वर्णन किया है। निःसन्देह भारत में हिमालय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। युग-युग से भारत के उत्तर में अपना मस्तष्क उन्नत किये इन हिममण्डित शृंग-श्रेणियों

---

१. जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त : पृ० ५७
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा : पृ० १
३. सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी : पृ० १

ने केवल भारत की सीमारेखा खींचकर भारत की रक्षा ही नहीं की है अपितु देश को निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित भी किया है। श्रीधर पाठक ने 'हिमनगविभूषित माला' और माखनलाल चतुर्वेदी ने 'हो मुकुट हिमालय पहनाता' कह कर हिमालय को भारत का गौरव माना था। जयशंकर प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक में अलका गाती है :—

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीरपुत्र हो. दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो बढ़े चलो ॥

प्रसाद जी ने हिमालय की उत्तुंग शृंग मालाओं से स्वयं प्रबुद्ध-शुद्ध भारती द्वारा स्वतंत्रता का सन्देश दिलाया है। यह पराधीन देशवासियों के लिए जागरण गीत है। रामधारीसिंह दिनकर की प्रसिद्ध कविता 'हिमालय के प्रति' में कवि ने पथरीले बर्फीले जड़ अचेतन हिमालय में मानवीय भावना का आरोपण कर अनन्य आत्मीय सम्बन्ध जोड़ा है। सीमापति हिमालय की उदारता, महानता, वीरता का वर्णन कर कवि देश की वर्तमान स्थिति से विक्षुब्ध हो पूछता है कि विदेशी शासन से आक्रान्त भारत की दुर्दशा देखकर वह मौन क्यों है। इस हिमालय से सम्बन्धित कविता में स्वतन्त्रता की पुकार और अतीत गौरव का स्वर अत्यधिक तीव्र है।[1]

गंगा और यमुना देश की दो पवित्रतम नदियां हैं। हिन्दीप्रदेश में बहने वाली इन दोनों ही नदियों ने हिन्दी कवियों की देशभक्ति की अभिव्यक्ति में विशेष योग दिया है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य में गंगा के प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना समर्पित की है। यह भक्ति, धार्मिकता और राष्ट्रीयता का मिश्रित रूप है।

जय गंगे, आनंद तरंगे, कलरवे,
अमल अंचले, पुण्यजले, दिवसम्भवे !
सरस रहे यह भरत-भूमि तुमसे सदा,
हम सबकी तुम एक चलाचल सम्पदा !

रामधारीसिंह दिनकर ने 'पाटलिपुत्र की गंगा' से अपने हृदय की पीड़ा भरे स्वर में अतीत-गौरव की स्मृति की है। जब देश की वर्तमान व्यवस्था असह्य हो जाती है तो अत्यधिक भावावेश में कवि गंगा को सम्बोधित कर कहता है :—

जिस दिन जली चिता गौरव की
जय—भेरी जब मूक हुई

१. रामधारीसिंह दिनकर : हुंकार : पृ० ५
२. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० १४५

जमकर पत्थर हुई न क्यों
यदि टूट नहीं दो टूक हुई।

निराला जी की 'यमुना के प्रति' में यमुना को देखकर कवि हृदय में उमड़ी अनेक गौरव संयुक्त स्मृतियों की अभिव्यक्ति है।[१] इस प्रकार गंगा, यमुना, हिमालय आदि को कवियों ने राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अंग माना है।

हिन्दी-नाटकों में देशभक्ति

जयशंकरप्रसाद, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द, हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में भी देशभक्ति के महत्व का प्रकाशन किया गया है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में जयशंकर प्रसाद ने सिंहरण से कहलाया है— 'जन्मभूमि के लिए ही यह जीवन है, फिर जब आप-सी सुकुमारियां इसकी सेवा में कटिबद्ध हैं तब मैं पीछे कब रहूंगा।'[२] इसी नाटक में अलका ने देश के अणु-परमाणुओं को राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोगी ठहराया है— 'मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी जातियां हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक-एक परमाणुओं के बने हैं। फिर मैं और कहां जाऊंगी यवन।'[३] विदेशी कन्या कार्नेलिया भी महान् भारतदेश की स्वर्गीय विभूति से प्रभावित होकर कहती है—'नहीं— चन्द्रगुप्त, मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहां के श्यामल कुंज, घने जंगल, सरिताओं की माला पहने हुए शैलश्रेणी, हरी-भरी वर्षा, गर्मी की चांदनी, शीतकाल की धूप, और भोले कृषक तथा सरल कृषक-बालिकायें, बाल्यकाल की सुनी कहानियों की जीवित प्रतिमायें हैं। यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि—भारत भूमि क्या भुलाई जा सकती है ? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है; यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।'[४] कार्नेलिया का यह कथन प्रसाद जी की अनन्य देशभक्ति का उदाहरण है। 'राज्यश्री' नाटक में गृहवर्मा और विदेशी यात्री सुएनच्वांग द्वारा भारत भूमि की श्रेष्ठता और महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।[५] प्रसाद जी की लेखनी का प्रसाद पाकर 'देशभक्ति' ऐतिहासिक पात्रों के मुख से सजीव हो गई है। अन्य देशों की तुलना में अपनी जन्मभूमि का स्थान अधिक श्रेष्ठ सिद्ध कर प्रसाद जी ने देशवासियों में स्वाभिमान, गौरव की भावना भर कर राष्ट्रवाद के विकास में अमिट सहयोग दिया है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नामक ऐतिहासिक नाटक में प्रच्छन्न रूप में युग-जागृति का वर्णन मिलता है। इस नाटक में चन्द्रावत कहते

---

१. निराला : अपरा : पृ० १०१
२. जयशंकर प्रसाद : चन्द्रगुप्त : पृ० ३२
३. वही, पृ०४७
४. वही, पृ० १४५
५. जयशंकर प्रसाद ; राज्यश्री : पृ० १७ और ७९

है—'......आज बरसों बाद, सोना मिट्टी से बाहर निकला है। देख, जननी जन्मभूमि, प्यारी मां, मेवाड़ देख ! आज तेरे सपूतों में उदारता है, न्याय है, सत्य है और है त्याग।'[1] इस नाटक में मेवाड़ सम्पूर्ण भारत देश का प्रतीक है और महाराणा प्रताप देशभक्ति का मूर्त रूप। लेखक ने महाराणा प्रताप द्वारा देशभक्ति की सुन्दर एवं पूर्ण व्याख्या कराई है—'शक्ति और साधन तो देशभक्ति का शरीर मात्र है। उसकी अन्तरात्मा तो हृदय का वह उज्ज्वल भाव है, जो हम में उसके लिए पतंगे की तरह मर-मिटने का साहस भर देता है।'[2] इस मातृभूमि के प्रेम में अदम्य शक्ति छिपी हुई है। चन्द्रावत अपने अल्प-वयस्क पुत्र की वीर-भावना को देखकर कहते हैं—'धन्य हो मां, धन्य हो मातृभूमि ! आज तुम्हारे अन्न-जल में यह शक्ति है कि इस अबोध शिशु के हृदय से भी उत्साह बनकर टपक रही है। वीरभूमि सचमुच तुम्हारे कण-कण में तेज और बच्चे-बच्चे में बलिदान का भाव भरा है। मां,तुम साक्षात् दुर्गा हो। संसार की रण-देवता तुम्हें प्रणाम। विजय, आओ बेटा ! तुम भी प्रणाम। करो। जिस देश में हमने जन्म लिया है, यही हमारी मां है—ईश्वर से भी पूज्य और प्राणों से भी प्यारी।'[3] मिलिन्दजी ने महाराणा प्रताप के चरित्र-चित्रण में, देशभक्ति के लिए सर्वस्व-समर्पण के उच्चादर्श को रखा है।

हरिकृष्ण प्रेमी की देशभक्ति साम्प्रदायिक अथवा जातीय एकता के धागे में गुंथी हुई है। महारानी कर्मवती कहती हैं—'......जब तक हम अपने व्यक्तित्व को, सुख-दुख और मानापमान को, देश के मानापमान में निमग्न न कर देंगे, तब तक उसके गौरव की रक्षा असम्भव है, तब तक हम मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हो सकते। जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हुए हैं, बिजली कड़क रही है, शत्रु पैशाचिक अट्टहास कर रहे हैं, उस समय पृथक्-पृथक् व्यक्तियों, जातियों और वंशों के मानापमान और अधिकारों की चर्चा कैसी। यह घोर पाप है बाघसिंह जी ! इस समय वीरों को केवल एक अधिकार याद रखना चाहिए, और वह है देश पर जान न्योछावर करना। शेष सभी पर परदा डाल दो; शेष सभी को पाताल में गाड़ दो।'[5] इसी नाटक में चांदखां मेवाड़ के माध्यम से भारत देश की प्राकृतिक सुषमा के सम्बन्ध में कहते हैं—'कितना खुशनुमा है आपका देश महाराणा ! आसमान से बातें करने वाले हरे-भरे पहाड़, कल-कल कल-कल करते हुए नाचते, कूदते जाने वाले झरने, समुद्र से होड़ करने वाले तालाब, बहिश्त के बगीचों को मात करने वाले बाग, घने जंगल। कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहीं बिखेर दी है। यहां के सुबह जिन्दगी

---

१. जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द : प्रताप प्रतिज्ञा : पृ० १००
२. वही, पृ० ९
३. वही, पृ० ४१
४. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ० ११
५. वही, पृ० ११

के गीत गाते हुए आते हैं, यहां की शाम हमदर्दी की तान छेड़ती हुई जाती है, यहां की रात राहत की सेज बिछाती हुई जाती है। तभी तो आये दिन इसे दूर-दूर के शाही लुटेरों का मुकाबला करना पड़ता है।'[1]

इसी प्रकार 'प्रेमी' जी ने 'शिवा-साधना' नाटक में भी स्वदेश प्रेम के महान् व्रत का पालन शिवाजी, उनकी माता जीजाबाई और गुरु रामदेव के चरित्र द्वारा कराया है। जीजाबाई स्वदेश प्रेम को मनुष्य का सबसे ऊंचा कर्तव्य मानती हैं जिसके सम्मुख पति और परलोक भी नगण्य हैं। वे स्पष्ट कहती हैं—'मैं अपनी हानि सह सकती हूं, स्वदेश की नहीं।'[2] यह लेखक के अपने युग की राष्ट्रीय भावना थी। गांधीजी ने भारत के पुरुष और नारी दोनों ही अंगों में, स्वदेश की वेदी पर व्यक्तिगत सुख अर्पित करने का महान् त्याग जगा दिया था। युग की यह मांग थी कि नारी लोक-परलोक से भी ऊपर स्वदेश को स्थान दे। उन्होंने भारत भूमि को वीर प्रसू भी माना है।[3]

हिन्दी-नाटकों में भारत भूमि के प्रति अभिव्यक्त देशभक्ति के अनेक रूप मिलते हैं। देशभक्ति का प्रमुख लक्ष्य है, देश को विदेशी दासता से मुक्त करना।

कथा-साहित्य में देशभक्ति की भावना

हिन्दी में अधिकांश कथा-साहित्य सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्याओं अथवा इतिहास को दृष्टि में रख कर रचा गया है। स्वदेश के प्रति रागात्मक उद्गारों की अभिव्यक्ति के लिए इसमें अधिक सुयोग नहीं था। उपन्यासों में एकाध स्थलों पर अवश्य देश के प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लेख मिल जाता है। 'कर्मभूमि' उपन्यास में पर्वतीय प्रदेश के वर्णन अथवा गांवों के चित्रण में प्रेमचन्द जी की देशभक्ति सजीव हो गई है।[4] इनके 'प्रेमाश्रम', कर्मभूमि', 'गोदान' आदि उपन्यासों में गांवों में बसे भारत के यथार्थ एवं मार्मिक चित्र मिलते हैं।

प्रेमचन्द जी ने देशभक्ति अथवा मातृभूमि के प्रति अनुराग की भावना से अभिप्रेरित होकर 'यही मेरी मातृभूमि है, कहानी रची थी।[5] इस आत्म-कथा शैली में लिखी गई कहानी में लेखक ने स्पष्ट कह दिया है कि जननी जन्मभूमि का प्यार किसी भी व्यक्ति के हृदय से मिट नहीं पाता। इसमें उस व्यक्ति की कथा है जो उच्च अभिलाषा और ऊंचे विचारों को पूर्ण करने के लिए विदेश में जा बसता है लेकिन जीवन की अन्तिम अवस्था में जन्मभूमि का प्रेम उसे भारत खींच लाता है। वह कहता है—'मेरे धन था, पत्नी थी, लड़के थे और जायदाद थी; मगर न मालूम

१. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा बन्धन : पृ० १८
२. हरिकृष्ण प्रेमी : शिवा-साधना : पृ० २१
३. वही, पृ० १४६
४. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १४१
५. प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग ३ : पृ० ५

क्यों मुझे रह-रह कर मातृभूमि के टूटे फूटे झोंपड़े, चार-छः बीघे मौरुसी जमीन और बालपन के लंगोटिया यारों की याद अक्सर सताया करती। प्रायः अपार प्रसन्नता और आनन्दोत्सवों के अवसर पर भी यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था 'यदि मैं अपने देश में होता……।'[1] विदेशी शासन के कारण बिगड़ी हुई भारत की अवस्था देखकर क्षोभ होता है, वह सोचता है कि यह तो उसका पूर्व भारत नहीं है। अन्त में ग्रामवासियों, नारियों के संगीत, हर हर गंगे के शब्द, भारतीय धर्म और संस्कृति में उसे अपनी मातृभूमि का सच्चा रूप मिलता है। आज भी प्यारे देश, गंगा माता के तट और धर्म में प्रबल आकर्षण है। इसी प्रकार 'शाप' कहानी में प्रेमचन्द जी ने 'बर्लिन निवासी' द्वारा भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लेख किया है—'मैंने स्विटजरलैण्ड और अमेरिका के बहुप्रशंसित दृश्य देखे हैं पर उनमें यह शांतिप्रिय शोभा कहां। मानव बुद्धि ने उनके प्राकृतिक सौंदर्य को अपनी कृत्रिमता से कलंकित कर दिया है।'[2]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की गद्य-गीत सी 'स्वदेश' कहानी में देश का मानवीकरण करते हुए स्वदेश भक्ति, देश की भौगोलिक एकता का वर्णन मिलता है।[3] चंडीप्रसाद 'हृदयेश' की 'योगिनी' कहानी में देश-प्रेम का अति उत्कर्षपूर्ण चित्रण मिलता है। इस कहानी में लेखक ने नारी और पुरुष के लौकिक प्रेम का पर्यवसान देश-प्रेम में किया है। शैवालिनी का पति देशभक्ति की साधना के लिए उसे छोड़ कर चला जाता है। शैवालिनी का विरह अति तीव्र है। अन्त में पति मिलन के साथ ही उसके प्रणय की अवधि देश की सीमा तक विस्तृत हो जाती है।[4]

निष्कर्ष

हिन्दी कविता, नाटक, कथा-साहित्य में भारतभूमि के प्रति भक्ति के अनेक रूपों का चिचण मिलता है, जिससे राष्ट्रीय-भावना के विकास को समुचित विकास प्राप्त हुआ। देश की एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए, उसके विभिन्न अंगों को पुष्ट कर समुन्नत करने के लिए, साहित्य द्वारा इस प्रकार का रागात्मक वर्णन अनिवार्य था। यही एकमात्र साधन था जिससे राष्ट्रीय व्यक्तित्व को जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि अनेक प्रकार की भेदात्मक भावनाओं से मुक्त कर, देश के लिए मर मिटने को प्रेरित किया जा सकता था। साहित्यकारों ने देशवासियों के सम्मुख भारत-माता की शुचि एवं पवित्र मूर्ति उपस्थित कर उसकी उपासना की एक नवीन साधना प्रणाली का अन्वेषण किया था। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही देश को हिन्दुस्तान पाकिस्तान में विभाजित कर भारत माता की वन्दनीय मूर्ति को विकलांग कर दिया गया।

---

१. प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग ३ : पृ० ६
२. वही, पृ० ६४
३. आचार्य चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय पृ० ११
४. चन्डीप्रसाद हृदयेश : नन्दन-निकुंज : पृ० ९३

: ७ :

राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष

दुर्दशा के अनेक रूप

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में राष्ट्र के अभावात्मक पक्ष अथवा देश-दुर्दशा के विभिन्न रूपों के ज्ञान से भी सहायता मिलती है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं की सतर्क एवं तीव्र दृष्टि ने देश की अवनति के मूल कारणों को अनावृत्त कर देशवासियों का विशेष ध्यान उनके उन्मूलन की ओर आकृष्ट किया था। देशवासियों को इस तथ्य से अवगत कराया कि जब तक राष्ट्र-संवर्द्धनात्मक अथवा विकासात्मक पुष्ट तत्वों के मार्ग से हमारी राजनीतिक पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक अन्धविश्वास एवं कट्टरता तथा अर्थाभाव सम्बन्धी बाधाओं का निराकरण नहीं किया जाएगा, तब तक सच्चे अर्थों में मुक्ति नहीं मिल सकती। हिन्दी-साहित्यकारों ने अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के इस अभावात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति भी साहित्य के विविध रूपों तथा शैलियों में की है। अतः भारत की तत्कालीन समस्याओं, उसकी दुर्दशा के मर्मस्पर्शी चित्र एवं विभिन्न रूपों का चित्रण कुशल लेखनी द्वारा काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि में मिलता है।

दुर्दशा के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करने के पूर्व उनके कारणों का अन्वेषण भी नितान्त आवश्यक है। यदि भारतीय इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन देश-दुर्दशा का प्रमुख कारण था—शताब्दियों की दासता। पराधीन रहने के कारण भारतीय जीवन की गति अवरुद्ध हो गई थी, उसका विकास रुक गया था। देशवासियों में अज्ञानता, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास की जड़ें गहराई से जम गई थीं। देश का आध्यात्मिक—नैतिक पतन हुआ। भारत सम महान्, विशाल एवं सुसंस्कृत देश राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक-हीनता को प्राप्त हुआ। भारत की दुर्दशा सर्वांगीण थी। विधि ने पूरा विधान रच दिया था। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक त्रयतापों से त्रस्त जनता को अपने निस्त्राण का मार्ग नहीं सूझ रहा था। राष्ट्र की अभावग्रस्त अवस्था का हिन्दी साहित्य में अत्यन्त सजीव भाषा में वर्णन मिलता है। दुर्दशा के विभिन्न रूप निम्न-

लिखित हैं—

(१) आध्यात्मिक नैतिक पतन
(२) राजनीतिक दासता
(३) आर्थिक संकट
(४) सामाजिक दुर्दशा
(५) धार्मिक मतभेद—साम्प्रदायिकता, प्रादेशिकता आदि
(६) सांस्कृतिक हीनता—शिक्षा-सम्बन्धी दोष

काव्य में दुर्दशा के अनेक रूपों की अभिव्यक्ति

आध्यात्मिक नैतिक पतन

'प्रत्येक राष्ट्र अपने धर्म-शरीर से जीवित रहता है। धर्म राष्ट्र शरीर का मेरुदण्ड है। धर्म का अर्थ सम्प्रदाय नहीं है। धर्म उन नियमों और तत्वों की संज्ञा है, जिनसे समाज का शरीर खड़ा रहता है। समाज की बड़ी विस्तृत देह में धर्म प्रकाश फैलाता है। धर्म के निर्बल पड़ने से सामाजिक देह में अंधेरा छा जाता है। लोगों को अपना कर्तव्य सूझना बन्द हो जाता है। जब कभी जनता का बड़ा भाग अपने राष्ट्रीय कर्तव्य की ठीक पहचान खो बैठता है, उसी को धर्म की ग्लानि कहते हैं।'[1] आलोच्य काल में भारत की यही दशा थी। उसने अपनी धर्म-बुद्धि को खो दिया था। वह हतबुद्धि तथा ज्ञानशून्य हो गया था। गांधीजी ने देश के इस आध्यात्मिक नैतिक पतन को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा था। अतः उनकी राष्ट्रीयता का प्रमुख तत्व था आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की पुनः प्रतिष्ठा।[2]

वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि ''गांधीजी भारतीय राजनीति के मंच पर इस शताब्दी के आरम्भ में आए। उनकी पैनी आंख ने राष्ट्र के शरीर को देखा। चतुर वैद्य की तरह उन्होंने राष्ट्र-शरीर की नाड़ी को परखा और जन-जन की व्याधि को पहचाना। वह रोग क्या था—यही कि राष्ट्र का धर्म-शरीर एकदम निर्बल, निस्तेज और निःसत्व पड़ा था। उसमें न चेतना थी और न काम करने की शक्ति। उन्होंने अनुभव किया कि इस राष्ट्र को उठाने के लिए उसके धर्म-शरीर को फिर से बनाना होगा।'

इस युग के कवियों के क्षोभ तथा ग्लानियुक्त वाणी में देश की आध्यात्मिकता अथवा धर्मशरीर से क्षय और नैतिक मूल्यों के ह्रास का वर्णन किया है। भारतीय आध्यात्मिकता ज्ञान, कर्म तथा भक्ति तीनों को समाहित कर चलती है, किन्तु इस काल में देशवासी फूट, आलस्य आदि से ग्रसित हो निरुद्यमी हो गये थे। मैथिलीशरण गुप्त को भारतीयों के आध्यात्मिक पतन से अत्यधिक विक्षोभ होता है।[3] गांधीजी के

---

१. वासुदेव शरण अग्रवाल : माता भूमि : पृ २७०
२. वही, पृ० २७१
३. मैथिलीशरणगुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० ४

सदृश उनका भी वर्णाश्रम-धर्म-व्यवस्था में विश्वास है। अतः भारतीय धार्मिकता के संस्थापक ब्राह्मण वर्ग की दयनीय दशा देखकर तो वे ग्लानि से भर जाते हैं। चतुर्वर्ण शिरोमणि ब्राह्मण वर्ग की अवनत अवस्था का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज ब्राह्मणों में भी पूर्व तेज, बल तथा ब्रह्मचर्य का अभाव हो गया है।[1] आज भारतवासी अपना आध्यात्मिक आदर्श 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' का सिद्धान्त भूल कर भाई के रक्त के प्यासे हो गए हैं—

सिद्धान्त 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' प्रसिद्ध रहा जहां
हा ! बन्धु शोणित से वहां अब बन्धु का कर लाल है।[2]

भारत का आध्यात्मिक आदर्श केवल पर्व त्यौहारों तक परिमित रह गया था। पाप के ताप से पीड़ित भारत माता उन्हीं के सहारे जीवित थी अन्यथा उसका अन्त होने में कुछ भी निःशेष नहीं रह गया था। गुप्त जी ने 'विजयादशमी' कविता में भारत के आध्यात्मिक नैतिक पतन का मार्मिक चित्र अंकित करते हुए कहा है—

बस तुम्हारे ही भरोसे आज भी यह जी रही
पाप पीड़ित ताप से चुपचाप आंसू पी रही।
ज्ञान, गौरव, मान, धन, गुण, शील सब कुछ खो गया,
अन्त होना शेष है बस और सब कुछ हो गया।[3]

भारतीय संस्कृति के साधक गुप्त जी को यह पतन अत्यधिक कष्टकर प्रतीत होता है। उन्होंने इसका कारण चंचल मन का विक्षिप्त हो विषय विकारों में लिप्त हो जाना माना है।[4]

आध्यात्मिकता के मूलाधार तत्व 'त्याग' से देशवासी शून्य हो गए थे। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के शब्दों में—

देश जिससे बनता है स्वर्ग, कहां है उर में वह अनुराग ?
त्यागियों का सुनते हैं नाम, कहां है त्यागभूमि में त्याग ?[5]

'हरिऔध' जी की राष्ट्रीयता धार्मिक सहिष्णुता की समर्थक थी, इसी कारण उन्हें हिन्दुओं में बढ़ते हुए धार्मिक ढोंग में अरुचि थी। उनके मत में आध्यात्मिक तथा नैतिक सत्यादर्शों से विमुख और अनभिज्ञ होने के कारण ही हमारे देश की यह दुर्दशा हुई है कि आज राष्ट्रीय एकता के रंग मिटते जा रहे हैं।[6]

पंडित रामचरित उपाध्याय की कवि आत्मा भी देश के धार्मिक पतन से

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ६१
२. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० ६२
३. वही, पृ० ६९
४. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ५०
५. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : कल्पलता : पृ० ४०
६. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : पद्मप्रसून : पृ० ५५

दुःखित हो गई थी।[१] उन्होंने इसका कारण पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव में खोजा था। भारतवासी अपनें देश जीवन का आध्यात्मिक लक्ष्य भूल कर दुर्व्यसनों को अपना रहे थे और चाय, चुरुट, मद्यपान के आदी हो रहे थे। उपाध्यायजी की राष्ट्रीय भावना 'हिन्दू' राष्ट्रीय भावना थी। अतः जात-पांत से विश्वास उठना, तिलक-छापा आदि न धारण करना उनकी हिन्दू भावना की विरोधी बात थी। उन्हें परम्परागत रीति-नीति तथा वेदों में अटूट विश्वास था। आर्यसमाज के प्रभाव के कारण उन्होंने देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन में उन सभी बातों को सम्मिलित कर लिया था जो परम्परागत अथवा वेदानुकूल नहीं थीं। रूपनारायण पांडेय ने भी देश के धार्मिक पतन का इतिवृत्तात्मक रूप में वर्णन किया है।[२]

रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' खण्ड काव्य में देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन का उल्लेख कर,[३] उसका कारण पराधीनता तथा शासक की कुटिल नीति में खोजा है।[४]

नाथूराम शंकर शर्मा ने भारतीय पतन के इस रूप का अधिक स्पष्ट शब्दों तथा इतिवृत्तात्मक शैली में वर्णन किया है। समाज में फैले अनाचार, व्यभिचार एवं दुराचार को अधिक यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है।[५]

मैथिलीशरण गुप्त ने द्वापर में प्रच्छन्न रूप से कृष्ण कथा के आवरण में अपने युग के पतन का भी संकेत 'विधृता' काव्य-खंड में दे दिया है—

नारायण मेरे नर में है,
कौन नया यह प्राणी ?
रौद्र नहीं, वीभत्स अशुचि यह,
जाओ अरे, नहाओ ![६]

इस युग के कवियों ने आध्यात्मिक नैतिक पतन पर विक्षोभ एवं ग्लानि प्रकट की है, उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया है।

राजनीतिक दासता

भारत की दुर्दशा का प्रमुख कारण राजनीतिक दासता था। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक हीनता के मूलभूत कारण इसी में निहित थे। व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण कर राष्ट्रीय जीवन के शरीर को ही नहीं, उसके मानसिक गठन को भी विकृत कर दिया गया था। इस युग की कविता में, पराधीनता के

---

१. पं० रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० ७
२. रूपनारायण पांडेय : पराग : पृ० ६
३. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक : पृ० ४६
४. वही, पृ० ४७
५. नाथूराम शंकर शर्मा : शंकर सर्वस्व : पृ० ९२
६. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर : पृ० २५

अभिशापवश उत्पन्न दुर्दशा के अनेक रूपों का प्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न रूप में चित्रण मिलता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रामचरित उपाध्याय, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, रामधारीसिंह दिनकर आदि कवियों ने अंग्रेजी शासकों की कठोर दमन नीति, अत्याचार, अन्याय आदि का वर्णन कर उसका विरोध किया है।

विदेशी शासक की कठोर दमन नीति ने भारतवासियों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण कर उनकी प्रगति के प्रत्येक मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। इससे देशवासी अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठे थे। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने स्पष्ट कह दिया था कि 'देख मन मानी बहुत जी पक गया' है।[1] विदेशी शासकों की कुटिल नीति उन्हें असह्य हो गई थी।

हरिऔध जी का यह स्पष्ट मत था कि भारत स्वतन्त्रता के पश्चात् ही संसार के अन्य देशों के साथ दौड़ में जीत सकता है। पराधीनता का अभिशाप ही हमारी हीनावस्था का प्रमुख कारण था—

हौंसले और दबदबे वाला। क्या नहीं है दबंग बन पाता॥
हम किसी की न दाब में आयें। दिल दबे कौन दब नहीं जाता॥[2]

दासता के अभिशाप के कारण भारतवासी मान, प्रतिष्ठा, प्रताप, ज्ञान आदि सभी कुछ गंवा कर क्षुधाक्षीण हो विदेशी शासकों के पदतल कुचले जा रहे थे। रामचरित उपाध्याय ने क्षुधित भारत की अज्ञानता का ग्लानिपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है—

गेहूं को पैदा हम करते, खाते उसे विदेशी लोग,
क्षुधाक्षीण हो हम मरते हैं, सहते विविध भांति के रोग।
फिर भी हमको होश न होता, हा! मारे अज्ञान के;
हिन्दुस्तान हमारा ही है, हम हैं, हिन्दुस्तान के॥[3]

राजनीतिक पराधीनता के कारण देशवासियों पर सबसे अधिक अत्याचार निरंकुश अराजकतापूर्ण नौकरशाही द्वारा किया गया। अन्याय, असत्य एवं अत्याचार पर आधारित शासन में अधिकारीगण, पुलिस तथा न्यायालयों से न्याय की आशा दुराशा मात्र थी। पंडित रामचरित उपाध्याय ने नौकरशाही के अत्याचारों का वर्णन अधिक स्पष्ट एवं निर्भीक शब्दों में किया है—

स्वार्थहेतु परमार्थ गंवाना, भला नहीं है नौकरशाही।
अस्त्रहीन पर शस्त्र चलाना, कला नहीं है नौकरशाही॥

× × ×

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : चुभते चौपदे : पृ० १४
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : चुभते चौपदे : पृ० ३१
३. पंडित रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० २२

सदा नहीं अन्याय चलेगा हम पर तेरा नौकरशाही ।
कट जावेगी रात, मिलेगा कभी सबेरा नौकरशाही ।।
हमने तुमको अब जाना है बहुत दिनों पर नौकरशाही ।
कुटिल कपट क्या टिक सकता है ? विज्ञ जनों पर नौकरशाही ।।[१]

नाथूराम शंकर शर्मा ने नौकरशाही की कुटिलता का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली किन्तु तीखे शब्दों में किया है । भारतीय इतिहास में नादिरशाह, तैमूर तथा चंगेज खां के नाम अत्याचारी आक्रमणकारियों में प्रसिद्ध, किन्तु इनकी नृशंसता जनरल डायर से कम थी । जनरल डायर ने जलियांवाला बाग में निरपराध भारतीयों की हत्या कराई थी—

हा, महमूद संगदिल डाकू- उफ़, नादिर, तैमूर, जलालू ।
ये जालिम चंगेज सितम थे, ओडायर डायर से कम थे ।।[२]

वियोगी हरि ने 'अयोग्य नरेश' काव्य में भारत की राजनीतिक दुर्दशा पर ब्रज भाषा में प्रकाश डाला ।[३] श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'जलियांवाले बाग में बसन्त' नामक कविता में अंग्रेजी शासकों के अत्याचार का वर्णन अत्यधिक मादक एवं भावनात्मक शब्दों में किया है । अपनी संवेदना के प्रवाह में वे बसंत ऋतु की वायु को मन्द गति से बाग में जाने का आग्रह करती हैं । एक-एक शब्द हृदय को वेधता-सा प्रतीत होता है—

कोमल बालक मरे यहां गोली खा-खाकर ।
कलियां उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर ।।
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं ।
अपने प्रिय परिवार-देश से भिन्न हुए हैं ।।[४]

शासकगण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उद्यत राष्ट्रीय वीरों के प्रयासों का तीव्रता से दमन करने में प्रवृत्त था । राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने वाले बच्चों, अबलाओं पर जो नृशंस अत्याचार किये गये थे, उन्हें देखकर स्वयं हिंसा भी लज्जित हो जाती । सियारामशरण गुप्त ने राष्ट्रीय कथा काव्य 'आत्मोत्सर्ग' में इसका वर्णन किया है, जो शासकवर्ग बच्चों और अबलाओं के ऊपर भी घोड़े दौड़ा सकते थे उनकी पाशविकता का और अधिक क्या वर्णन किया जाये ?[५] राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के वीर सेनानी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगतसिंह को फांसी देकर विदेशी सरकार ने जनता के साथ-साथ कवि हृदय को भी आक्रोश से भर दिया था—

---

१. पंडित रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० ३६
२. हरिशंकर शर्मा सम्पादक : शंकर सर्वस्व : पृ० २०७
३. वियोगी हरि : वीर सतसई : पृ० ७५
४. सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ८१ :
५. सियारामशरण गुप्त : आत्मोत्सर्ग : पृ० ३१

ओ निष्ठुर नौकरशाही
भगतसिंह को फांसी देकर—[1]

राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित सत्याग्रही वीरों को कारावास का कठोर दण्ड दिया गया था। जेल में किये गये अत्याचारों का वर्णन भी कवियों ने मर्म-वेधी शब्दों में किया है। रूपनारायण पांडेय ने 'कारागार'[2] कविता लिखी। माखनलाल चतुर्वेदी की अनेक कविताओं जैसे 'कैदी और कोकिला',[3] राष्ट्रीय झण्डे की भेंट',[4] 'राष्ट्रीय वीणा'[5] आदि में भी यही मिलता है। 'राष्ट्रीय वीणा' में कवि ने अत्यधिक कलात्मक एवं भावात्मक शैली में भारत माता रूपी वीणा के कसे हुए तारों का विदेशी शासकों द्वारा पीटे जाने का रूपक बांधा है—

कसे हुए पीटे जाते हैं, भारी शोर मचाते हैं।
हा ! हा ! हमें पीटने वाले ज़रा नहीं सकुचाते हैं।[6]

चतुर्वेदी जी ने अन्योक्ति पद्धति में भी विदेशी शासकों के अत्याचार का वर्णन किया है। विदेशी शासक-कंस, महात्मा गांधी-कृष्ण और जेल पवित्र कृष्ण जन्म के स्थान वन गये थे। चतुर्वेदी जी ने समस्त भारतवर्ष को कोमलतर बन्दीखाने के रूप में देखा था—

'शंकर' थी; अब काराग्रह है
हिमगिरि की दीवार
हाय गले का तौक बना
गंगा-जमुना का हार;
धन्य ! बंग खंभात अब्धि—
की लहरों की हथकड़ियां;
रामेश्वर पर चढ़ी तरंगे
बनी पैर की कड़ियां।
कोमलतर बन्दीखाने के
तीस कोटि बन्दी हैं
हों गुलाम, जीवन की
बेहोशी में आनंदी हैं।[7]

१. सियारामशरण गुप्त : आत्मोत्सर्ग : पृ० १६
२. रूपनारायण पांडेय : पराग : पृ० ५६
३. माखनलाल चतुर्वेदी : हिमकिरीटिनी : पृ० १४
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ७७
५. वही, पृ० ४८
६. वही, पृ० ४८
७. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ७५

रूपनारायण पांडेय ने विदेशी शासकों द्वारा भारत में किये गये अत्याचार को अलंकारिक भाषा में लिखा है—

दु:शासन पकड़े खड़ा भारत--माँ के केश;
इस अनीति के दृश्य से क्षुब्ध हो उठा देश ॥[१]

इस युग तक आते-आते विदेशी शासकों के प्रति श्रद्धा का अभाव हो गया था और कवियों ने उसे तमोगुण, असुर, पशुबल समन्वित शासक के रूप में चित्रित किया है।

पुलिस का कोई विश्वास नहीं रह गया था और अधिकारीगण भी साम्प्रदायिक दंगों की आग लगते देख उसे बुझाने का प्रयत्न नहीं करते थे।[२] वास्तव में साम्प्रदायिकता पराधीनता का सबसे बड़ा अभिशाप था, क्योंकि इस 'फूट डालो शासन करो' की नीति पर ही उनका साम्राज्य स्थिर था। विदेशी शासकों ने जिस शिक्षा का प्रचार देश में किया था वह राष्ट्रीय उन्नति के लिए घातक थी। भारतवासी संस्कृति आदर्श व मूल्यों को छोड़ पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति में रंगते जा रहे थे—

क्या ऐसी ही सुफलदायिनी है अब शिक्षा ?
क्या अब वह है बनी नहीं भिक्षुक की भिक्षा ?
क्या अब वह है नहीं दासता बेड़ी कसती ?
क्या न पतन के पाप पंक में है वह फंसती ?
क्या वह सोने के सदन को नहीं मिलाती धूल में ?
क्या बन कर कीट नहीं बसी वह भारत-हिय हित फूल में ?

भारत की आर्थिक दुर्दशा तथा चारित्रिक हीनता[३] का मूल कारण भी पराधीनता ही था। रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' खंडकाव्य में प्रेम कथा के रूप में-तत्कालीन राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों का निरूपण किया है—

समझ लिया तत्काल पथिक ने कारण इस दुर्गति का।
है सिद्धान्त प्रजा की उन्नति के प्रतिकूल नृपति का।
राजकार्य संचालनार्थ ही कुछ शिक्षा प्रचलित है।
कठिन व्याधि, बिसुध प्रजा का अध:पतन निश्चय है॥
प्रजा नितान्त चरित्रहीन हो शक्ति जाय मिट जन की
शिक्षा का उद्देश्य यही है, नीति यही शासन की।
'चरितहीन डरपोक अशिक्षित प्रजा अधीन रहेगी।'
है यह भाव निरंकुश नृप का, 'सदा अनीति सहेगी।'[४]

---

१. रूपनारायण पांडेय : पराग : २५
२. सियारामशरण गुप्त : आत्मोत्सर्ग : पृ २६-२७
३. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : कल्पना : पृ० ४०
४. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक : पृ० ४६

भारतवासियों को ऐसे-ऐसे कानूनों से जकड़ दिया गया था कि उनकी अन्तरात्मा तक कराह उठी थी । मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में अस्त्र कानून के प्रति विद्रोह, अभिव्यक्त हुआ है कि जिनकी देवमूर्तियां भी निरस्त्र नहीं हैं, वे भारतवासी निःशस्त्र हो दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हुए हैं ।[1] अतः कूट और कुनीति पर आधारित कुशासन की ध्वजा फहराने वाली नौकरशाही ने भारत को 'भुरता' बना दिया था । नौकरशाही से स्वराज्य की आशा करना व्यर्थ था । नाथूराम शंकर शर्मा के शब्दों में:—

नौकरशाही दे चुकी, भारत तुझे स्वराज्य ।
डाल न आशा-आग में, असहयोग का राज्य ।।
कूर कुशासन की ध्वजधारी, कट्टर कूट कुनीति पसारी ।
हा, न लोक-मत से डरती है, भारत का भुरता करती है ।।
अकड़ अड़ाती है चित चाही
अटकी कुटिला नौकरशाही ।।[2]

देश का सबसे अधिक दुर्भाग्य तो यह था कि इस नौकरशाही की अधिकांश संख्या भारतीय थी । पराधीनता के कारण उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी । बड़े बड़े अधिकारीगण 'गद्दी पर के गधे' के समान थे जिन्होंने केवल बोझ ढोना ही सीखा था, कभी टैक्स का बोझ और कभी चंदे का बोझ । इन्हें अपने देश, भेष और वेश का कुछ भी ध्यान नहीं रह गया था । पंडित रामचरित उपाध्याय ने भारतीय पदाधिकारियों को धिक्कारते हुए कहा है—

बेशर्म ! धर्म से कर्म से विमुख हुआ क्यों ? भूल है ।
क्या पराधीनता से अधिक दूजा भी दुख-मूल है ।।[3]

भारतीय अधिकारी उपाधियों तथा पदवियों के लोभ में राष्ट्र संघातक कार्य करते थे । उनके मानसिक पतन की सीमा नहीं रह गई थी । उपाध्याय जी ने इसका विरोध करते हुए लिखा है—

'रायबहादुर बना देश' से दुर-दुर होकर;
कृत्रिम राजा बना पिता के धन को खोकर ।
कुरसी तोड़ी व्यर्थ बेगारी करके तूने;
चौपट करके कामकाज सब घर के तूने;
तू सी० आई० ई० क्या बना ईसाई के हाथ से ?
क्यों विच्युत हो बैरी बना निज समाज के साथ से ।[4]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ५१
२. हरिशंकर शर्मा : शंकर सर्वस्व : पृ० २०६
३. रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० ४४
४. वही : पृ० ४४

कवि भारतवासियों के इस पतन से इतना विक्षुब्ध हो जाता है कि उसकी राष्ट्रीयता में जातीयता का भाव मिल जाता है। उसे पराधीनता इतनी असह्य हो गई थी कि वह विदेशी शासकों की उपमा 'गुड़हर' के फूल से करता हुआ उनका अनादर भी करता है।[1]

'दिनकर' ने भी, अपने को सभ्य एवं सुसंस्कृत समझने वाले अंग्रेजी साम्राज्य-वाद की शोषण नीति के सम्बन्ध में मार्मिक एवं व्यंग्यात्मक आक्षेप किया है—

दलित हुए निर्बल सबलों से
मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र जन
आह ! सभ्यता आज कर रही
असहायों का शोणित शोषण।[2]

दिनकर ने दलित-वर्ग का नेतृत्व किया है, असहायों और निर्बलों की ओर से पुकार की है। आर्त्त भारतवासी खग मृग से भी हीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। उसका उपचार और निदान कवि की हतबुद्धि को समझ में नहीं आ रहा था।[3] दिनकर ने विदेशी शासन से अभिशप्त जनता की बेबसी और दयनीय अवस्था का वर्णन अधिक लाक्षणिक, व्यंजनात्मक और कलात्मक रूप से किया है, जिसमें कवि हृदय की पीड़ा का स्वर व्याप्त है।[4] वर्तमान के चीत्कार को सुन कर उनकी अन्ध-भावनाएं जल गई थीं, उसका हृदय विद्रोही बन गया था। विदेशी शांति के नाम पर भारतीय शोषण में दानव से जुटे थे। पराधीनता के अभिशाप को देख कवि की वाणी तर्क-शीला हो जाती है। वह कटुता, क्षोभ और व्यंग्य मिश्रित भाषा में प्रश्नों की झड़ी गा देता है—

टांक रही हो सूई चर्म, पर, शान्त रहें हम, तनिक न डोलें,
यही शांति, गरदन कटती हो, पर, हम थपनी जीभ न खोलें।
बोलें कुछ मत क्षुधित, रोटियां श्वान छीन खायें यदि कर से;
यही शान्ति, जब वे आयें, हम निकल जायें चुपके निज घर से ?
हब्शी पढ़ें पाठ संस्कृति के खड़े गोलियों की छाया में;
यही शान्ति वे मौन रहें जब आग लगे उनकी काया में ?

काव्य क्षेत्र में राजनीतिक दुर्दशा के अनेक चित्र, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष; इतिवृत्तात्मक अथवा भावात्मक, अभिधात्मक अथवा अन्योक्ति पद्धतियों में मिलते हैं। पंडित रामचरित उपाध्याय, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शंकर शर्मा ने पराधीनता के कारण उद्भूत दुर्दशा, विदेशी शासकों द्वारा नियोजित अत्याचार

---

१. रामचरित उपाध्याय, राष्ट्रभारती पृ० ३१
२. रामधारीसिंह दिनकर, रेणुका : पृ० २१
३. वही, : पृ० २६
५. रामधारीसिंह दिनकर : हुंकार : पृ० १ दशम संस्करण १९५५

का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली में एवं अधिक स्पष्ट शब्दों में किया है। इनके काव्य में विदेशी शासकों की कुटिल नीति, नौकरशाही के प्रति घृणा, विरोध तथा आक्रोश का मिश्रित भाव तीखापन लिए हुए झलकता है। सियारामशरण गुप्त ने अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के आत्म बलिदान की कथा में नौकरशाही के अत्याचारों का प्रवल शब्दों में वर्णन किया है। माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, मैथिलीशरण गुप्त ने अधिक संयत वाणी में दासता के अभिप्राय को अभिव्यक्त किया है। इनमें करुणा एवं भावना की मात्रा अधिक है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य में विरोध नारी सुलभ कोमल भावनाओं में लिपटा हुआ है। उनकी राष्ट्रीय चेतना अनुभूतिमूलक एवं भावनात्मक है। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राजनीतिक अत्याचार का वर्णन अधिक भावात्मकता तथा काव्यात्मकता के आग्रह के साथ किया गया है। भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति उनके कवि-हृदय में दुर्वह व्यथा का महाज्वार उद्वेलित कर देती है। इन कवियों की कविताएं काव्य-कला की दृष्टि से भी उच्चकोटि की हैं। इनका काव्य पाठकों के संवेदनशील हृदय तल का स्पर्श करता है।

रामधारीसिंह दिनकर ने छायावाद के उत्तरार्द्ध में, काव्य क्षेत्र में क्रान्ति की प्रबल भावना के साथ प्रवेश किया। इनकी राजनीतिक पराधीनता की अनुभूति अधिक क्रान्तिकारिणी है। इन्होंने साहित्यिकता एवं काव्यकला का पूर्ण निर्वाह किया है।

इस युग में लिखे गये महाकाव्यों में भी प्रच्छन्न रूप में राजनीतिक संघर्ष की झलक मिल जाती है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में शासक और शासित का द्वन्द्व दिखाया गया है। स्वेच्छाचारी शासक के विरुद्ध विप्लव की भावना प्रसाद के अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की देन है। गुरुभक्तसिंह की 'नूरजहां' में शेरअफगन की निर्दयता, प्रजा पर अत्याचार अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी शासकों का अत्याचार है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के उस युग में, जबकि विदेशी शासकों के कठोर-दमन-चक्र के नीचे भारतवासी पिस रहे थे, शासन व्यवस्था के विरुद्ध एक भी शब्द फांसी पर चढ़वा देने के लिए पर्याप्त होता था और प्रेस एक्ट द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता भी नहीं रह गई थी, इन राष्ट्रीय कवियों ने जिस साहस एवं निर्भयता से राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण काव्य में किया है, वह प्रशंसनीय एवं अभिनन्दनीय है। राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद के प्रसार और विकास में इन कवियों का महत्वपूर्ण योग रहा है।

आर्थिक संकट

अंग्रेजी दासता के पूर्व, मुसलमानी राज्य काल में भारत केवल राजनीतिक दृष्टि से विदेशियों के अधीन था किन्तु उसकी अर्थ व्यवस्था अक्षुण्ण बनी थी। परन्तु अंग्रेजी साम्राज्यवाद पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित था अतः भारत मे

भी इस व्यवस्था की स्थापना हुई। नागरिक तथा ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का ढांचा बदल गया। भारत प्रमुखतया कृषि-प्रधान ग्रामों का देश है। अतः विदेशी शासकों ने सर्वप्रथम भारतीय ग्रामों की आत्म निर्भर प्रणाली, हस्त-कला उद्योग तथा संगठित जीवन को विच्छिन्न कर एक नवीन जमींदारी तथा रैय्यतवारी प्रणाली में जकड़ दिया। अन्य कला कौशल के अभाव में अधिकांश ग्रामवासियों की आजीविका का साधन कृषि कर्म ही रह गया था। सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अन्धविश्वासों के कारण उनकी आय की अपेक्षा व्यय ही अधिक था, अतः ऋण लेना आवश्यक था। ऋण पाने की उचित व्यवस्था न होने के कारण ग्रामवासियों को महाजन एवं साहूकारों का आश्रय लेना पड़ा। अतः जमीदार तथा साहूकार दोनों ने किसानों की अज्ञानता, अशिक्षा का लाभ उठा कर उनका शोषण किया।

नागरिक जीवन में भी अनेक आर्थिक समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं। विदेशी शासक वर्ग ने जिस प्रकार की शिक्षा का प्रचार किया था, उससे अधिक संख्या में क्लर्कों की ही भरमार हो सकती थी। आजीविकोपार्जन में सहायक स्वतंत्र व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा न मिलने के कारण शिक्षित वर्ग को सरकारी नौकरी का द्वार खटखटाना पड़ता था, जिससे दिन प्रतिदिन बेकारी की समस्या बढ़ती जा रही थी।

ठाकुर गोपालशरणसिंह, श्री 'त्रिशूल', माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, पं० रामनरेश त्रिपाठी, रामधारीसिंह दिनकर आदि कवियों ने आर्थिक शोषण तथा अर्थ सम्बन्धी समस्याओं का विवेचन काव्य में किया है। ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने आर्थिक शोषण द्वारा भारत की दुर्दशा का अत्यधिक तीव्र शब्दों में वर्णन किया है।[१]

'त्रिशूलजी' ने विदेशी पूंजीवादी साम्राज्यवाद की लोक-उत्पीड़नकारी, अन्यायपूर्ण, असाम्यवादी आर्थिक नीति का उद्घाटन कर भारतीयों की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है। भारत में पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना कर अंग्रेजी शासकों ने थोड़े से भारतीयों को धनाधीश बनाकर उनकी सहायता से साधारण जनता को चूसने की अनोखी रीति निकाली थी। अतः देश में विषमता, अनेकता आदि कटु भावनायें फैल रही थीं। 'त्रिशूल' ने उनकी इस नीति का विरोध करते हुए लिखा है—

सभी प्रकृति के पुत्र जान सबको है प्यारी।
पायें प्रकृति-प्रसाद सभी हैं सम अधिकारी॥
धनाधीश क्यों रहे एक दूसरा क्यों भिखारी ?
है यह अति अन्याय लोक-उत्पीड़नकारी।
मिलता दीनों को नहीं समुचित श्रम का मोल है,
प्रकट न देखें लोग पर भरी ढोल में पोल है॥

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' खण्डकाव्य में प्रेम कथा के सहारे देश

---

१. ठाकुर गोपालशरणसिंह : संचिता : पृ० १११

की आर्थिक दुर्दशा के चित्र प्रस्तुत किये हैं। देश-दशा से परिचित होने के लिए पथिक एक वर्ष तक भ्रमण करता है। देश के प्राकृतिक सौंदर्य को देख वह आश्चर्य-निमग्न हो जाता है कि इतने सुन्दर तथा प्राकृतिक वैभव से पूर्ण देशवासी क्षुधा-तृषित क्यों रहते हैं। यह कैसी विडंबना है कि कृषकगण अन्न उत्पन्न करके भी दाने-दाने को तरसते हैं—

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर में।
मांस नहीं है, निरी सांस है शेष अस्थि पंजर में॥
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना।
कोई नहीं किसी का साथी, अपना और बिगाना॥[1]

त्रिपाठी जी ने स्वदेश-प्रेम के अतिरेक में देश-दशा का अत्यधिक करुण एवं भावात्मक चित्र खींचा है। उनकी यह सबसे बड़ी विशेषता है कि तत्कालीन देश-दशा के चित्रण के लिए कथा काव्य का आश्रय लिया है। 'पथिक' का क्रूर एवं अन्यायी नृप अंग्रेजी शासन का प्रतीक है जिसकी अनीति के कारण देश की आर्थिक व्यवस्था का विघटन हुआ था।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भारत की आर्थिक विपन्नता के प्रतीक भिखारी की स्थिति और स्वरूप दोनों का स्पष्ट और सप्राण चित्र खींचा है—

वह आता——
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता॥[2]

इसी कविता में 'निराला' जी ने भारत की दयनीय स्थिति का अत्यन्त करुण चित्र खींचा है।

भिक्षुक को अपने बच्चों के साथ जूठी पत्तलों को चाटने में भी चैन न मिल पाता था क्योंकि उन्हें झपट लेने को कुत्ते अड़े हुए थे। किसी भी देश की इससे अधिक आर्थिक दुर्दशा क्या होगी। 'तोड़ती पत्थर' कविता में निरालाजी ने पूंजीवाद के कारण उत्पन्न भारत की निम्न वर्ग की नारी की दयनीय दशा का सजीव एवं प्रभावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है—

वह तोड़ती पत्थर;
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक : पृ० ४५
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अपरा : पृ० ६९

नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार :—
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्रकार ॥[१]

विदेशी शासकों की दानवी प्रवृत्ति के कारण भारतीय जीवन में जिस अभाव एवं हाहाकार का साम्राज्य था, उसका यथार्थ, मार्मिक, वीभत्स चित्रण 'दिनकर' जी ने किया है—

पर, शिशु का क्या हाल, सीख पाया न अभी जो आंसू पीना ?
चूस-चूस स्तन मां का सो जाता रो-विलप नगीना।
विवश देखती मां, अंचल से नन्हीं जान तड़प—उड़ जाती;
अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज वज्र की छाती।
कब्र-कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती हैं ;
'दूध-दूध !' की कदम-कदम पर सारी रात सदा होती है।
'दूध-दूध !' ओ वत्स मन्दिरों में बहरे पाषाण यहां हैं ;
'दूध-दूध !' तारे, बोलो इन बच्चों के भगवान कहां हैं ?[२]

इन पंक्तियों में कवि हृदय का हाहाकार करुणा से भींग कर बोझिल हो गया है और उसकी तीव्रता, उसकी गहनता और बढ़ जाती है। इसी देश में शोषक वर्ग अपने श्वानों को दूध से नहलाते दिखाई देते हैं।[३] कवि-हृदय अपने देश की विवशता, दयनीयता और अभावों को देख चीत्कार कर उठता है कि 'जेठ हो कि हो पूस, हमारे कृषकों को आराम नहीं है।'[४] उसमें अदम्य साहस आ जाता है और अभाव के निराकरण के लिए वह प्रयत्नशील दिखाई देता है।[५]

ग्रामवासिनी भारतीय जनता की शोचनीय आर्थिक अवस्था का उपहास सा उड़ाती दैवी विपत्तियां अधिक कष्टकर थीं। बाढ़ से बचने के लिए साधनों का अभाव था। सियारामशरण गुप्त ने 'बाढ़' कविता में बाढ़ से उत्पीड़ित दीन-हीन ग्रामीणों की विपत्ति का करुण दृश्य खींचा है। साम्राज्यवाद की शोषक नीति में सहयोग देती हुई बाढ़ आदि आधिदैविक विपत्तियां कृषक को भिक्षुक बना कर ही

१. निराला : तोड़ती पत्थर (१६२० ई०) : पृ० २०
२. रामधारीसिंह दिनकर : हुंकार : पृ० २२
३. वही, पृ० २३
४. वही, पृ० २२
५. वही, पृ० २३

शान्त होती थीं :—

छोड़ कर रुद्र रूप भिक्षुक का रूप धार
आई आज बाढ़ है तुम्हारे द्वार ।
पर्व पर जाते हो स्वयं ही जहाँ,
आये हैं वही ये तीर्थ-आप ही तुम्हारे यहां।
याचक खड़ा है पर्व ही स्वतः ।
आगे आज होके अतः
देकर दया का दान
कुछ तो मिटाओ क्षुधा इनकी महा महान ।[1]

कवियों ने देश के आर्थिक शोषण, आर्थिक विपन्नता तथा अर्थाभाव के कारणों पर लेखनी उठाकर, इतिवृत्तात्मक, भावात्मक आदि अनेक शैलियों में काव्य रचना की है । अपने युग के आर्थिक अभाव का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर कवियों ने अपनी वाणी सार्थक की है। ये चित्र जनता के हृत्तल का स्पर्श करने वाले हैं।

काव्य में सामाजिक दुर्दशा का चित्रण

सन् १९२० के पश्चात् हिन्दी काव्य-क्षेत्र में छायावाद एवं रहस्यवाद की प्रवृत्ति के विकास के कारण द्विवेदीयुगीन अतिशय इतिवृत्तात्मक और बाह्यार्थ निरूपिणी काव्य-धारा समाप्तप्राय होने लगी थी । अतः इस युग के अधिकांश कवियों ने सामाजिक परिस्थितियों के स्थूल चित्रण की अपेक्षा अपनी व्यक्तिगत लौकिक प्रेमानुभूति को सूक्ष्म, छायात्मक, रहस्यात्मक एवं विशेषण प्रधान शैली में अभिव्यक्त किया है । मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का आभास दे कर नवीन कल्पनाओं एवं मान्यताओं को उद्भूत किया गया है। कवि-वर्ग की सामाजिक चेतना कुंठित हो गई थी। अतः द्विवेदी युग की तुलना में, इस युग के काव्य में सामाजिक दुर्दशा के स्थूल अथवा भावात्मक चित्र अल्प संख्या में मिलते हैं ।

द्विवेदी युग से चले आ रहे कवियों ने अवश्य सन् १९२० के बाद भी अपनी कविताओं में सामाजिक रूढ़ियों, कुरीतियों, अनीति आदि का वर्णन इतिवृत्तात्मक रूप में किया है । ये कवि हैं नाथूराम शंकर शर्मा, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रूपनारायण पांडेय, वियोगी हरि आदि ।

नाथूराम शंकर शर्मा ने काव्य में इतिवृत्तात्मक शैली में विधवाओं की दुरवस्था, वृद्धों का बालिका कन्याओं से विवाह, सामाजिक पाखण्ड, बाल-विवाह आदि कुरीतियों का वर्णन किया है ।[2] मैथिलीशरण गुप्त ने 'विधवा'[3] कविता में विधवाओं के प्रति सामाजिक अत्याचारों और व्यभिचार का भंडाफोड़ किया है । 'स्त्रियों के प्रति कर्त्तव्य'

---

१. सियारामशरण गुप्त : दूर्वादल : पृ० ९७
२. शंकर सर्वस्व : पृ० २६३ (काव्य रचना का समय नहीं दिया गया है)
३. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ६२
४. वही : पृ० ६४

में बेमेल विवाह का विरोध और स्त्री-शिक्षा का प्रचार कर नारी वर्ग की जड़ता एवं अज्ञानता को मिटाने का उद्योग किया गया है जिससे पुरुष के साथ समाज का नारी वर्ग भी देश की उन्नति में सहायक हो सके। 'वृद्ध विवाह'[1] में भारतवासियों की कूप-मण्डूकता और वृद्ध-विवाह के कुपरिणामों का दिग्दर्शन करा कर बाल-विवाह का भी कवि ने विरोध किया है।[2] 'द्वापर' में गुप्तजी ने कृष्णकथा के माध्यम से नारी की असहाय स्थिति की ओर 'विधृता' काव्य खंड में संकेत किया है। नारी पत्नीत्व के उच्च आदर्श से उतर कर दासी मात्र रह गई थी।[3]

रूपनारायण पांडेय ने भी इतिवृत्तात्मक शैली में सामाजिक कुरीतियों, नारी की अशिक्षा और विधवाओं की अवस्था के दयनीय सम्बन्ध में लिखा है।[4] अयोध्यासिंह उपाध्याय की सामाजिक चेतना अत्यधिक जागरूक है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों, दुर्बलताओं का अत्यन्त सजीव चित्र व्यंगात्मक शैली में खींचा है। डा० द्वारिका प्रसाद ने लिखा है—'कवि ने समाज के कायर, आलसी, अकर्मण्य, परमुखापेक्षी, धर्मान्ध, अन्धविश्वासी, छूआ-छूत फैलाने वाले, ढोंगी, पाखण्डी, मनचले, निर्लज्ज आदि महापुरुष. पर अच्छी फबतियां कसी हैं।'[5] वृद्धों द्वारा युवतियों से विवाह पर हास्यपूर्ण शैली में व्यंग्य करते हुए लिखा है—

हो बड़े बूढ़े न गुड़ियों को ठगें,
पाउडर मुँह पर न अपने वे मलें ॥
ब्याह के रंगीन जामा को पहन,
बेईमानी का पहन जामा न लें ॥
छोकरी का ब्याह बूढ़े से हुए,
चोट जी में लग गई किसके नहीं।
किसलिए उस पर गड़ाये दाँत वह,
दांत मुँह में एक भी जिसके नहीं ॥[6]

वियोगी हरि ने भी अपने युग की सामाजिक दुर्दशा का चित्रण ब्रजभाषा में किया है। 'बाल विधवा'[7] में स्पष्ट कह दिया है—

जहां बाल-विधवा-हियें रहे धंधकि अंगार।
सुख-सीतलता को तहाँ करिहौ किमि संचार ॥[8]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० ४९
२. वही : पृ० ४०
३. मैथिलीशरण गुप्त : द्वापर : पृ० २५
४. रूप नारायण पांडेय : पराग। पृ० १८, १९
५. डा० द्वारिकाप्रसाद : प्रिय-प्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० २३२
६. अयोध्यासिंह उपाध्याय : चुभते चौपदे : पृ० १६
७. वियोगी हरि : वीर सतसई पृ० २२
८. निराला काव्य और व्यक्ति : पृ० १११

रामनरेश त्रिपाठी की भी भारत की विधवा के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी। 'विधवा का दर्पण' कविता में उस विधवा का चित्र है जिसने राष्ट्र के हित अपने पति का उत्सर्ग कर दिया था। इनकी विधवा दयनीय होते हुए भी गौरव की वस्तु है।

छायावादी एवं रहस्यवादी कवियों में केवल 'निराला' ने वर्तमान की यथार्थता को विस्मृत नहीं किया है। 'अतिशय कल्पना के आरोप के उस युग में भी निराला साधारण समाज और मानव जीवन की ओर दृष्टि निक्षेप करते हैं।[1] उन्होंनें भारतीय विधवा का जो चित्र अपनी 'विधवा'[2] कविता में खींचा है, वह अपूर्व है। 'शंकर' अथवा मैथिलीशरण गुप्त की भांति उनकी लेखनी ने भारतीय विधवा जीवन की कुंठाओं, विकृतियों, सामाजिक अन्याय एवं अत्याचार का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली में नहीं किया है। 'निराला' जी ने भारतीय विधवा के दिव्य रूप के साथ, उसकी मनःस्थिति के विश्लेषण में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विक्षोभ के स्वर को मिला दिया है। मधु में छिपे विष की ओर संकेत किया है। दिव्यता में आवृत्त मानव-मनोवृत्ति की यथार्थता का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन किया है। विधवा के प्रति कवि की संवेदनात्मक अनुभूति गहरी होने के कारण वह सहज ही पाठकों की समस्त सहानुभूति एवं करुणा की पात्र बन जाती है—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है॥[3]

विधवा का इतना भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक चित्रण इसके पूर्व नहीं हुआ था।

सियारामशरण गुप्त नें 'आर्द्रा' में लघु कथाओं के रूप में काव्य द्वारा सामाजिक रूढ़िवादिता का सुन्दर एवं मार्मिक चित्रण किया है। 'नृशंस' में अर्थाभाव और कन्या के विवाह की समस्या ली गई है। जब 'कौड़ी भी नहीं है पास, ऋण ने किया है ग्रास' तो कन्या के विवाह और दहेज की प्रथा माता पिता के लिए विष से भी अधिक घातक हो जाती हैं। बेटी को विष पान में ही अपने माता-पिता की मुक्ति का उपाय मिलता है।[4]

हिन्दू समाज को विनष्ट करने वाली शक्तियों में अस्पृश्यता की भावना का भी प्रमुख हाथ था। समाज के उच्चवर्ग में, निम्न अथवा शूद्र वर्ण के लिए व्याप्त

---

१. निराला काव्य और व्यक्तित्व : पृ० १११
२. निराला : अपरा : पृ० ५६
३. वही, पृ० ५६
४ सियारामशरण गुप्त : आर्द्रा : पृ० २७-३६ द्वितीयावृत्ति

हीन-भावना तथा भेदभाव उसे पंगु बना रहे थे। उसमें असमानता तथा मनोमालिन्य बढ़ता जा रहा था। समाज का एक वर्ग अस्पृश्य होने के कारण संकीर्णता, और अज्ञानता से भरा हुआ था। समाज बहिष्कृत इस अंग के कारण राष्ट्रीय जीवन और तथा राष्ट्रीय भावना का समुचित विकास संभव नहीं था। विदेशी शासक इनकी अज्ञानता का लाभ उठा, सहज ही अपने धर्म में दीक्षित कर, इन्हें अपना समर्थक बना लेते थे। गांधीजी ने इसी कारण देश की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों को राष्ट्रवाद के अनुकूल बनाने के लिए अछूतों की समस्या पर विशेष ध्यान दिया।[1]

अछूतों की समस्या तथा उनके उद्धार के विषय को लेकर हिन्दी में काव्य रचना तत्कालीन अधिकांश राष्ट्रीय कवियों ने की है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'स्वदेश-संगीत' में समाज में व्याप्त भेदभाव तथा अस्पृश्यता की भावना का वर्णन 'अछूत' कविता में किया है।

'हरिऔध' जी ने भी छुआछूत की निन्दा की है। कवि की धार्मिकता इतनी सहिष्णु है कि उसकी आत्मा सामाजिक पाखंड, कूपमण्डूकता, भेदभाव, संकीर्ण विचार के कारण मिटते हुए राष्ट्रीय रंगों को देखकर व्यथित हो जाती है—

पाँव छू छू उनके तरे हैं छितितल पापी
और हम छांह से अछूत की हैं हटते ।।[2]

वियोगी हरि ने 'अछूत' कविता में अस्पृश्यता निवारण पर बल दिया है। अस्पृश्यता को समाज की काली करतूत कहा है—

अपनावत अजहूं न जे अपनेहिं अंग अछूत।
क्यों करि ह्वै हैं छूत वै करि कारी करतूत ।।[3]

'साकेत' महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने राम सीता को कोल, किरात, भील, आदि निम्न जातियों के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़ते दिखाया है। वर्धा आश्रम की भांति उन्हें कातने बुनने का उपदेश दिया जाता है। अतः उन्हें भी अस्पृश्यता अमान्य है। 'पंचवटी' खण्ड में गुप्त जी की सहानुभूति निम्न वर्ग के साथ साथ पशु-वर्ग के प्रति भी है। मैथिलीशरण गुप्त की वैष्णव भावना अति विस्तृत एवं महान है जो प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना से भरी हुई है। 'आर्द्रा' में सियाराम-शरण गुप्त ने कथा-काव्य द्वारा अछूतों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्र खींचा है।

हिन्दी कविता में सामाजिक दुर्दशा के अन्य रूपों के साथ अछूतों के प्रति सामाजिक अत्याचार के अधिक चित्र नहीं मिलते। विभिन्न विद्वानों ने छायावादी और रहस्यवादी कवियों द्वारा सामाजिक उपेक्षा के भिन्न-भिन्न कारण खोजे हैं,

---

१. M.K. Gandhi—Hindu Dharma—P. 10.
२. हरिऔध : कल्पलता : पृ० ८
३. वियोगी हरि : वीर सतसई : पृ० ७८

लेकिन उनकी तत्कालीन सामाजिक निरपेक्षता अथवा विमुखता राष्ट्रवाद की दृष्टि से खटकती है। इसमें संदेह नहीं कि यह उनकी वर्तमान से पलायन की प्रवृत्ति का ही परिणाम था।

साम्प्रदायिकता तथा प्रादेशिकता आदि

भारत का चिरकाल से यह दुर्भाग्य रहा है कि यह देश फूट, वैर, अनेकता आदि दुर्भावों के कारण ही विदेशियों से आक्रान्त होता रहा है। हमारा इतिहास इसका साक्षी है कि भारत की अवनति का मूल कारण आपसी फूट तथा वैर रहा है। अन्यथा वीरता का अभाव न था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद रूपी विष लता ने भी भारतीयों की इस दुर्बलता का पूर्ण लाभ उठाया। साम्प्रदायिकता तथा अनेकता के अनुकूल वातावरण में अबाध रूप से वह बढ़ती गई। भारतीयों की जातीय कटुता के कारण ही अंग्रेजों की कूटनीति फली फूली और हमें उनके अत्याचार सहन करने पड़े। हरिऔध जी ने भारतीयों की दुर्दशा के इस रूप का अति व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन किया है—

> हरिऔध कटुता न जाति में जो फैली होती।
> कैसे कूटनीति वाला कूद कूद कूटता॥[1]

आज हमारे घर में फूट पाँव जोड़कर बैठी है, बैर अकड़ा हुआ खड़ा है, अनबन की बन आई है और 'रगड़े-झगड़े गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।'[2] श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी फूट को ही भारतीयों के विनाश कारण माना है। उन्होंने भारतवासियों को, साम्प्रदायिक विभिन्नता को मिटा कर, हिन्दुत्व के एकत्व में अभिन्न हो जाने का उपदेश दिया था। श्री मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता का सांस्कृतिक पक्ष अति प्रबल है अतः उन्होंने समस्त देशवासियों को हिन्दूपन के गर्व तथा संस्कृति की रक्षा के लिए प्रोत्साहित किया था। उनका 'हिन्दू' शब्द अति व्यापक है। उन्होंने जैन, बौद्ध, सिक्ख, वैष्णव, शैव सभी धर्मावलम्बियों को हिन्दू की परिभाषा के अन्तर्गत लिया है। मुसलमानों को भी गुप्त जी ने, हिन्दू ही माना है क्योंकि परिस्थितिवश उन लोगों ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। ये सभी मूल रूप में हिन्दू हैं, इस कारण गुप्त जी को जातीयता अथवा धार्मिक मतमतान्तर के आधार पर भारतीयों का विभाजन अनिष्टकर लगता है।

> वैष्णव, शैव, शाक्त, सिख, जैन,
> हो कि न हो या कुछ हो ऐन,
> पर तुम में है हिन्दू, रक्त;
> हो इस पुण्य भूमि के भक्त॥[3]

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : पद्म प्रसून : पृ० ३५
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' चुभते चौपदे ४
३. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० १६

'गुरुकुल' की रचना कर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दुओं के बीच फैलते हुए धर्म सम्बन्धी विभेद को मिटाना चाहा है। उन्होंने स्वयं इस पुस्तक के उपोद्घात में लिखा है, 'यदि इस पुस्तक से हम में परस्पर कुछ भी एकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तो लेखक का सारा श्रम सार्थक हो जाएगा।'[१] हिन्दुओं से सिक्खों का विरोध बढ़ रहा था, वे हिन्दुओं से धर्म के आधार पर साम्प्रदायिक विभेद करना चाहते थे। गुप्त जी ने इस ग्रन्थ की रचना द्वारा यह स्पष्ट किया है कि मूलतः सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म से भिन्न नहीं है। सिक्ख गुरुओं के जीवन चरित, उनके वीर कार्यों तथा सिक्ख परम्परा का संक्षिप्त इतिहास देते हुए सिद्ध किया है कि सिक्खों की धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा गीता के सिद्धान्तों के अनुरूप थी। सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म का एक उपसम्प्रदायमात्र है—

हिन्दू जाति एक जननी है,जात उसी का सिक्ख समाज;
किन्तु आज वह रूठ रहा है, हुआ हठी, हेकड़ हा ! लाज।।[२]

इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में गुप्त जी ने साम्प्रदायिक विभेद की भावना को मिटा कर सिक्खों को राष्ट्र का सच्चा नागरिक बनाना चाहा है तथा उनकी राष्ट्रीय भावना की प्रशंसा अनेक स्थलों पर की है। 'साकेत' महाकाव्य में गुप्त जी ने कहा है कि अनेकता में राष्ट्र का बल बिखर जाता है—

एक राज्य न हो बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।।[३]

बहुत से राज्य का अर्थ वर्तमात काल में साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता की हानिकर भावना से है।

साम्प्रदायिकता का सबसे विषम रूप था हिन्दू मुसलमानों के मध्य बढ़ती हुई विद्वेषाग्नि। यद्यपि इसका बहुत कुछ कारण अंग्रेजों की कूटनीति थी क्योंकि वे इन दो प्रबल धर्म सम्प्रदायों को आपस में लड़ा कर अपना स्वार्थ साधन करते थे। देश का यह दुर्भाग्य था कि शताब्दियों से इस देश में बसकर भी मुसलमान इसे अपना वतन नहीं मानते थे। वे अज्ञानवश एक देश रूपी नौका के यात्री होने पर भी एक दूसरे से धार्मिक मतभेद के कारण भारत की नौका डुबा रहे थे। पंडित रामचरित उपाध्याय ने मुसलमानों को इस साम्प्रदायिकता की लहर में बह जाने से रोका है। उनमें देश प्रेम की भावना जागृत करनी चाही है—

भारत ही में पैदा होते, भारत ही में मरते हो;
दुख सुख हानि-लाभ सब कुछ तुम भारत ही में रहते हो।

१—मैथिलीशरण गुप्त : गुरुकुल पृ० २४
२—वहीं : पृ० २४६
३—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० २४

बहको मत, कुछ समझो बूझो, लड़को, मुसलमानों के;
हिन्दुस्तान हमारा ही है हम हैं हिन्दुस्तान के ।।[1]

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी भारतवासियों को जातीयता की रक्षा का संदेश दिया था। 'हरिऔध' जी के 'जाति' शब्द का अर्थ अति विस्तृत था, जिसमें केवल हिन्दू जातियों का ही नहीं वरन् मुसलमान जाति का भी समाहार हो जाता है। हिन्दू मुस्लिम दंगों से वे अति विक्षुब्ध हो गये थे। इस विषय में खेदपूर्ण शब्दों में उन्होंने कहा है—

जो निबाहो नेह के नाते न तुम। जो न बाँट कर खाओ जुरी।
तो छुरी बेढंग आपस में चला। मत गले पर जाति के फेरो छुरी ।।[2]

श्री सियारामशरण गुप्त का 'आत्मोत्सर्ग' हिन्दू मुस्लिम विरोध के प्रबल वेग के विनाशचक्र में रक्तरंजित मानवता की करुण कहानी है। इसका रचना काल विक्रम संवत् १९८८ है जब भारत की दो महान् जातियां एक दूसरे के रक्त से अपने हाथ रंग रही थीं और जिन्हें शान्त करने के प्रयास में अमरशहीद श्रद्धेय गणेश शंकर विद्यार्थी जी को प्राणोत्सर्ग करना पड़ा था। अंग्रेजों की कूटनीति तथा भेद बुद्धि, हिन्दू मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक विद्वेष का विष घोल राज्य करने की युक्ति सफल हो रही थी। कानपुर में हड़ताल हुई, लेकिन मुसलमानों ने साथ नहीं दिया। हिन्दू मुस्लिम भाई-भाई का स्वर मन्द पड़ गया था। मुसलमानों ने अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली बन उत्पात मचाने का बहाना खोज निकाला।[3] विद्यार्थी जी से इस वैर-बुद्धि के गरल को विनष्ट करने की प्रार्थना की गई। हिन्दू मुस्लिम दंगे की बात सुन वे दुर्घटना-ग्रस्त स्थलों पर गये और उन्हें समझाया कि वे भाई-भाई हैं और भाई का रक्तपात पशुत्व से भी गर्हित कार्य है। उन्होंने धार्मिक एकता के मूल तत्वों को समझाने का प्रयास किया—

नहीं दूसरा है वह कोई
उसे रहीम कहो या राम ।।[4]

प्रेम तथा अहिंसा द्वारा द्वेषभाव मिटाने का संदेश दिया। स्वयं विद्यार्थी जी ने हिन्दू दलों के बीच फंसे हुए कुछ मुसलमान परिवारों की रक्षा भी की थी। किन्तु हिन्दू-मुसलमानों के संयुक्त राष्ट्र को आदर्श मानने वाले, दोनों के हितसंरक्षक विद्यार्थी जी की राष्ट्रीय भावना बर्बरता के सम्मुख सफल न हुई। मज़हब का गला घोंट कर मज़हब की धूम मचाने वालों की कमी न थी और अन्त में साम्प्रदायिकता का बोल-बाला और मुसलमानों द्वारा विद्यार्थीजी का वध। दो धर्मों को मिलाने के प्रयत्न में

१. पं० रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : पृ० २३
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' :चुभते चौपदे : पृ० २७
३. सियारामशरणगुप्त : आत्मोत्सर्ग : पृ० १७
४. वही, पृ० २०

उन्हें आत्मोत्सर्ग करना पड़ा था। 'आर्द्रा' में सियाराम जी ने साम्प्रदायिकता के नृशंस परिणाम को दिखाने के लिए लघु कथा-काव्य 'अग्नि परीक्षा'[१] लिखा। हिन्दुओं का कीर्तन जलूस निकलते ही मुसलमानों ने उसे पत्थर गिरा कर रोका। धर्म के नाम पर दोनों जातियां लड़ गईं। जितना ही रक्त बहता था, विद्वेषाग्नि उतनी ही बढ़ती जाती थी। गुलाबचन्द के घर के किवाड़ तोड़ आततायी मुसलमान उसकी पत्नी सुभद्रा को उठा ले गये। अबला नारी किसी प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा कर पति के पास लौटती है लेकिन साम्प्रदायिकता से भी अधिक कठोर सामाजिक बन्धनों के कारण गुलाबचन्द उसे स्वीकार नहीं करते और अन्त में वह आत्मघात कर लेती है। साम्प्रदायिकता और सामाजिक रूढ़िवादिता के दो चक्कों के बीच हिन्दू नारी पिस जाती है। सियाराम जी ने इस कथा को अपनी सम्वेदना के स्पर्श से अत्यधिक करुण बना दिया है। पाठक को साम्प्रदायिकता से अधिक हिन्दू समाज की नृशंसता खलती है। इस कथा में सुभद्रा ने अपने पति से कहा भी है—

अच्छी बात ! वैसी ही परीक्षा अभी दूंगी मैं,
पीछे नहीं हूंगी मैं,
मुझ पर जैसा क्रूर तुमने प्रहार किया,
नागरिकों ने भी नहीं वैसा घोर वार किया ॥[२]

काव्य में कहानी के द्वारा श्री सियाराम शरण गुप्त कृत 'आर्द्रा' में 'अग्नि-परीक्षा' में हिन्दू मुस्लिम दंगों की भूमिका पर सुभद्रा नाम की हिन्दू नारी के सतीत्व के ओजमय दर्शन मिलते हैं जिसने सीता की भांति सतीत्व परीक्षा देकर प्राण त्याग दिये।

भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा की दुर्दशा

विदेशी शासन ने भारतीयों को केवलमात्र राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं, सांस्कृतिक दृष्टि से भी पंगु कर दिया था। पश्चिमी शिक्षा पद्धति ने अधिकांश शिक्षित जनसमुदाय के मनोविज्ञान को बदल दिया। नवीन पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित शिक्षित वर्ग अपने सांस्कृतिक मूल्यों तथा आदर्शों को विस्मृत ही नहीं कर बैठा था वरन् उन्हें हीन दृष्टि से भी देखने लगा था। वह भारत के पतन का अन्तिम सर्ग था। हिन्दी साहित्यकारों ने तत्कालीन शिक्षित भारतवासियों की विकृत मनोवृत्ति का ग्लानियुक्त शब्दों में वर्णन किया है। शिक्षा भिक्षुक की भिक्षा मात्र रह गई थी जो दासता की बेड़ियाँ कसने में अधिक साधक थी। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के शब्दों में—

क्या ऐसी ही सुफलदायिनी है अब शिक्षा ?
क्या अब वह है बनी नहीं भिक्षुक की भिक्षा ?

---

१. सियारामशरण गुप्त : आर्द्रा : पृ० ६१
२. वही : पृ० ६६

क्या अब है वह नहीं दासता बेड़ी कसती ?
क्या न पतन के पाप-पंक में है वह फंसती ?
क्या वह सोने के सदन को नहीं मिलाती धूल में ?
क्या बन कर कीट नहीं बसी वह भारत-हित फूल में ?[1]

वह भारत जिसने सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी थी, उचित शिक्षा के अभाव में विवेकशून्य हो गया था। विदेशी शासक जिस शिक्षा का प्रचार कर रहे थे, वह देश तथा जाति पर मर मिटने की अपेक्षा उनकी स्वार्थ-सिद्धि की पूर्ति में सहायक थी। अतः इसी कारण गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन के समय ही सरकारी स्कूलों के बहिष्कार का प्रस्ताव रखा था और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार के लिए राष्ट्रीय विद्यालयों के स्थापन का पूर्ण प्रयत्न किया था। उस समय गांधीजी का यह कार्य देशवासियों को असम्भव तथा अति कठिन-सा प्रतीत हुआ था। 'हरिऔध' जी के विचार में यह कार्य सरोवर की कुछ बूंदों के ही समान था।[2]

तत्कालीन शिक्षा के ही कारण कुछ राष्ट्रीय नेताओं के मस्तिष्क में भी यह अविचार पुष्ट हो गया कि पश्चिम के सिद्धान्तों, वहाँ के रहन-सहन, दीक्षा में रंग कर भारत का सच्चा सुधार होगा। विशेषकर नरम-दल वालों का अंग्रेजी शासकों तथा उनकी संस्कृति के प्रति किसी प्रकार का विरोधभाव न था। पंडित रामचरित उपाध्याय ने अपने काव्य में नेताओं के इस वर्ग विशेष पर आक्षेप किया है।[3]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने भारतीय आत्म-गौरव के नाश का मूल कारण तत्कालीन शिक्षा को माना है—

जुल्म और भय ने नीरवता अथवा शान्ति जमाई जो,
वह है मृत्यु हमारी नीरव रूप बनाकर आई जो;
फिर जो दी तालीम, आत्म-गौरव का नाश हुआ सारा
मनुष्यत्व मर मिटा बड़ी हीं—बुरी मौत हमको मारा॥[4]

(५ जुलाई, १९२१)

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भारत की दुर्दशा का कारण तत्कालीन शिक्षा पद्धति को माना है। विदेशी शासकों द्वारा प्रचलित शिक्षा का उद्देश्य केवल राज्य कार्य के संचालन के लिए प्रजा को तैयार करना था—

प्रजा नितान्त चरित्रहीन हो शक्ति जाय मिट मन की
शिक्षा का उद्देश्य यही है, नीति यही शासन की।

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : कल्पता : पृ० ४०
२. वहीं : पृ० ४१
३. रामचरित उपाध्याय : राष्ट्र-भारती पृ० ४८
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता पृ० ७३

चरितहीन डरपोक अशिक्षित प्रजा अधीन रहेगी
है यह भाव निरंकुश नृप का, 'सदा अनिति सहेगी ॥'[1]

हिन्दी नाट्य साहित्य में दुर्दशा के अनेक रूपों का चित्रण (१९२०-३७ ई०)

इस युग में रचित, भारतीय दुर्दशा का अंकन करने वाले नाटकों की संख्या अति अल्प है। अधिक संख्या ऐतिहासिक नाटकों की ही मिलती है। भारतेन्दु युग में अवश्य भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक दुर्दशा को प्रत्यक्ष रूप से नाटकों की कथावस्तु के लिए चुना गया था। उनके पश्चात् जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को उच्च कोटि के अनेक साहित्यिक नाटक प्रदान किये। इनके प्रायः सभी नाटक ऐतिहासिक हैं, जिनसे भारत के सांस्कृतिक जागरण का प्रयास किया गया है। इस युग के अन्य नाट्यकारों ने प्रसाद जी की ही परम्परा में ऐतिहासिक नाटकों की रचना कर भारत के विगत गौरव का चित्र खींचा है। अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाट्यकार हैं—बेचन शर्मा उग्र, बदरीनाथ भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, उदयशंकर भट्ट, जमुनादास मेहरा, हरिकृष्ण प्रेमी और सुदर्शन। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अवश्य अपने युग की सामाजिक समस्याओं को लेकर समस्या नाटक भी लिखे हैं। अतः अधिकांश नाटककारों ने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से प्रच्छन्न रूप में अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं और विषम परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया है।

आध्यात्मिक नैतिक पतन

बेचन शर्मा उग्र के 'महात्मा ईसा' नाटक में प्रतीकात्मक शैली में लेखक ने अपने युग आध्यात्मिक नैतिक पतन की झलक दिखाई है। इस नाटक में ईसा के युग और देश की समस्यायें एवं परिस्थितियां वही दिखाई गई हैं जो अंग्रेजी शासन काल के भारत की थीं। वस्तुतः नाट्यकार ने प्रच्छन्न रूप में राजा हेरोद तथा महारानी हेरोदिया के चारित्रिक पतन, अनाचार, अनैतिकता में अपने युग के भारतीय शासक वर्ग का नैतिक पतन दृष्टिगत कराया है।[2] राजा नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पतित था, तो प्रजा की दुर्दशा क्यों न होती। धार्मिक स्थान, पंडे-पुरोहित, महन्त आदि नैतिक पतन एवं आध्यात्मिक हीनता को प्राप्त हुए थे। उग्र जी ने एलाज़र का चरित्र-चित्रण अप्रत्यक्ष रूप से अपने युग और अपने देश के धर्माचार्यों के नैतिक पतन को दिखाने के लिए किया है।[3] अपने देश में इस समय धर्म का उद्देश्य अति विकृत हो गया था। वह ब्राह्मण वर्ग को भोजन कराने और मन्दिरों में स्वादिष्ट भोग्य पदार्थ प्रसाद रूप में चढ़ाने तक सीमित हो गया था, जैसा कि इस नाटक में दिखाया गया है। नाटक में महात्मा ईसा की सूक्ष्म दृष्टि एवं सत्याराधना धार्मिक

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक : पृ० ४७

२. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० ५६

३. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ ४०

अनाचार को मिटाने के लिए प्रयत्नशील है और हमारे देश में गांधी जी उसी कार्य को कर रहे थे।

जयशंकर प्रसाद ने अपने सभी नाटकों में सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय, नीति-अनीति का संघर्ष दिखाया है। यह भी आलोच्य काल की विशेषता थी। उनके नाटकों में देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन के प्रतीक पात्र हैं—राज्यश्री में शान्ति भिक्षु; विशाख में महापिंगल; स्कन्दगुप्त में प्रपंचबुद्धि कापालिक; अजातशत्रु में देवदत्त। 'विशाख' नाटक में राजा नरदेव, विलासी एवं उच्छृंखल प्रवत्ति के जमीदार, तालुकेदार, भारतीय नरेश आदि पूंजीवादी वर्ग का प्रतीक है, जिनके कारण ग्रामीण सुन्दरियों की मर्यादा अरक्षित हो गई थी। प्रसाद जी ने अपने युग की समस्याओं को ऐतिहासिक कथा में कल्पना के योग द्वारा मूर्त क्रिया है। 'अजातशत्रु' में मागधी अथवा श्यामा और देवदत्त का नैतिक पतन सत्य रूप गौतम बुद्ध का विरोध करता है। इसी प्रकार अन्य नाटकों में भी दो प्रकार के पात्र दृष्टिगत होते हैं। प्रसाद जी ने भी उग्र जी की भांति अपने युग की धार्मिक मिथ्यावादिता, अनैतिकता, आडम्बर आदि की झांकी दिखाई है। 'विशाख' नाटक में बौद्धों के चारित्रिक पतन का वर्णन, महन्त द्वारा चन्द्रलेखा को वन्दी वनाना, राजा नरदेव का वौद्ध मठों को भस्म करने की आज्ञा देना आदि दृष्टान्त हैं।

वर्तमान काल में भारत के देश-जीवन के चारित्रिक पतन का सबसे बड़ा उदाहरण वेश्याओं की घृणित वृत्ति थी। देश का यह दुर्भाग्य था कि नारी के इस पतित रूप पर सामाजिक मान्यता की मुहर लगी हुई थी। समाज के उच्च वर्ग, सम्भ्रान्त परिवारों तथा मन्दिर जैसे धर्म स्थानों में वेश्याओं का नृत्य-गान एक गौरव की बात बन गई थी। सामाजिक जीवन की इस पतित मनोवृत्ति की ओर उग्र जी के 'महात्मा ईसा' नाटक में संकेत मिलता है। एलाज़र धर्म मन्दिर को विलास भवन बना देना चाहता है। उसके शब्दो में 'धर्म मंदिर में विलास भवन······कोई बुरी बात तो नहीं है डेविड ! जिसने धर्म की सृष्टि की है विलास भी तो उसी की पवित्र रचना है—है न डेविड ?'[1] शासक वर्ग की ओर से इस नैतिक पतन को रोकने की अपेक्षा प्रोत्साहन मिल रहा था। कैसर हेरोद के शासन में महारानी हेरोदिया ने प्रार्थना स्थानों पर वेश्या का नाच करवाने की आज्ञा दी थी।[2] इस ध्येय की पूर्ति के लिए एलाज़र जैसे चरित्रहीन तथा लोभी व्यक्ति धर्माचार्य के पद पर नियुक्त किये गये थे। लेखक के अपने युग में भारत की भी यही दशा थी। देश के मन्दिर विलास-साधना के केन्द्र बन गये थे और अंग्रेजी शासक वर्ग देश के इस पतन में अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा था। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भी वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित सामाजिक पतन के चित्र मिल जाते हैं। उनके 'अजातशत्रु' नाटक में श्यामा वार-

१. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : ४२
२. वही, पृ० ४२

विलासिनी के चित्र द्वारा वेश्या समस्या की ओर संकेत किया गया है। काशी की वारविलासिनी का रूप अपनाने के बाद श्यामा स्पष्ट शब्दों में यह कोसती है कि भारतीय समाज में पत्नी की अपेक्षा वेश्या को अधिक मान मिलता है।[1]

श्यामा को वेश्या जीवन अपनाने के बाद बड़े-बड़े श्रेष्ठी और राजपुरुषों के द्वारा सम्मान प्राप्त होता है शताब्दियों से चली आ रही इस निकृष्ट वृत्ति ने वर्तमान युग में विकट रूप धारण कर लिया था। गांधी जी इसके निराकरण द्वारा सामाजिक शुद्धि के लिए क्रियाशील थे जिससे राष्ट्रवाद का समुचित विकास सम्भव हो सके।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के ऐतिहासिक नाटक 'रक्षा-बन्धन' में भी प्रच्छन्न रूप से देश के नैतिक पतन की ओर 'एकाध स्थलों पर इंगित किया गया है। इस नाटक में धनदास लेखक के अपने युग के नैतिक आदर्शों से च्युत धनिक व्यापारी वर्ग का प्रतीक है। वह देश-कल्याण की अपेक्षा अपने ही लाभ की बात सोचता है—'जो ज्यादा कीमत देगा, उसी के हाथ माल बेचेंगे।' देशी, विदेशी का प्रश्न इस वर्ग के सम्मुख महत्व नहीं रखता था।

देश-जीवन के आध्यात्मिक नैतिक पतन के चित्रण, हिन्दी साहित्य में अप्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न रूप से ही अधिकतर लिए गए हैं।

राजनीतिक दुर्दशा

इस युग के नाटकों में राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण भी प्रच्छन्न, सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक शैली में मिलता है। जमनादास मेहरा ने अवश्य 'पंजाब केसरी' नामक राजनीतिक नाटक में अपने युग की विषम राजनीतिक परिस्थितियों, आंदोलनों, साइमन कमीशन के बहिष्कार आदि का वर्णन किया है।

उग्र जी का 'महात्मा ईसा' नाटक प्रतीकात्मक शैली में देश की युगीन राजनीतिक दुर्दशा का विशद चित्र उपस्थित करता है। 'महात्मा ईसा' वस्तुतः महात्मा गांधी हैं और उनके युग की राजनीतिक अवस्था प्रच्छन्न रूप में भारत की विदेशी साम्राज्यान्तर्गत दुर्दशाग्रस्त स्थिति। महात्मा ईसा के देश के समान इस देश में भी सत्ताधारी शासक दल अत्याचार का डमरू बजाकर तांडव नृत्य कर रहा था[2], जिसे रोकने के लिए महात्मा ईसा की भांति गांधी जी का जन्म हुआ था। इस नाटक में हेरोद की निरंकुशता, अत्याचार, अनाचार आदि भारत में विदेशी शासकों के दुर्व्यवहार का प्रतिबिम्ब है। हेरोद के समान, विदेशी शासकों की भी भारतीय प्रजा के साथ यही नीति थी—'......राजा के लिए कोई भी कर्म पाप नहीं। राजा पाप और पुण्य का नियन्ता है। जैसे संसार की सभी वस्तुओं का भोक्ता मनुष्य है...... क्योंकि परमात्मा ने उसे सबका सम्राट् बनाया है—उसी प्रकार मनुष्यों का सम्राट्

१. जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ७७
२. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० ८१

भी अपनी प्रजा के भाग्य का भोग स्वेच्छया कर सकता है।'[1] शावेल जैसे देशद्रोही सम्राट् के कृपापत्र थे, जिनके मतानुसार राजा की आज्ञा मानना प्रजा का कर्तव्य था, चाहे शासक धर्म मन्दिर को वेश्या-भवन बना दें अथवा प्रजा के सिर पर राजस्व कर का बोझ लाद दें। शावेल द्वारा किए गए अत्याचार, भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था में नौकरशाही द्वारा किए गए अत्याचारों का प्रतिरूप हैं। बड़े-बड़े पद और उपाधियों का लालच देकर प्रजा द्वारा जघन्य से जघन्य कृत्य करवाए जाते थे।[2] राष्ट्रीय उत्थान के लिए अग्रसर शक्तियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। महात्मा ईसा द्वारा असत्य एवं अन्याय के निराकरण के लिए किया गया अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन है क्योंकि इस नाटक की रचना आन्दोलन काल में हुई थी। असहयोग आन्दोलन में विदेशी शासकों द्वारा जिस नृशंस एवं अन्यायकारी दमन नीति से कार्य लिया गया था, उसका भी प्रच्छन्न रूप से वर्णन मिल जाता है। असहयोगी सत्याग्रहियों पर कोड़े लगवाए गए थे। औरतों और बालकों पर अत्याचार किया था, सिपाहियों ने औरतों की इज्जत लेने में भी संकोच नहीं किया था। उग्र जी ने सत्ताधारियों के काले कारनामों का वर्णन इन शब्दों में किया है—'सो तो ठीक है प्रभो! परन्तु इन सत्ताधारी यहूदियों का हृदय काले बादलों से भी काला, वज्र से भी कठिन तथा मृत्यु से भी भयंकर है।......'[3]

देश का यह दुर्भाग्य था कि शासकों के भय से अथवा स्वार्थ साधन से प्रेरित होकर भारतीय पूंजीपति, जमींदार आदि राष्ट्रीय चेतना का विरोध कर रहे थे। 'महात्मा ईसा' नाटक के राजनीतिक दुर्दशा के इस रूप का भी उल्लेख मिलता है।[4] शासकों ने भारतवासियों को शराब पीना, चापलूसी करना आदि दुर्गुणों और व्यसनों का चस्का लगवा कर उनकी मानसिक अवस्था विकृत कर दी थी। इसके अतिरिक्त निर्धन व्यक्तियों को छल द्वारा फोड़ कर सत्याग्रह को मिटाने का उद्योग किया था। प्रच्छन्न रूप से इस नाटक में इन सबका वर्णन मिलता है।[5] सत्याग्रही राष्ट्र-भक्तों को राजद्रोह, ईश्वर-निन्दा, शान्ति-भंग आदि अपराध लगा कर दण्डित किया जाता था। पराधीन भारत में न्यायालय और विचारपति न्याय का गला घोंट रहे थे। इस नाटक में महात्मा ईसा कहते हैं—'मैं क्या कहूं? जहां पर विचारक ही वादी और रक्षक ही भक्षक—वहां पर क्या कहा जा सकता है? मैं न तो इस न्यायालय को अदालत मानता हूं और न हैरोद को सम्राट्—जिसके आप नौकर हैं। मुझे कुछ

१—बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० ५६
२. वही, पृ० १५५
३. वही पृ० १४३
४, वही पृ० १७७
५. वही पृ० १५१

नहीं कहना है।'[१] गांधीजी भी इसी कारण न्यायलय को निरर्थक मानते थे, और ऐसा ही बयान सत्याग्रही कैदी के नाते आन्दोलन के उपरान्त दिया था। शासक वर्ग और न्यायालय की स्वेच्छाचारिता का वर्णन डेविड ने अधिक यथार्थ शैली में किया है—'इसे कहते हैं स्वेच्छाचार ! अधिकार के दुरुपयोग का ऐसा ज्वलन्त उदाहरण संसार के इतिहास में खोजने से भी न मिल सकेगा।......।[२] इस नाटक के वक्तव्य में स्वयं लेखक ने लिखा है—'मेरे हृदय में आग सुलग रही थी, उसे ही मैंने इस नाटक के रूप में फूंक दिया है।' यह आग पराधीनता के अभिशाप की आग है, जिसके प्रकाश में भारत का अतीत-गौरव चमक उठा है।

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में युगीन राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से सांकेतिक रूप में हुआ है। उन्होंने अपने अधिकांश नाटकों में गौरव-युक्त अतीत संस्कृति, इतिहाससम्मत योग्य शासक, उनकी शासन पद्धति एवं राजनीतिक आदर्शों से संयुक्त कथानक प्रस्तुत कर पाठक-वर्ग को अपनी राजनीतिक पराधीनना एवं दुर्दशा के अन्य कारणों की ओर से विक्षुब्ध कर, उनके निराकरण के लिए कर्म करने की प्रेरणा दी है। अज्ञात एवं अप्रत्यक्ष रूप से इनके नाटक देशवासियों को विदेशी शासन पद्धति, उनकी कुटिल नीति तथा अत्याचारों से मुक्त होने के लिए उत्साहित करते हैं। प्रसाद जी के 'अजातुशत्रु', राज्यश्री', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कंदगुप्त', विशाख' आदि नाटकों में राजनीतिक उथल पुथल के चित्र मिलते हैं। इसका यह कारण है कि स्वयं प्रसाद जी का युग राजनीतिक दृष्टि से शान्तिपूर्ण नहीं था। 'अजातशत्रु' नाटक में अजात अराजक, स्वच्छन्द, अन्यायी और अत्याचारी राजा का प्रतीक है। प्रजा की रक्षा की अपेक्षा उन पर आतंक जमा कर राज्य करना चाहता है। अंग्रेजी शासक वर्ग का भारतीय प्रजा के साथ यही व्यवहार था। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त अत्याचारी राजा नन्द और विदेशी शक्ति के आक्रमण से राष्ट्र का उद्धार करते हैं ? राज्यश्री' नाटक में भी षड्यन्त्र, विद्रोह, रक्तपात एवं संघर्ष का दिग्दर्शन कराया गया है। यह देश की युगीन स्थिति थी। 'अजातशत्रु' नाटक में अजात और देवदत्त सभ्य गणों की परिषद् में जिस वाक् चातुरी से वृद्ध जनों को अपनी ओर कर लेते हैं, प्रायः उसी वाक्चातुरी से अंग्रेजी शासकों ने भी प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय देशवासियों को प्रजा-वत्सलता के नाम पर मूर्ख बना दिया था। 'विशाख' नाटक में राजा नरदेव शासक वर्ग के पतन का प्रतीक है—'हां जो विपत्ति में आश्रय है, जो परित्राण है, वही यदि विभीषिकामयी कृत्या का रूप धारण करे तो फिर क्या उपाय है। राजा के पास प्रजा न्याय कराने के लिए जाती है, किन्तु जब वही अन्याय पर आरूढ़ है तब क्या किया जाय।' प्रसाद

१. बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० १७५
२. वही पृ० ७७
३. जयशंकर प्रसाद : विशाख : पृ० ७८

जी के सभी नाटकों में उनके अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा प्रतिध्वनित हो रही है।

इस युग के अन्य नाट्यकारों ने प्रसाद जी का अनुकरण किया है। अन्य ऐतिहासिक नाटकों में भी भारतीय इतिहास के वीर पुरुष एवं नारी चरित्रों की प्रतिष्ठा की गई है। इतिहास के झरोखे से वर्तमान राजनीतिक दुर्दशा की झलक दिखाई गई है। अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक हैं—बदरीनाथ भट्ट का दुर्गावती नाटक; उदयशंकर भट्ट के विक्रमादित्य और 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' नाटक; बाबू लक्ष्मीनारायण का 'महाराणा प्रताप का देशोद्धार' नाटक; हरिकृष्ण प्रेमी का 'रक्षा-बन्धन' नाटक, सुदर्शन का 'जय पराजय' नाटक। इन नाटकों के मूल में अवस्थित संघर्ष लेखकों के अपने युग का राजनीतिक संघर्ष है, जो भारतीयों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के हेतु किया जा रहा था।

बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' नाटक में अकबर की कूटनीति तथा अंग्रेजी कूट-नीति में बहुत कुछ साम्य है। राव गिरधारीसिंह के इलाके में सुधार के नाम पर जो 'बिगाड़' चल रहा था, वह प्रच्छन्न रूप में अंग्रेजी सरकार की नीति थी। देशी रियासतों और जमीदारियों की यही दशा थी।[1] राव गिड़धारी जैसे देशघातियों के कारण दुर्गावती की पराजय हुई और वह वीरगति को प्राप्त हुई।' जब तक किसी देश में विश्वासघाती नहीं होते, तब तक उस देश की स्वतन्त्रता पर कहीं से कोई वार नहीं हो सकता।[2] नाटक के यह शब्द नितान्त सत्य हैं, क्योंकि अंग्रेजी काल में पराधीनता का अभिशाप इतना अधिक फलित हुआ था कि राष्ट्र-संघातक व्यक्तियों का अभाव नहीं था। उदयशंकर भट्ट के 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' नाटक में भी सिन्ध के पतन का कारण ज्ञानबुद्ध जैसे देशद्रोही हैं, जो स्वार्थ-बुद्धि, अविवेक तथा कायरता के कारण विदेशी शक्ति से मिल कर राष्ट्र का गला घोंटते हैं। इसी प्रकार भट्ट जी के पौराणिक नाटक 'सगर विजय' में दुर्दम की मनमानी, सत्यनिष्ठ नागरिकों को मृत्युदंड, प्रजा का विद्रोह, सगर का माता की प्रसन्नता के हेतु राष्ट्र सेवा का व्रत आदि घटनाएं लेखक के अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की परिचायक हैं। इसी कारण भट्ट जी के संबंध में डा० वि० ना० भट्ट ने लिखा है—'तथापि क्या पौराणिक और क्या ऐतिहासिक नाटकों में भट्टजी को अतीत मात्र अतीत के लिए प्रिय नहीं है। अपने पात्रों को नूतन भावनाओं और वाणी से मुखर बनाकर लेखक ने उनकी विषमताओं में अतिशय आत्मीयता और आधुनिकता समाहित कर दी है।'[3]

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द के नाटक 'प्रताप प्रतिज्ञा' में भी प्रच्छन्न रूप से भारत में फैलने वाली अंग्रेजी कूटनीति पर प्रकाश डाला गया है। इस नाटक में

१. बदरीनाथ भट्ट : दुर्गावती : पृ० ३०
२. बदरीनाथ भट्ट : दुर्गावती : पृ० ३३
३. डा० नगेन्द्र—सम्पादक : सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ

अकबर विदेशी साम्राज्यवाद का प्रतीक है, जो फूट डलवा कर देश में राज्य करना चाहता है। राजपूतों में फूट डलवा कर शक्तिसिंह को प्रताप के विरुद्ध अपने पक्ष में मिला कर अकबर ने जिस कुशल राजनीति अथवा कूटनीति का परिचय इस नाटक में दिया है वह वस्तुतः अंग्रेजी शासकों की नीति थी। अकबर कहता है—'जाओ बेवकूफ बहादुरो जाओ ! लड़ो, खूब लड़ो, बेइज्जती पाने के लिए लड़ो, गुलामी को गले लगाने के लिए जान लड़ाओ ! और अकबर ! अकबर आराम करेगा ! लोहों से लोहों को लड़ाकर फूलों की खुशबू लेगा—नवरोज के मेले के मजे देखेगा।'[1] राष्ट्रीयता और स्वाभिमान को विदेशी राज्य में विद्रोह समझा जाता था।[2]

सुदर्शन द्वारा लिखित 'जय पराजय' नाटक में राजपूतों की आपसी फूट, मेवाड़ में चल रहे षड्यन्त्र, विद्वेष आदि युगीन बातें हैं। अंग्रेजी शासन काल में देश के अन्तर्गत कई स्वतन्त्रता विरोधी शक्तियां—षड्यन्त्र, विद्वेष भावना आदि कार्य कर रही थीं। इस नाटक में भी प्रच्छन्न रूप से अपने-अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की ओर संकेत किया गया है। 'अनघ' नामक गीतिनाट्य में मैथिलीशरण गुप्त ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की ओर इंगित किया है। मघ दुर्दशा के निराकरण के लिए प्रयत्न करता है।

बाबू जमनादास मेहरा ने 'पंजाब केसरी' नाटक में अंग्रेजी काल में राजनीतिक पराधीनता के कारण देश-दुर्दशा का प्रत्यक्ष चित्र खींचा है। देश की निर्धनता तथा पाठशालाओं की दुर्दशा का कारण पराधीनता था।[3] अकाल पीड़ित भारतवासियों की अवसर पर सरकार द्वारा सहायता नहीं की जाती थी। कांगड़ा भूकम्प के समय पंजाब केसरी तथा स्वयंसेवकों ने पीड़ितों की सहायता की थी। सरकार तो उनकी असहाय अवस्था से अपना स्वार्थ साधन करना चाहती थी।[4] राष्ट्रीय कार्यक्रम अहिंसात्मक आन्दोलन का दमन हथियार द्वारा किया जा रहा था।[5] इस नाटक में जमुनादास मेहरा ने निर्भीक, स्पष्ट, कटु शब्दों में अंग्रेजी शासन की निन्दा की है—

नाश कर डाला इन्हीं नीचों ने सारे देश का।
बीज बोया हाय ! भारत में इन्हीं ने द्वेष का।
ठोकरें खा बूट की संभलेंगे ये झख मार कर।
सब मजा मिल जायेगा, इनको विदेशी देश का।।

---

१. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : प्रताप-प्रतिज्ञा : पृ० ३५
२. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : प्रताप-प्रतिज्ञा : पृ० ३६
३. जमनादास : पंजाबकेसरी : पृ० १४
४. वही : पृ० ५७
५. वही : पृ० ६६

संगठन हो गर, नहीं मांगी मिलेगी भीख भी।
शीघ्र ही आ जायगा, इनका समय भी शेष का ।।
पाप का बेड़ा सदा, भरपूर होकर डूबता ।
देश-घाती को मिलेगा फल हमारे क्लेश का ।।[1]

जमुनादास मेहरा का 'पंजाब केसरी' नाटक संस्कृत नाट्य शैली पर लिखा कलात्मकता एवं भाषा की दृष्टि से अधिक उच्चकोटि का नाटक न होने पर भी राष्ट्रीय भावना विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण नाटक है। यह नाटक अपने युग का सच्चा परिचायक है। देशवासियों को उत्साह और देशभक्ति से भर देने के लिए इसमें पर्याप्त शक्ति है।

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में भी प्रच्छन्न रूप से युगीन राजनीतिक परिस्थिति का विवेचन मिलता है। 'रक्षा-बन्धन' नाटक में बहादुरशाह और मुल्लू खां की बातचीत में अंग्रेजी शासकों की स्वार्थपूर्ण कुटिल नीति का उद्घाटन होता है। जब बहादुरशाह की सहायता के लिए नुनो दे कुन्हा आये तो मुल्लू खां कहते हैं—

मुल्लू खां—मैं इस फिरंगी को नहीं चाहता।

बहादुर—क्यों सूबेदार ?

मुल्लू खां—जिस शख्स के हाथ में तलवार हो, उससे दोस्ती करने में खतरा नहीं, लेकिन जिसके हाथ में तराजू भी हो और तलवार भी, उससे दोस्ती करना अपने गले में फांसी लगाना है।

बहादुर—क्यों ?

मुल्लू खां—क्योंकि तलवार जब सर पर तनती है, तो साफ दिखाई देती है, लेकिन तराजू कब हमारा सब कुछ डंडी के पासंग में मार ले जाती है, कुछ पता नहीं चलता।

बहादुर—है तो ठीक। जिन पुर्तगीजों ने गुजरात के पुत्तन, पेंट, मंगलोर, घाना, तोलाजा और मुजफ्फराबाद को जलाकर खाक किया है और चार हजार आदमियों को गुलाम बना कर विलायत भेजा, वे आज मेरी मदद को क्यों आए हैं, इसमें जरूर कुछ राज़ है।

मुल्लू खां—राज़ यही है कि वे हिन्दुस्तान की बादशाहत चाहते हैं। इधर आपको राजपूतों से लड़ाकर कमजोर कर देंगे, उधर दिल्ली का तख्त डांवाडोल है ही, फिर उन्हें अपना उल्लू सीधा करने में देर न लगेगी।'[2]

इस बातचीत में लेखक ने युगीन राजनीतिक परिस्थिति का परिचय दिया है। अंग्रेजी सरकार की तराजू हमारा सब कुछ 'डंडी के पासंग' में मार कर ले जा रही थी। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालकर, दंगे करवा कर और दोनों शक्तियों को क्षीण करके अपना स्वार्थ-साधन कर रही थी। उनकी

---

१. जमनादास मेहरा : पंजाब केसरी : पृ० ७४
२. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ० २५

कुटिल नीति का ही परिणाम मुस्लिम-लीग जैसी मुसलमानों की कट्टर साम्प्रदायिक संस्था थी। अधिकांश मुसलमान हिन्दुओं के प्रति द्वेष-भाव से भर कर अंग्रेजी सहायता के बल पर राष्ट्रीय-शक्ति क्षीण कर रहे थे। इस समय भारत की राजनीतिक स्थिति जितनी विकट थी, वैसी कदाचित् ही किसी अन्य देश की रही होगी।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य में उच्चकोटि के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक नाटकों द्वारा अपने युग के संघर्ष को मूर्त रूप प्रदान किया है। उनके युग की परिस्थितियों की स्पष्ट झलक कलात्मकता, साहित्यिकता, ऐतिहासिकता, भावुकता, दार्शनिकता एवं मानवता के आवरण में यत्र तत्र मिल जाती है। बदरीनाथ भट्ट, उदयशंकर भट्ट, हरिकृष्ण प्रेमी, सुदर्शन आदि के नाटकों में युगीन राष्ट्र-संघातक शक्तियों—फूट, स्वार्थ-परता, संघर्ष आदि पर प्रकाश डाला गया है। उग्रजी ने 'महात्मा ईसा' नाटक में ईसाई धर्मानुरागी शासकों की नृशंसता, स्वार्थ-परता पर व्यंग्य कसा है। उनके इस नाटक में यह स्पष्ट ध्वनित है कि ईसा जैसी महान आत्मा के अनुयायियों ने भारत को पराधीन बनाकर और जनता पर अत्याचार करके अपने धर्म का अनादर किया है। इस युग के नाट्य-साहित्य में भारत की राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण प्रच्छन्न, सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक शैली तथा विभिन्न नाट्य रूपों में मिलता है। प्रत्यक्ष रूप से चित्रण करने वाले नाटक इने गिने ही हैं। इन्हीं नाटकों में राजनीतिक दुर्दशा के प्रच्छन्न चित्रण का कदाचित् यह कारण था—अंग्रेजी शासकों की दमन नीति अधिक कठोर हो गई थी, इसलिए शासन सम्वन्धी आलोचना अधिक सम्भव नहीं थी। ऐसे नाटकों का प्रदर्शन भी नहीं किया जा सकता था और रंगमंच पर प्रदर्शन नाटक का आवश्यक तत्त्व है।

आर्थिक संकट

भारतीय इतिहास से सम्बन्धित ऐतिहासिक नाटकों में आर्थिक संकट के चित्र प्रायः नगण्य हैं। इसका कारण यह है कि अंग्रेजी साम्राज्य के पूर्व भारत कभी भी आर्थिक दृष्टि से विपन्न नहीं हुआ था। वह अपने धन धान्य के लिए विश्व-विख्यात था। उग्रजी के 'महात्मा ईसा' नाटक में अवश्य प्रच्छन्न रूप में आर्थिक संकट का उल्लेख मिलता है। इस नाटक में यह दिखाया गया है कि जनता सत्तावादियों से आतंकित थी, लेकिन उसमें विरोध का साहस नहीं था। इसका कारण यह था कि शासक के अनाचार के विरोध का दण्ड था भूख से मर जाना।[1]

बाबू जमनादास मेहरा के 'पंजाब केसरी' नाटक में स्वर्गीय लाला लाजपत राय जी के जीवनादर्शों के साथ देश के आर्थिक संकट का भी वर्णन किया गया है। विदेशी शासन में देश निर्धनता के साथ दैवी विपत्तियों का भी कोपभाजन बना हुआ था।[2] लेखक ने अकाल पीड़ितों की दशा का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है—

---

१. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० ८३

२. बाबू जमनादास मेहरा : पंजाब केसरी : पृ० १४

दिया ध्यान एक धर्मी ने ना दानी ने नहिं दाता ने।
अन्न लिया पुत्री देकर, हाः ! बड़े-बड़े गुणज्ञाता ने ॥
बिके धर्म कुल वधुओं के, बहनों को बेचा भ्राता ने ॥
पति ने बेचा पत्नी को, बालक को बेचा माता ने ॥
मरे हजारों बिना अन्न, फिर भी नहीं देखा त्राता ने ।
करता ही सब करता है, यह किये विधान विधाता ने ॥[1]

लाला लाजपतराय तथा अन्य राष्ट्रभक्तों ने अकाल पीड़ित धनविहीन जनता की सहायता की थी । भारतीय धनिक वर्ग से राष्ट्रीय सेवार्थ भिक्षा मांगी थी ।[2] पंजाब केसरी ने नौकरशाही के अत्याचारों से गरीब जनता को मुक्त करने का प्रयत्न किया था—'भाइयो ? आओ मैं चलता हूं तुम पीछे-पीछे आओ, ग्राम-ग्राम में चलकर पहले उन भूखे भाइयों का अन्न से भेंट कराओ । हम किसी तरह बच रहेंगे तो अन्याय की दुहाई मचायेंगे और ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि 'हमें अन्न प्राप्त हो ।[3] वास्तव में भारत की आर्थिक दशा अत्यधिक करुण थी ।

हिन्दी-नाटकों में सामाजिक दुर्व्यवस्था का चित्रण

इस युग के हिन्दी साहित्य में सामाजिक दुर्दशा के प्रतिरूप नाटकों की संख्या अति अल्प है। प्रायः ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से अतीत-गौरव और इतिहास की पृष्ठभूमि में युगीन सामाजिक समस्याओं की ओर संकेत किया गया है । लक्ष्मी-नारायण मिश्र ने अवश्य युग-जीवन से समस्याएं लेकर ससस्या नाटकों की परम्परा का प्रचलन प्रारम्भ किया था । कतिपय एकांकी नाटक भी सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे जाने लगे थे ।

'महात्मा ईसा'[4] नामक नाटक में उग्रजी ने एलाज़र के चरित्र-चित्रण में अपने युग के महन्तों के पतित जीवन और धार्मिक पाखंड का उच्छेद किया है ।[4] भारतीय सामाजिक धर्म-व्यवस्था में सत्यता की अपेक्षा मिथ्यात्व, अन्धविश्वास और पाखंड बढ़ गया था, उसकी ओर प्रच्छन्न रूप में महात्मा ईसा के देश की सामाजिक स्थिति के चित्रण द्वारा संकेत किया है । अतः यह नाटक प्रतीकात्मक शैली में भारत की सामाजिक दुर्दशा के कुछ पक्षों पर प्रकाश डालता है। उदयशंकर भट्ट ने 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' नाटक में समाजिक रूढ़ियों, अन्धविश्वास और धार्मिक मिथ्यात्व का निरूपण ऐतिहासिक कथा के माध्यम से किया है ।[5] सिन्ध के महाराजा दाहर

१. बाबू जमनादास मेहरा : पंजाब केसरी : पृ० ३६
२. वही, : पृ० ४१
३. वही, : पृ० ५१
४. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० ३५
५. 'हमारी जातीयता में धर्मवाद की निकम्मी, थोथी रूढ़ियों ने हमें विवेक से गिरा दिया, मनुष्यत्व से खींच कर दासता, भ्रातृ विद्रोह विवेकशून्यता के गढ़े में ले जाकर पीस दिया ।'

उदयशंकर भट्ट : दाहर अथवा सिन्ध पतन : अपने पाठक से

अत्यन्त उदार, वीर एवं धर्म सहिष्णु व्यक्ति थे। उन्होंने शूद्रों को ब्राह्मण वर्ग के समान पद दिया था। अतः उच्च वर्ग, धर्म मिथ्यात्व तथा प्रतिहिंसा की भावना से भर कर राज पुरोहित द्वारा निषेध किये जाने पर स्वयं राजा युद्ध के लिए न जाकर राजकुमार को भेजते हैं। इस अन्धविश्वास का अन्तिम परिणाम विदेशियों की विजय में घटित होता है। इस नाटक द्वारा भट्ट जी ने अपने युग के सवर्ण एवं अवर्ण के बीच बढ़ते भेदभाव की ओर आकृष्ट कर, निम्न वर्ग को अन्य वर्गों के समान स्थान देने की प्रेरणा दी है। इस नाटक के सदृश वर्तमान काल में भी ब्राह्मणों अथवा उच्च वर्ग की मनोवृत्ति अत्यन्त संकुचित थी, वे नीच जातियों को अधिकार देना धर्म-प्रतिकूल मानते थे।[१] गांधीजी समाज में प्रविष्ट धर्म के मिथ्यात्व, पाखंड, भेदभाव के दुष्परिणामों से परिचित थे। इसी कारण इन्होंने इस मनोवृत्ति के विरुद्ध आन्दोलन संगठित किया था।

हिन्दी के प्रमुख नाट्यकार जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में अतीतकालीन भारत के उज्ज्वल पक्ष का चित्रण किया है। अतः राष्ट्रीय-जीवन के अभावात्मक पक्ष का संकेत मात्र ही उनके नाटकों में मिलता है। सामाजिक दुर्दशा के भी स्थूल चित्र न खींच कर, उस ओर इंगित मात्र किया है। 'विशाख' नाटक में सामाजिक अनीति का वर्णन मिलता है। 'मठों में महन्त आदि अनैतिक जीवन व्यतीत करते थे, और शासक वर्ग में भी नैतिकतापूर्ण आचरण का अभाव था। इससे समाज की दरिद्र कन्याओं का जीवन संकटापन्न हो गया था। यह प्रसाद जी के अपने युग के सामाजिक पतन का प्रतिबिम्ब है। उनके कतिपय नाटकों में हिन्दू समाज की विधवा से सम्बन्धित समस्या को भी लिया गया है। 'ध्रुवस्वामिनी', 'राज्यश्री' और 'अजातशत्रु' में विधवाओं की समस्या, जीवन और आदर्श को ढूंढा जा सकता है। प्रसाद जी वैधव्य को समाज के लिए अभिशाप मानते हैं। भारतीय विधवा नारी के प्रति समाज की उपेक्षा को दृष्टि में रख कर 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में विधवा-विवाह को इतिहास सम्मत तथा शास्त्र-विहित सिद्ध किया गया है। विधवा की दुर्दशा के चित्रण की अपेक्षा समस्या के निदान की ओर नाट्यकार की विशेष दृष्टि है। 'राज्यश्री' नाटक में राज्यश्री पति की चिता से उतर कर देश सेवा के लिए वैधव्य वेदना सहती है। 'अजातशत्रु' नाटक में भी प्रसाद जी ने विधवा मल्लिका का उदात्त एवं महान् रूप प्रस्तुत किया है। वह चाहती तो पति के साथ भस्म हो सकती थी, लेकिन मानवता की सेवा के लिए वह जीवित रहती है। प्रसाद जी ने राज्यश्री और मल्लिका जैसी महान् विधवा नारियों के चरित्रांकन द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि समाज जिस विधवा को अभिशाप समझता है, वह अभिशाप नहीं, वरदान बन सकती हैं। ध्रुवस्वामिनी नाटक में प्रसाद जी ने एक अन्य समस्या अनमेल विवाह की ओर भी इंगित किया है। रामगुप्त जैसे क्लीव एवं विलासी राजा के साथ सुन्दरी वीर नारी ध्रुवस्वामिनी का विवाह नितान्त

१. उदयशंकर भट्ट : दाहर अथवा सिन्ध पतन : पृ० ३४

असंगत था। कभी-कभी ऐसे विवाह का परिणाम अत्यन्त भयंकर होता है और अनैतिकता को जन्म देता है क्योंकि नाटक में अशक्त एवं कायर रामगुप्त अपनी पत्नी को शकराज के पास भेजने को तैयार हो जाता है। अनमेल विवाह प्रसाद जी के अपने युग की विषम समस्या थी।

जयशंकर प्रसाद ने 'अजातशत्रु' नाटक में वर्तमान युग के समाज में व्याप्त सवर्ण अवर्ण जैसी घातक समस्या पर भी आक्षेप किया है। सवर्ण अवर्ण के संघर्ष को रानी शक्तिमती और विरुद्धक में मूर्तमान किया है। रानी दासी की पुत्री है, अतः सदैव अपमानित होती है। इस अपमान ने उसके हृदय में विद्रोह की अग्नि भड़का दी है।[१] ब्राह्मण कन्या मागंधी का वेश्यावृत्ति अपनाना सामाजिक ह्रास का सूचक है। प्रसाद जी के प्रायः सभी नाटकों का अन्त प्रसादान्त होता है। राष्ट्रीय विघटन में सहायक शक्तियों की हार और निर्माण शक्ति की विजय होती है। प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों के आधार पर राष्ट्र का सांस्कृतिक पुनर्निर्माण लेखक का उद्देश्य है। हरिकृष्ण प्रेमी के 'शिवा-साधना' नाटक में शिवाजी द्वारा स्पष्ट किया है कि वर्ण और जातिभेद स्वराज्य, सुख और शान्ति में बाधक हैं।[२] लेखक के मतानुसार साम्प्रदायिकता का मूल कारण तराजू हाथ में लेकर आने वाले विदेशी शासक थे। 'प्रेमी' जी मुसलमानों को भारत की सम्पत्ति मानते थे, और उन्हें पूरा विश्वास था कि 'मुसलमान भारत को ही अपनी जन्मभूमि मान कर एक राष्ट्रीयता के सूत्र में गुंथ जावेंगे' लेकिन साथ ही आशंका भी थी कि ये विदेशी जातियां इन दोनों महान् संस्कृतियों को कभी मिलकर एक न होने देंगी।[३]

सामाजिक समस्याओं को लेकर लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्या नाटकों को जन्म दिया। प्रसाद की भांति अतीत-गौरव-गान गाना इनकी प्रतिभा को, अपने युग तथा जनता की दृष्टि से न्याय्य नहीं लगा। डा० देवराज उपाध्याय ने मिश्र जी की नाट्यकला के सम्बन्ध में लिखा है—'प्रसाद जी चाहते हुए भी आधुनिक समस्याओं के साथ न्याय नहीं कर सके। उनकी प्रतिभा प्रेरणा के लिये सदा अतीत का मुंह जोहती रही, जिससे वे पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो सके। पर मिश्रजी हिन्दी के प्रथम नाटककार हैं जो देह झाड़ कर नवीनता के रंगमंच पर आ गये और उसी का जयोच्चार करने लगे।'[४] 'संन्यासी' (सं० १९८८) नाटक में मिश्रजी ने सह शिक्षा की समस्या को लिया है, 'सिंदूर की होली' (सं० १९९१) में आधुनिक मनुष्य की धनलिप्सा के कारण उत्पन्न जघन्य-वृत्ति का वर्णन किया है। भारतीय समाज में एक ओर भारतीय संस्कार, सामाजिक आचार-विचार थे और दूसरी ओर पश्चिमी

१. जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ५६, ५७
२. हरिकृष्ण प्रेमी : शिव-साधना : पृ० १७
३. वही : पृ० १६१
४. डा० नगेन्द्र—सम्पादक : सेठ गोविन्ददास अभिनन्द ग्रन्थ

शिक्षा से उत्पन्न संस्कार, विचार आदि। इन दोनों का संघर्ष तथा उससे उत्पन्न अनेक समस्याएं भारतीय शिक्षित जीवन को त्रस्त कर रही थीं। इनका चित्रण ही मिश्र जी का लक्ष्य है। यह समस्याएं सम्पूर्ण राष्ट्र से सम्बन्धित नहीं थीं, केवल एक वर्ग विशेष से ही इनका सम्बन्ध था। अतः राष्ट्रवाद के अभावात्मक-पक्ष-निरूपण की दृष्टि से इन नाटकों का अधिक महत्व नहीं है।

इसी समय सामाजिक समस्याओं को लेकर भुवनेश्वर प्रसाद ने कुछ एकांकी नाटक भी लिखे जो इनकी पुस्तक 'कारवां' में संग्रहीत हैं। 'प्रतिभा का विवाह' (१९३२ ई०) में उन्होंने प्रेम और विवाह का रूप स्पष्ट किया है। आज के समाज में शिक्षित स्त्रियाँ प्रतिष्ठा चाहती हैं, मातृत्व नहीं', श्यामा, एक वैवाहिक विडम्बना' (१९३२ ई०) में अनमेल विवाह की समस्या है। इसके एकांकी नाटकों में पश्चिमी सभ्यता संस्कृति से प्रभावित शिक्षित उच्चवर्ग की समस्याओं को ही लिया गया है। राष्ट्र के विभिन्न सामाजिक वर्गों की समस्याओं का विवेचन इस युग के एकांकी नाटकों में नहीं मिलता।

साम्प्रदायिकता

हिन्दी नाट्य साहित्य में साम्प्रदायिता का वर्णन भी प्रच्छन्न रूप में हुआ है। हिन्दू काल से सम्बन्धित ऐतिहासिक नाटकों में यवनों को विदेशी शक्ति के रूप में लिया गया है क्योंकि तब तक वे इस देश में बस कर इसका अंग नहीं बन पाए थे। मुस्लिम काल से संबन्धित ऐतिहासिक नाटकों में हिन्दुओं और मुसलमानों को धर्म के आधार पर अलग रखा है। दोनों जातियों के बीच धार्मिक कट्टरता, विद्वेष, प्रतिहिंसा की ध्वनि की स्पष्ट अभिव्यंजित है। बदरीनाथ भट्ट का 'दुर्गावती' नाटक, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक, बाबू लक्ष्मीनारायण का 'महाराणा प्रताप का देशोद्धार' नाटक इसके निदर्शन हैं।

'दुर्गावती' नाटक में वीर रानी दुर्गावती के उज्ज्वल चरित्र के सम्मुख अकबर अथवा अन्य मुसलमान चरित्रों का अंकन अधिक कालिमा से युक्त दिखाया गया है इसी प्रकार 'प्रताप-प्रतिज्ञा, अथवा 'महाराणा प्रताप का देशोद्धार' नाटक में महाराणा प्रताप के चरित्र की विशेषताओं के प्रदर्शन में ही नाट्यकार ने अपनी समस्त शक्ति लगा दी है जिनके सम्मुख मुसलमान पात्र अथवा शासकों की आत्मीयता नहीं पा सकते। 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक में प्रच्छन्न रूप में अकबर अंग्रेजी साम्राज्यवाद का प्रतीक है। शक्तिसिंह उस जन विशेष का प्रतीक है जो स्वार्थ एवं प्रतिशोध भावना से भर कर विदेशी सहायता के बल पर राष्ट्र भक्त प्रताप के विरोधी बन राष्ट्रीयता की जड़ काट रहे थे। मानसिंह 'भारत को गुलामी की जंजीरों से जकड़ने विदेशियों की जूठन खाने वाले'[1] देशद्रोही हैं। यदि इस नाटक को प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया मानें तो यह अपने युग की राजनीतिक परिस्थितियों की ओर संकेत करता

१. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : प्रताप-प्रतिज्ञा : पृ० २७

हुआ साम्प्रदायिकता से मुक्त सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय नाटक कहा जायेगा, लेकिन प्रत्यक्ष रूप में इन नाटकों से यही ध्वनित होता है कि यह विदेशी हैं, अन्यायी हैं, वे भारतीयता के अंग नहीं बन सकते। ये नाट्यकार हिन्दू, संस्कृति, हिन्दू धर्म और हिन्दू वीर चरित्र के प्रति ही श्रद्धान्वित हैं। ये 'साम्प्रदायिकता के विषाक्त रूप को दिखाकर उसके निराकरण का प्रयास नहीं करते, वरन् इनसे साम्प्रदायिकता की भावना बढ़ती ही है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने हिन्दू-मुस्लिम-सांस्कृतिक एकता का प्रयास किया है। और राष्ट्रवाद के विकास को दृष्टि में रखकर साम्प्रदायितता के घातक प्रभाव को दिखाया है। 'रक्षा-बन्धन' नाटक में बहादुरशाह मुसलमानों का प्रतीक है। वह प्रतिहिंसावश, बदला लेने के लिए मेवाड़ से युद्ध करना चाहता है। अब मुसलमान विदेशी नहीं थे, वे इसी देश के अंग बन गये थे। बहादुरशाह इस तथ्य से परिचित है, लेकिन केवल विद्वेष की भावना से प्रेरित होकर फिरंगी की सहायता से मेवाड़ को विनष्ट करने के लिए सन्नद्ध होता है। वह जानता है कि फिरंगी से दोस्ती करना अपने गले में फांसी लगाना है।[1] शाह शेख औलिया उसे उसकी भूल के सम्बन्ध में समझाते हुए कहते हैं—

'भूलता है बहादुर ! हिन्दुस्तान में रहने वाला मुसलमान भी हिन्दू है। क्या अपने भाइयों का खून बहाना चाहता है ? जिस शाख पर बैठा है, उसी को काटने पर क्यों आमादा है ?[2]

बहादुरशाह पर इस कथन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह फिरंगियों से सहायता लेकर मेवाड़ पर आक्रमण करता है। आलोच्य काल में भी साम्प्रदायिकता की अग्नि प्रबल होती जा रही थी। यद्यपि चाँद खाँ और हुमायूँ जैसे उदारवृत्ति, महान आत्मा मुसलमान कांग्रेस के साथ राष्ट्रीय उत्थान कार्य में लगे थे, लेकिन बहादुरशाह जैसे संकीर्ण बुद्धि, स्वार्थी एवं प्रतिहिंसा से प्रेरित मुसलमान अंग्रेजी शासकों की सहायता लेकर विद्वेषाग्नि फैलाने में संलग्न थे। देश की सामयिक आवश्यकता को दृष्टि में रखकर 'प्रेमी' जी ने यह नाटक लिखा है।

'दाहर अथवा सिन्ध पतन' में उदयशंकर भट्ट ने वर्ण-भेद, प्रान्त-भेद आदि के दुष्परिणामों को दिखाया है। साम्प्रदायिकता अथवा प्रान्तीयता की जो संकीर्ण भावना देश की राष्ट्रीय भावना को आघात पहुँचा रही थी, उसका प्रत्यक्ष चित्र नहीं मिलता।

कथा-साहित्य में दुर्दशा के अनेक रूपों का चित्रण

कथा-साहित्य मानव जीवन के अधिक निकट है, क्योंकि इसमें मानव-जीवन के विभिन्न अंगों अथवा क्षेत्रों के यथातथ्य चित्रण का सुयोग रहता है। काव्य की अपेक्षा उपन्यास तथा कहानियों में समाज और जीवन की विशद व्याख्या सम्भव

१. हरिकृष्ण 'प्रेमी' : रक्षा बन्धन : पृ० २५
२. वही : पृ० २७

होती है। अतः हिन्दी उपन्यास एवं कहानियों में युगीन देश दुर्दशा के सभी पक्षों चित्रण विशद् रूप में मिलता है।

आध्यात्मिक तथा नैतिक पतन का वर्णन

भारत के आध्यात्मिक-नैतिक-पतन का वर्णन उपन्यास तथा कहानियों में सबसे अधिक किया गया है। भारतीय समाज के पतन के इस रूप का विशद् चित्रण प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', विनोदशंकर व्यास, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, कमला चौधरी, जयशंकर प्रसाद आदि के उपन्यास तथा कहानियों में मिलता है। इनमें भारतीय जीवन की विषमताओं का यथार्थ चित्रण किया गया है।

भारतीयों के चारित्रिक पतन ने दुर्व्यसनों का आश्रय लिया था। वेश्यावृत्ति इसका प्रमुख साधन था। वेश्यावृत्ति ने कुष्ठरोग की भांति भारतीय समाज को विकलांग कर दिया था। इस अमानवीय, कुत्सित, घृणित वृत्ति के कारण देश के आध्यात्मिक नैतिक उच्चादर्शों को गहरा आघात पहुंचा था। नारी को अपनी विलासिता-पूर्ति का साधन बनाने के लिए पुरुष वर्ग ने वेश्यावृत्ति जैसी घृणित एवं गर्हित वृत्ति को प्रश्रय दिया था। प्रेमचन्द जी के सेवासदन उपन्यास की प्रमुख समस्या वेश्यावृत्ति है, जिसके मूल में दहेजप्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियां एवं झूठी प्रतिष्ठा कार्य करती लक्षित होती है।[1] समाज के प्रतिष्ठित कहलाने वाले व्यक्तियों द्वारा वेश्याओं का आदर सम्मान तथा धार्मिक स्थानों पर उसका महत्व देखकर इस उपन्यास की महत्वाकांक्षिणी, किन्तु परिस्थितियों से विवश नायिका सुमन पर प्रतिक्रिया होती है। समाज के आध्यात्मिक नैतिक पतन के कारण वेश्यावृत्ति जैसी घृणित कुप्रथा ने नगर के सार्वजनिक स्थानों को अपना कार्यक्षेत्र बना लिया था। सम्मान्य, प्रतिष्ठित, शक्ति-सम्पन्न एवं धनिक वर्ग अपनी वासना पूर्ति की साधन इस वृत्ति को मिटाने की अपेक्षा इसे प्रश्रय दे रहा था। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', के 'अप्सरा' उपन्यास में अंग्रेज अफसरों, भारतीय राजाओं एवं रईसों तथा भारतीय नौकरशाही के नैतिक पतन पर प्रकाश डाला गया है।[2] भारत के धनिक वर्ग का पतन अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था।[3]

प्रेमचंद जी की 'रामलीला', जयशंकर प्रसाद की 'चूड़ीवाली', सुदर्शन की 'घोर-पाप', विनोदशंकर व्यास की 'पतित', प्रत्यावर्त्तन', 'सुख' कहानियां वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित आध्यात्मिक नैतिक पतन पर प्रकाश डालती हैं। 'रामलीला'[4] कहानी में प्रेमचन्द जी ने हिन्दू समाज के कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों के मानसिक पतन का

---

१. प्रेमचंद : सेवासदन : पृ० ६७
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अप्सरा : पृ० १०, ३९, १२७
३. वही, पृ० १५६
४. प्रेमचन्द की सर्व श्रेष्ठ कहानियां : पृ० ५९

चित्रण किया है जो रामलीला जैसे धार्मिक पर्व पर भी यशप्राप्ति, स्वार्थ-साधन तथा वासनापूर्ति करने में संकुचित नहीं होते। धर्म के नाम पर ईश्वर की आरती में एक रुपया डालना लोगों को इष्ट न था किन्तु वेश्याओं के हावभाव पर मुग्ध होकर वे अशर्फियां दे डालते थे। राम, लक्ष्मण और सीता का स्वांग करने वाले गरीब बालकों को राह खर्च भी नहीं दिया गया। जयशंकर प्रसाद ने वेश्यावृत्ति का समस्त दोष सामाजिक रूढ़िवादिता को दिया है। उनके अनुसार वेश्या के पास भी हृदय होता है और वह भी कुलवधू बनना चाहती है।[1] सुदर्शन की 'घोर-पाप'[2] नामक कहानी में भी वेश्यावृत्ति का मूल कारण धनिक वर्ग की नैतिक भ्रष्टता मानी गई है। मेहताबराय जैसे सम्मानित तथा समाज में आचरण के लिए प्रसिद्ध व्यक्ति छिप कर वेश्याराधन करते हैं लेकिन प्रत्यक्ष रूप में उसके प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं। विनोद-शंकर व्यास की 'पतित' कहानी में दिवाकर जैसे पतित एवं वासना की साधना करने वाले व्यक्तियों के कारण रागिनी जैसी सद्‌विचार और एकनिष्ठ प्रेम में पगी नारियाँ वेश्यावृत्ति अपनाने को बाध्य होती हैं। सामाजिक कट्टरता इसका कारण है।[3] 'प्रत्या-वर्तन' कहानी में व्यास जी ने युग की परिवर्तित स्थिति में, वेश्यावृत्ति के कारण पति द्वारा उपेक्षित नारी की नैतिकता को भी असंरक्षित दिखाया है।[4] 'सुख' कहानी में समाज के उच्चवर्ग का नैतिक पतन आर्थिक विपन्नता की स्थिति तक ले जाता है। धन सुख का मूल न होकर विलास का साधन है। अतः दूसरे के सहारे मनुष्योचित जीवन व्यतीत करने में ही सुख है।[5]

विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक के 'मां' उपन्यास में श्यामनाथ का चरित्र, नैतिक पतन का दृष्टान्त है। वेश्याओं के यहां मनोरंजन करना उसके जीवन का लक्ष्य था। 'कौशिक जी' ने आदर्शवाद तथा देश के चारित्रिक उत्थान की भावना से प्रेरित होकर यह उपन्यास लिखा है और ह्रासोन्मुख जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।

प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा तथा सुदर्शन को एक ही परम्परा का कथा लेखक कहा जा सकता है। समाज सुधार की प्रेरणा से संचालित होकर उन्होंने वेश्यावृत्ति के कारण सामाजिक पतन के चित्र खींचे। जयशंकर प्रसाद में भावना की प्रधानता है। निराला ने नैतिक पतन पर अवश्य प्रकाश डाला है किन्तु उनकी कहानियों का मूलाधार मानव हृदय की अन्यतम कोमल प्रवृत्ति, प्रेम है। इनकी कहानियों में दार्शनिकता की मात्रा अधिक होने के कारण चारित्रिक पतन सीमारेखा तक पहुंच

१. जयशंकरप्रसाद : आकाश-दीप : पृ० ११३
२. सुदर्शन : तीर्थ यात्रा : पृ० ३
३. विनोदशंकर व्यास : अस्सी कहानियां : पृ० १९२
४. वही, पृ० २१९
५. वही, पृ० ३६६

कर ठहर जाता है और कथा का अन्त संसार से निवृत्ति में होता है। इनके मतानुसार इन्द्रिय सुख भोग की लालसा भारत की आध्यात्मिक नैतिक दुर्दशा का कारण है।

इन्द्रिय-सुख-भोग की प्रबल इच्छा ने केवल व्यक्तिगत जीवन को ही विनष्ट नहीं किया था वरन् सार्वजनिक क्षेत्रों, धर्मस्थानों को भी विषाक्त बना दिया था। धर्म का सत्य स्वरूप भूल कर लोग बाह्याडम्बर, कर्मकांड को ही धर्म समझने लगे थे। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' उपन्यास में वेश्या द्वारा मन्दिर में संगीत, प्रसाद, जी के 'कंकाल' तथा 'तितली' में तीर्थस्थान और धर्म के अड्डों पर व्यभिचार आदि का पर्दाफाश किया गया है। पुरातनता की रूढ़िवादिता के विरुद्ध प्रसाद जी का विरोधी स्वर अधिक प्रखर है। 'प्रयाग, काशी, हरिद्वार, मथुरा तथा वृन्दावन जैसे पवित्र तथा पुण्य स्थानों का जीवन उपन्यास में अंकित है, जहां जारज सन्तानों का अभाव नहीं है और जिनको लेकर लेखक ने रूढ़िगत सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं पर कठोर प्रहार किया है और व्यक्तिवादी चिन्तन तथा व्यवहार को महत्व दिया है।'[1] पुरुष समाज में नैतिक आचरण को नहीं, सम्पत्ति को आदर दिया जाता था। प्रसाद के 'कंकाल' उपन्यास में श्री चन्द्र व मंगलदेव, प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में ज्ञानशंकर वैयक्तिक दृष्टि से पतित होने पर भी सामाजिक दृष्टि से आदरणीय हैं।

भारतीय समाज के आध्यात्मिक नैतिक पतन का प्रमुख कारण था, विदेशी शासन व्यवस्था। जो शासन ही अन्याय, अधर्म, अत्याचार पर आधारित था, उसकी प्रजा से न्याय, धर्म, आचार, नीति की आशा कैसे की जा सकती थी। पूंजीवादी व्यवस्था और शासकों की आचरण भ्रष्टता का ही परिणाम था कि ताल्लुकेदार, ज़मींदार, सेठ आदि धनिकवर्ग के चारित्रिक पतन की सीमा नहीं रह गई थी। उनकी नैतिक-अनैतिक, उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय की विवेक बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के 'अलका' उपन्यास में समाज के उच्च एवं धनिक वर्ग के ताल्लुकेदार के नैतिक पतन का वर्णन किया गया है। अंग्रेजी शासन काल में यह वर्ग सरकारी उपाधि प्राप्ति के लिये अनैतिक एवं घृणित कर्म करने से भी नहीं चूकता था। इस उपन्यास का मुरलीधर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसके पितामह ने सम्पत्ति प्राप्त की, पिता ने प्रतिष्ठा, अब उसके लिए कोई दुरूह दुर्ग विजय के लिए नहीं रह गया था,[2] अतः प्रतिष्ठा के लिए खिताब पाने का जो अचूक मन्त्र उनके सेक्रेटरी बाबू मोहनलाल ने दिया, उससे देश की दुर्दशा की भयंकरता पर प्रकाश पड़ता है—

'पहले छुरी, चम्मच, कांटा पकड़ा कर साहबी ठाट से भोजन करना सिखलाया। फिर धीरे-धीरे स्वास्थ्य के नाम पर शराब का नुस्खा रखा। फिर छिप-छिपाकर सरकारी अफसरों के साथ भोजन करने को प्रोत्साहन। फिर बगीचे की कोठी

१. डा० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास : पृ० ९४
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अलका : पृ० २२

में बाकायदा पंच मकार-साधन और देशी विलायती सरकारी अफसरों को क्रम-क्रम से निमंत्रण। एक साल के अन्दर लखनऊ, इलाहाबाद, और कानपुर आदि की खूबसूरत से खूबसूरत वेश्यायें आकर, नाच कर, गाकर सरकारी अधिकारियों को खुश कर-कर चली गई। दूसरे साल सम्राट् के जन्मदिन के उपलक्ष में स्टेट्समैन, पायनीयर, लीडर आदि में देखा तो उन्हें पदवी नहीं मिली।'[1] मुरलीधर की आत्मा का पतन वेश्याओं तक सीमित न रहा, उनके इस लोभ की अग्नि में शहर के सद्गृहस्थ तथा ग्राम की निर्दोष रूपसियों का सतीत्व होम किया जाने लगा।

'देहात की सुन्दरी विधवायें, भ्रष्ट की हुई अविवाहिता युवतियां एकमात्र माता जिनकी अभिभाविका थीं, और अपना खर्च नहीं चला सकती थीं, और इस तरह के लब्ध अर्थ से लड़कों का धोखे से व्याह कर देना चाहती थीं, लगान के छूट, माफी आदि पाने की गरज से, कुट्टनियों के वहकावे में आकर चली जाती थीं या भेज दी जाती थीं। लौट आने पर किसी रिश्तेदारी की जगह जाने वाले कारण गढ़ लिए जाते थे। ज़मींदार के लोग स्वयं सहायक रहते थे, कोई डर वाली वात न होने पाती थी। विश्वासी जिलेदार इस तरह के मामलों में सूराख लगाने वाले, सौदा तय करने वाले थे।'[2] सरकारी कर्मचारी इसमें सहायक थे। शोभा जैसी साधारण स्त्री को 'मर्जी के खिलाफ' लाने का पूरा षड्यन्त्र रचा जाता था। विदेशी शासन की सहायता द्वारा राष्ट्रीय जीवन का पतन अत्यन्त विनाशकारी था। प्रेमचन्द जी ने भी सेवासदन उपन्यास में इस ओर इंगित किया है कि अंग्रेजी शिक्षा ने लोगों को इतना उदार बना दिया था कि वेश्याओं का अब उतना तिरस्कार नहीं होता था।[3] निरालाजी ने समाज के इस पतन का चित्रण अधिक यथार्थ एवं कटु शैली में किया है।

विदेशी शासकों द्वारा प्रचारित पूंजीवादी व्यवस्था के कारण देश का आध्यात्मिक नैतिक पतन बढ़ता जा रहा था, फैक्टरी मिलें आदि इनके अड्डे थे और शराब की दूकानें उत्तेजक तत्व। प्रेमचन्द कृत 'रंगभूमि' उपन्यास में सूरदास फेक्टरी के लिए जमीन नहीं देना चाहता क्योंकि वह जानता है कि उससे गाँव की नैतिकता को आघात पहुंचेगा। श्रीमती कमला चौधरी की कहानी 'श्रमी की अभिलाषा'[4] में श्रमिक वर्ग की बढ़ती हुई धनाभिलाषा मस्ता को अपनी पत्नी का सतीत्व बेच कर धन एकत्र करने के लिए प्रेरित करती है। उच्च वर्ग के सेठ जी तथा निम्न वर्ग के श्रमिक के नैतिक पतन में अन्तर नहीं था। दोनों के बीच नारी की मर्यादा अरक्षित थी।

'मोहनियाँ को जानते देर न लगी—इस हिन्दू समाज के वातावरण में पले

---

२. निराला : अलका : पृ० २६

१. वही, पृ० २४, २५

३. प्रेमचन्द : सेवासदन : पृ० ६७

४. कमला चौधरी : उन्माद : पृ० १२८

हुए पुरुष स्त्रियों के सतीत्व की कैसी रक्षा करना जानते हैं। नीच जाति का गरीब मस्ता ही नहीं, उच्च जाति के सम्पत्तिशाली सभ्य समाज के सेठ जी भी मस्ता से कम नहीं हैं। उनकी आँखें भी स्त्री की इज्जत का मूल्य उतना ही आंकती हैं, जितनी मस्ता की।......'[1]

पूंजीवादी व्यवस्था के कारण वर्ग भेद अथवा असमानता बढ़ती जा रही थी, श्रमिक वर्ग को अथक परिश्रम के पश्चात् भी भरपेट भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता था, अन्य भौतिक साधनों का तो प्रश्न ही नहीं उठता था।'''मजदूर कोई आशा, कोई उम्मीद ही क्यों करे ? उसके हृदय में धनवान बनने की अभिलाषा ही क्यों हो ? और हो भी तो इस घृणित कमाई के सिवा पैसा कमाने का उसके पास दूसरा जरिया ही क्या है ? परिश्रम से तो भरपेट रोटी भी मयस्सर नहीं होती।' मजदूर की आर्थिक विपन्नता, सामाजिक असमानता, तथा शासन व्यवस्था ने उसे कुकर्म की ओर अग्रसर किया था। श्रीमती कमला चौधरी ने देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन के कारण की ओर इंगित करते हुए उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी कर दिया है। इनका नारी के प्रति विशेष सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण है। अमीर और गरीब सभी के हृदय में समान रूप से धन प्राप्ति की लालसा विद्यमान रहती है, जिसकी पूर्ति के लिए वह अनुचित मार्ग अपनाने में भी संकुचित नहीं होता।

आत्मिक-पतन के एक अन्य रूप का वर्णन भी तत्कालीन कथा-साहित्य में मिलता है, जिसका सम्बन्ध देशवासियों के साथ विश्वासघात से है। कतिपय व्यक्ति राष्ट्रीय संग्राम के आवेश में राष्ट्र-भक्त बन गये थे किन्तु अभाव और दरिद्रता न सह सकने के कारण नैतिकता से च्युत हो गए थे। सार्वजनिक कार्य के लिए एकत्रित चन्दे के हिसाब-किताब में गड़बड़ करना, उधार लेकर न देना आदि उनके पतन के द्योतक थे। 'नेता बन कर नाम कमाने और प्रतिष्ठा बढ़ाने की महत्वाकांक्षा ने उन्हें इतना जकड़ रखा था, वह उसके लिए देश सेवा तो क्या अत्यन्त घृणित से घृणित काम करने के लिए सदैव प्रस्तुतः रहते थे।'[2]

हिन्दी-कथा-साहित्य में पुरुष लेखकों के साथ महिला लेखिकाओं ने भी समाज के आध्यात्मिक नैतिक पतन के सुन्दर करुण यथार्थ तथा कटु व्यंगपूर्ण चित्र खींचे हैं। गाँधी जी ने जीवन में नैतिकता पर विशेष बल दिया था क्योंकि भारत देश नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण भूलकर भौतिकतावादी होता जा रहा था।

पराधीनता-जन्य दुर्दशा का चित्रण

कथा साहित्य में पराधीनता के अभिशापवश भारतीय दुर्दशा का चित्रण

---

१. कमला चौधरी : उन्माद : पृ० १३७

२. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ ११०

अधिक स्पष्ट शब्दों तथा यथार्थ में किया गया है। तत्कालीन असह्य राजनीतिक परिस्थितियों, शासक द्वारा भारतीयों पर अत्याचार, शासन सम्बन्धी अव्यवस्था, अन्याय, अनीति आदि के अनेक दृश्य अथवा चित्र उपन्यास तथा कहानियों में मिलते हैं। भारतवासियों को पराधीन बनाने के लिए जिस चातुर्य एवं कौशल का खेल अंग्रेजों ने खेला था उसका वर्णन प्रेमचन्द जी की 'राज्यभक्त' कहानी में मिलता है। अंग्रेजों ने ऐसे षड्यन्त्र रचे, छल तथा कपट किया कि अवध के बादशाह का चारित्रिक पतन हुआ और रियाया के दिल से बादशाह की इज्जत और मुहब्बत उठ गई।[1] भारत अन्याय, अत्याचार, अधर्म, अनीति की भित्ति पर स्थापित साम्राज्यवाद की क्षुधा का ग्रास बन गया।

यह युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओं द्वारा जन जीवन में राष्ट्रीय भावना का संचार हो चुका था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जनता का संगठन विदेशी शासकों की दृष्टि में अक्षम्य था। जलियांवाले बाग की निर्मम घटना उनकी बर्बर दमन-नीति का इतिहास-प्रसिद्ध उदाहरण है। प्रथम महायुद्ध में विश्व के सम्मुख वीरता की धाक बैठा देने वाले वीर पंजाब के युवकों को, जलियांवाले बाग में, पशु से भी गई बीती मृत्यु मिली थी। आचार्य चतुरसेन शास्त्री की 'अभाव' कहानी, तथा सुदर्शन की 'भग्न-हृदय' कहानी में जलियांवाला बाग की घटना के उल्लेख के साथ सरकार द्वारा लगाए मार्शल ला, रौलेट एक्ट और पंजाब निवासियों द्वारा सहन किये अनेक नृशंस, एवं अमानवीय अत्याचारों का वर्णन मिलता है। चतुरसेन शास्त्री की 'अभाव' कहानी में एक विशाल अट्टालिका में एक युवक बैठा सोच रहा है—किस प्रकार प्राणों पर खेल कर अंग्रेजों की सहायता की गई थी, लेकिन अब वे ही सुन्दर युवक जलियांवाला बाग में मुर्दा पड़े हैं, उनकी लाश का भी प्रबन्ध नहीं है। 'ओफ ! हत्यारे डायर ! युवक सिसकियां लेकर रोने लगे—रोते-रोते ही धरती पर लेट गये।'[2] डाक्टर के अभाव में स्त्री मर रही थी, किन्तु मार्शल ला के कारण डाक्टर रोगिणी तक जाने में असमर्थ था। किसी प्रकार डाक्टर साहस कर चला तो गोरे सार्जन्ट की बन्दूक का कुंदा उसकी ओर था। डाक्टर कर्नल मेजर था, किन्तु 'काला आदमी' था, इस कारण उसे कीड़े की भांति रेंग कर रोगिणी के घर जाना पड़ा।[3] लोगों के घर में एक बूंद पानी न था, गली के कुओं पर निर्लज्ज गोरों का पहरा था। डाक्टर को पानी लाने के प्रयत्न में कुन्दों

१. प्रेमचन्द : प्रेम पंचमी : पृ० ६७-६८
२. आचार्य चतुरसेन शास्त्री : अभाव : पृ० ३१
३. वही ' पृ० ३२

की मार से कुचल दिया गया।[1] इस कठोर दमन की अत्यधिक तीव्र प्रतिक्रिया देशवासियों में हुई थी। कथा के अन्त में डाक्टर साहब सरकारी वर्दी तथा विदेशी कपड़ों का परित्याग कर राष्ट्रीयता का गौरव अनुभव करते हैं। विदेशी के प्रति घृणा का स्वर, इस कहानी में अति प्रखर है। सुदर्शन की 'भग्न हृदय' कहानी की कथावस्तु में भी जलियांवाला बाग तथा अंग्रेजी अत्याचार की कुटिल नीति की कटु आलोचना की गई है। लाला छज्जूमल का एकमात्र पुत्र जलियांवाला बाग की घटना में घायल होकर घर आता है, लेकिन 'कर्फ्यू आर्डर' पकड़ धकड़ के डर से किसमें साहस था कि रात्रि को घर से निकलता।[2] प्रातः काल उसके बूढ़े पिता के बाहर निकलते ही अकारण पुलिस ने पकड़ लिया। उनकी अनुपस्थिति में उनका पुत्र डाक्टर के अभाव में मृत्यु को प्राप्त हुआ और प्रसव की पीड़ा न सह सकने के कारण पुत्र वधू ने भी पति का साथ दिया। 'भूल' के कारण पकड़े गये छज्जूमल जब लौट कर घर आए तो देखा कि उनका घर उजड़ चुका था। अंग्रेजी दमन नीति में छज्जूमल जैसे कितने ही निरीह एवं निर्दोष व्यक्तियों का घर उजड़ गया था। राजनीतिक पराधीनता के कारण उद्भूत दुर्दशा का इससे अधिक करुण चित्र सम्भव नहीं है। सुदर्शन जी की कहानी में करुण रस की अबाध धारा प्रवाहित हुई है। अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों को भी पत्थर का बना दिया था, पुलिस के पास अपने भाइयों का दुःख-दर्द सुनने के लिए हृदय नहीं रह गया था। चतुरसेन शास्त्री तथा सुदर्शन, दोनों लेखकों ने तत्कालीन परिस्थितियों तथा अन्याय का यथातथ्य, करुण एवं यथार्थ चित्रण किया है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के 'अलका' उपन्यास की कथा का प्रारम्भ ही भारतीय जीवन की विषम परिस्थितियों के वर्णन से होता है। महासमर का अन्त हुआ और भारत में महाव्याधि फैली। महासमर की जहरीली गैस ने भारत को घर के धुएं की तरह घेर लिया, चारों ओर त्राहि-त्राहि, हाय-हाय मच गई।[3] युक्तप्रान्त में इसका विशेष प्रकोप हुआ और गंगा का पावन जल भी कल्मष से युक्त हो गया। गंगा के दोनों ओर तीन-तीन कोस के घाट पर, एक-एक घाट में जब दो-दो हजार लाशें पहुंच रही थीं, भारत के साठ लाख आदमी मृत्यु को प्राप्त हुए थे, नृशंस विदेशी

---

१. कुएं पर पहुंचने पर ज्यों ही उन्होंने कुएं में बाल्टी छोड़ी त्यों एक गोरे ने लात मार कर कहा—साला ! भाग जाओ।

डाक्टर साहब ने तान के एक घूंसा उसके मुंह पर दे मारा। क्षण भर में २-३ पिशाचों ने बन्दूक के कुन्दों से अकेले डाक्टर को कुचल कर धरती पर डाल दिया।

मरी खाल की हाय : पृ० ३४ : चतुरसेन शास्त्री

४. फौजी लोग नगर में घूम रहे थे, अपनी जान और आन को कौन खतरे में डालता :' सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ६७

५. निराला : अलका : पृ० ९

शासन ने महासमर में प्राप्त विजय का उत्सव मनाने का कठोर आदेश दिया। निराला जी ने तत्कालीन भारतवासियों की राजनीतिक पराधीनता के कारण विवश एवं दयनीय स्थिति का अत्यधिक प्रभावोत्पादक शब्दों में वर्णन किया है— 'इसी समय सरकारी कर्मचारियों ने घोषणा की, सरकार ने जंग फतह की है, आनंद मनाओ; सब लोग अपने-अपने दरवाजों पर दिए जला कर रखें। पति के शोक में सद्यः विधवा, पुत्र के शोक में जीर्ण माता, भाई के दुःख में मुरझाई बहन और पिता के प्रयाण से दुःखी, असहाय बाल-विधवाओं ने दूसरी विपत्ति की शंका कर कांपते हुए शीर्ण हाथों से दिए जला-जला कर द्वार पर रखे, और घरों के भीतर दुःख से उमड़-उमड़ कर रोने लगीं। पुलिस घूम-घूम कर देखने लगी, किसी घर में शांति का चिह्न, रोशनी नहीं।[1]

प्रेमचन्द, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के कथा साहित्य में तत्कालीन दुर्दशा ग्रस्त राजनीतिक परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर प्रायः अपने सभी उपन्यासों तथा अधिकांश कहानियों में ग्राम, नगर एवं देशी रियासतों की प्रजा की असहाय स्थिति, पुलिस एवं अधिकारीगणों के अन्याय, न्यायालयों की निरर्थकता, रिश्वत, डांड, बेगार आदि प्रचलित कुरीतियों का वर्णन किया है, जिनका मूल कारण देशवासियों की पराधीनता था। 'रंगभूमि' इनका राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें असहयोग आन्दोलन (१९२०-१९२१) के समय की राजनीतिक परिस्थितियों, शासक वर्ग की अनीति, अन्याय आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है।[2] न्यायालय सरकार की वणिक नीति के कारण व्यापारालय बन गये थे। वहां न्याय की अपेक्षा धन की प्रतिष्ठा थी। अदालतें दीनों की बलि-वेदी थीं।[3] न्याय और सत्य के नाम पर कोई भी कार्य असम्भव था, लेकिन खुशामद और रिश्वत से सभी कार्य सुलभ थे। 'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने समरकान्त के शब्दों में इसका उद्‌घाटन किया है।[4] प्रेमचन्द जी की 'जेल',

---

१. वही, : पृ० १०

२. 'सरकार यहां न्याय करने नहीं आई है भाई, राज्य करने आई है। न्याय करने से उसे कुछ मिलता है? कोई समय वह था, जब न्याय को राजा की बुनियाद समझा जाता था। अब वह जमाना नहीं है। अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसके लिए तारों का निशाना मारने वाली तोपें हैं। तुम क्या कर सकते हो? दीवानी में मुकदमा दायर करोगे वहां भी सरकार ही के नौकर चाकर न्याय-पद पर बैठे हुए हैं।'

—प्रेमचन्द : रंगभूमि : दूसरा पृ० १६१

३. प्रेमचंद रंगभूमि : पृ० १३०

४. वही, : पृ० २३५

कहानी में मृदुला के शब्दों में अंग्रेजी सरकार के अन्यायपूर्ण आचरण का वर्णन मिलता है। किसानों और गांव वालों के लिए वह कहती है—'अदालत और हाकिमों से तो उन्होंने न्याय की आशा करना ही छोड़ दिया।'[1]

सुदर्शन की भी 'सुभद्रा का उपहार' कहानी में न्यायालयों की निरर्थकता पर प्रकाश डाला गया है। केवल गवाही द्वारा सिद्ध कर असत्य को सत्य और अन्याय को न्याय बना देना न्यायालय का कार्य रह गया था, सच्चा न्याय नहीं होता था।[2] विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'धुन' कहानी में न्यायालयों को गरीब, अज्ञानी किसानों के धन हड़पने का साधन बताया गया है।[3] न्याय बहुत मंहगा था जिससे किसान साधारण मजदूर बन जाता था। न्यायालयों द्वारा सबसे अधिक शोषण ग्राम वासी कृषक वर्ग का हुआ था।' कानून कुमार' नामक संवादात्मक कहानी में प्रेमचन्द जी ने देश के चारित्रिक पतन, स्त्रियों का दशा, भिखमंगों की समस्या, आदि समस्त विकृतियों का एकमात्र आधार विदेशी शासन व्यवस्था में ढूंढा है।[4] 'लाल फीता या मैजिस्ट्रेट का इस्तीफा' कहानी में प्रेमचन्द जी ने विदेशी शासकों की अनीति का स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है। धर्म एवं न्याय का गला घोंट कर ही भारतीय अधिकारी उच्चपद प्राप्त कर सकता था। विदेशी शासन में देश की सच्ची दशा के परिचायक समाचार पत्रों का पढ़ना, दीन किसानों की रक्षा करना जुर्म था। साधु, संन्यासियों पर भी कड़ी दृष्टि रखने का आदेश था। राष्ट्रीय पाठशालाएं खोलने, पंचायत बनाने वाले तथा जनता को मादक वस्तुओं के निषेध के लिए कार्य करने वालों के नाम देशद्रोहियों में लिखे जाते थे। पराधीनता का अभिशाप इतना कठोर था कि वे भी व्यक्ति राजद्रोही थे जो जनता में स्वास्थ्य के नियमों का प्रचार अथवा संघातक बीमारियों से उनकी रक्षा का उपाय करते थे।[5] अतः राष्ट्रीय उन्नति में

---

१. प्रेमचंद : मानसरोवर पृ० १२ : भाग (७)

२. 'यहां न्याय रुपये के तोल बिकता है, जो ज्यादा वकील करे, जो ज्यादा रुपया खर्चे, उसी की जीत है।'

—सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० १११

३. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० ४३

४. 'कानून कुमार—(आप ही आप) देश की दशा कितनी खराब होती चली जाती है। गवर्नमेंट कुछ नहीं करती। बस दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम है।...' राजनैतिक कहानियां और समर-यात्रा : पृ० १७ :

५. प्रेमचन्द : प्रेम चतुर्थी। पृ० ६७-६८

साधक प्रत्येक सामाजिक, धार्मिक अथवा अन्य सेवा-कार्य सम्बन्धी संस्थाओं पर कड़ा नियंत्रण था। जिससे राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने वाले राष्ट्रीय वीरों के जलूसों पर डंडे बरसाये जाते थे। प्रेमचन्द की 'जुलूस' कहानी में पुलिस के अत्याचार का मार्मिक वर्णन मिलता है।[1]

'प्रेस एक्ट' द्वारा समाचार पत्रों की स्वाधीनता छीनने का श्रेय विदेशी शासकों को मिल चुका था किन्तु वह इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए थे। सी. आई. डी. विभाग द्वारा राष्ट्र के हितचिन्तक समाचार पत्रों तथा संपादकों पर कड़ी दृष्टि रखी जाती थी। शासन की जड़ें गहराई से जमाने के लिए आतंक फैलाना ही पर्याप्त नहीं था, कपटनीति का आश्रय भी लिया गया था। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'विश्वास' कहानी में 'स्वराज्य सोपान' नामक दैनिक पत्र का भेद लेने के लिए सी. आई. डी. विभाग की ओर से शुक्लजी की, सहकारी सम्पादक के पद पर नियुक्ति करवाई जाती है।[2] यद्यपि अन्त में वे सम्पादक जी की सच्चाई एवं निश्छलता से प्रभावित होकर राष्ट्रभक्त बन जाते हैं। भारत का यह दुर्भाग्य था कि स्वयं भारतीय अधिकारी गण विदेशी शासन की नौकरशाही में अति कुशाग्रता से कार्य संचालन कर पराधीनता को अधिक कठोर बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। पदोन्नति के लालच में निर्दोष राष्ट्र-सेवकों को फंसाने के लिए जाल रचा जाता था। सम्पादक को जेल भेज देने मात्र में ही शासकों की कूटनीति की इति नहीं थी वरन् समस्त राष्ट्रीय कार्यवाही तथा राष्ट्रीय व्यक्ति का गुप्त रीति से वे पता लगाना चाहते थे।[3] राष्ट्रीयता से पूर्ण लेख लिखने पर सरकार सम्पादक, प्रकाशक मुद्रक पर मुकद्दमा चला कर उन्हें जेल भेज देती थी।[4] वह तो चाहती थी कि किसी प्रकार राष्ट्रीय पत्र बन्द हो जायें।[5] गुष्त विभाग वालों की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में 'निराला' ने 'अलका' उपन्यास में विजय से सुन्दर एवं सत्य निरूपण करवाया है। 'ये गुप्त विभाव वाले बकरे चुन-चुन कर पौदों के सिर काट कर खाते हैं— पत्ते नहीं, नए कोंपल-वाले डंठल। एक बार चर जाने पर फिर पौदा नहीं पनपता, धीरे-धीरे मुरझाता हुआ सूख ही जाता है।'

---

१. 'उधर सवारों के डंडे बड़ी निर्दयता से पड़ रहे थे। लोग हाथों पर डंडों को रोकते थे और अविचलित रूप से खड़े थे!······
—प्रेमचन्द : मान सरोवर : भाग (७) : पृ० ५५

२. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० ६३

३. वही : पृ० ७०

४. वही : पृ० ७३

५. वही : पृ० ७५

शताब्दियों की पराधीनता के कारण देशवासियों में आत्मगौरव अथवा स्वाभिमान की मात्रा रह ही नहीं गई थी। 'हाकिम' उनके लिए भय की वस्तु बन गया था चाहे वह विदेशी था अथवा स्वदेशी।[1]

इसके अतिरिक्त विदेशी शासन ने भारतीयों की मानसिक अवस्था विकृत कर दी थी। देश में ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं था जो झूठा सम्मान तथा खिताब पाने के मोह में राष्ट्रघातक बन गये थे। विनोदशंकर व्यास की 'भाग्य का खेल' कहानी से श्यामदास ऐसे ही व्यक्ति हैं. जिन्होंने 'रायबहादुर' का खिताब पाने के लिए असहयोग के समय सरकार की सहायता की थी।[2]

देशी रियासतों की दशा और भी बुरी थी। रियासतें भी मुकद्दमेबाजी और ऋण में फंसी हुई थीं। प्रेमचन्द की कहानी' बैंक का दिवाला' में बरहल की महारानी द्वारा ऋण लेकर राज्यकार्य चलाने का उल्लेख मिलता है। बड़ी रियासतों में राजनीतिक अत्याचार अधिक बढ़ गया था। उनकी आन्तरिक स्वाधीनता नाममात्र को ही थी, तथा पोलिटिकल एजेन्ट्स और राज्य कर्मचारियों की दुहरी मार प्रजा पर पड़ रही थी। देशी महाराजे सरकार के साथ राष्ट्रीय चेतना के दमन में अधिक कठोरता से कार्य ले रहे थे। प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' उपन्यास में रियासत में हो रहे अत्याचार का विस्तार से वर्णन किया है। यहां तक कि स्त्रियों पर भी अत्याचार होता था।[3]

प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा, सुदर्शन, निराला, चतुरसेन शास्त्री प्रभृति कथा-साहित्यकारों ने 'राष्ट्रहित एवं राष्ट्रीय उत्थान की भावना से प्रेरित होकर सामयिक जीवन से राजनीतिक दुर्दशा सम्बन्धी अनेक तथ्यों का उद्घाटन किया है। देशवासियों को उनकी दुर्दशा के इस प्रमुख रूप से परिचित करा के, उनमें विदेशी शासन की नृशंसता, निर्ममता, अत्याचार, अन्याय, असत्य के प्रति घृणा की भावना को जाग्रत करना उनका विशेष उद्देश्य था। प्रेमचन्द का राजनीतिक दुर्दशा के चित्रण में भी एक विशेष उद्देश्य था। प्रेमचन्द जी राजनीतिक दुर्दशा के चित्रण में भी एक विशेष आशावादिता से प्रेरित होकर अन्त में राष्ट्रीयता, सत्य, धर्म, न्याय की ही विजय दिखाते हैं। इस क्षेत्र में सबसे अधिक संख्या में प्रेमचन्द जी ने ही लेखनी चलाई है। प्रायः सभी उपन्यास एवं कहानीकारों ने निःशंक रूप से यथातथ्य चित्रण किया है, जिसमें अतिरंजिकता नहीं है।

आर्थिक शोषण

हिन्दी-कथा-साहित्य में भी आर्थिक शोषण के विभिन्न रूपों का चित्रण मिलता है। नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीण जनता आर्थिक शोषण से अधिक क्षुब्ध

१. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० ५
२. विनोदशंकर व्यास : अस्सी कहानियाँ : पृ० २६६
३. प्रेमचन्द : रंगभूमि : दूसरा भाग : पृ० ६६

थी। नगर तथा ग्राम दोनों की भिन्न आर्थिक समस्यायें थीं। नागरिक शिक्षित जन के सम्मुख नौकरी की समस्या थी लेकिन ग्रामवासियों का तो सम्पूर्ण जीवन ही विदेशी शासकों की पूंजीवादी व्यवस्था पर आर्जित हो गया था। अन्य हस्त-उद्योग के अभाव में कृषि-कर्म ही भारत के बहुसंख्य ग्रामवासियों की आजीविका का एकमात्र साधन रह गया था। नवीन वैज्ञानिक प्रणाली से अनभिज्ञ, ज़मींदारी व्यवस्था से त्रस्त, महाजनों के ऋणी, अशिक्षित एवं अज्ञानी कृषक को परिवार के लिए भोजन जुटाना भी कठिन था। आर्थिक संकट की विभीषिका से परास्त होकर नगरों में मजदूर बन कर रहने के अतिरिक्त उसके पास अन्य कोई चारा न था। जमींदारी प्रथा के राहु ने उसकी जमीन का अधिकार भी सुरक्षित न रखा था। देश की बढ़ती हुई निर्धनता में राष्ट्रीय हित की उपेक्षा हुई और साम्राज्यवादी स्वार्थ-साधना की भावना प्रबल हुई। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि साहित्यकारों के उपन्यासों एवं कहानियों में ग्रामीण तथा नागरिक जीवन की आर्थिक अवस्था, समस्याओं तथा अर्थाभाव के करुण प्रभावोत्पादक चित्र मिलते हैं। प्रेमचन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि इन्होंने ही सर्वप्रथम देश की पूंजीवादी शोषण प्रवृत्ति को उपन्यास तथा कहानियों में मुखरित किया है।

प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' उपन्यास को कृषक जीवन की विपन्नता का इतिहास कहना चाहिए। अन्य उपन्यास—जैसे कायाकल्प, कर्मभूमि में भी अनेक स्थल इससे सम्बन्धित मिल जाते हैं। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में ज़मींदारी व्यवस्था से उत्पीड़ित ग्रामीण जनता की विवशता और कष्टों का मार्मिक चित्र मिलता है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही सुक्खू, दुखरन, मनोहर आदि की बातचीत में ग्रामीणों की आर्थिक दुर्दशा के कई कारण खुल जाते हैं। हाकिमों द्वारा रिश्वत लेना, गांव वालों का अज्ञान और अशिक्षा, मालगुजारी न दे पाने पर जापा, बेदखली, अखराज आदि दण्ड ग्रामीणों की आर्थिक दुर्दशा के कारण थे।[1] इसके अतिरिक्त खेती में बरक्कत ही नहीं रही' थी।[2] हाकिमों का दौरा क्या था गांव वालों की मौत थी—

'कादिर-हाकिमों का दौरा क्या है, हमारी मौत है। बकरीद में कुर्बानी के लिए जो बकरा पाल रखा था, वह कल लश्कर में पकड़ा गया। रब्बी बूचड़ पांच रुपये नकद देता था, मगर मैंने न दिया था। इस बखत सात से कम का माल न था।

मनोहर—यह लोग बड़ा अन्धेर मचाते हैं। आते हैं इन्तजाम करने, इन्साफ करने; लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते हैं। इससे कहीं अच्छा तो यही था कि दौरे बन्द हो जाते। यही न होता कि मुकदमे वालों को सदर जाना पड़ता। इस

१. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम : पृ० ६
२. वही : पृ० ७

सांसत से तो जान बचती ।'[3]

नगरों में खुलने वाली व्यापारिक संस्थाओं से देश को लाभ के स्थान पर हानि पहुंच रही थी । 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में राय साहब इस सम्बन्ध में कहते हैं—इस-लिए कि सेठ जगतराम और मिस्टर मनचूर जी का विभव देश का विभव नहीं है। आपकी यह कम्पनी धनवानों को और भी धनवान बनायेगी, पर जनता को इससे बहुत लाभ पहुंचने की सम्भावना नहीं। निस्सन्देह आप कई हजार कुलियों को काम में लगा देंगे, पर यह मजूरे अधिकांश किसान ही होंगे और मैं किसानों को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हूं । मैं नहीं चाहता कि वे लोभ के वश अपने बाल-बच्चों को छोड़कर कम्पनी की छावनियों में जाकर रहें और अपना आचरण भ्रष्ट करें । अपने गाँव में उनकी एक विशेष स्थिति होती है । उनमें आत्म-प्रतिष्ठा का भाव जाग्रत रहता है । बिरादरी का भय उन्हें कुमार्ग से बचाता है । कम्पनी की शरण में जाकर वह अपने घर के स्वामी नहीं, दूसरे के गुलाम हो जाते हैं और बिरादरी के बन्धनों से मुक्त होकर नाना प्रकार की बुराइयां करने लगते हैं । कम-से-कम अपने किसानों को इस परीक्षा में नहीं डालना चाहता ।'[1]

प्रेमचन्द जी ने 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में जमीदारी प्रथा का उत्पीड़नकारी प्रभाव दिखाया है और 'गोदान' में महाजनों द्वारा कृषक शोषण । सरकार की ओर से किसानों को ऋण देने की कोई व्यवस्था नहीं थी । ज़मीदारी व्यवस्था, दैवी विपत्तियों और सामाजिक रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास से त्रस्त कृषक के लिए महाजनों से मनमाने सूद पर धन लेने के अतिरिक्त जन्य कोई चारा न था । 'गोदान' का होरी आर्थिक विपन्नता के कारण ऋण लेता है । अशिक्षित होरी का ऋण दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जाता है । उसका अनाज खलिहान में ऋण के ब्याज अदा करने में ही बिक जाता है, बैल बिक जाते हैं और अन्त में वह मजदूर बन पेट की समस्या को हल करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है । मृत्यु के समय भी उसकी आर्थिक समस्या विकराल रूप धारण कर खड़ी हो जाती है । घर की समस्त संचित पूंजी—बीस आने पैसे—भारतीय कृषक वर्ग की आर्थिक दुर्व्यवस्था की सूचना देते हुए 'गोदान' के लिए अर्पित हो जाते हैं ।[2] अर्थाभाव ने होरी की विवेक-बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी, उसमें नैतिकता की अनैतिकता भावना का अभाव हो गया था, तभी तो वह अपनी छोटी पुत्री का विवाह, धन के लालच में, वृद्ध के साथ कर देता है ।[3] प्रेमचन्द जी के अन्य उपन्यासों 'कायाकल्प', कर्मभूमि' आदि में भी कृषकों के यथार्थ जीवन के चित्र मिलते हैं । 'कायाकल्प', में लेखक ने भारतीय नरेशों के अधीन निम्न वर्ग की जनता की दुर्व्यवस्था पर प्रकाश डाला है । 'छाती फाड़ कर काम' करने वाले मजदूरों

१. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम : पृ० ४९
२. वही : पृ० ७९-८०
३. प्रेमचन्द : गोदान : पृ० ३६५
४. वही, पृ० ३५६

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'निरुपमा' उपन्यास में कृषकों की आर्थिक दुर्दशा की झलक दिखाई है। 'निराला' जी ने भी इस उपन्यास में यह स्पष्ट कर दिया है कि जमींदार तो विदेशी सरकार के दलाल मात्र थे जो अपने कारिन्दों के साथ मिलकर कमीशन खाते थे। तत्कालीन शासन-व्यवस्था इतनी दोषपूर्ण थी कि रिश्वत, बेगार, डांड आदि उसके आवश्यक अंग थे। निराला जी ने 'अलका' में आर्थिक दुर्व्यवस्था को नैतिक चारित्रिक पतन का कारण दिखाया है। महादेव केवल धन प्राप्ति के लिए ग्राम की कुलीन सुन्दरी, विवाहिता शोभा की असहाय अवस्था से लाभ उठाना चाहता है। अनीति का मार्ग अपनाते हुए उसकी अन्तरात्मा धिक्कारती है, किन्तु धन की आवश्यकता उसकी सद्वृत्ति को कुंठित कर देती है। वह सोचता है—'पर उसे तरक्की करनी है, दुनिया इसी तरह उत्थान के चरम सोपान पर पहुंची है, वह गरीब है, इसीलिये अमीरों के तलुवे चाटता है, उसके भी बच्चे हैं, उन्हें भी आदमी बनना है, लड़कियों की शादी में तीन-तीन,चार-चार और पांच-पांच हजार का सवाल हल करना है, इतना धर्म का रास्ता देखने पर यह संसार की मंजिल वह कैसे तय करेगा।'[१]

बाबू राधिकारमण प्रसाद सिंह के उपन्यास 'पुरुष और नारी' में १९२०ई० से ३७ ई० तक भारत के राष्ट्रीय जीवन की गतिविधि का निरूपण किया गया है। उन्होंने भारत की आर्थिक दुर्दशा का कारण विदेशी सरकार की नौकरशाही की दोहन नीति में खोजा है—'नौकरशाही की दोहन-नीति भारत की सारी शक्ति को तिलचट्टे की तरह चाट रही है। आज तो देश, त्रिदोष में गिरफ्त है—गुलामी, गरीबी, बेकारी —।[२] शासक वर्ग की शान शौकत भारतवासियों की गरीबी पर पल रही थी।[३] लेखक ने देहात की तबाही का वर्णन किया है—'स्टेशन से दाई ओर, रेलवे-लाइन की बगल में, तमाम खेत हैं। धान कट चुका है। मगर उन उजाड़ ठूंठियों-भरे खेतों में औरतों और बच्चों का हुजूम है। चिथड़े लपेटे बच्चे और औरतें, हाथों में सूप और झाड लिये, एकाध कटे छटे बिखरे धान की बाल की तलाश में, सूखी जमीन बुहार रहे हैं। आपस में छीना-झपटी का बाजार भी गर्म है। दो दाने धान के लिए बच्चे चीखते हैं औरतें एक दूसरे का सर नोंचती हैं।[४] लेखक को भारत की आर्थिक दुर्दशा की इस विभीषिका में देशवासियों की निष्क्रिय जड़ता खल जाती है—भारत की यह गरीबी, नौकरशाही की यह दोहन-नीति, पैसे वालों की यह संगदिली, आंखफोड़ों की यह खुदगर्जी। फिर भी लोग आराम से राम का नाम लेते हैं, सत्तू चाटकर सुबह से शाम करते हैं। यह जहालत है कि नावदान में रेंगते हैं और स्थिति का पता नहीं। यह जड़ता है कि छूंछा भात और लात खाकर भी दांत नहीं किटकिटाते। जो अमीर हैं, उसे आराम की तलाश है, जो गरीब हैं उसे राम की तलाश है। और देश गुलाम है तो रहे—हमारी रोटी दाल का इन्तजाम दुरुस्त रहे।[६] गरीबों को श्रम का मूल्य नहीं मिलता था।[७] कैसी असहाय स्थिति थी। अर्थाभाव के बीच देश का नैतिक पतन

१. प्रेमचंद : कायाकल्प : पृ० १०६ : नवां संस्करण : नवम्बर १९५३
२. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अलका : पृ० १३
३. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ६
४. वही : पृ० ११
५. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ५७
६. वही : पृ० ५८ ७. वही : पृ० ५६

भयंकर था। राधिकारमण प्रसाद सिंह ने सम्पूर्ण राष्ट्र के आर्थिक संकट को राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा है।

प्रेमचन्द जी की 'कफन', 'अलगोझा', 'सवा सेर गेहूं', 'ईदगाह' आदि प्रसिद्ध कहानियों में हिन्दुओं और मुसलमानों, नगर और समाज की आर्थिक कठिनाइयों का दिग्दर्शन है। 'सवा सेर गेहूं'[1] कहानी में लेखक ने शंकर नामक कुरमी किसान को, साधू के आतिथ्य सत्कार के लिये गये सवा सेर गेहूं का ऋण न चुकाने के परिणामस्वरूप आजीवन विप्र महाजन की दासता करते दिखाया है। अन्नदाता कृषक धर्मभीरुता, अज्ञानता, अशिक्षा के कारण कृषक से सेवक बन जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् दासता का बोझ उसके पुत्र को ढोना पड़ता है। ब्राह्मण वर्ग भी धन के लोभ में कर्त्तव्य च्युत होकर 'महाराज' से 'महाजन' बन गया था।[2]

प्रेमचन्द के सदृश विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने भी 'बेदखली',[3] 'धुन'[4] आदि कहानियों में भारतीय कृषक वर्ग की आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण किया है। भारतीय कृषक, जमींदारी व्यवस्था में जमीदार, साहूकार और उनके कारिंदों की शोषण नीति तथा मुकदमेबाजियों में पिस रहा था। 'कौशिक जी' की 'अपराधी' कहानी में सरकारी अफसरों और कर्मचारियों की शोषण प्रवृत्ति का व्यंग्यात्मक चित्र मिलता है।—'उधर जिस गांव में डिप्टी साहब पहुंचे हैं उस गांव की दशा क्या कही जाय, वे यही समझते हैं कि यमदूत आ गये। वे सोचते हैं कि जो कुछ बाल बच्चों के खाने के लिए रखा है, डिप्टी साहब की नजर कर देंगे, हम समझ लेंगे अकाल पड़ गया।'[5] सूखी रोटी खाने पर भी लगान का बोझ और बेदखली का भय कृषक को आक्रान्त किये रहता था, 'बेदखली' कहानी इसका उदाहरण है। अर्थलोभ के कारण जमींदार अति नीच प्रवृत्ति के हो गये थे—''आजकल के जमीदार तो चमार हैं। विष्ठा में पड़ा हुआ पैसा उठा लें।'[6] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'श्यामा' कहानी में शोषित कृषक की दयनीय आर्थिक स्थिति का मार्मिक वर्णन किया है—'महाराज' आठ रुपये बीघे के हिसाब से जमीदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिये थे। मैंने कई साल तक खेतों को खूब बनाया, खाद छोड़ी, जब खेत कुछ देते लगे, तब परसाल इन्होंने बेदखल कर दिया, पहले इजाफा लगान बीघा पीछे पांच रुपये मांगते थे। अपने पास इतना दम न था। खेत छोड़ दिये। पर किसान जाय कहाँ, क्या खाय ? फिर उन्हीं जमीदार दयाराम महाराज के पैरों नाक रगड़नी पड़ी। उन्होंने पाँच रुपये बीघे पर ढाई बीघे का एक खेत दिया। खेत बिल्कुल ऊसर है। मैं जानता था। पर लेना पड़ा। खेती न करें, तो महाजन उधार नहीं देता। भूखों मरा नहीं जाता। खेती में साढ़े बारह का पूरोपूर डांड पड़ गया। कुछ न हुआ। एक बैल था, साझे में जोत लेते थे, वह भी मरा, इधर श्यामा की अम्मा थी, वह भी भगवान के यहाँ गई। परमात्मा ने

---

१. प्रेमचंद : मानसरोवर : भाग ४ : पृ० १८९
२. प्रेमचंद : मानसरोवर : भाग ४ : पृ० १९६
३. बिश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० १३२
४. वही : पृ० ४३
५. वही : पृ० १२४
६. वही : पृ० १४८

सब तरफ से बैठा दिया। अफसोस-अफसोस मुझको भी दमा हो गया है। काम होता नहीं। उस किस्त किसी तरह पांच रुपया चुकाया था। अब के कुछ भी डौल नहीं। बरखा आ गई। छप्पर वैसा ही रखा है। कहां से पैसे आवें, जो छा जाय। मिहनत मिजुरी का बल नहीं है। श्याम दूसरे की पिसौनी करती है, तब दो रोटी तीसरे पहर तक मिलती हैं।'[१]

उस समय अधिकांश भारतीय कृषकों की यही स्थिति थी, जिसने राष्ट्र की प्रगति को अवरुद्ध कर दिया था। रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'कहीं धूप कहीं छाया'[२] कहानी में जमीदार द्वारा आसामियों पर किये जाने वाले नृशंस व्यवहार, बेगार आदि का अत्यन्त करुण शब्दों में वर्णन किया है जिसे पढ़कर पाठकों का हृदय द्रवित हो जाता है।

जयशंकर प्रसाद की कहानियों में भी भारतीय जीवन के अन्य वर्गों की निर्धनता, उसके कारण उत्पन्न विषमता का सजीव एवं भावात्मक चित्रण मिलता है। आर्थिक विपन्नता समाज के लिए अभिशाप बन गई थीं। 'छोटा जादूगर' कहानी में बालक को आवश्यकता ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया[3] था। मां की दवा दारु और अपने पेट भरने के लिये छोटा सा बालक अत्यन्त चतुर हो गया था। 'अनबोला'[४] में मछली बेचने वाली जग्गैया की मां की करुण मृत्यु की कहानी में भारत की आर्थिक दुर्दशा की झांकी दिखाई देती है। 'भिखारिन' में भोली भिखारिन ने देश के सम्पन्न वर्ग पर कठोर व्यंग्य कसा है—'दो दिन माँगने पर भी तुम लोगों से एक पैसा तो देते नहीं बना, फिर गाली क्यों देते हो बाबू ? ब्याह करके निभाना तो बड़ी दूर की बात है।'[५] युवती नारी भीख माँगे इससे अधिक किसी देश के लिये लज्जा की क्या बात हो सकती है। निर्धनता ने नारी को रूप बेचने के लिए बाध्य किया था। 'पाप की पराजय'[६] कहानी में इसका उल्लेख मिलता है। दरिद्र कन्या से विवाह समाज में असम्मानित समझा जाता था।[७] 'करुणा की विजय' कहानी में प्रसाद जी ने देश की दरिद्रता के क्रूर अट्टहास की ओर संकेत किया है। देश दरिद्र हो गया था, खोखला हो गया था, इसी कारण अभागिन बुढ़िया, अभागे देश में जन्म ग्रहण करने का फल भोगती है।[८] इस निर्धनता, विवशता अवशता में भी कहीं कहीं आत्मसम्मान बचा रह गया था।[९] प्रसाद जी ने देश की आर्थिक दुर्दशा के भावात्मक चित्र खींचते हुए उसके

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : लिली : पृ० ६५
२. बेनीपुरी ग्रन्थावली : भाग १ : चिता के फूल : पृ० १३
३. जयशंकर प्रसाद : इन्द्रजाल : पृ० २८
४. वही : इन्द्रजाल : पृ० १०७
५. जयशंकर प्रसाद : आकाश-दीप : पृ० ६३
६. वही : प्रतिध्वनि : पृ० २७
७. वही : पृ० ७२
८. वही : पृ० १५
९. वही : पृ० १५

भीषण परिणाम की ओर संकेत किया है।

सुभद्रा कुमारी चौहान की संस्मरणात्मक कहानियों में आर्थिक विपन्नता की 'सीधे सादे चित्र' मिलते हैं। 'राही' कहानी में सुभद्रा जी ने समस्त प्रकार के अपराध का मूल कारण पेट की भूख में ढूँढा है। मजदूरी जब नहीं मिली तो चोरी के अतिरिक्त जीविकोपार्जन का और साधन ही क्या था।[१] रामवृक्ष बेनीपुरी की 'वह चोर था' कहानी में भी चोरी का प्रमुख कारण निर्धनता, विवशता, असहाय स्थिति में ढूँढा गया है—'सड़ा मुर्दा-चोरी का पेशा। सड़ा मुर्दा—बदबू, उकबाई। कलेजा मुंह को आता। लेकिन, दूसरा चारा क्या था? या अथाह सागर में डुबो, या इस सड़े मुर्दे को पकड़ो। अकेले रहता तो लालू यह पेशा कभी न करता—मर जाना पसन्द करता। किन्तु ये बच्चे, यह बीवी कभी भी उसकी सुन्दरी, प्यारी स्त्री। सड़े-मुर्दे को पकड़ कर उसने भव-सागर पार करने का निश्चय किया।[२]

विदेशी शासकों की पूँजीवादी नीति ने देश में विषमता का ऐसा विष भर दिया था कि निम्न वर्ग धन की लालसा के मद में अनैतिकता को अपनाने में भी संकोच नहीं करता था। श्रीमती कमला चौधरी की 'श्रमी की अभिलाषा'[3] 'भिखमंगे की बिटियां'[४] कहानियाँ इसका उदाहरण हैं।

नागरिक जीवन का अशिक्षित एवं निम्न वर्ग ही आर्थिक समस्यासों से ग्रसित नहीं था, शिक्षित समुदाय के सम्मुख भी 'अर्थ' एक जटिल समस्या बन गया था। शिक्षा का जो रूप विदेशी सरकार द्वारा प्रचलित किया गया था, उसमें शिक्षित होने के पश्चात् आजीविकोपार्जन के लिए केवल सरकारी नौकरी का साधन शेष रह जाता था। स्वतंत्र व्यवसाय अथवा आत्मनिर्भरता की शिक्षा नहीं दी जाती थी। श्री निराला जी के 'निरुपमा' उपन्यास का नायक लन्दन से डी० लिट्० की डिगरी लेकर आता है लेकिन अनेक टक्करें मारने पर भी उसे नौकरी नहीं मिलती। अन्त में वह जूते साफ करने का व्यवसाय कर समाज के प्रति विद्रोह करता है। मोहनलाल मेहतो 'वियोगी' की 'पांच मिनट' (१९२० ई०) कहानी में भारतीय ग्रेजुएट की बेकारी, पारिवारिक कष्ट, दरिद्रता और भूख से त्रस्त होकर कुसंग में पड़ने का उल्लेख किया गया है। वह अपराध करता है, खून करता है और चोरी, डाके डालता है।[५]

उपेन्द्रनाथ अश्क ने मध्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के जीवन से कथावृत्त लेकर देश की आर्थिक विपन्नता के चित्र खींचे हैं। आर्टिस्ट (१९३४ ई०) कहानी में कलाकारों की आर्थिक विपन्नता की ओर संकेत किया है—'गाने के शौकीन तो बहुत हैं पर दाम देकर सुनने वालों का अभाव है।[६] 'ऐरोमा' (१९३२ ई०) कहानी में लेखक ने

१. सुभद्रा कुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० ७३
२. रामवृक्ष बेनीपुरी : बेनीपुरी ग्रन्थावली : चिता के फूल : पृ० ४६
३. कमला चौधरी : उन्माद : पृ० १२८
४. वही : पृ० १०६
५. विनोद शंकर व्यास-सम्पादक : मधुरकी : दूसरा खण्ड : पृ० १३२
६. उपेन्द्रनाथ अश्क : सत्तर श्रेष्ठ कहानियां : पृ० ७६

अर्थाभाव के कारण अभिशप्त प्राणनाथ की वैज्ञानिक खोज को व्यर्थ जाते दिखाया है। प्राणनाथ ने धन के अभाव के कारण विज्ञान की डिग्रियाँ उपलब्ध नहीं की थीं, इसी कारण वह ऐरोमा जैसी दवा को खोजकर भी उसका मूल्य नहीं पाता और अन्त में उसके प्राण भी चले जाते हैं। 'तीन सौ चौबीस' (१९३३ ई०)[1] शिमला जैसे पहाड़ी वैभवशाली नगर के मजदूर की शोचनीय आर्थिक स्थिति में उत्पन्न अर्थलालसा के कारण मृत्यु का करुण चित्र है। भारत के पर्वतीय नगरों में जब धनिक वर्ग ऐश्वर्य का सुख भोगने जाता है तो चिथड़ों में लिपटे, आधी टाँगों और बाँहों वाले कुलियों की आर्थिक विपन्नता को देखकर मानवता कराह उठती है। कुमारी वाल्टन, हैदर को अकेले प्यानो उठाते देखकर सोचती हैं कि यौरुप में होता तो बोझ उठाने का रिकार्ड मात करके सहस्रों रुपये कमा लेता।[2] इसी प्रकार 'नमक ज्यादा है' (१९३२ ई०)[3] 'निशानियाँ[4], भिश्ती की बीवी'[5] में लेखक अर्थाभाव के कारण उत्पन्न कठिन जीवन का वर्णन किया है। 'भिश्ती की बीवी' में लेखक ने गरीबी के अभिशाप में नारी के अरक्षित सतीत्त्व की ओर संकेत किया है। गरीब की औरत को भी अपनी इज्जत प्यारी थी।

प्रेमचन्द, विशंभरनाथ शर्मा कौशिक, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने ग्रामीण जीवन, कृषक वर्ग एवं मजदूरों के अधिक चित्र खींचे हैं। निराला जी की क्रान्ति चेतना अधिक तीव्र है और प्रतिशोध लेना जानती है। सुभद्राकुमारी चौहान, कमला चौधरी की निर्धन नारी की ओर विशेष सहानुभूति है। जयशंकर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि ने कृषकों अथवा श्रमिकों के अतिरिक्त अन्य वर्गों की आर्थिक विपन्नता का भी उल्लेख किया है। शिक्षित नागरिक समुदाय की बेकारी की समस्या को भी लेकर कथा-साहित्य रच गया है। राधिकारमण प्रसाद सिंह की राष्ट्रीय चेतना सम्पूर्ण राष्ट्र जीवन को एक साथ लेकर बढ़ती है। इन सभी लेखकों ने राष्ट्रीय-उत्थान के उद्देश्य को लक्षित कर देश की आर्थिक विवशता का यथार्थ चित्र खींचा था।

सामाजिक दुरवस्था

तत्कालीन भारत की सामाजिक दुरवस्था के भी सजीव एवं पूर्ण चित्र कथा साहित्य में मिलते हैं। प्रेमचन्द, विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक, वृन्दावनलाल वर्मा, सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुभद्राकुमारी चौहान, कमला चौधरी, विनोदशंकर व्यास आदि कथा-साहित्यकारों ने राष्ट्रवाद के अवरोधक तत्त्व सामाजिक विषमताओं के यथार्थ चित्र खींचे हैं। कतिपय सामाजिक उपन्यास तथा कहानी लेखकों ने समाज-सुधार एवं आदर्शवाद से अभिप्रेरित होकर देश के पुनर्निर्माण के लिए नवीन आदर्श, मान्यताओं तथा चेतनाओं द्वारा सामाजिक

---

१. उपेन्द्रनाथ अश्क : सत्तर श्रेष्ठ कहानियां पृ० ९३
२. वही : पृ० ३१६
३. वही : पृ० ३७३
४. वही : पृ० ३८६
५. वही : पृ० ४८२

दुरवस्था के निराकरण का प्रयास भी किया है।

इस क्षेत्र में भी प्रेमचन्द जी का नाम अग्रगण्य है, इन्होंने ग्राम, नगर, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पुरुष, नारी सभी वर्गों की सामाजिक समस्याओं को लेकर सबसे अधिक उपन्यास और कहानियां लिखी हैं। भारत के प्रायः सभी भागों तथा जातियों में दहेज, अनमेल विवाह, विधवा-दुर्गति, छुआछूत, अन्धविश्वास, वेश्यावृत्ति आदि सामाजिक कुरीतियां व्याप्त थीं। इसी कारण गांधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलन के रचनात्मक कार्यक्रम में समाज-सुधार के कार्य पर विशेष बल दिया गया था। ये सामाजिक समस्याएं नगर तथा ग्राम दोनों प्रकार के जीवन को आक्रान्त कर रही थीं, किन्तु विशेषकर नागरिक जीवन तथा 'नारी' इससे अधिक त्रस्त थे। इन प्रमुख सामाजिक समस्याओं का एक एक कर विवेचन अधिक युक्तिसंगत होगा।

विधवाओं की समस्या

भारतीय समाज की अतिशय रूढ़िवादिता के कारण विधवा का पुर्नविवाह घोर पाप समझा जाता था। समाज द्वारा उनके संरक्षण की उचित व्यवस्था भी नहीं थी, अतः उनकी असहाय तथा दयनीय स्थिति से कामुक लोग लाभ उठाने लगे। प्रेमचन्द के 'प्रतिज्ञा' उपन्यास की मूल समस्या विधवा है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र अमृतराय त्यागी तथा देश प्रेमी हैं। अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने विधवा-विवाह का व्रत लिया है। पूर्णा असमय में विधवा हो जाती है। उदर-पोषण के साधन के अभाव में पड़ोसी बदरीप्रसाद के यहां आश्रय लेती है। उसके आश्रयदाता का पुत्र कमलाप्रसाद उसके सौंदर्यपूर्ण यौवन तथा विवशता का अनुचित लाभ उठाना चाहता है। किसी प्रकार साहस कर वह अपने सतीत्व की रक्षा करती है। अन्त में अमृतराय द्वारा स्थापित विधवाश्रम में आश्रय लेती है। प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास में विधवा की दयनीय, असहाय, अरक्षित अवस्था का मार्मिक चित्र खींचा है। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास में विधवा की अन्तर्प्रवृत्ति का उद्‌घाटन कर इस तथ्य का विवेचन भी किया है कि कठोर संयम, व्रत, नियम आदि के आवरण में भी विधवा हृदय में सुख की प्रबल आकाँक्षा छिपी रहती है; जो अनुकूल अवसर पाकर प्रकट हो जाती है।[२]

कथा साहित्य के इस युग में विधवा-समस्या से संबंधित कई उपन्यास तथा कहानियां मिलती हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी ने 'अलका' उपन्यास में सामाजिक अन्धकार के इस पक्ष की भर्त्सना करते हुए लिखा है—'इसी भारत में आश्रयहीन बालिका और तरुणी विधवाएं भी हैं। उन्हें खाने को नहीं मिलता, भूख के कारण विधर्म को भी उन्हें ग्रहण करना पड़ता है, चिरसंचित सतीत्व धन से भी हाथ धोना पड़ता है।'[3] जैनेन्द्रकुमार ने परख (सन् १९२९) लिख कर विधवा की समस्या तथा उनकी मनोभावनाओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से रखने का प्रयास किया है। विधवा कट्टो

---

१. प्रेमचंद : प्रतिज्ञा : पृ० १४५

२. वही : पृ० १३१

३. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अलका : पृ० ४२

के अन्तर्जगत का विश्लेषण करते हुए उन्होंने उसके हृदय में भी कोमलता, उदारता, त्याग, कमनीयता, भावुकता आदि विशेष गुणों का सम्मिलित रूप खोजा है। बिहारी और कट्टो के आत्मिक मिलन द्वारा जैनेन्द्रकुमार ने तत्कालीन सामाजिक आदर्श की रक्षा की है। विधवा समस्या से संबंधित बाह्यजगत् की स्थल घटनाओं की अपेक्षा जैनेन्द्र जी ने उसके अन्तर्मन के सूक्ष्म व्यापारों, मन की स्वाभाविक गति का अंकन सफलतापूर्वक किया है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास 'प्रेमपथ' (सन् १९२६) में जीवन के उभार में ही विधवा हो जाने वाली नारी के नारीत्व में सामाजिक रूढ़िवाद तथा सांस्कृतिक आदर्शवाद का विरोध दिखाया गया है। वासना और कर्त्तव्य में अन्तर्द्वन्द्व विधवा की सबसे बड़ी समस्या थी। 'त्यागमयी' (सन् १९३०) उपन्यास में वाजपेयी जी ने दिखाया है कि समाज द्वारा ठुकराई विधवा नारी को प्रेम का भी अधिकार नहीं रह गया था। उसके पास भौतिक जगत् की कुंठाओं से मुक्ति का केवल एकमात्र साधन था प्राणोत्सर्ग। वाजपेयी जी के ये प्रारम्भिक उपन्यास केवल उपन्यासकार होने की इच्छा से लिखे गये थे, इनमें अन्य विशेषता दृष्टिगत नहीं होती। 'पतिता की साधना' में उन्होंने विधवा नन्दा के हृदयगत भावों के मंथन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। युवती विधवा, जिसने वैवाहिक सुख का प्रभात ही देखा था, किस मानसिक स्थिति में जीवन-यापन करती है, इस पर भारतीय समाज विचार नहीं करता। मानसिक दुर्बलतावश, यदि विधवा संयम से गिर जाती है तो पतिता का जीवन व्यतीत करने के लिए उसे बाध्य होना पड़ता है। विधवा नन्दा हरि से प्राप्त पुत्र की जीवन रक्षा के लिए पतिता गायिका का जीवन बिताती है लेकिन सतीत्व की रक्षा करती है। अन्त में हरि पाखण्डी समाज़ के लिए विद्रोही बन कर नन्दा और अपने पुत्र को प्राप्त करता है। उसकी मां द्वारा विधवा नन्दा को स्वीकार करना सामाजिक परिवर्तन का सूचक है।[१]

कहानीकारों में प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', विनोद शंकर व्यास, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने इस समस्या के संबंध में अपना विशेष दृष्टिकोण रखा है। प्रेमचन्द की 'बेटों वाली विधवा'[२], 'बूढ़ी काकी'[3] में विधवा एवं वृद्धा नारी की समस्या ली गई है। 'निराला' जी की कहानियों में विधवाओं के प्रति किये गये सामाजिक अन्याय के प्रति विशेष आक्रोश मिलता है। सामाजिक अन्याय की प्रतिक्रियावश उन्होंने 'ज्योतिर्मयी'[४] कहानी में युवती विधवा द्वारा विधवा-विवाह का समर्थन कराया है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्रकुमार से एक पग आगे बढ़ कर इन्होंने विधवा विवाह को क्रियात्मक रूप भी प्रदान किया है। ससुराल तथा पति से अनभिज्ञ, बारह वर्ष की आयु में विधवा हो जाने वाली ज्योतिर्मयी का, युवक विजय की ओर आकर्षित हो

---

१. भगवतीप्रसादवाजपेयी : पतिता की साधना
२. प्रेमचंद : मानसरोवर : भाग १ : पृ० ५७
३. वही : भाग ८ : पृ० १४८
४. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : लिली : पृ. २३

जाना स्वाभाविक था। समाज-सुधार के उस युग में जबकि गांधाजी विधवा-विवाह के समर्थक थे, विजय के पिता के मित्र ने षड्यन्त्र रचकर, विजय की अभिज्ञता में यह विवाह संपन्न कराया। विजय के पिता दहेज के लोभ में विवाह करते हैं। विजय को जब राह में यह ज्ञात होता है कि उसका विवाह विधवा ज्योतिर्मयी से हुआ है तो वह प्रसन्नता के स्थान पर चीख उठता है। लेखक ने इस कहानी में तत्कालीन शिक्षित युवकों की मनोवृत्ति का चित्रण भी किया है। उन्हें सिद्धान्त रूप में तो विधवा-विवाह मान्य था, किन्तु जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र में नहीं। उस समय विधवा-विवाह आन्दोलन चल पड़ा था, वह अखबारों का विषय था लेकिन न तो युवकों में साहस था और न उनकी मनोवृत्ति इसके अनुकूल बन पाई थी।

सुभद्रा कुमारी चौहान ने "कल्याणी"[1] कहानी में विवाह का रंग चढ़ते ही विधवा हो जाने वाली कल्याणी की करुण कथा लिखी है। विधवा के प्रति पुरुष समाज का ही अभिशाप नहीं था वरन् अन्धविश्वास के कारण स्वयं नारी का व्यवहार भी उसके प्रति कठोर हो गया था। वह अमंगल का प्रतीक समझी जाती थी। कल्याणी विवाह के पश्चात् नववधू का साज सजा कर लौट रही थी, तभी रेल दुर्घटना में उसके पति की मृत्यु हो गई। उसके पति अपने मित्र जयकृष्ण पर उसकी रक्षा का भार छोड़ जाते हैं। सौभाग्यवती स्त्रियां उसकी छाया से दूर भागती हैं और जयकृष्ण की पत्नी अमंगल की दुर्भावना से शंकित रहती है। अन्त में स्वयं जयकृष्ण उसके सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं, वह भी उनकी ओर आकृष्ट होती है किन्तु अपने प्रेम का प्रतिदान नहीं चाहती और उनका घर त्याग कर चली जाती है। कहां ? अज्ञात है। सुभद्राकुमारी चौहान ने नारी हृदय की सम्पूर्ण कोमल भावनाओं के साथ विधवाओं पर किये जाने वाले सामाजिक अत्याचार को हृदयंगम किया है। विधवा हृदय-शून्य नहीं होती उसमें भी प्रेम की कोमल किन्तु शाश्वत भावना विद्यमान रहती है, इसकी ओर इंगित करते हुए भी लेखिका ने कल्याणी के आदर्श चरित की रक्षा की है। यथार्थता के फेर में पड़कर नारी का पतित रूप उन्हें स्वीकृत नहीं है। इसी कारण पाठकों की विशेष सहानुभूति उनकी विधवा के लिये उमड़ती है।

विनोदशंकर व्यास की 'पूर्णिमा', 'हृदय की कसक', 'मान का प्रश्न' कहानियां विधवा, समाज और प्रेम के संघर्ष से अनुप्राणित हैं। 'पूर्णिमा'[2] कहानी में कृष्ण नामक युवक विधवा हीरा से प्रेम करता है, हीरा के हृदय में भी पुरुष के लिए प्रबल लालसा है, लेकिन समाज का भय बाधक है और कृष्ण का जीवन समाज की वेदी पर अर्पित हो जाता है। हीरा अपनी मनोवृत्तियों को समाज के अंकुश से भी वश में नहीं रख पाती, वह गृहस्थी बसाती है और व्यास जी उसकी गोद में तीन साल का बच्चा छोड़ उसे पुनः पति से वंचित कर पाठकों के सम्मुख उसकी स्थिति अधिक दयनीय रूप में प्रस्तुत करते हैं। विधवा समाज की क्रूरता तथा दैवी विपत्ति का एक साथ शिकार बनती है और लेखक एक दार्शनिक वातावरण में उसका उद्धार कृष्ण के मित्र

---

१. सुभद्राकुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० ३७
२. विनोद शंकर व्यास : अस्सी कहानियाँ : पृ० २०४

द्वारा करवाता है ।[१] उद्धार का रूप लेखक की आदर्शवादी एवं दार्शनिक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट नहीं हुआ है । 'हृदय की कसक' कहानी में भी व्यास जी अट्ठारह वर्ष की विधवा शांता की मनःस्थिति, उसके प्रेम तथा विवाह के बीच समाज के भय, कलंक और आदर्श का चित्रण किया है । इस कहानी में विधवा के हृदय की गुत्थियां खोलकर उसके सत्य स्वरूप को इन शब्दों में रखा गया है—"निगोड़ा समाज मतलबी है । वह दूसरों को सुखी नहीं देख सकता—किसी के दुख में हाथ भी नहीं बंटा सकता । फिर ऐसे समाज के कलंक की क्या चिंता ? मैं तुम्हारे साथ रहकर परम सौभाग्यवती समझूंगी । अगर मेरा सौभाग्य अन्धे समाज को खलेगा, तो देखने देना ।'[२] व्यास जी की आदर्शवादी प्रवृत्ति जीवन की क्षणभंगुरता का सहारा लेकर विधवा के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती—'तो देखो—यह शरीर और यह रूप एक दिन मिट्टी में मिल जाएगा, किन्तु मेरी आत्मा सदा तुम्हारे साथ रहेगी । मेरा शरीर चाहे कहीं भी रहे, लेकिन तुम्हें मेरे वियोग का दुःख नहीं उठाना पड़ेगा ।'[3] शांता इसी अटल सिद्धान्त को लेकर दिव्य जीवन व्यतीत करती है । 'मान का प्रश्न' कहानी में विधवा सुभद्रा पर सामाजिक अत्याचार की निर्ममता,[४] सुभद्रा के यौवन की सहज प्रेम संबंधी लालसा तथा सामाजिक मान मर्यादा के बीच संघर्ष दिखाया गया है । अन्त में मान का प्रश्न विजयी होता है और सुभदा आत्मघात कर लेती है । विधवा की करुण दशा के प्रति व्यास जी की पूर्ण सहानुभूति है । उन्होंने इसे सामाजिक समस्या के साथ वैयक्तिक समस्या का रूप भी दिया है, किन्तु समाज एवं व्यक्ति की इस दुर्दशा के प्रति उनकी आदर्शवादी तथा भावुक प्रवृत्तिपूर्ण न्याय नहीं कर सकी । जीवन की क्षणभंगुरता तथा प्रेम के शुद्ध सात्विक स्वरूप के प्रतिष्ठापन में, सामाजिक अत्याचार एवं व्यक्तिगत भावनाओं का स्वर दब गया है । निराला के सदृश विधवा के संबंध में उनके विचार क्रान्तिकारी नहीं हैं, प्रेमचन्द के समान उन्होंने विधवा-विवाह तथा वनिताश्रम की स्थापना का उद्योग कर समस्या के निराकरण का प्रयत्न भी नहीं किया गया है, और सुभद्रा कुमारी चौहान के सदृश विधवा नारी के भारतीय संस्कारवश स्वतः प्रेरित आदर्शरूप की पूर्ण प्रतिष्ठा में भी उन्हें सफलता नहीं मिली है ।

प्रेमचंद ने विधवा विवाह तथा वनिताश्रम की स्थापना द्वारा विधवाओं की आर्थिक समस्या के हल भी ढूंढे थे । विधवा की अन्तर्कथा को प्रेमचन्द जी ने हृदय से अनुभव किया था । 'निराला' तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने विधवा विवाह करा कर समाज की उपेक्षा का साहस प्रदर्शित किया है । विधवा नारी की समस्या केवल सामाजिक एवं आर्थिक नहीं थी, वैयक्तिक और आन्तरिक भी थी ।

---

१. विनोद शंकर व्यास : अस्सी कहानियाँ : पृ० २१०
२. वही : पृ० २९४
३. वही : पृ० २९४
४. वही : पृ० २८९

दहेज प्रथा

अधिकांश भागों में प्रचलित दहेज प्रथा के कारण इस अभाव ग्रस्त देश की कन्याओं का जीवन भार स्वरूप हो गया था। इस प्रथा के कारण मध्यवित्तीय जीवन में वैवाहिक जटिलता बढ़ गई थी, कन्याओं का अनादर होने लगा था, और प्रायः सुन्दर, सुयोग्य, विवाह योग्य कन्याओं को उनके योग्य वर नहीं मिल पाता था। कथा-साहित्य में लेखकों ने समाज में प्रचलित इस कुप्रथा के दुष्परिणामों पर लेखनी उठाई है। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' उपन्यास की सुन्दरी, महत्वाकांक्षिणी नायिका द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने का मूल कारण इसी में निहित है। रिश्वत जैसी दुर्बल मनोवृत्ति को यही जन्म देती है। 'निर्मला' उपन्यास में अनमेल विवाह दहेज प्रथा के कारण होता है, जिसकी ज्वाला में एक पूरी गृहस्थी जल जाती है। अभिभावक ही नहीं, स्वयं शिक्षित नवयुवकों की मनोवृत्ति इतनी दूषित हो गई थी कि वे दहेज के रुपयों पर चैन का जीवन बिताना चाहते थे।[1] निर्मला का जीवन समाज की बलिवेदी पर चढ़ जाता है, उसकी सगाई टूट जाती है क्योंकि उसकी विधवा माँ के पास दहेज में देने के लिये मोटी रकम नहीं थी। वृन्दावनलाल वर्मा के 'लगन' तथा 'संगम' उपन्यासों में दहेज के प्रश्न पर संबंधियों के मनमुटाव तथा उसके कारण उत्पन्न समस्याओं का विश्लेषण किया गया है। सियारामशरण गुप्त ने अपने 'गोद' उपन्यास में सहज रूप से इस ओर संकेत कर दिया है कि तुच्छ धन के लोभ में सजीव लक्ष्मी जैसी कन्या को ठुकरा दिया जाता था।[2]

प्रेमचन्द जी ने छोटी कहानियों के माध्यम से भी दहेज प्रथा के भीषण परिणाम पर प्रकाश डाला है। 'उद्धार' नामक कहानी में दहेज द्वारा उत्पन्न दूषित वैवाहिक प्रथा की भयंकरता का वर्णन किया गया है। 'अभी बहुत दिन नहीं गुजरे कि एक या दो हजार रुपये दहेज केवल बड़े घरों की बात थी, छोटी-मोटी शादियां पांच सौ से एक हजार तक तै हो जाती थीं, पर अब मामूली विवाह भी तीन-चार हजार से नीचे नहीं तै होते। खर्च का तो यह हाल है और शिक्षित समाज की निर्धनता और दरिद्रता दिनों-दिन बढ़ती जाती है।......'[3] इसी प्रकार 'एक आँच की कसर' नामक कहानी में प्रेमचन्द जी ने धनी मानी विद्वान लोगों की पतित मनोवृत्ति का निदर्शन दिया है, जो बाह्य रूप से यश प्राप्ति के लिए समाज-सुधार तथा दहेज विरोधी थे किन्तु गुप्त रीति से दहेज लेते थे।

जयशंकर प्रसाद की कहानी 'प्रतिभा' में धनी मानी व्यक्तियों की अर्थ-लोलुपता पर प्रकाश डाला गया है। दरिद्र घर की कन्या द्वारा अधिक दहेज न लाने के कारण उसका तिरस्कार होता था और यह सामाजिक अप्रतिष्ठा का कार्य समझा जाता था। प्रसाद जी ने समाज को दोष देते हुए कहा है—'मनुष्य इतना पतित कभी न होता

---

१. प्रेमचंद : निर्मला : पृ० २७
२. प्रेमचंद : मानसरोवर : तृतीय भाग : पृ० ३८
३. सियारामशरण गुप्त : गोद : पृ० ८०

यदि समाज उसे न बना देता।'[1] 'प्रतिध्वनि' कहानी में दरिद्रता और दहेज न जुटा पाने के कारण रामा अपनी पुत्री श्यामा का विवाह किये बिना ही चल बसती है। पेट की ज्वाला में श्यामा का सब कुछ बिक जाता है और अन्त में वह पगली बनकर समाज के अभिशाप पर व्यंग्य कसती हुई घूमती फिरती है।[2]

समाज में अनमेल विवाह का कारण भी कन्यापक्ष वालों का अर्थाभाव था। राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास में इस ओर संकेत किया गया है। स्पष्ट रूप से अधिक नहीं कहा है। सुधा का विवाह अधेड़ एक दो बेटों के बाप से होता है, जिसमें अन्य दुर्गुण भी थे।[3]

रामबृक्ष बेनीपुरी की कहानी 'जुलेखा' पुकार रही है (चिता के फूल में संगृहीत—इन कहानियों का निर्माण काल १९३०-३२ ई० है—बेनीपुरी परिचय—बेनीपुरी ग्रन्थावली) में यह दिखाया गया है कि केवल हिन्दू समाज में ही नहीं, मुसलमानों में भी दहेज तथा धन प्राप्ति की महत्वाकांक्षा में युवक युवतियों का जीवन विनष्ट हो रहा था। सरकारी उच्च नौकरियों पर पहुंच कर लोगों की मनोवृत्ति बदल जाती थी, उसमें संबंधों की अपेक्षा स्वार्थ का अधिक समावेश हो जाता था।[4]

सामाजिक अन्धविश्वास तथा रूढ़ियां

अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादिता ने सामाजिक मस्तिष्क की विवेक-बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। हिन्दी कथा-साहित्य में सामाजिक अन्धविश्वास तथा रूढ़ियों के कुपरिणाम का चित्रण मिलता है। जयशंकर प्रसाद ने 'कंकाल' और 'तितली' उपन्यास में यथार्थवादी शैली में सामाजिक अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्यात्व का भंडाफोड़ कर, उसकी कुरूपता का नग्न प्रदर्शन किया है। यथार्थवादी दृष्टिकोण होने के कारण उन्होंने समाज की गन्दगी को खोलकर रख दिया है। लेकिन इनका यथार्थवाद समाज के लिए अस्वस्थ अथवा हानिकर नहीं है।

सियारामशरण गुप्त ने 'गोद' उपन्यास में समाज की उस अनीति का उद्‌घाटन किया है जिसमें मिथ्यावाद के कारण निर्दोष कन्या का जीवन विनष्ट हो सकता था। देहाती समाज की कठोरता एवं संकीर्णता का सरल, कलात्मक, मार्मिक चित्रण किया गया है। यद्यपि शोभाराम का चरित्र अधिक सबल नहीं है लेकिन वह लोकापवाद एवं मिथ्यात्व के विरुद्ध विवाह करके समाज-सुधार का प्रयास करता है। 'नारी' उपन्यास में भी सियारामशरण जी ने लोकापवाद के कारण अस्तव्यस्त जीवन का सफल अंकन किया है।

धर्म कर्म के नाम पर बाह्याडम्बर और अन्धविश्वास ने लोगों को जकड़ लिया था। अर्थ-लिप्सा और स्वार्थ-पूर्ति के लिए धर्म का रूप गढ़ लिया जाता था। 'निराला'

---

१. जयशंकरप्रसाद : प्रतिध्वनि : पृ० ७२
२. जयशंकरप्रसाद : आकाशदीप : पृ० ६५
३. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ६८-६९
४. बेनीपुरी ग्रन्थावली : चिता के फूल : पृ० २४ : भाग १

जी ने निरुपमा उपन्यास में सुशिक्षित कुमार को सामाजिक रूढ़ियों तथा अन्धविश्वास से आक्रान्त दिखाया है। समाज ने कुमार और उसके परिवार को इसलिए दण्डित किया था कि वह शिक्षा के लिए विदेश गया था। इस उपन्यास की नायिका के अभिमत में ऐसे धर्म एवं सामाजिक रीतियों का समर्थन करने से ज्ञान का विरोध होता है –'जिन सामाजिक रीतियों के कारण कुमार जैसे शिक्षित मनुष्य को पीड़ा पहुँचती है, उनका समर्थन करके वस्तुतः ज्ञान की ओर बढ़ने का उसने विरोध किया है, यह रीति के अनुसार धर्म नहीं .....'[१]

वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यास 'कुण्डलीचक्र' में सामाजिक अन्धविश्वास की प्रतीक कुंडली मिला कर विवाह करने की प्रथा का दुष्परिणाम दिखाया गया है। 'कुंडली' की वेदी पर बलि हो जाने वाले युवक युवती की यह कथा है। आपके ऐतिहासिक उपन्यासों में भी युगीन समस्याओं की झलक मिलती है। 'गढ़-कुण्डार' में जातिवाद के प्रश्न को लिया गया है। राजपूतों की जात्याभिमान की मिथ्या भावना देश के विनाश का मूल कारण थी। इस उपन्यास में तीन प्रणय कथाएं चलती हैं—तारा-दिवाकर, अग्निदत्त-मानवती, होमवती और उसके दो प्रेमी नागदेव और पुण्यलाल। जाति भेद के बिष के कारण प्रणय असफल होते हैं केवल तारा और दिवाकर का मिलन संभव होता है। डा० सुषमा धवन ने अपनी पुस्तक में लिखा है—'उपन्यास में जातिवाद के प्रश्न के माध्यम से लेखक आधुनिक युग की परिस्थिति का विश्लेषण कर आज के मानव को सन्देश देने में सफल हुए हैं।'[२] 'जातिवाद की भ्रान्त भावना कितनी विनाशकारी सिद्ध हो सकती है और राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने में कितनी बाधा डाल सकती है, इसकी चेतावनी लेखक ने उपन्यास द्वारा दी है और इसमें इतिहास से गृहीत जीवन का सन्देश निहित है जो आधुनिक युग के लिए उपादेय है। भयानक युद्ध एवं रक्तपात के बीच मानवीय स्निग्ध भावना प्रेम की अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास की प्राण-प्रतिभा है।'[३]

विवाह के संबंध में जातिवाद की कट्टर भावना का वर्णन विशंभरनाथ शर्मा कौशिक के 'भिखारिणी' उपन्यास में मिलता है। व्यक्तिगत प्रेम भावना को सामाजिक रूढ़ियों पर बलिदान करना पड़ता था अथवा समाज और जाति से च्युत। इस उपन्यास में जस्सो को आजीवन अविवाहित रहना पड़ता है क्योंकि उसके रूप और यौवन पर मोहित रामनाथ सम्पन्न पिता का बेटा है, जो जातिवाद के समर्थक हैं। उसके पिता ने समाज-विरुद्ध विवाह किया था, अतः पिता के कार्य का फल बेटी को भुगतना पड़ता है। 'कौशिक' जी आदर्शवादी लेखक हैं, इस कारण उन्होंने इस उपन्यास में वैयक्तिक भावना की अपेक्षा सामाजिक दायित्व को निभाने का प्रयत्न किया है। इनके विपरीत 'निराला' जी प्रगतिवादी और क्रान्तिकारी उपन्यासकार हैं, जिनके 'निरुपमा' उपन्यास की नायिका समाज एवं जाति बहिष्कृत कुमार से विवाह कर

---

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : निरुपमा

२. डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास : पृ० ३३७

३. वही : पृ० ३३८

संबंधी जन, समाज तथा जाति की उपेक्षा करती है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास मध्यवर्गी समाज से संबंधित हैं। उन्होंने मध्य-वर्ग में, प्रचलित अहितकर रीति-रिवाजों, मान्यताओं और आदर्शों का तीक्ष्ण दृष्टि से विवेचन किया है। 'पतिता की साधना' उपन्यास इसका उदाहरण है। राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'पुरुष और नारी' उपन्यास में, इस संबंध में लिखा है—'इस देश में धार्मिकता की गर्म बाज़ारी ही उसके गले में, भीख की झोली डाल गई। अब जंजीर तुड़ा कर थोड़े खुले दिल से चौकड़ी मरना भी उसके जीवन के स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। परलोक की धांधली में उसकी मिट्टी काफी पलीद हो चुकी। मैं जानता हूं, पुरुषों ने उसके गले की सांकल पर धर्म के मीने का पानी चढ़ा कर उसे गले का हार करार दे रखा है। पर वह गले का हार गले का भार न होता तो किसी को इन्कार न था।'[1]

हिन्दी कहानी साहित्य में भी प्रचलित अन्धविश्वास के चित्र मिलते हैं। प्रेमचंद जी की 'नैराश्य'[2] कहानी में निरुपमा के पति इस कारण रूठे रहते हैं कि वह लड़कियों को जन्म देती है। 'तेंतर' कहानी में सामाजिक अन्धविश्वास के कारण तीन पुत्रों के पश्चात् उत्पन्न कन्या को अमंगल का प्रतीक समझ कर, उसकी मां भी भली प्रकार लालन पालन नहीं करती।[3] अंत में किसी प्रकार का अनिष्ट न होने पर घर की वृद्धा माता को तेंतर का प्रभाव दिखाने के लिए असाध्य बीमारी का स्वांग रचना पड़ता है। 'बहिष्कार' कहानी में कालिन्दी का पति अपनी पत्नी को अकारण निष्कासित कर देता है। गोविन्दी उच्च कुल की न थी, उसके इस अभाव का लाभ उठाकर कालिन्दी का पति उसे और उसके पति को समाज से निकलवा देता है। अंत में गोविन्दी, उसका पति ज्ञानचन्द और उनका पुत्र, सबका जीवन समाज की रूढ़िवादिता की कठोर वेदी पर अर्पित हो जाता है।[4] प्रेमचन्द जी ने सामाजिक अन्धविश्वास की निरर्थकता, निराधारता और निःसारता की ओर देश-वासियों का ध्यान आकृष्ट किया है जो समाज में जड़ता फैलाकर राष्ट्रीय-जीवन को विवेक-शून्य बना रहे थे।

प्रेमचंद जी की परम्परा में आने वाले कहानी लेखक 'कौशिक' जी ने सामाजिक रूढ़ियों और अन्धविश्वास को देश की आर्थिक दुर्दशा का कारण माना है। उनकी 'बेदखली' कहानी में स्वयं किसान कहता है कि पिता की मृत्यु में सामाजिक रीति वश रुपया लगाने, लड़की के विवाह में सामर्थ्य से अधिक व्यय करने के कारण उसकी आजीविका के साधन बैल बिक गये।[5] सामाजिक कुरीति, अज्ञानता और

---

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० १३०
२. प्रेमचन्य : मानसरोवर : भाग ३
३. वही :
४. वही : भाग ५ : पृ० १०६
५. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० १४५

अन्धविश्वास ने भारतीय जीवन को खोखला बना दिया था। भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानियों में भी मध्यवर्गीय समाज की मान्यताओं, रीतियों, आदर्शों का एक कटु आलोचक की भांति निरीक्षण एवं विवेचन हुआ है। 'लेकिन इसके साथ ही साथ अपनी परम भावुकता, आदर्शवादिता और भारतीयता के स्पर्शों से समाज के कुचक्रों, भयानक विवर्तों में पड़े हुए घायल-उदास-असहाय व्यक्तियों के हृदयों को रंग देना, इन कहानियों की अपनी विशेषता है।'[1]

सामाजिक रूढ़ियों के कारण ग्रामीणों की सबसे अधिक दुर्दशा हुई थी जैसा कि प्रेमचंद, कौशिक आदि की कहानियों से स्पष्ट है। सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'सीधे सादे चित्र' नामक संस्मरणात्मक कहानी संग्रह में 'बिआहा' नामक कहानी में सामाजिक रूढ़िवादिता के कारण उद्भूत छोटी सी ग्रामीण बालिका की दयनीय स्थिति के संबंध में लिखा है। एक ग्रामीण बाला अपने जीवन की समस्त संचित पूंजी एक थाली और कटोरी आरती की मुद्रा में उठायें, एकांकी, अपने अनदेखे पति को इलाहाबाद जैसे विशाल शहर में ढूंढने चल देती है।[2] ग्रामीण समाज कितना पिछड़ा हुआ था, रूढ़ि के कारण उसकी कितनी असहाय स्थिति थी, इस ओर सुभद्रा जी ने सीधी सादी रीति से कटु व्यंग्य कसा है।

सामाजिक अनाचार के प्रति हिन्दी साहित्यिक जागरूक थे और उनकी समाज-सुधार की प्रवृत्ति ने ही उन्हें इन सामाजिक दुर्दशा के विषयों पर लिखने के लिए प्रेरित किया था।

अछूत समस्या

हिन्दू समाज में अस्पृश्यता अथवा अछूतों की समस्या अति विकट थी। समाज का एक अंग समस्त सामाजिक अधिकारों से वंचित होकर, अति दीन, हीन कष्ट कर जीवन बिताने को बाध्य हुआ था। गांधी जी ने समाज के इस वर्ग में उठते हुए विद्रोह को देख लिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभिक काल में ही उन्होंने अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को महत्व दिया था। जैसा कि राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास में स्पष्ट किया जा चुका है कि सन् १९३० के आन्दोलन में यह प्रमुख समस्या बन गई थी और विदेशी शासकों ने जब समाज के इस वर्ग की विशेष सहानुभूति प्राप्त करने के लिए इनके पृथक मतदान की व्यवस्था करनी चाही, तो गांधीजी ने आमरण अनशन कर उनकी राष्ट्रीय-विभेदक-नीति का विरोध किया। उन्हें हिन्दू समाज का शूद्रों के साथ व्यवहार अमानवीय तथा बर्बर लगता था। गांधीजी की विचारधारा के अनुकूल उपन्यास और कहानियों में भी समाज द्वारा बहिष्कृत इस वर्ग की अज्ञानता, दुर्बलता, विपन्नता, तिरस्कार एवं उसके परिणाम का सफल एवं मार्मिक चित्रण मिलता है।

प्रेमचंद जी के उपन्यास 'कर्मभूमि' में अछूतों के साथ सवर्णों के दुर्व्यवहार का वर्णन मिलता है। इस उपन्यास में उन्होंने अछूतों के उद्धार, उनमें शिक्षा तथा सदा-

---

१. भगवतीप्रसाद वाजपेयी अभिनन्दन ग्रन्थ : पृ० ३७

२. सुभद्रा कुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० १०७

चार के प्रसार का कार्य अमरनाथ द्वारा संपादित कराया है। 'निराला' के निरुपमा उपन्यास में सवर्ण अवर्ण का भेद स्पष्ट किया गया है। गोविन्दवल्लभ पन्त के 'जूनिया' उपन्यास में अवर्ण जूनिया इस भेदभाव के कारण ही ईसाई धर्म ग्रहण कर लेता है। जूनिया अवर्ण था इस कारण बाल्यावस्था में गुसाईं जी की बावली में पानी पीने के कारण गुसाईं जी ने लकड़ी लेकर उसका पीछा किया था और पिता ने पीटा था। शिकार के समय सिंह से प्राण-रक्षा के लिए उसने शिव-मंदिर का आश्रय लिया था। जिसका दण्ड उसे ग्राम-निकाला मिला। जूनिया का हृदय इन घटनाओं से विद्रोही हो जाता है, वह अपनी पत्नी से कहता है—'सानी देवमंदिर की इमारत मेरे पुरुषाओं ने एक-एक पत्थर ढोकर चिनी है। उसके अन्दर की मूर्तियां भी उन्होंने ही गढ़ी हैं। वे देवता की पूजा का वरदान लेने वाले हो गए और हम, उनके चरणों की धूल, जब काल हमें निगलने के लिये जबड़ा फैलाता है, तब उसके अन्दर जाकर अपनी प्राण-रक्षा भी नहीं कर सकते।'[1] जूनिया जैसे अवर्णों द्वारा ईसाई धर्म ग्रहण करने का प्रमुख कारण था, उन पर हिन्दू समाज द्वारा अत्याचार। सदियों से कुचली हुई जातियों को जब हिन्दू-धर्म और समाज में कोई स्थान प्राप्त नहीं था, दिन भर मेहनत करने पर भी जूठा खाने को और गंदला पानी पीने को मिलता था, तो वे 'ईश्वर बदल' देते थे।[2]

उपन्यासों की भाँति प्रेमचन्द, निराला, जयशंकर प्रसाद की कहानियों में भी इस वर्ग का विशेष वर्णन मिलता है। प्रेमचन्द की 'ठाकुर का कुआँ', 'कफन', 'सद्गति' 'मन्त्र' आदि कहानियां शोषित अछूत वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति की परिचायक हैं। 'ठाकुर का कुआं' कहानी में बीमार जोखू को स्वच्छ जल की उपलब्धि नहीं हो पाती क्योंकि अछूतों के कुओं में किसी जानवर के गिर जाने से बदबू आ गई थी। ठाकुर, ब्राह्मण के कुओं की सीमा का स्पर्श भी उनके लिए धर्म-विरुद्ध था। उसकी पत्नी गंगी साहस कर ठाकुर के कुएँ में पानी भरना चाहती है, किन्तु ठाकुर का स्वर सुन उसके हाथ से रस्सी छूट जाती है और घड़ा कुएं में गिर जाता है। समाज के अत्याचार से पीड़ित जोखू को वह गन्दे पानी का लोटा मुंह में लगाये देखती है। इस कहानी में प्रेमचंद जी ने गंगी के हृदय में समाज के उच्च वर्ग की मिथ्यावादिता, आचरणहीनता, अन्याय के प्रति विरोध भावना और द्वन्द्व दिखाकर, इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि निम्न वर्ण में अपनी विवशता के प्रति विद्रोह जगने लगा था, जिससे राष्ट्रीय एकता को आघात पहुंचता है।

जयशंकर प्रसाद की 'विराम-चिन्ह' कहानी में अछूतों के दयनीय जीवन का करुण चित्र है। अर्द्ध-नग्न वृद्धा दूकान वाली तीन दिन से भूखी थी लेकिन मन्दिर का प्रसाद उसके लिए वर्जित था क्योंकि वह अछूत थी। वह दूर से ही एक अधिक उतरा हुआ केला अपनी अंजलि में रख कर नैवेद्य के रूप में चढ़ा कर, प्रसाद समझ कर ग्रहण कर लेती है। प्रसाद जी कहते हैं—'भगवान् ने उस अछूत का नैवेद्य ग्रहण

---

१. गोविन्द वल्लभ पन्त : जूनिया : पृ० ३१

२. वही : पृ० ६०, ६१

किया या नहीं, कौन जाने; किन्तु बुढ़िया ने उसे प्रसाद समझ कर ही ग्रहण किया।[१] देश और समाज की यह कैसी विडम्बना थी, जहां ईश्वर भी उच्च वर्ण की पैतृक सम्पत्ति बन गया था। वृद्धा का विद्रोही लड़का अन्य अछूत वर्ग के साथ मन्दिर-प्रवेश के लिए तत्पर होता है। सवर्ण आस्तिक भक्तों के झुण्ड ने अपवित्रता से भगवान् की रक्षा करने के लिए वृद्धा के पुत्र राधो के बलिदान से मन्दिर की देहली को पवित्र किया और बुढ़िया ने अपने प्राण देकर अछूतों के मन्दिर प्रवेश के दुस्साहस पर विराम चिन्ह लगा दिया।[२]

निराला की 'श्यामा' कहानी में निम्न वर्ग की समस्या एवं विवशता का हृदय-विदारक चित्र मिलता है। लगान के सात रुपये वसूल न कर पाने पर जमींदार शूद्र सुधुवा की अच्छी पिटाई करवाते हैं। पंडित रामप्रसाद के पुत्र बंकिम द्वारा उसके प्रति संवेदना प्रकट करने पर और सहायता देने पर बंकिम और सुधुवा को जाति बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया जाता है। समाज के उच्चवर्गीय ठेकेदार मानवता के इस धर्म को सहन नहीं कर पाते कि एक ब्राह्मण का पुत्र शूद्र जाति के तुच्छ प्राणी की सहायता करे। सुधुवा की मृत्यु पर ज़मीदार के आतंक के कारण, बिरादरी के लोग उसकी अन्त्येष्टि क्रिया के लिए भी एकत्रित नहीं होते। प्रेमचंद की अपेक्षा इस क्षेत्र में भी 'निराला' जी की सामाजिक विचारधारा अधिक क्रान्तिकारिणी है। वह समाज के अन्याय और अत्याचार का प्रतिशोध लेना जानती है। शूद्र श्यामा का ब्राह्मण बंकिग के साथ आर्य समाज के मन्दिर में विवाह कराकर और आर्य समाज की सहायता से उसे शिक्षा दिलाकर वे डिप्टी कलक्टर के पद पर नियुक्त करते हैं। अन्त में श्यामा द्वारा उसी ज़मींदार की डाली लौटा कर, तिरस्कार करके 'निराला' जी की क्रान्ति भावना संतुष्ट होती है। इसी प्रकार उनकी 'चतुरी चमार' कहानी में ग्रामीण समाज के इस निम्न वर्ग के मनोविकारों का लेखक द्वारा गम्भीर अध्ययन मिलता है। ज़मींदार के उत्पीड़न के विरुद्ध यह वर्ग विद्रोही हो रहा था।[3]

साम्प्रदायिकता

राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष का प्रमुख विघटनकारी तत्त्व साम्प्रदायिकता है। भारत की राष्ट्रीयता को इसने राहु सम ग्रस लिया था। जिसका अन्तिम परिणाम देश का विभाजन हुआ। इसके विभिन्न अंग हैं वैमनस्य, हिंसा, घृणा, प्रतिशोध आदि। मुस्लिम लीग की स्थापना हिन्दू-मुस्लिम राष्ट्रविभेद की नीति पर हुई थी जो उत्तरोत्तर विकसित होती गई। असहयोग आन्दोलन के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय जीवन में हिन्दू मुस्लिम संयोग फलीभूत न हो सका। हिन्दू-मुसलमानों के दंगों ने प्रारम्भ होकर पाकिस्तान के जन्म में ही अन्त किया।

१. जयशंकर प्रसाद : इन्द्रजाल : पृ० ११६
२. वही : पृ० १२२
३. 'वह एक ऐसे जाल में फंसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका पूरा जोर उभड़ रहा है, पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझ कर रह जाता है।'—सम्पादक—विनोद शंकर व्यास : मधुकरी : दूसरा खण्ड : पृ० ६

प्रेमचन्द जी के 'कायाकल्प' उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम दंगों का वर्णन किया गया है। वृन्दावनलाल वर्मा का 'प्रत्यागत' उपन्यास साम्प्रदायिक विद्वेष तथा मोपला विद्रोह पर लिखा गया उपन्यास है।

प्रेमचन्द की 'हिंसा परमो धर्म :' कहानी में साम्प्रदायिकता का भीषण रूप दिखाया गया है। गाँव हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना से मुक्त थे लेकिन शहर में धर्म के नाम पर मानवता का गला घोंटा जा रहा था। हिन्दू भक्तगण देहाती मुसलसान जामिद को फांस कर धर्म बदलना चाहते थे और मुसलमान काजी हिन्दू औरत का धर्म विनष्ट करने में संकुचित नहीं थे। धर्म के नाम पर बहू बेटियों की इज्जत वे-आबरू हो रही थी।[1] काजी साहब नैतिकता अनैतिकता को भूल कर कहते हैं—'हां, खुदा का यह हुक्म है कि काफिरों की जिस तरह मुमकिन हो, इस्लाम के रास्ते पर लाया जाय। अगर खुशी से न आयें, तो जब्र हो।'[2] जामिद ने शहर का यह रूप देखा तो वहाँ की विषाक्त वायु में सांस लेते उसका दम घुटने लगा—'वह जल्द-से-जल्द शहर से भाग कर अपने गांव में पहुंचना चाहता था, जहाँ मजहब के नाम सहानुभूति, प्रेम और सौहार्द था। धर्म और धार्मिक लोगों से उसे घृणा हो गई थी।'[3]

जयशंकर प्रसाद ने भी साम्प्रदायिकता का दुष्परिणाम दिग्दर्शित कराने वाली कहानियाँ लिखी हैं। 'सलीम'[4] कहानी में प्रसाद जी ने साम्प्रदायिकता को मानवता की चुनौती दी है। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में मुसलमानों के गांव में हिन्दू और मुसलमान एक परिवार के सदस्यों की भाँति रहते थे, लेकिन नवागन्तुक मुसलमान सलीम ने भारत में व्याप्त साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष का वपन करना चाहा। इस कार्य में उसे सफलता न मिल सकी, क्योंकि प्रसाद जी की मानवता के सम्मुख धार्मिक संकीर्णता पराजित हो जाती है।

सुभद्राकुमारी चौहान की 'हींग वाला'[5] कहानी हिन्दू-मुस्लिम दंगे की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'हिन्दुस्तानी'[6] कहानी में साम्प्रदायिकता के स्वरूप का विवेचन, उसके कारणों तथा निवारण के साधनों का उल्लेख मिलता है। इस कहानी में कौशिक जी ने दोनों पक्षों की समस्याओं का निष्पक्ष रूप से चित्रण किया है। हिन्दू धार्मिक कट्टरता तथा अपने साथ खानपान का सम्बन्ध न रखने के कारण भारत के मुसलमानों को विक्षोभ होता था। उन्हें यह सन्देह था कि यदि हिन्दुस्तान आज़ाद हो गया तो हिन्दू-मुसलमानों के बीच छुआछूत के ऐसे झगड़े

---

१. प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग ५ : पृ० ८९
२. प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग ५ : पृ० ८८
३. वही : पृ० ९१
४. जयशंकर प्रसाद : इन्द्रजाल : पृ० १२
५. सुभद्रा कुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० ६३
६. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० २४१

उठ खड़े होंगे कि एक बला से निकल कर दूसरी में फंसना पड़ेगा।[1] मुसलमानों में भी हिन्दू-धर्म के प्रति सहिष्णुता की भावना नहीं थी। वे हिन्दुओं को काफिर और गाय की कुर्बानी को धर्म समझते थे। हिन्दुस्तान में पैदा होकर, यहां के अन्न से पल कर भी उनकी मुल्की दिलचस्पी टर्की के साथ रहती थी। जब तक मुसलमान इस देश को अपना देश, देश के प्रत्येक व्यक्ति को भाई और देश के जानो माल की रक्षा के लिए अग्रसर न होंगे, और हिन्दू मुसलमानों का तिरस्कार करेंगे, तब तक राष्ट्र का उत्थान एवं विकास असम्भव था।[2]

सांस्कृतिक दुर्दशा

भारतीयों की सांस्कृतिक हीनता की जड़ें गहराई के साथ देशवासियों के आन्तरिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन में निहित थीं। विदेशी शासकों की शिक्षा-दीक्षा ने भारत की अन्तरात्मा का हनन किया था। 'स्वदेशी' के प्रति शिक्षित समुदाय में एक ऐसी हीन भावना ने जकड़ लिया था कि पश्चिम के अन्धानुकरण में उन्हें जीवन की सार्थकता दृष्टिगत होती थी। भारतीय संस्कृति, जीवन दर्शन, धर्म सभी उनकी दृष्टि में हेय थे। प्रेमचन्द जी की 'पत्नी से पति',[3] 'शांति'[4] 'दो बहनें'[5] 'उन्माद'[6] आदि कहानियों में पश्चिमी चमक-दमक, जड़वादिता तथा अति भौतिकवादी संस्कृति की निःसारता प्रमाणित की गई है। भारतीयों की पतित मनोवृत्ति का वर्णन करते हुए लेखक ने 'पत्नी से पति' कहानी में सेठजी के शब्दों में सांस्कृतिक हीनता का चरम रूप दिखाया है—'हां, लेकिन मुझे इसका हमेशा खेद रहता है कि ऐसे अभागे देश में क्यों पैदा हुआ—[7] 'शांति' कहानी में भारतीयों द्वारा पश्चिमी संस्कृति की भौतिक विचारधारा के अनुकरण के दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला है।

तत्कालीन भारतीय शिक्षा पद्धति के दोषों का भी कतिपय उपन्यास तथा कहानियों में यत्र-तत्र वर्णन मिल जाता है। "कर्म भूमि" उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति की बुराइयों का विवेचन किया है— "हमारे शिक्षार्थी में नर्मी को घुसने ही नहीं दिया जाता। वहाँ स्थायी रूप से मार्शल-ला का व्यवहार होता है। कचहरियों में पैसे का राज है, उससे कहीं कठोर, कहीं निर्दय यह राज है। देर में आइये तो जुर्माना, न आइए तो जुर्माना, सबक न याद हो तो जुर्माना, कोई अपराध हो जाय जुर्माना, शिक्षालय क्या है जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं। यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान

---

१. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० २५४
२. वही : पृ० २५५
३. प्रेमचन्द : मानसरोवर : भाग ७ : पृ० १७
४. वही : पृ० ८०
५. वही : पृ० ८५
६. वही : ९२
७. वही : पृ० १९

देने वाले, पैसे के लिए गरीबों का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेच देने वाले छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य क्या है ?''[१]

यह शिक्षा अत्यधिक व्ययशील थी, साधारण जन के लिए शिक्षा प्राप्ति का प्रयास ही व्यर्थ था।'' लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा ''नामक कहानी में इस तथ्य की ओर दृष्टि आकृष्ट करते हुए प्रेमचन्द जी ने इसके दोषों का उल्लेख किया है कि यह शिक्षा विलासिता का दास बनाकर अनावश्यकताओं की बेड़ी से जकड़ देती है।[२] यह शिक्षा एकांगी थी। व्यक्ति को केवल सरकारी नौकरी के लिए तैयार करने में ही इसकी इति हो जाती थी। अतः बेमारी की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही थी। सूर्यकान्त त्रिपाठी ''निराला'' ने ''निरुपमा'' उपन्यास में लन्दन से प्राप्त डी० लिट् डिग्री वाले कुमार को भारत में नौकरी का द्वार खटखटाकर तथा निराश हो कर मोची का स्वतन्त्र व्यवसाय अपनाते दिखाया है।

निम्न वर्ग में शिक्षा का प्रचार न होने से भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग अन्धविश्वास, रूढ़ियों, परम्पराओं में जकड़ा हुआ, शासक वर्ग, जमींदार आदि के अन्याय, अत्याचार सह रहा था। इस वर्ग में शारीरिक श्रम के साथ बुद्धि की भी कमी नहीं थी। ''निराला'' की ''चतुरी चमार''[३] कहानी में इस पर प्रकाश डाला गया है। निराला जी ने इस वर्ग को शिक्षित करने के लिए जाति और धर्म के विरुद्ध पग उठाया था।

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द का विशिष्ट स्थान है, उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के अभावात्मक अंग के प्रत्येक तत्व का संस्पर्श अपनी प्रतिभा द्वारा किया है। उनकी समाज सुधारक आत्मा को दुर्दशा का चित्रण मात्र अभीष्ट नहीं है वरन् वह उसके निवारण का मार्ग भी प्रदर्शित करती चलती है। इनकी अधिकांश सामाजिक समस्याओं का सम्बन्ध मध्यवर्गीय समाज एवं कृषक वर्ग से है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द जी ने उपन्यास तथा कहानियों के विविध रूपों एवं शैलियों में इन दुर्दशाओं का अंकन किया है किंतु प्रमुखता वर्णानात्मकता तथा इतिवृत्तात्मकता की ही है। कहीं-कहीं विषय प्रतिपादन और उद्देश्य की स्थापना में कला को आघात भी पहुँचा है। प्रेमचन्द जी ने अपने युग की समस्याओं, दुर्दशाओं, एवं राष्ट्रविरोधी तत्वों का विस्तृत इतिहास लिख डाला है। सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुभद्रा कुमारी चौहान को प्रेमचन्द की परम्परा में रखा जा सकता है। सुभद्रा जी में नारी सुलभ भावुकता एवं कोमलता की मात्रा अधिक है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला को प्रेमचन्द का पूरक कहा जा सकता है, उनमें दुर्दशा के प्रति आक्रोश की मात्रा और उग्रता अधिक है। प्रेमचन्द ने सामाजिक दुर्दशा के क्षेत्र में समाधान प्रस्तुत किया था, उसको निरालाजी ने मूर्त रूप प्रदान किया है। प्रेमचन्द की अपेक्षा वे अधिक प्रगतिवादी हैं। देश-दुर्दशा के कारणों का आपरेशन कर वे उसे जड़ से मिटा डालना चाहते हैं। इसके लिए वे समाज, देश, धर्म से टक्कर लेने के लिऐ तत्पर हैं।

---

१. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० ५
२. वही : प्रेम चतुर्थी : पृ० ६९
३. सम्पादक—विनोदशंकर व्यास : मधुकरी : दूसरा खण्ड : पृ० ९

जयशंकर प्रसाद ने देशदुर्दशा का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है, उनकी सहानुभूति के पात्र समाज के निकृष्ट जीव हैं। समाज, धर्म, रूढ़ियों का नग्न चित्रण यथार्थवादी शैली में किया है। प्रसाद जी का दृष्टिकोण सामाजिक न होकर व्यक्ति-वादी अधिक है। भगवती प्रसाद वाजपेयी की संवेदना स्त्री पात्रों पर अधिक है प्रेम संबंधी वैयक्तिक भावना का चित्रण सामाजिक दुर्व्यवस्था की पृष्ठभूमि पर किया है। विनोदशंकर व्यास सामाजिक दुर्दशा का वर्णन करते करते दार्शनिकता में खो गये हैं। इनकी कहानियों में समाज सुधार का स्वर तीव्र नहीं है, ऐसा लगता है वे अतिशय आदर्शवादिता के कारण समाज-सुधार का उद्देश्य विस्मृत कर बैठते हैं। अन्त में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस युग के इन सभी उपन्यास एवं कहानीकारों ने देश की दुर्दशा के अनेक रूपों को अतिनिकट से देखा था और राष्ट्रीय समाज सुधार, धर्म सुधार सम्बन्धी संस्थाओं के कार्यक्रम को स्वर प्रदान किया था।

निष्कर्ष

हिन्दी-साहित्य में राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष अर्थात् भारतीय दुर्दशा के अनेक रूपों का चित्रण काव्य अथवा नाटक की अपेक्षा कथा-साहित्य में अधिक हुआ है। छायावाद-रहस्यवाद की प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण काव्य क्षेत्र में वर्तमान की अपेक्षा दार्शनिक एवं कल्पना-प्रधान व्यक्तिगत प्रेमानुभूति के सूक्ष्म चित्रों की बहुलता थी। राष्ट्रीय कवियों की दृष्टि देश की सामाजिक अथवा सांस्कृतिक दुर्दशा की अपेक्षा राजनीतिक दुर्दशा की ओर अधिक थी। विदेशी शासकों के अत्याचार, नृशंसता, पराधीनता के अभिशाप की करुण पृष्ठभूमि के साथ कवि के संवेदनशील हृदय का अधिक सामंजस्य हुआ था। भारतीय दुर्दशा का मूलभूत कारण भी यही था। देश की आर्थिक विपन्नता का भी कतिपय कवियों ने करुण एवं मार्मिक वर्णन किया, किंतु द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली में काव्य लिखने की प्रणाली का लगभग अन्त हो गया था। अतः अधिक मात्रा में इस प्रकार का काव्य नहीं मिलता। हिन्दी में नाट्य साहित्य अधिकतर इतिहास की घटनाओं को लेकर लिखा गया। वर्तमान समस्याओं को लेकर लिखे गये नाटकों की संख्या अति अल्प है। नाटकों में वर्तमान दुर्दशा के चित्र प्रच्छन्न, अप्रत्यक्ष एवं प्रतीकात्मक रूप में मिलते हैं। उपन्यास अथवा कहानियों में दुर्दशा के वर्णन का सबसे अधिक संयोग अथवा सुयोग था। अतः राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक, शिक्षा संबंधी अनेक समस्याओं का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस समय के अधिकांश कथा-साहित्यकारों ने देश के यथार्थ जीवन का सूक्ष्म-अवलोकन किया था, दुर्दशा के विभिन्न रूपों का उनकी भावना से साधारणीकरण हुआ था। अतः यथार्थ शैली में देश-जीवन के अनेक अभावग्रस्त चित्र हिंदी कथा-साहित्य में बिखरे पड़े हैं। शासकों की कठोर दमन नीति के कारण राजनीतिक उपन्यास तथा कहानियों की संख्या अधिक नहीं है किन्तु सामाजिक, आर्थिक अभावों का चित्रण अत्यधिक उदार मनोवृत्ति से लेखकों ने किया है। अपने युग की राष्ट्रवाद में बाधा डालने वाली अनेक समस्याओं तथा तत्वों का निरूपण मात्र ही नहीं किया गया है, अपितु उनसे राष्ट्रीय जीवन को मुक्त कर राष्ट्रीय एकता के प्रयास के साधनों का भी उल्लेख किया गया है। कथाकारों का यह प्रयत्न राष्ट्रवाद की दृष्टि से अत्यन्त स्तुत्य है।

: ८ :

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्ष
(१९२०–३५)

भारतीय राष्ट्रवाद का लक्ष्य था भारत की स्वाधीनता अथवा विदेशी पराधीनता से मुक्ति। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न शक्तियाँ गतिशील थीं। इस युग में भारत की स्वतन्त्रता के लिए दो प्रवृत्तियां प्रमुख रूप से कार्य करती लक्षित होती हैं :

(१) अहिंसात्मक

(२) हिंसात्मक

अहिंसात्मक प्रवृत्ति ने मानव की आत्मिक शक्ति का आधार ग्रहण कर मुक्ति का आग्रह किया किन्तु हिंसात्मक प्रवृत्ति ने मनुष्य की शारीरिक अथवा पाशविक शक्ति का सहारा लिया। अहिंसात्मक साधन सत्य अर्थात आध्यात्मिक आधारशिला पर अवस्थित था, जिसका नेतृत्व गांधी जी ने किया था। सन् १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन रचनात्मक कार्यक्रम तथा ,सन १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन को क्रियान्वित कर, रक्तपात रहित क्रान्ति तथा आत्मबलिदान के अपूर्व आदर्श द्वारा स्वाधीनता प्राप्त का उद्योग गाँधी जी की अपूर्व देन थी। अध्यात्म प्रधान भारत देश के जनवासियों को गांधीजी द्वारा प्रदत्त राष्ट्रवाद के आदर्श रूप ने अधिक प्रभावित किया। जिस आदर्श ओर उन्होंने संकेत किया, उसी ओर देश के लाखों व्यक्ति चल पड़े। गाँधीजी देश के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन को पराधीनता, अभाव तथा दोषों से मुक्त करना चाहते थे। गांधीजी का राष्ट्रवाद भावना प्रधान था और विश्वास पर आधारित था, उसमें तर्क तथा बुद्धि का अधिक आग्रह नहीं था। हिन्दी साहित्यकार गाँधीजी के राष्ट्रवाद से अत्यधिक प्रभावित हुये। अतः सत्याग्रह आन्दोलनों तथा रचनात्मक कार्यक्रम द्वारा देश जीवनके सभी पक्षों के उत्थान का पूर्ण प्रयास हिन्दी-साहित्य में मिलता है।

हिंसात्मक सधान द्वारा विदेशी शासन व्यवस्था का अन्त कर देने का साहस पूर्ण कार्य विभिन्न क्रान्तिकारी दलों द्वारा सम्पूर्ण भारत में गुप्त तथा संगठित रूप से चल रहा था। भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों के अद्भुत हिंसात्मक कार्य एवं वीरता पर देश मुग्ध हो गया था। देशवासियों में राष्ट्रीय उन्मेष को भरने का सफल प्रयास भी इन वीर क्रान्तिकारियों के बलिदान द्वारा सम्पन्न हुआ, किन्तु जनता की भावना का सहयोग इनके साथ अधिक नहीं हुआ था। वह सक्रिय रूप में इनके कार्यक्रम में भाग लेना उचित नहीं समझती थी। अतः हिन्दी साहित्य में

इस दल के साधन का अधिक उल्लेख नहीं मिलता। इनके साथ सहानुभूति होने पर भी साहित्यकार इस साधन को राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल समझते थे।

हिन्दी-काव्य में गांधीवादी राष्ट्रवाद के सैद्धन्तिक पक्ष की अभिव्यक्ति

गांधीजी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था। सत्य साध्य एवं अहिंसा साधन थी। उनके मतानुसार 'सत्य' का 'हर' अथवा उच्च अर्थ था परमेश्वर। साधारण तथा अपर अर्थ में सत्य का व्यन्जक था सत्याग्रह, सत्य-विचार तथा सत्य-वाणी। सत्य अथवा परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए आत्मा की शुद्धि परमावश्यक थी। अहिंसात्मक मार्ग के अनुगमन द्वारा सत्य की प्राप्ति निश्चित थी। गाँधी जी के सत्य तथा अहिंसा की सात्त्विक मीमांसा, हिन्दी काव्य क्षेत्र में श्री त्रिशूल, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री सियाराम शरण गुप्त, श्री मैथिलीशरण गुप्त, पंडित रामनरेश त्रिपाठी, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने की है।

श्री त्रिशूल ने सत्याग्रह अथवा सत्य तत्त्व की विवेचना करते हुये लिखा है—

सत्य सृष्टि का सार, सत्य निर्बल का बल है,
सत्य सत्य है, सत्य नित्य है, अचल अटल है।
जीवन-सर में सरस मित्रवर! यही कमल है,
मोद मधुर मकरन्द, सुयश सौरभ निर्मल है॥
मन-मिलिन्द मुनिवृन्द थे; मचल मचल इस पर गये।
प्राण गये तो इसी पर, न्यौछावर होकर गये॥[1]

त्रिशूल जी ने सत्य तत्त्व का निरूपण इतिवृत्तात्मक शैली में तथा अत्यधिक स्पष्ट शब्दों में किया है। उनके अनुसार गांधी जी का सत्य भारत का युग युग का सत्य है. जिसका प्रयोग मुनि-वृन्दों ने अपने जीवन में किया था।

निःसन्देह गांधीजी का सत्य चिर पुरातन सत्य था।[2] यह वही सत्य था जिस का आश्रय ले ध्रुव और प्रह्लाद ने अन्याय और अत्याचार के प्रतीक नृप उत्तानपाद तथा हिरण्यकश्यप पर विजय पाई थी।[3] इसी सत्यपालन के हेतु दशरथ ने कैकेयी के वरदान की पूर्ति में प्राण त्याग दिये थे। 'साकेत' महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने स्वयं दशरथ के मुख से इस सत्य की व्याख्या कराई है :—

सुनो तुम भी सुरगण, चिरसाक्षि, सत्य से ही स्थिर है संसार।
सत्य ही सब धर्मों का सार, राज्य ही नहीं, प्राण-परिवार।
सत्य पर सकता हूं सब वार।[4]

---

१. श्री त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० ४

२. 'I have nothing new ro teach the world. Truth and Non-Voilence are as old as the hills. All I have done is to try experiments in both on a vast scale as I could.'
Nirmal Kumar Bose – Selections from Gandhi—p. 13.

३. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ७२

४. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० ६४

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की आध्यात्मिक भावना तथा जीवन दर्शन की अपने काव्य में व्याख्या की है। उनके अनुसार यह वह देश है, जहाँ आत्मा के आतम भाव को जगाकर तथा मृत्यु के भय को मिटाकर, पुनर्जन्म का पता लगाया गया है। जीवन-दर्शन त्याग सिखाता है और उसका अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिक है।[1] भारतीय जीवन का सत्य निष्क्रियता अथवा अकर्मण्यता की शिक्षा नहीं देता, वह कर्ममय है। गीता में इसी कर्ममय सत्य की शिक्षा दी गई है। गांधी जी को भी सत्य का यही रूप प्रिय था। जीवन की सत्‌चेतना तथा सदाचरण में ही इसका अस्तित्व है श्री मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

कर्म को कभी न हम त्यागें,
धर्म्म में अनुरागें, जागें।

मुक्ति को छोड़ न हम भागें,
मुक्ति के लिए सदा जागें।

हृदय निर्मल चिर-संशय हो।
दयामय भारत की जय हो॥[2]

गांधीजी ने स्वराज्य को भारत का नैसर्गिक धर्म माना था, यही उनका जीवन सत्य था। इस सत्य का आग्रह अत्यधिक प्रबल था। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'सत्याग्रह' काव्य में गाँधी जी के सत्याग्रह का विवेचन किया है।[3] श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी की 'अदालत में सत्याग्रह कैदी के नाते बयान' कविता में भी गाँधीजी द्वारा प्रदत्त सत्याग्रह तथा अहिंसा का वर्णन किया गया है। सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक साधन गांधीजी को इष्ट था—

आज पशुवली जगती तल ने
पाया उद्धारक सिद्धान्त,
मिसर और हंगेरी जीते
छू उसके पद कोमल कान्त।
पर इतना ही नहीं—राष्ट्र की
आज्ञा पा उद्धारक कर्म
आज अहिंसक असहकारिता
है मेरे जीवन का धर्म,
सब मतवाले कहें भले ही
मैं जड़ जीव निराला हूं—
मैं तेरे पिंजड़े का कैदी
असहयोग मतवाला हूं।[1]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० ९३
२. वही, पृ० ९५
३. वही, पृ० १७९
४. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ७१

अहिंसा में कष्ट-सहन तथा आत्मशक्ति का आग्रह था। गाँधीजी ने अहिंसा को सिद्धान्त रूप में अपनाया था, क्योंकि 'बदले में रक्त बहाने की नीति' उनके मन में अधार्मिक ही नहीं, मानवता के प्रतिकूल भी थी। उन्होंने विदेशी शासकों की क्रूरता से नैतिक तथा आत्मिक बल की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया था। श्री माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों में—

जो कष्टों से घबड़ाऊँ तो मुझ में कायर में भेद कहां ?
बदले में रक्त बहाऊं तो मुझ में 'डायर' में भेद कहां ?

× × ×

सुख पर आराध्य गमा दूं तो मुझ में कैसे ईमान मिले।
जो सत्य मिटा कर साधु बनूं तो क्यों मुझको भगवान मिले ?

+ + +

ममता की मीठी मदिरा पर ललचा कर जो मर जाऊँ मैं।
तो आर्य-भूमि आज़ाद, ईश का पद-प्रसाद क्यों पाऊं मैं ?[१]

चतुर्वेदी जी ने गाँधी जी के अहिसात्मक विचारों, नैतिक एवं आत्मिक-बल की श्रेष्ठता, तथा सत्य के वास्तविक स्वरूप का अंकन तत्कालीन गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर किया था। इन्होंने गाँधी जी के सिद्धान्तों का विवेचन अधिक भावात्मक रूप से किया है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की राष्ट्रीयता की टेक भी यही सत्य स्वाधीनता तथा कर्मण्यता है।[२]

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' नामक प्रेमाख्यानक खंड-काव्य में गाँधीजी के सत्य तथा अहिंसा की पुष्टि की है। उनका नायक पथिक स्वदेश-प्रेम-हित अपना जीवन उत्सर्ग कर देता है। सत्य, न्याय तथा अहिंसा उसके जीवन का मूलाधार है। पत्नी तथा पुत्र की मृत्यु भी उसे सत्य तथा अहिंसा के मार्ग से विचलित नहीं कर पाती। उसके अनुसार परहित-साधन तथा आत्मा का उत्कर्ष ही सत्य धर्म है—

पर पीड़न में विमुख और सम्मुख परहित-साधन में।
पर निन्दा में मूक बधिर रहना निज निर्भय मन में॥
आत्मा का अपमान न करना सत्य मार्ग पर चलना।
है वह सत्य, तुम्हें न उचित है सत से कभी विचलना॥[3]

अत्याचार से विक्षुब्ध युवक वर्ग को हिंसोन्मुख देखकर यह अहिंसा की श्रेष्ठता तथा कल्याणकारिता को समझाते हुये कहता है—

कौड़ी से यदि बदलेगा निज अमूल्य मणिमाला।
उससे बढ़ कर जग में होगा कौन मूढ़ मतवाला॥

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ५३
२. सुभद्राकुमारी चौहान : मेरी टेक, मुकुल : पृ० १०७ : षष्ठ संस्करण
३. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक : पृ० ३४

रक्तपात करना पशुता है, कायरता है मन की।
अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की ।।
भाग्यहीन जब किसी हृदय में क्रोध उदय होता है।
बढ़ती है पाशविक शक्ति आत्मिक बल क्षय होता है ।।
क्रोध, दया सुविचार न्याय का मार्ग भ्रष्ट करता है।
अपना ही आधार प्रथम वह दुष्ट नष्ट करता है ।।[1]

श्रीधर पाठक ने 'भ्रमर-गीत' में गाँधीवादी सत्य तथा अहिंसा अथवा प्रेम द्वारा विश्व को जीतने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मधुकर देशवासियों का प्रतीक है, जिसे संबोधित कर पाठक जी कहते हैं—

(१)

ग्रहण कर मधुकर नीति नई
मधुर गुंज-मद से पल-भर को भर दे भुवन जयी

(२)

पल ही में तब पलट पड़ेगी पूरन प्रेम-मयी
जग के बीच बनेगा तू जब त्रिभुवन का विजयी
ग्रहण कर मधुकर नीति नई ।।[2] (सन् १९२४)

देश का कल्याण इसी में था तथा भारत स्वतन्त्रता ही नहीं प्राणिमात्र के हृदय को तभी विजित कर सकता था जब शुष्क ज्ञान तत्त्व को त्याग, प्रेम तत्त्व को ग्रहण करता। अतः गोपियों ने भ्रमर को कुंज कुंज में जाकर प्रेम की मंजुल गुंजार भरने का संदेश दिया। 'भ्रमर-गीत' में प्रतीकात्मक शैली में गाँधीजी के राष्ट्रवादी सिद्धांतों का आरोपण कवि की नवीन उद्भावना थी।

हिन्दी-काव्य में सत्य तथा अहिंसा अर्थात राष्ट्रवाद के साधनों के विवेचन के साथ श्री त्रिशूल के सम्पूर्ण राष्ट्रवाद की भी व्याख्या एवं उसके अंशों का सविस्तार वर्णन किया है—

ऐक्य, राज्य, स्वातन्त्र्य यही तो राष्ट्र-अंग हैं,
सिर धड़, टांगों सदृश जुड़े हैं संग संग हैं।
सप्तरंग इक मनुज मिले हैं एक रंग हैं,
बुन्द बुन्द मिल जलधि बने लेते तरंग हैं।
व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज सब मिले एक ही धार में।
मिला शान्ति सुख राष्ट्र के पावन पारावार में ।।[3]

उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि राष्ट्रीयता की भावना वहीं पूर्ण होती है जहाँ अनेक मस्तिष्क होने पर भी सब के हृदय एक होते हैं और जाति, देश के हानि

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक : पृ० ६४
२. श्रीधर पाठक : भारत गीत : पृ० १०८
३. त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० २६

लाभ का समान भाव से विचार रहता है। गांधीजी ने सम्पूर्ण भारत को राष्ट्रीयता की एक शृंखला में बाँध दिया था—

कड़ी कड़ी से बन गई बहुत बड़ी जंजीर है।
अब गजेन्द्र को बांधने में समर्थ है धीर है ॥[1]

त्रिशूलजी ने अपने काव्य में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि गांधीजी ने मौखिक राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद को कर्मक्षेत्र में ला खड़ा किया था। उस अमूर्त भावना को कर्म में ढालकर मूर्त रूप प्रदान किया था।[2] इसका विवेचन गांधीजी के राष्ट्रवाद के व्यावहारिक रूप अथवा रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जायेगा।

सियारामशरण गुप्त ने गाँधी दर्शन को प्रत्यक्षरूप में स्वीकार किया है। उन के काव्य में जिस करुणा का स्वर प्रमुख है, वह भौतिक कुंठाओं की करुणा न होकर भारतीय अध्यात्म की मानव करुणा है जो मानव मात्र का धर्म है। एक सत्य से अनुप्राणित होने के कारण प्राणिमात्र का समान अस्तित्व है। उनके काव्य में सत्य के इस स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। गाँधीजी की सत्य-अहिंसा से अनुप्रेरित नीति का समर्थन करते हुये वे लिखते हैं—

तूने हमें बताया—हम सब
एक पिता की हैं संतान
हैं हम सब भाई भाई ही
हैं सबके अधिकार समान
नहीं रहेंगे मानव हम यदि
मानव ही को पीसेंगे,
सत्य अहिंसा निखिल प्रेम में
गूंज उठा तेरा जय-गान
पड़े बुद्धि पर थे ताले;
आहा आ पहुंचा बापू, तू
विप्लव की झाड़ू वाले।[3]

'आत्मोत्सर्ग' नामक कथा-काव्य की रचना ही सियारामशरण जी ने सत्य की रक्षा में प्राणाहुति करने वाले अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के त्याग पर की थी। 'बापू' काव्य ग्रन्थ में गाँधी जी के व्यक्तित्त्व सिद्धान्त और विशेषताओं का उल्लेख है।

अतः गांधीजी ने विश्व के सम्मुख पशुबल की अपेक्षा जिस सत्य तथा अहिंसा का सिद्धान्त रखा था, राष्ट्रवाद का जो उच्च आदर्श प्रस्तुत किया था, उसका पूर्ण रूपेण अनुमोदन तत्कालीन हिन्दी-काव्य में मिलता है। इतिवृत्तात्मक, भावात्मक प्रेमा-

---

१. त्रिसूल : राष्ट्रीय मन्त्र, पृ० २८
२. वही, पृ० ९
३. सियाराम शरण गुप्त : 'शुभागमन'—पाथेय : पृ० १००

ख्यानक काव्य आदि विभिन्न रूपों में इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन, विवेचन निरूपण किया गया है।

हिन्दी-नाट्य साहित्य में गांधी जी के सत्य-अहिंसा की अभिव्यक्ति

गांधीजी ने जो असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा आत्म-त्याग, मनोबल, आत्मपीडन का प्राचीन आदर्श रखा था उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति नाट्य-साहित्य में भी मिलती है। 'यंग इंडिया' में गाँधीजी ने लिखा था—'पर मेरा विश्वास है कि हिंसा से अहिंसा की मर्यादा बलवती है, दण्ड देने से क्षमादान कहीं वीरत्व का लक्षण है, क्षमादान सच्ची वीरता का प्रमाण है। यदि दंड देने की मुझ में क्षमता है और मैं दंड देना स्वीकार नहीं करता तो वही क्षमा सच्ची क्षमा है।' पाँडेय बेचन शर्मा उग्र के 'महात्मा ईसा' नामक नाटक में महात्मा ईसा के व्यक्तित्व का चित्रण गांधी जी के व्यक्तित्व के सामंजस्य में हुआ है। उग्र जी के गाँधीजी के सत्य, अहिंसा, क्षमा आदि की पुष्टि महात्मा के जीवनचरित द्वारा कराई है। वस्तुतः दोनों दो देश, दो धर्म और दो युग की एक ही महान् आत्मा हैं। इस नाटक में ईसा मसीह के व्यक्तित्व की प्रत्येक रेखा यह स्पष्ट कर देती है कि महात्मा गांधी के सदृश ईसाई मत भी सत्य का आराधक और अहिंसा का साधक है। ईसाई धर्म प्रवर्त्तक महात्मा ईसा को सत्य एवं अहिंसा की शिक्षा भारत देश में विवेकाचार्य के आश्रम में मिली थी।[1] अपने देश पहुंचकर ईसा देशवासियों को धार्मिक सत्याग्रह का मंत्र देते हुये कहते हैं—'भैया! इस समय बहुतों की आत्मायें सत्य और धर्म के भावों से शून्य हैं। चारों ओर अनाचार और अधर्म का आतंक फैला हुआ है। इसलिये पहले लोगों में धार्मिकता और सत्याग्रह का मन्त्र फूंकना होगा।

पहला ना०—प्रभो, सच्चा धर्म क्या है?

ईसा—सत्य के लिए मर मिटना. भय से अपनी आत्मा का अपमान न करना तथा सब पर दया रखना।'[2]

वे इस सत्य की प्राप्ति अहिंसात्मक साधन द्वारा करना चाहते थे—'पशु-बल को यदि पशु-बल दबायेगा तो वह महा पशु-बल हो जायगा, जिससे किसी को भी सुख न मिल सकेगा। अत्याचार के प्रतिकार के लिये धैर्य, आत्म दमन और अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ साधन हैं—अस्तु, यदि कोई तुम्हारे एक कपोल पर प्रहार करे, तो उसके सम्मुख हंस कर दूसरा गाल भी कर देना; तुम देखोगे विजय तुम्हारी होगी। फिर वह, तुम्हें मारने के लिए हाथ न उठा सकेगा।[3] नाटक में महात्मा ईसा सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणोत्सर्ग करते हैं। उत्सर्ग अथवा त्याग ही सेवामार्ग की ओर प्रेरित करता है जिससे धर्म, यश और स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है।[4] सत्य के इसी रूप का प्रतिपादन गांधी जी ने किया है। उग्र जी ने कौशल एवं सुन्दरता के साथ इस नाटक

---

१. बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० ४८

२. 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० १२४

३. वही, पृ० १४६

४. वही, पृ० १४६

में ईसाई धर्म के सत्य और अहिंसा का निरूपण कर तत्कालीन ईसाई धर्मानुगामी शासन वर्ग को उनके धर्म के मूल में अवस्थित सत्य एवं अहिंसा का उपदेश दिया है। इसके अतिरिक्त गांधी जी के राष्ट्रवाद के सैद्धान्तिक पक्ष का अति विस्तृत, परिष्कृत तथा विश्व-ऐक्य के आग्रह से पूर्ण रूप नाटक में मिलता है।

गांधी जी का यह विश्वास था कि सत्य ही ईश्वर है और सत्य की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग दया और क्षमा है :[1] जयशंकर प्रसाद के नाटकों में ऐतिहासिक कथानकों द्वारा गांधी जी की सत्य एवं अहिंसा संबंधी विचारधारा का पुष्ट रूप मिलता है। 'विशाख' नाटक में प्रसाद जी ने प्रेमानन्द द्वारा प्रेम, दया, सत्य का मार्ग प्रदर्शित कराया है। प्रेमानन्द राजा नरदेव को न्याय के दण्डात्मक आदेश की अपेक्षा उसके करुणात्मक आदेश पालन का उपदेश देते हैं क्योंकि वही प्रजा में सद्गुणों को प्रकाशित करने वाला है।[2] प्रसाद जी के नाटकों में सत्य का अधिक व्यावहारिक रूप मिलता है। वह जड़ न होकर मानव व्यवहार में विकसित दिखाई देता है। ऐतिहासिक स्थितियों के विस्तृत चित्रण में सत्य की विजय होती है। 'चन्द्रगुप्त' में धर्मराज्य की स्थापना के लिए चाणक्य और चन्द्रगुप्त क्रियाशील दिखाई पड़ते हैं। 'अजातशत्रु' नाटक में स्वयं गौतमबुद्ध सत्य के प्रणेता हैं। 'राज्यश्री' नाटक में सत्य के लक्ष्य की पूर्ति के लिए हर्षवर्द्धन तथा राज्यश्री धन-वैभव का परित्याग करते हैं—'हर्षवर्द्धन भारत का यशस्वी सम्राट्, उदार, वीर, अहिंसावादी, धार्मिक और कर्तव्यशील है।'[3]

प्रसाद जी के मतानुसार सत्कर्म हृदय में उच्च वृत्तियों का उन्नयन करते हैं, किन्तु इसके लिये दया, क्षमा जैसी महान् भावना अपेक्षित है। 'अजातशत्रु' नाटक का मूल-भाव करुणा अथवा दया है। नाटक के प्रारम्भ में ही पद्मावती अपने भाई अजातशत्रु की निर्ममता, कठोरता, उच्छृंखलता से विक्षुब्ध होकर अहिंसा, दया, करुणा का पाठ पढ़ाना चाहती है—'मानवी सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शन हिंस्र पशु जगत में क्या कम हैं?'[4] गांधी जी का यह विचार था कि मानव स्वभाव आध्यात्मिक एवं नैतिक सिद्धातों से बंधा हुआ है। वह सत् और असत् का सम्मिलित रूप है किन्तु असत् उसका कृत्रिम रूप है तथा सत्, पुण्य और स्वतन्त्रता उसका वास्तविक रूप हैं। इसीलिए उन्होंने अपने दर्शन का आधार मनुष्य के शरीरिक व्यवहार को न बना कर, उसके आध्यात्मिक तत्त्व अथवा स्वात्म को बनाया था।[5] उनका यह भी विश्वास था कि मानव मात्र का स्वभाव अपने वास्तविक रूप में एक है क्योंकि आत्मा एक है। मनुष्य जीवन को नियमित तथा संयमित रूप से अग्रसर करने

१- Nirmal Kumar Bose : Selections from Gandhi—p. 6.
२. जयशंकर प्रसाद : विशाख : पृ० ४१
३. जयशंकर प्रसाद : राज्यश्री : पृ० ४
४. जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० २६
५. Gopinath Dhawan : The Political Philosophy of Mahatma Gandhi—p. 117.

वाला तत्त्व एक है।'[1] इसी अध्यात्मिक एवं मनोवैज्ञानिक आधार पर उनके हृदय परिवर्तन का सिद्धान्त निर्भर था। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में गांधी जी की इस मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक एवं नैतिक विचारधारा की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। 'अजातशत्रु' नाटक में गौतम बुद्ध बिम्बसार को अहिंसा का उपदेश देते हुए छोटी रानी छलना के अविचार को दया-करुणा के साधन से परिवर्तित करने का उपदेश देते हैं—

'गौतम—शीतल वाणी-मधुर व्यवहार-से क्या वन्य पशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन्, संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतनी कटार नहीं। वाक् संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है। अस्तु, अब मैं तुमसे एक काम की बात कहना चाहता हूं। क्या तुम मानोगे-क्यों महारानी ?'[2]

गांधी जी की अहिंसात्मक नीति एकान्तिक अथवा संकीर्ण राष्ट्रवाद का पोषण नहीं करती। वे इस सिद्धांत द्वारा विश्वमत्री अथवा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की प्रशस्त भावना का विकास चाहते थे। प्रसाद जी को गांधी जी का अहिंसा सिद्धान्त पूर्णतया मान्य था। वे भी परदुःखकातरता की उच्च भावना से मंडित अहिंसा को विश्व-मैत्री का एकमात्र मार्ग मानते थे। अजातशत्रु' नाटक में श्यामा को गौतम बुद्ध इस मार्ग के अनुसरण का ज्ञान प्रदान करते हैं।[4] गांधी जी के सदृश वे भी नारी जीवन के लिए अहिंसा अथवा करुणा को आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं। कठोर पौरुष को स्त्रियां ही स्नेह, शीतलता, सहनशीलता, सदाचार की शिक्षा दे सकती हैं। 'अजातशत्रु' नाटक में मल्लिका का चरित्र इसका प्रमाण है। प्रेम अथवा करुणा हृदयपरिवर्तन का अमोघ अस्त्र है। इसी नाटक में अजात, छलना, शक्तिमती, विरुद्धक, प्रसेनजित् आदि पाशविक प्रवृत्ति के पोषक पात्रों का प्रेम और करुणा द्वारा हृदय परिवर्तन हो जाता है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त तथा कार्नेलिया का विवाह करा कर प्रेम और अहिंसा द्वारा विदेशी शक्तियों को विजित करने का आदर्श रखा है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है। भारतीय संस्कृति तथा इतिहास के गौरवमय पृष्ठों में प्रवाहित सत्य तथा अहिंसा की अमृतधारा को हिन्दी नाटकों में प्रतिबिंबित कर, प्रसाद जी ने राष्ट्रीय भावना का शाश्वत रूप प्रस्तुत किया है।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'अशोक' नामक ऐतिहासिक नाटक में कलिंग युद्ध के वीभत्स व्यापार तथा भयंकर हत्याकांड के उपरान्त, कलिंग के संन्यासी महाराज सर्वदत्त द्वारा अशोक को अहिंसा का उपदेश दिलाया है। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि कठोर हृदय अशोक कलिग युद्ध की भयंकर हिंसात्मकता से द्रवित हो गया था। उसकी मानवता इसके विरुद्ध चीत्कार कर उठी थी और उसने अहिंसा के उत्कृष्ट मार्ग बौद्ध-धर्म को ग्रहण कर, भारत तथा एशिया के कई देशों में इस

---

१. Ibid : p. 119.

२. **जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ३३**

३. **जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० १४६**

धर्म का प्रचार किया था। मिश्र जी ने सर्वदत्त द्वारा सत्य एवं अहिंसा के महत्त्व का प्रदर्शन किया है—

'सर्वदत्त—डर क्या है सम्राट्! मुझे और किसी का नहीं, केवल डर का डर है—डर मेरे पास न आये, मुझे इसी का डर है—मैंने जो कुछ कहा सत्य कहा है सम्राट्। आतंक सत्य को दबाने में सफल नहीं हो सकता – कभी हुआ नहीं है। और फिर जो आप हैं वही मैं हूं। न आप सम्राट हैं और न मैं संन्यासी हूं। यह अन्तर केवल भ्रम है। जो वस्तु तलवार से ली जाती है, वह तलवार से ही शासित होती है। यह विजय 'विजय' नहीं है - विजय वह है, जो मनुष्य की आत्मा में ईश्वरीय प्रकाश की किरण फेंके, और वह विजय प्रेम से स्थापित होती है—तलवार से नहीं। यदि विजयी होना चाहते हो सम्राट, तो सृष्टि के एक एक कोने में प्रेम का सन्देश भेजो। इसमें सफल हो सके, तो अनन्त काल के लिए विजयी बने रहोगे।'[1] इसके अनन्तर अशोक विश्व-प्रेम का उपासक हो गया था।[2]

गांधी जी ने शस्त्र की अपेक्षा प्रेम तथा आत्मा के बल को अधिक महान् तथा शक्तिशाली माना था।[3] उन्होंने हिंसा का परित्याग सिद्धान्त रूप में किया था। उनकी इस विचारधारा की पूर्ण अभिव्यक्ति मिश्र जी के इस नाटक में मिलती है। गांधी जी आत्मबल या मनोबल के मार्ग को कायरता का सूचक नहीं मानते हैं। इसके अतिरिक्त गांधी जी का सत्य और अहिंसा केवल बौद्ध धर्म की करुणा एवं दया नहीं थी, सनातन धर्म में भी इसकी शिक्षा मिलती है। मिश्र जी ने अपने युग की अहिंसा भावना का विश्लेषण सर्वदत्त द्वारा कराया है। कलिंग के महाराजा, अशोक से युद्ध या आधीनता का संदेश पाकर भी नरसंहार के लिए तत्पर नहीं होते क्योंकि उनके मन में ईश्वर को अपनी सृष्टि का संहार इष्ट नहीं है। उनका पुत्र जयंत रक्तपात में ही जीवन तथा वीरता के लक्षण देखता और अहिंसा को कायरता मानता है। सर्वदत्त उसकी मिथ्या धारणा के निवारण के लिए कहते हैं :—

'जयन्त! जो जितने ही अत्याचार करते हैं, उतने ही कायर होते हैं, और जो अत्याचार को सहन करते हैं, वे उतने ही वीर। युद्ध और हत्या से मनुष्य की आत्मा सदैव पतित होती आई है, कभी ऊंची नहीं हुई। तुम किसके साथ युद्ध करोगे जयन्त? तुम क्या हो और अशोक क्या है। जिस हाड़ मांस के पुतले को तुम सब कुछ समझ रहे हो, वह तुम नहीं हो। तुम समझते हो, मैं बुद्ध का अनुयायी हूं, किंतु दया और स्नेह की शिक्षा क्या तुम्हारे सनातन धर्म ने नहीं दी?'

श्री सियारामशरण गुप्त ने 'पुण्य-पर्व' नामक ऐतिहासिक कथा संयुक्त नाटक में गाँधी जी के सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों की पुष्टि की है। उन्हें सैद्धान्तिक तत्त्व

---

१. लक्ष्मीनारायण मिश्र : अशोक : पृ० १४७
२. वही, पृ० १४६
३. 'The force of arm is powerless when matched against the force of love or soul.' M. K. Gandhi : Satyagrah—p. 14.
४. लक्ष्मीनारायण मिश्र ; अशोक : पृ० १०६

विवेचन में सफ़लता मिली है। इन्द्रप्रस्थ के राजा सुत सोम अहिंसात्मक साधना द्वारा वाराणसी के निर्वासित हिंसोन्मत्त राजा को सत्य, धर्म, न्याय-परोपकार के मार्ग पर लाते हैं। सुत सोम गांधी जी की भांति आत्मबल तथा आत्मबलिदान द्वारा सत्य-प्रचार में विश्वास करते हैं। उन्हें शारीरिक बल प्रयोग अभीप्सित नहीं। इस नाटक में सुत सोम कहते हैं—

'इसीलिए कि सद्विचारों का यह उपाय मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तुम्हें या तुम मुझे मार डालते, तो क्या इससे अभीप्सित फल की प्राप्ति हो जाती? यदि हम मनुष्य को खिला नहीं सकते, तो हमें उसकी हत्या करने का अधिकार नहीं है। और साथ ही चाहता था कि यदि सम्भव हो, तो मैं तुम्हारे मन-परिवर्तन का प्रयत्न भी करूँ।'[1] गांधी जी की भाँति सुत सोम की अहिंसा का भी मूलाधार है मनुष्यमात्र की सद्भावना—'मुझे तो अन्त में मनुष्य मात्र की सद्भावना में विश्वास है।'[2]

उदयशंकर भट्ट के 'विक्रमादित्य' नाटक में युद्ध और संघर्ष को मूलाधार बनाने पर भी सत्य तथा अहिंसा को महान् समझा गया है। विक्रमादित्य के चरित्र में दार्शनिकता, क्षमा, दया की रेखाएं सत्य एवं अहिंसा का ही परिणाम हैं।[3]

जयशंकर प्रसाद तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भारतीय इतिहास के हिन्दू काल की ऐतिहासिक कथाओं तथा महत् चरित्रों के माध्यम से अपने युग की महान् राष्ट्रीय विचारधारा—सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का निरूपण किया है। अतः केवल भारतीय हिन्दुओं की भावनाओं का ही साधारणीकरण उनके साथ हो सकता था। हिन्दू धर्म, इतिहास तथा संस्कृति के प्रति विशेष मोह होने पर भी गांधी जी का सत्य तथा अहिंसा किसी एक धर्म की परिभाषा में बंधा हुआ नहीं था। वे सभी धर्मों को सत्य तक पहुंचने के विविध मार्ग मानते थे।[4] उन्होंने इस तथ्य का भी उन्मूलन किया था कि सभी धर्मों का मूल दया एवं करुणा अर्थात् अहिंसा है।[5] गांधी जी ने इस्लाम धर्म को भी बौद्ध, हिन्दू तथा ईसाई धर्म की भांति शांतिप्रिय धर्म माना था, केवल इन धर्मों की शांति की मात्रा में अन्तर है।[6] भारतीय मुसलमानों की राष्ट्रीय भावना को जागृत करने तथा उन्हें भी सत्य एवं अहिंसा के मार्ग का अनुकरण कराने के लिये यह आवश्यक था कि उनके धर्म-ग्रन्थों, मुस्लिम

---

१. सियाराम शरण गुप्त : पुण्य पर्व : पृ० १०६
२. वही, पृ० १०८
३. उदयशंकर भट्ट : विक्रमादित्य : पृ० १४
४. Gandhi : My Religion—p. 19
५. Ibid : p. 19
६. 'I do regard Islam to be a religion of peacc in the same sense as christianity, Buddhism and Hinduism are. No, doubt there are differences in degree, but the object of these religions is peace.' M. K. Gandhi—My Religion : p 27

इतिहास के महान् चरित्रों तथा घटनाओं से सत्य, आत्मबल और अहिंसा के उदाहरण रखे जायें। हिन्दी नाट्य क्षेत्र में यह कार्य प्रेमचन्द जी द्वारा सम्पन्न हुआ है। गांधी जी के सत्य एवं अहिंसा का पाठ मुसलमानों को पढ़ाने के लिये ही उन्होंने 'कर्बला' नाटक की रचना की थी। हिन्दू इतिहास में रामायण तथा महाभारत का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, वही मुस्लिम इतिहास में कर्बला के संग्राम का है। वीरात्मा हुसैन इस नाटक के नायक हैं, जिनके आत्मबलिदान की इसमें कथा है। हुसैन बड़े विद्वान्, सच्चरित्र, शांत प्रकृति, नम्र, सहिष्णु, ज्ञानी, उदार और धार्मिक महापुरुष थे। यद्यपि अरब में उनकी जोड़ का अन्य वीर न था किन्तु उनकी आत्मा इतनी उच्च थी कि वह सांसारिक राज्य भोग के लिए संग्राम क्षेत्र में उतर कर उसे कलुषित नहीं करना चाहते थे। उनके जीवन का उद्देश्य आत्म शुद्धि तथा धर्म था। उनकी शक्ति न्याय व सत्य की शक्ति थी। दैवयोग से अधर्म ने धर्म को दबा दिया, उन्होंने निरन्तर संधि का प्रयास किया क्योंकि वे सत्य और अहिंसा में विश्वास करते थे। अन्त में विवश होकर न्याय की रक्षा के लिए ही उन्हें युद्धरत होना पड़ा था। इस नाटक में इस ओर भी संकेत मिलता है कि कुछ हिन्दू भी हुसैन के साथ थे। हिन्दू पात्रों के संवाद में हुसैन की धर्मनिष्ठा का वर्णन इन शब्दों में मिलता है—

'रामसिंह—हुसैन धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। अपने बंधुओं का रक्त नहीं बहाना चाहते।

ध्रुवदत्त—जीव हिंसा महापाप है। धर्मात्मा पुरुष कितने ही संकट में पड़े किन्तु अहिंसा, व्रत को नहीं त्याग सकता।'[1]

आत्मत्याग का प्रशस्त रूप इस नाटक की इन काव्य पंक्तियों में मिलता है –

मौत का क्या उसको ग़म है, जो मुसल्मां हो गया।
जिसकी नीयत नेक है, जो सिद्क़ ईमां हो गया।।[2]

यह मुसलमानों के धर्म ग्रन्थों में भी उपदेश दिया गया है कि कत्ल करने की अपेक्षा दोस्त बना लेने में अधिक फायदा है।[3]

श्री मैथिलीशरण गुप्त के नाट्य-काव्य 'अनघ' का मूलभूत विचार-बिन्दु भी सत्य, अहिंसा है। गौतम बुद्ध का चरित्र, भारत का इतिहास तथा साहित्य, भारत की आध्यात्मिक प्रौढ़ता के प्रदर्शक हैं। 'अनघ' नाट्य काव्य का उद्देश्य कवि नाटककार ने प्रारम्भ में ही अभिव्यक्त कर दिया है कि इसमें उसे दयामय भगवान् बुद्ध के शुद्ध चरित्र और उनके सिद्धान्तों का अनुकरण, अनुशीलन एवं अभिनय करना है। मघ भगवान् बुद्ध का एक साधनावतार है। गुप्त जी मघ द्वारा समाज में सत्य तथा अहिंसा की स्थापना करा कर अधर्म, अनीति, अन्याय को मिटा डालना चाहते हैं। मघ आत्मा भी आज्ञा मानता है और सच्चे अर्थों में मानव धर्म का पालन करता

१. प्रेमचंद : कर्बला : पृ० ३६
२. वही, पृ० ३६
३. वही, पृ० २३०

है ।[1] वास्तव में मघ गांधी जी का प्रतिरूप है जो सत्य एवं ग्रहिंसा के उच्चादर्शों से परिपूर्ण है ।[2] उसके मतानुसार सच्चा न्याय विधान वही है जिसमें किसी का मत स्वातन्त्र्य न छिने । सत्य तथा ग्रहिंसा का पुजारी मघ, समाज ग्रौर शासक वर्ग के ग्रन्याय एवं ग्रत्याचारों का विरोध करता है । सुरभि के शब्दों में मघ के जिन उच्चादर्शों तथा महान् चरित्र का वर्णन मिलता है यह गीता तथा वेदान्त का ग्रध्यात्म है :—

संयम ही उनके उच्च हृदय का बल है,
पर-हित ही उनके प्रेम विजय का फल है।
त्यागव्रत ही विश्वस्त कर्म है उनका;
निष्काम कर्म ही परम धर्म है उनका।[3]

मघ धर्म को सनातन मानता है, जो स्वयं सिद्ध है। गांधी जी के समान मघ भी मानवता की ग्राराधना को सत्य का मूल रूप मानता है। उसकी ग्रहिंसा का ग्राधार भी क्षमा तथा प्रेम है । पाप से घृणा करो किन्तु पाप को प्रेम द्वारा परिवर्तित करो ।[4] वह ग्रात्मबल संयुक्त ग्रहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा ग्रत्याचार, ग्रन्याय का दमन करता है । इसके लिये कारावास कठोर दंड भी सहर्ष स्वीकार करता है—

प्रेम करना है तो कर त्याग
नहीं तो है वह कोरा राग।[5]

राजा रानी के संवाद में गुप्त जी ने भारतीय जीवन दर्शन, राजनीति दर्शन के मूल तत्त्वों—प्रेम तथा त्याग का सुन्दर वर्णन किया है।[6] ग्रन्त में सत्य तथा ग्रहिंसा की विजय दिखाई है । गुप्त जी ने काव्यात्मक शैली में लिखे इस नाटक में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक स्थिति की रूपरेखा के बीच सत्य तथा ग्रहिंसा को मूर्त रूप प्रदान किया है।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में भी गांधीवादी सत्य ग्रहिंसा संबंधी विचारधारा ध्वनित हो रही है यद्यपि उसका स्पष्ट विवेचन नहीं किया गया है । 'जाति ग्रौर धर्म के नाम पर मनुष्यता के नाम पर मनुष्यता के टुकड़े' करना प्रेमी जी के सत्य के प्रतिकूल है । 'रक्षा-बन्धन' नाटक में वे विक्रमादित्य द्वारा धर्म एवं सत्य का निरूपण करते हुए कहलाते हैं—"···मज़हब मनुष्य के हृदय के प्रकाश का नाम है । जो मज़हब का नाम लेकर तलवार चलाते हैं, वे दुनिया को धोखा देते हैं, वे धर्म का

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : ग्रनघ : पृ० १८
२. 'गांधी नीति की साकार प्रतिमा मघ के ग्रादर्श चरित्र की कल्पना ग्रनघ की मूल विशेषता है ।'—उमाकान्त गोयल—मैथिलीशरण गुप्त : कवि ग्रौर भारतीय संस्कृति के ग्राख्याता : पृ० २३
३. मैथिलीशरण गुप्त : ग्रनघ : पृ० १८
४. वही, पृ० ५६
५. वही, पृ० ८६
६. वही, पृ० ७२

अपमान करते हैं। सच्चा वीर वही है, खरा राजपूत वही है, जो न हिन्दुओं के अन्याय का हिमायती है और न मुसलमानों के। वह न्याय का साथी है और आजादी का दीवाना है। उसे अत्याचारी हिन्दू से ईमानदार मुसलमान ज्यादा प्यारा है। वह अत्याचारी मुसलमान का जितना दुश्मन है, बेईमान और विश्वासघाती हिन्दू का उससे कहीं अधिक शत्रु।' प्रेमी जी ने गाँधी जी के सत्य एवं न्याय का विवेचन हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता के लक्ष्य से किया है।

सेठ गोविन्ददास ने वर्तमान युग तथा सामाजिक जीवन से कथा लेकर 'प्रकाश' नाटक में सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का विवेचन किया है। इस नाटक में भी सत्य तथा अहिंसा की विजय होती है। इस नाटक के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है—'यह नाटक मैंने तारीख २५ जून १९३० को दमोह-जेल में लिखना आरम्भ किया और दस दिनों में यह समाप्त हो गया।

× × ×

यह नाटक सामाजिक है। वर्तमान समाज का राजनीति से घनिष्ट सम्बन्ध हो गया है। इसलिये इसमें कुछ राजनीतिक बातों का भी समावेश हुआ है। अतः इसे अंग्रेजी में 'सोशोपोलिटिकल ड्रामा' कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा।'[१]

प्रकाश गांधीवादी विचारों का है। उसे नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति राजा जयसिंह के यहाँ दिये गये भोज में धनिक वर्ग तथा निर्धनों के बीच रखा गया भेदभाव अच्छा नहीं लगता। वह निर्धनों को धनवानों के भोज से असहयोग करने को कहता है। सत्य समाज के संगठन द्वारा वह जनता को सत्य का अनुभव तथा सत्य मार्ग का प्रदर्शन करा कर उनके दुःखों का परिमार्जन करना चाहता है। अपनी मां को समझाते हुए प्रकाश कहता है—

'वही तो बताता हूं। अजयसिंह के उद्यान से लौट कर हम सभी लौटे हुए लोगों ने एक सत्य समाज का संगठन किया है। उसका सभापति तेरा प्रकाश बनाया गया है। सत्य को संसार के सम्मुख रखना इस समाज का कार्य है। ग्राम और नगर-वासियों के सुख-दुःख का एक दूसरे को सत्य अनुभव हो तथा उस सत्य अनुभव के पश्चात् सत्य-मार्गों द्वारा ग्राम और नगर निवासियों के दुःखों का परिमार्जन किया जाय, तभी संसार में सत्य-वस्तु की स्थिति और सत्य सुख की स्थापना हो सकती है। इस खाई पर पुल बांधने से ही समाज पार लग सकता है। महात्मा गांधी के सन् २० के असहयोग और सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन के पूर्व यह कार्य आवश्यक था। इसके न होने के कारण ही ये आन्दोलन असफल हो गये। सत्य-समाज यही कार्य करेगा।'[२] सत्य की सर्वाधिक व्यावहारिक परिभाषा सेठ गोविन्ददास ने इसमें की है। राष्ट्रीय जीवन की चितवृत्तियों के उदात्तीकरण के लिए सत्य के इस स्वरूप की स्थापना आवश्यक थी।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक

१. सेठ गोविन्ददास : प्रकाश : निवेदन
२. सेठ गोविन्ददास : प्रकाश : पृ० ५५

नाटकों में गांधी जी के सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्त, विचार तथा व्यवहार की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उग्र जी, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, सेठ गोविन्ददास आदि नाटककारों ने सत्य तथा अहिंसा को संघर्ष तथा कर्ममय जीवन का महान् धर्म तथा आवश्यक कर्तव्य ठहराया है। उनके पात्रों ने कुशलता के साथ सत्य तथा अहिंसा के कठिन व्रत को निभाने का सफल अभिनय किया है। राष्ट्रवाद के इतिहास में ये नाटक हिन्दी साहित्य की अमर देन हैं।

कथा साहित्य में गांधी जी के राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति

काव्य तथा नाटकों की भांति हिन्दी कथा साहित्य में भी गांधी जी के दार्शनिक विचारों अथवा राष्ट्रवाद के सैद्धान्तिक पक्ष की अभिव्यक्ति मिलती है। इस युग के उपन्यास तथा कहानियों में गांधी जी के राष्ट्रवाद के कर्म पक्ष अथवा व्यावहारिक कार्यक्रम का जो विस्तृत वर्णन मिलता है, उसमें सैद्धान्तिक पक्ष प्रतिध्वनित हो रहा है। उपन्यास तथा कहानी रचना के क्षेत्र में प्रेमचंद जी का नाम अमर एवं अग्रगण्य है। वे अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों तथा गांधीवाद से विशेष रूप से प्रभावित थे। जिस समय गांधी जी देश जीवन को नवीन राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों में दीक्षित कर रहे थे, उसी समय प्रेमचन्द जी की लेखनी द्रुत गति से देश की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याओं तथा उनकी राष्ट्रीय विचारधारा एवं आन्दोलनों का अंकन कर रही थी। राष्ट्रीय पराधीनता के उच्छेदन के लिए जिस सत्य एवं अहिंसा के दार्शनिक सिद्धान्तों का आधार गांधी जी ने लिया था, उसकी कर्ममय वीरता की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द जी के उपन्यासों तथा कहानियों में मिलती है।

गांधी जी का सत्य केवल सत्य भाषण मात्र नहीं था। विचार तथा कार्य द्वारा सत्य की साधना उन्हें इष्ट थी। प्रेमचन्द जी के प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, कर्मभूमि, प्रभृति उपन्यासों में सत्य तथा अहिंसा का उपदेश मात्र अथवा जड़ रूप नहीं है। पात्रों ने अपनी गतिविधि एवं व्यवहार द्वारा गांधी जी के सत्य-अहिंसा संबंधी सिद्धान्तों को क्रियाशील रूप में रखा है। प्रेमाश्रम के प्रेमशंकर, रंगभूमि के सूरदास, कायाकल्प के चक्रधर, कर्मभूमि के अमरकान्त आदि पात्रों ने सत्य तथा अहिंसा को वाणी प्रदान की है।

गांधी दर्शन मूलतः आध्यात्मिक जीवन दर्शन है। उसका मानव की सद्प्रवृत्तियों में अनन्य विश्वास है। सत्यनिष्ठा एवं सहिष्णुतापूर्वक कष्ट सहन कर सत्याग्रही को अवश्य विजय प्राप्त होती है और वह असत्य तथा अन्याय के उन्मूलन में सफल हो जाता है, इसकी पुष्टि प्रेमचन्द जी के प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि आदि उपन्यासों में दृष्टिगत होती है। प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर किसानों की सेवा करके उनके अन्याय, अत्याचार, तथा शोषण की समस्या का अहिंसात्मक रीति से समाधान करना चाहता है।[1] यही उसके जीवन का सत्य है। इसी में राष्ट्र का कल्याण है। घृणा,

१. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम : पृ० १५१

कटुता, द्वेष आदि विभाजक प्रवृत्तियों के लिये उसके हृदय में स्थान नहीं है।[१] गांधी जी की अहिंसा के पुजारी, प्रेमशंकर, क्रुद्ध भीड़ के हाथों स्वयं चोट खाकर डाक्टर प्रियनाथ की रक्षा करते हैं।[२]

इसी उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने एक अन्य पात्र की सृष्टि गांधी जी के सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए की है—यह हैं लखनपुर के मुसलमान किसान कादिर मियां। गांधी जी के राष्ट्रवाद के दार्शनिक अथवा विचार-पक्ष की पूर्णता इसी में थी कि मुसलमान और ग्रामीण भी उनका जीवन में प्रयोग करें। असहयोग आन्दोलन में हिन्दू मुसलमानों ने समान रूप से भाग लिया था और देश के अधिकांश मुसलमान सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों से प्रभावित हुए थे। 'प्रेमाश्रम' की रचना इस आन्दोलन के बाद हुई थी। अतः प्रेमचन्द जी ने कादिर को सत्य एवं अहिंसा के मार्ग का पूर्ण अनुगामी दिखाया है। सत्य से प्रेरित निश्चिन्त और निर्भय होकर ग्राम में रहता है। जिस समय गौसखां निर्दयता से लगान वसूल कर रहा था और इजाफा लगने से सारा गांव दब गया था उस समय भी सत्य के साधक कादिर को अपने सर्वनाश का भय नहीं था। प्रेमचन्द जी ने स्वयं उसके चरित्र की इस विशेषता के संबंध में लिखा है :—

'उसके हृदय में राग और द्वेष के लिए स्थान न था और न इस बात की ही परवाह थी कि मेरे विषय में कैसे कैसे मिथ्यालाप हो रहे हैं। वह गांव में विद्रोहाग्नि भड़का सकता था, खां साहब और उनके सिपाहियों की खबर ले सकता था। गांव में ऐसे कई उद्दंड नवयुवक थे जो इस अनिष्ट के लिए आतुर थे। किन्तु कादिर उन्हें संभाले रहता था। दीनरक्षा उसका लक्ष्य था, किन्तु क्रोध और द्वेष को उभाड़ कर नहीं, वरन् सद्व्यवहार तथा सत्य प्रेरणा से।'[३] वह हिंसात्मक रीति द्वारा अन्याय के प्रतिरोध के विरुद्ध है। उस प्रवृति को 'आग में कूदने' से कम नहीं समझता।[४] उसका सेवा भाव इतना प्रबल है कि किसी का कष्ट शीघ्र ही उसे द्रवित कर देता है।[५] अपनी जान बचाने के लिए फरेब करना उसके सिद्धान्त के विरुद्ध था। उसके जीवन का यह धर्म था कि 'सच कहने के लिए जेल भी जाना पड़े तो सच से मुंह न मोड़े।'[६] प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण जीवन के इस मुसलमान पात्र द्वारा गांधीजी के सिद्धान्तों की जितने सशक्त रूप में अभिव्यक्ति की है वह हिन्दीसाहित्य क्षेत्र में उन्हीं की विशेषता है।

'रंगभूमि' का सूरदास गांधी जी के सत्य तथा अहिंसा का मूर्त रूप है। 'सूरदास गांधी जी का ही प्रतिरूप है, कहना चाहिये उनका लघु साहित्यिक संस्करण

---

१. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम : पृ० १५२
२. वही, पृ० २६८
३. वही, पृ० ४३
४. वही, पृ० ४७
५. वही, पृ० ५०
६. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम : पृ० ८९

है। वह गांधी जी के विचारों और उनके अहिंसात्मक सत्याग्रह का सजीव प्रतिनिधि है।'[1] विदेशी पूंजीवादी साम्राज्यशाही की मशीनी सभ्यता के आघात से देश को जर्जरित होने से बचाने के लिए वह अपने प्राणों का बलिदान दे देता है, किन्तु सत्य तथा अहिंसा का परित्याग नहीं करता। गांधीदर्शन आस्तिक दर्शन है, अतः सूरदास का ईश्वर पर अटूट विश्वास था।[2] सत्य, न्याय तथा धर्म के लिए उसने आत्मबल अथवा अहिंसा की लड़ाई लड़ी थी।[3] वह भीख मांग कर अपना निर्वाह करता है, किंतु अपनी जमीन नहीं बेचता, क्योंकि इस जमीन से मुहल्ले वालों का बड़ा उपकार होता है, आसपास के सब ढोर वहीं चरते हैं।[4] जान सेवक ने उसे कितने ही प्रलोभन दिये, लेकिन वह सत्य-पथ से विचलित नहीं हुआ। उसकी विवेक बुद्धि और न्यायशीलता इतनी जागरूक है कि वह बाप-दादों से मिली जमीन का मालिक स्वयं को नहीं मानता क्योंकि वह उसने अपने बाहुबल से पैदा नहीं की है।[5] उपन्यास के प्रारंभ में ही उसने सत्यासत्य का विवेचन कर दिया है,[6] जिसका आधार वह जीवन पर्यन्त नहीं त्यागता। धर्मपालन में प्रवृत्त सूरदास सामाजिक लांछनों से भी भयभीत नहीं होता। सुभागी को कष्ट के समय आश्रय देता है क्योंकि—'आदमी का धरम है कि किसी को दुःख में देखे तो उसे तसल्ली दे। अगर अपना धरम पालने में भी कलंक लगता है तो लगे बला से। इसके लिए कहां तक रोऊं। कभी न कभी तो लोगों को मेरे मन का हाल मालूम हो जायगा।'[7] वह अहिंसा का अनन्य उपासक है। उसकी जमीन को लेकर जब नगर में विशाल आन्दोलन उठ खड़ा होता है और हिंसात्मक प्रणाली द्वारा जान सेवक को परास्त करने का आयोजन होता है तो सूरदास लठैतों से कहता है कि तुम लोग यह ऊधम क्यों मचा रहे हो। वह उन्हें हिंसा-मार्ग के अवलम्बन से रोकता है।[8] उसे मर जाना इष्ट था किंतु हिंसात्मक साधन प्रिय नहीं था।[9] रंगभूमि के दोनों गीतों में गांधी दर्शन के प्रति पूर्ण विश्वास तथा उसकी सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। रामदीन गुप्त ने प्रेमचन्द के इन गीतों के संबंध में लिखा है—'इन गीतों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द इनके द्वारा स्वाधीनता संग्राम के वीर सेनानियों को गांधी-दर्शन के मूल सिद्धान्तों का बोध कराना चाहते थे।'[10]

---

१. रामदीन गुप्त : प्रेमचन्द और गांधीवाद : पृ० १९१
२. प्रेमचन्द : रंगभूमि : पृ० २३५
३. वही, पृ० ३६०
४. वही, पृ० २०
५. वही, पृ० १२७
६. वही पृ० १७
७. प्रेमचन्द : रंगभूमि : पृ० १९१
८. वही, पृ० ३४५
९. वही, पृ० ३४५
१०. रामदीन गुप्त : प्रेमचन्द और गांधीवाद : पृ० १९८

रंगभूमि के विनय, कायाकल्प के चक्रधर तथा कर्मभूमि के अमरकांत सूरदास की तुलना में अधिक दुर्बल पात्र हैं। लेकिन इन्हें भी गांधीवादी सिद्धान्त पूर्णतया मान्य है। इनके चरित्रों में गांधी जी के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति अधिक सशक्त रूप में नहीं हुई है। इन लोगों ने गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को ही विशेष रूप से क्रियान्वित किया है। इनके द्वारा गांधी जी का सत्य अहिंसा का सिद्धान्त क्रियात्मक रूप में सम्मुख आता है। नारी पात्रों में प्रेमचन्द के रंगभूमि उपन्यास की नायिका सोफिया इस दिशा में कुछ अग्रसर दिखाई देती है। साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक भेदात्मकता का उसमें लेशमात्र भी नहीं है। वह सत्यासत्य के निरूपण में सदैव रत रहती है। धर्मतत्वों को बुद्धि की कसौटी पर कस कर देखती है, यह उसका स्वाभाविक गुण है। केवल धर्म-ग्रन्थों के आधार पर कोई सिद्धान्त उसे मान्य नहीं है। अध्यात्म और आत्मदर्शन उसके चरित्र की विशेषता है।[1]

प्रेमचन्द जी के पश्चात् सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों में गांधीवाद अथवा गांधी-दर्शन की अभिव्यक्ति मिलती है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'गोद' एवं 'अन्तिम आकांक्षा' हैं। उन्होंने गांधी जी के सत्य की प्रतिष्ठा सामाजिक जीवन में अति सरल रूप में की है। 'गोद' उपन्यास में निंद्य अपवाद के कारण कौंसा की कन्या किशोरी का जीवन समाज की वेदी पर बलिदान होने जा रहा था, तभी शोभाराम अन्त:प्रेरणा तथा सत्य द्वारा प्रेरित होकर अपने परिवार की अनभिज्ञता में उससे विवाह कर लेता है।[2] सामाजिक अत्याचार का अहिंसात्मक रीति से निराकरण गांधी जी की विशेषता थी। सियारामशरण गुप्त ने शोभाराम द्वारा उस सिद्धान्त एवं आदर्श का पालन अवश्य कराया है किन्तु उसका चरित्र अत्यधिक दुर्बल है, उसमें परिवार तथा बड़े भाई का सामना करने का साहस नहीं है। उससे अधिक सिद्धान्त पालन की शक्ति एवं सबलता विधवा सोना में है, जो इस उपन्यास की गौण पात्र है। 'अन्तिम आकांक्षा में आत्मचरित प्रधान शैली में स्वयं लेखक का व्यक्तित्व उभड़ आया है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' नामक राजनीतिक उपन्यास में १९२० ई० से ३७ ई० तक के राष्ट्रीय आन्दोलन की विस्तृत कथा दी गई है। गांधी जी के राष्ट्रवादी दार्शनिक विचारों का भी निरूपण विस्तार से किया गया है। उपन्यास के प्रारंभ में ही अहिंसा का विवेचन करते हुए लेखक ने लिखा है, 'दलीप ! अहिंसा कुछ दब्बूपन की दीनता नहीं है। जुल्म के आगे हम सर रोपते हैं कुछ सर नहीं झुकाते। दिलेरों की अहिंसा और है, बुजदिलों की अहिंसा और। हमारी अहिंसा में जो हिंसा की बू है, वह हमारी अपनी वृत्तियों से है—दूसरे से नहीं। और सच पूछो तो आज अहिंसा कांग्रेस की नीति ही नहीं, गांधीत्व की भित्ति भी है। संसार इसे एक राजनीतिक शस्त्र समझा करे, मैं तो इसे जीवन का मूल तत्व मानता हूं।'[3] अहिंसा के प्रभाव के संबंध में आगे कहलाया है, 'अहिंसा तो वह तलवार है, जिसकी चोट

---

१. प्रेमचन्द : रंगभूमि : पृ० ४२

२. सियारामशरण गुप्त : गोद : पृ० १०७

३. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० २०

बचाने को कोई ढाल ही नहीं।'[1] हिंसा और अहिंसा का अन्तर स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है, 'हिंसा की तह में तुम्हारा भय है, अहिंसा की तह में आत्मसंयम है।[2]

प्रेमचन्द-युग के अन्य उपन्यासकारों ने गांधीवादी सिद्धान्तों की संयोजना की अपेक्षा तत्कालीन उत्पीड़न का अधिक वर्णन किया है। 'रंगभूमि' के 'सूरदास' जैसे गांधी-दर्शन को सजीव एवं मूर्त रूप प्रदान करने वाले चरित्र की सर्जना अधिक न हो सकी।

कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द, सुदर्शन तथा विशंभरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में सत्य तथा अहिंसा की पुष्टि मिलती है। प्रेमचन्द जी की 'विश्वास' कहानी का नायक आप्टे राष्ट्रसेवी प्रजा दु:खपीड़ित अहिंसाव्रतधारी है। विदेशी शासकों के अत्याचार से विक्षुब्ध जनता को वह अहिंसा का उपदेश देता है। शुद्धात्मा, नैतिक आचरणपूर्ण, दिव्य प्रेम लसित आप्टे के सत्य तथा अहिंसा संबंधी सिद्धान्तों ने मिस जोशी के हृदय का परिवर्तन कर दिया था।[3]

प्रेमचन्द जी की 'मैकू' कहानी में सत्याग्रही वीरों के अहिंसात्मक सिद्धान्त का वर्णन है। 'इनके जो महात्मा हैं, वह बड़े भारी फकीर हैं। उनका हुक्म है कि चुपके से मार खा लो, लड़ाई मत करो।'[4]

सुदर्शन की 'अमरीकन रमणी', 'पंथ की प्रतिष्ठा', 'सत्य मार्ग', 'अंधेरे में', 'कैदी', सुभुद्रा का उपहार' आदि कहानियों में सत्य की पुष्टि मिलती है। गांधी जी के अपने युग का सत्य था अपने देश, धर्म, जाति, सभ्यता, रीति नीति के प्रति सच्चाई, गौरव की भावना तथा इनका सम्मान। 'अमरीकन रमणी'[5] कहानी में मदनलाल तथा सावित्री के चरित्र प्राणिमात्र के प्रति दया करुणा की भावना तथा देशभक्ति के उदाहरण हैं। 'पंथ की प्रतिष्ठा'[6] कहानी में सुदर्शन जी ने सिक्ख धर्मं, अकाली फूलासिंह के व्यक्तित्व में सदाचार, सच्चरित्रता, न्याय एवं सत्य को मूर्त्त किया है। महाराजा रणजीतसिंह ने सत्य-धर्म-पालन के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए साधारण प्रजाजन की भांति पंथ के बीच अपने अपराध की क्षमा मांगी थी और दण्ड स्वीकार किया था। 'सत्यमार्ग'[7] में लेखक ने देशसेवा तथा देश के लिए प्राणोत्सर्ग को सत्य मार्ग कहा है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के लिए जीवन का यही एक सत्य था। 'अंधेरे में' कहानी द्वारा वे सत्य की रक्षा के लिए भगवान को सरकारी नौकरी की अपेक्षा कष्ट सहन की प्रेरणा देते हैं। अमीर मुसलमान अब्दुल वहीद द्वारा सत्य

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० २०
२. वही, पृ० २०
३. प्रेमचन्द : मानसरोवर (भाग ७) : पृ० ६१
४. वही, पृ० ६६
५. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० १२
६. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ३८
७. वही, पृ० ५१

की सेवा के लिए विवाह की प्रथम रात्रि में सुख शैया त्याग 'वतन की खिदमत' के लिए कारावास की कठोर यंत्रणा सहन करने का निरूपण 'कैदी' कहानी में किया गया है। 'सुभद्रा का उपहार' सत्य की विजय दिखाने के लिए लिखी गई कहानी है। 'सच का सौदा' कहानी में लेखक ने सत्य की विजय दिखाई है।[1] सुदर्शन जी ने राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त सत्य का निदर्शन 'एक अमरीकन रमणी' कहानी में किया है। भारत वह देश है जहां सत्य-गुण जीवन के स्वाभाविक अंग हैं। इसी कारण भारतीय जीवन दर्शन में आध्यात्मिकता की प्रधानता है। अमरीकन रमणी भारत की इस आत्म-परायणता पर अमरीका और फ्रांस की ऐश्वर्यमय और दिखावे की सभ्यता को न्यौछावर कर देना चाहती है।[2]

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में सत्य बल अथवा आत्मबल और कर्तव्य की विजय दिखाई गई। 'अपराधी'[3] कहानी में आत्मबल की इच्छा शक्ति पर विजय होती है, 'कर्तव्य बल'[4] कहानी में कर्तव्य-बल के सम्मुख सत्ता भी झुक गई थी।

हिन्दी-साहित्य में गांधी संचालित सत्याग्रह-आन्दोलनों की अभिव्यक्ति

सन् १९२० से १९३७ तक गांधी जी द्वारा दो महत्त्वपुर्ण देशव्यापी आन्दोलनों का संचालन किया गया—प्रथम १९२०-२१ का असहयोग आन्दोलन, द्वितीय सन् १९३० का सविनय अवज्ञा आन्दोलन। इस सत्याग्रह आन्दोलनों में सत्य एवं अहिसा उनका साधन थी। 'शीघ्र स्वराज्य प्राप्ति' की आशा से उन्होंने देश जीवन में नवीन चेतना का रस घोल दिया था। असहयोग आन्दोलन का मूल-मन्त्र था, राष्ट्र-हित विरोधी शक्तियों के प्रति पूर्ण असहयोग द्वारा राष्ट्र जीवन को उन्नत, पुष्ट तथा स्वतन्त्र करना। परवर्ती-अध्याय में इन आन्दोलनों तथा गांधी जी की राष्ट्रीय विचार धारा का विवेचन किया जा चुका है। हिन्दी साहित्य अपने युग की राष्ट्रीय भावना एवं स्वतन्त्रता के लिए किये गये अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलनों से प्रभावित हुआ था। अतः अब हिन्दी साहित्य के विभिन्न अंगों में इनकी अभिव्यक्ति के स्वरूप का विवेचन अपेक्षित है।

असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने के पूर्व गांधी जी ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया था और पराधीनता के अभिशाप से ग्रसित जनता को आदेश दिया था कि वह विदेशी शासकों से सब प्रकार के संबंध तोड़ कर असहयोग करे। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' खण्ड काव्य की रचना गांधी जी के महान् व्यक्तित्व असहयोग आन्दोलन की प्रक्रिया तथा सिद्धान्तों से प्रभावित होकर की थी। इसमें प्रेमकथा का अधार लेकर त्रिपाठी जी ने तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्र खींचा है।

१. सुदर्शन : सुदर्शन-सुधा : पृ० ४७
२. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ३६
३. कौशिक : कल्लौल : पृ० ११५
४. वही, पृ० १

इसका नायक पथिक सम्पूर्ण देश का पर्यटन करता है। जनता के कष्टों का परिचय पाने के उपरान्त जनता में नृप से सब प्रकार के सम्बन्धों का परित्याग करने की भावना भर देता है। इसका कारण यह है कि वह अन्यायी अधर्मी, अत्याचारी शासक का साथ देना पाप समझता है। वह कहता है कि प्रजा यदि राजा का साथ छोड़ दे तो राजा अकेला क्या कर सकता है? जब तक प्रजा इस पाप से निवृत्त नहीं होती तब तक उसका कष्ट दूर नहीं हो सकता। असहयोग आन्दोलन 'निष्क्रय प्रतिरोध 'नहीं था। गांधी जी ने इस आन्दोलन द्वारा कर्मवाद का सन्देश दिया था। जीवन संघर्ष से मुख मोड़ने की अपेक्षा पौरुष, साहस, सत्य, न्याय, श्रद्धा, करुणा, उदारता, सुशीलता, धर्म, क्षमा आदि ईश्वरीय गुणों का विकास कर स्वदेश की सेवा को मनुष्य का परम धर्म माना था। उनके इस आदर्श की पूर्ति पथिक द्वारा होती है।[1] देशवासियों में, शासक वर्ग के प्रति विरोध-भावना भरने के लिए पथिक पर राजद्रोह का अभियोग लगा कर मृत्यु दंड दिया जाता है, उसकी पत्नी उसके लिए लाये गये विष का स्वयं पान कर लेती है, पुत्र का वध किया जाता है लेकिन पथिक सत्य एवं अहिंसा का पथ नहीं त्यागता। शासकों की नृशंसता से क्रोधित युवक-वर्ग को शांति का पाठ पढ़ाते हुए अहिंसा का मर्म समझाता है। शारीरिक सुख त्याग कर वह मोह वस्त्र पहनता है। अन्त में सत्य का आग्रही प्राणोत्सर्ग कर सत्याग्रह आन्दोलन की सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होता है।

पंडित रामचरित उपाध्याय, श्री त्रिशूल तथा नाथूराम शंकर ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली में सत्याग्रह आन्दोलन में सहयोग देने का आग्रह किया है। जीवन-दर्शन एवं जीवन-मार्ग के रूप में विकसित गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन को देश-वासियों पर परम धर्म मानते हुए पंडित रामचरित उपाध्याय ने लिखा है—

तू सत्याग्रह के शस्त्र को धारण क्यों करता नहीं?
क्यों अपयश से डरता नहीं लज्जा से मरता नहीं।।[2]

सन् १९२०-२१ ई० का असहयोग आन्दोलन हिन्दू और मुसलमान की एकता के संयोग पर छेड़ा गया था। गांधी जी ने खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों को भी राष्ट्रीय आन्दोलन के पक्ष में कर लिया था। श्री त्रिशूल ने इस सम्बन्ध में कहा है—

हिन्दू मुस्लिम योग एक ऐसा संयोग था
न भोगा किसी ने भी दुःख भोग ऐसा,
न छूटा लगा दास्य का रोग ऐसा।।[3]

गांधी जी ने वैचारिक राष्ट्रवादिता को असहयोग आन्दोलन द्वारा कर्म-क्षेत्र में ला खड़ा किया था। उस अमूर्त भावना को कर्म में ढाल कर मूर्त रूप प्रदान किया

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक : पृ० ४८
२. रामचरित उपाध्याय : राष्ट्र भारती : पृ० ४५
३. श्री त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० ४३

था। भारत को आत्म-विश्वास से भर कर, उन्नति और विकास के लिए धर्म्म-क्षेत्र में लाने के लिए, गांधी जी के सदृश 'त्रिशूल' जी ने कहा है—

इनके हृदयों में अगर सुदृढ़ आत्म-विश्वास हो।
आयें कर्म्म-क्षेत्र में उन्नति और विकास हो।।[1]

कवि ने देशवासियों को ऐक्य-सूत्र में बांध राष्ट्र-यज्ञ में सम्मिलित होने और स्वातंत्र्य रूपी सोम सुधा का पान कर मृत होती जाति को प्राणदान देने का अनुरोध किया है। असहयोग-आन्दोलन द्वारा ही पंजाब की जलियांवाला बाग वाली नृशंस घटना के घाव पर मलहम लगाया जा सकता था। अत त्रिशूल जी ने असहयोग की कठिन परीक्षा देने के लिए देशवासियों को प्रोत्साहित किया था।[2] कवि ने असहयोग की आग भड़काने के लिए बारबार भारतीयों की हीनावस्था तथा उनके उत्पीड़न की ओर ध्यान आकृष्ट किया है—

न उतरे कभी देश का ध्यान मन से, उठाओ इसे कर्म से मन वचन से।
न जलना पड़े हीनता की जलन से, वतन का पतन है तुम्हारे पतन से।
असहयोग कर दो असहयोग कर दो।।[3]

नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने 'बलिदान गान' में देशभक्त वीरों को गांधीजी का मन्त्र पढ़ कर, सत्यधारी अगुओं के आगे बढ़ कर, विदेशी शासकों की अत्याचार की वेदी पर बलिदान होने के लिए उत्साहित किया है—

सिंहो सत्यामृत-प्रवाह में गोल बांध बहना होगा,
पोल खोल खोटे कुराज्य की दुश्शासन कहना होगा।
पशु-बल ठेलेगा जेलों में वर्षों तक रहना होगा,
मार खाय निर्दय दुष्टों की घोर कष्ट सहना होगा।
जाति जीवनाधार रक्त से कर्म-कुण्ड भरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।।[4]

युग की पुकार को काव्य में इतिवृत्तात्मक शैली में प्रस्तुत कर इन कवियों ने अपने युग-धर्म का पूर्ण निर्वाह किया है। इनका काव्य साधारण पाठक की बुद्धि के अनुकूल है, यद्यपि रस एवं काव्य-कला की दृष्टि से इनकी रचनाओं को उत्कृष्ट कोटि के काव्य के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान ने असहयोग आन्दोलन का वर्णन अधिक भावात्मक शैली में कलात्मकता के आग्रह के साथ किया है। उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन के ध्येय और सिद्धान्तों की प्रत्यक्ष एवं सुस्पष्ट अभिव्यंजना की है। पापी शासन से असहयोग कर, गांधी जी ने स्वेच्छया शासकों के दण्ड को स्वीकार

१. त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० ५०
२. वही, पृ० ३५
३. वही, पृ० ४१
४. सम्पादक—हरिशंकर शर्मा : शंकर सर्वस्व : पृ० २४८

किया था। सत्याग्रही कैदी के नाते उन्होंने अदालत में जो बयान दिया था, उसका संक्षिप्त काव्य रूपान्तर चतुर्वेदी जी ने प्रस्तुत किया है—

समझाता हूँ अत्याचारी शासन पर हो प्यार नहीं,
जो करते हो प्यार छोड़ दे है इससे उद्धार नहीं,
अत्याचारी का वध कर दे यह पशुता दरकार नहीं,
पापी प्यार हमारा चाहे यह उसको अधिकार नहीं,

\+ \+ \+

पापी शासन पर अप्रियता उपजाना श्रुति सम्मत है,
इसीलिए जालिम पर ममता न हो, यही मेरा मत है,
बाकी एक उपाय बचा था जिसकी की गांधी ने याद
शीघ्र अहिंसक असहयोग से मातृभूमि होवे आजाद ॥[1]

गांधी जी ने असहयीग आन्दोलन के लिए आत्म-बलिदान को आवश्यक धर्म माना था, इस धर्म के पालन में ही स्वराज्य संभव था। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में आन्दोलन के विविध अंग - स्वराज्य, आत्मबलिदान, कारावास आदि के वर्णन मिलते हैं।[2]

सुभद्राकुमारी चौहान की कविता में सत्याग्रही के वीरत्व और नारी की भावुकता का मिश्रित भाव झलकता है। इसका कारण था कि गांधी जी द्वारा क्रियान्वित अहिंसात्मक राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय पुरुष एवं नारी दोनों को एक अपूर्व उत्साह, स्वाभिमान तथा आत्मबलिदान की भावना से भर दिया था। राखी जैसे पुण्य पर्व पर, नारी ने अपने सत्याग्रही वीरों के लिए गौरव का अनुभव किया था। सुभद्रा जी तत्कालीन नारी जागृति और राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक है। वे अपने असहयोगी सत्याग्रही वीर भाई के लिए रेशम की नहीं, लोहे की हथकड़ियों की राखी भेजती हैं जिससे वे भारत-माता के बन्धन काटने में समर्थ हो सकें—

आते हो भाई? पुनः पूछती हूं—
कि माता के बन्धन की है लाज तुमको?
तो बन्दी बनो, देखो बन्धन है कैसा,
चुनौती यह राखी की है आज तुमको॥[3]

सुभद्रा जी के काव्य में अहिंसाव्रत धारी सत्याग्रही वीरों की संघर्ष प्रणाली का वर्णन प्रतीकात्मक शैली में भी मिलता है। 'विजयी मयूर'[4] कविता में मयूर सत्याग्रही का प्रतीक है। विदेशी सरकार की क्रोध रूपी काली घनघोर घटाओं के अत्याचार रूपी पत्थरों से भी उसने अपनी स्वराज्य की पुकार बन्द नहीं की। अन्त में मयूर की विजय, सत्याग्रही वीर की विजय है।

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ७१-७२
२. वही, पृ० ५५
३. सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ७०
४. सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ७९

सियारामशरण गुप्त ने 'बापू' काव्य-ग्रन्थ में महात्मा गांधी के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा एवं भक्ति समर्पित करते हुए, सत्याग्रह आन्दोलन की लोकप्रियता पर प्रकाश डाला है। वस्तुतः गांधी जी ने देशव्यापी आन्दोलन को जन्म दिया था। सियारामशरण जी ने लिखा है कि जब बापू अपने सत्याग्रही वीरों की टोली लेकर सत्याग्रह आन्दोलन के लिये चलते थे तो मार्ग में जनता उत्सुकतावश उनके दर्शनों के लिए अड़ी खड़ी रहती थी।[१] जनता उनकी स्वर्गीय पुण्य रश्मि सम शुचि कान्तिमय झलक देखकर अपना जीवन सार्थक समझती थी।[२]

सोहनलाल द्विवेदी ने भी आन्दोलन से संबंधित कविताएं लिखी हैं। 'सेगांव का सन्त'[३] 'दाण्डी यात्रा'[४] उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। गांधी जी का सत्याग्रह आंदोलन जन-आन्दोलन था। सम्पूर्ण देश राष्ट्रीयता के रंग में रंगकर आन्दोलन-उत्साह से भर गया था। सोहनलाल द्विवेदी ने प्रसाद गुण सम्पन्न ओजपूर्ण भाषा में इसका उल्लेख किया है—

क्या ग्राम-ग्राम, क्या नगर-नगर, से कोटि कोटि चल पड़े किधर ?
नवयौवन का आवेश लिये, यह कौन चला जाता पथ पर,
नवयुग का संदेश लिये ?[५]

'दाण्डी यात्रा' कविता में गांधी जी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय दाण्डी जाकर नमक-कानून-भंग करने का उल्लेख सजीव भाषा में मिलता है। बापू की दाण्डी यात्रा ने जनजीवन में हलचल मचा दी थी। इसमें पत्नी पति को सहयोग दे प्रमुदित हुई थी, भाई-बहन चल पड़े थे, जननी ने अभिमान के साथ पुत्र को विदा किया था। इस प्रकार बच्चों, बूढ़ों, माँ-बेटों, बहनों-भाइयों की यह टोली मतवाली बनकर झूमती हुई उर पर गोली खाने चल दी थी।[६] युद्ध की इस नवीन प्रणाली का विस्तृत वर्णन द्विवेदी जी की इस कविता में मिल जाता है। आन्दोलन ने दिशाओं को कंपा कर, चारों ओर अपनी धूम मचा दी थी—

कंप उठीं दिशायें नीरव हो छा गया एक स्वर निर्विकार।
भारत स्वतंत्र करने का प्रण है यही, यही, रण-मोक्ष द्वार ॥[७]

सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के मध्य में गांधी जी गोलमेज कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने विलायत गए थे, यद्यपि यह यात्रा व्यर्थ ही हुई थी। कवि बच्चन ने गांधी जी के विलायत प्रस्थान पर 'भारत माता की विदा' कविता गांधी जी की इस यात्रा का

---

१. सियारामशरण गुप्त : बापू : पृ० ११
२. वही, पृ० १५
३. सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी : पृ० ४४
४. वही, पृ० ६९
५. सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी : पृ० ४५
६. वही, पृ० ७४
७. वही, पृ० ७५

भावात्मक चित्रण किया है।[1]

इन राष्ट्रीय आन्दोलनों में कारावास अथवा जेल का महत्त्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि विदेशी शासकों ने इन राष्ट्र-वीरों को कारावास का कठोर दण्ड देकर, देश की राष्ट्रीय भावना को कुचलने का साधन ढूंढ़ा था। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिये जाते थे, जिससे वे राष्ट्रीयता के सत्य-मार्ग से विचलित हो जायें। विदेशी शासकों ने दमन की कोई भी योजना अछूती न छोड़ी, लेकिन देशवासियों ने शान्तिपूर्वक गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर राष्ट्रीय भावना को अधिक प्रबल रूप प्रदान किया। गांधी जी की अहिंसात्मक नीति तथा सत्याग्रह आन्दोलन ने कारागृहों को मन्दिर बना दिया था, जहां वन्दिनी भारतीय जनता को अपने सत्य रूपी कृष्ण की प्राप्ति हो सकती थी। हिन्दी-साहित्य में कवियों की वाणी में कष्ट-सहन की इस अनोखी रीति तथा कारावास का अनेक रूपों में वर्णन मिलता है। श्री त्रिशूल के अभिमत में कारागृह तो सत्याग्रही के लिये क्रीड़ास्थल बन गये थे, जहाँ वे आनन्दपूर्वक देश की स्वतन्त्रता के लिये कष्ट सहते थे।[2] कवि ने मौन रूप से जेलखानों की मार को सहकर अनीति, अन्याय और अधर्म से संघर्ष के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने कारावास को रंगमहल का रूप दिया था—

सह कर सिर पर मार मौन ही रहना होगा,
आये दिन की कड़ी मुसीबत सहना होगा।
रंगमहल से जेल आहनी गहना होगा,
किन्तु न मुख से कभी 'हन्त हा!' कहना होगा।
डरना होगा ईश से, और दुःखी की हाय से,
भिड़ना होगा ठोंक कर खम, अनीति अन्याय से॥[3]

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीयता के आवेश में 'जन्माष्टमी'[4] कविता में कृष्ण जन्म की पुण्य रात्रि का पुनः आह्वान किया है जिसमें हिन्दू जाति के पापों का प्रहरी सो जाये, मां के बन्धन खुल जायें और कारागृह मन्दिर बन जायें। कृष्ण जन्म पाप का अन्त करने के लिये हुआ था। अतः इस काव्य में गुप्त जी ने प्रतीकात्मक शैली में भारत को अंग्रेज रूपी कंस की कुटिल नीति तथा पाप के साधन को कारागृह रूपी मन्दिर में बन्दिनी भारतीय जनता के सत्य रूपी कृष्ण द्वारा विनष्ट करना चाहा है। कवि के मतानुसार कुटिल नीतिज्ञ अंग्रेज रूपी कंस को ससैन्य विध्वंस कर ही देश में धन, धान्य, आमोद, प्रमोद का माखन-मिश्री, मोहन-भोग का

---

१. बच्चन : प्रारंभिक रचनाएं (दूसरा भाग) : पृ० १५
(यह प्रारंभिक कविताओं का प्रथम संग्रह 'तेरा हार' के नाम से १९३२ ई० में प्रकाशित हुआ)
२. राष्ट्रीय झंकार : दूसरा भाग : पृ० ५
३. त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० ८
४. मथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ७२

सकता था और तभी यशोदा रूपी माताएं थालों को सजा कर अपने बाल रूप गोपालों को भोजन करा सकती थीं।[१] राष्ट्रीय भावना में हिन्दू धार्मिक भावना का सामंजस्य वैष्णव कवि मैथिलीशरण गुप्त की विशेषता है।

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'कैदी और कोकिला'[२] (सन् १९३०) में सत्याग्रही कैदी के प्रति कवि हृदय की संवेदना भावात्मकता के आग्रह के साथ अभिव्यंजित हुई है। राष्ट्रीय भावना के उन्मेष का इससे सुन्दर उदाहरण हिन्दी काव्य जगत् में विरल है। कारागृह की ऊँची काली दीवारों, चोरों, बटमारों के डेरों के बीच घिरे सत्याग्रही कैदियों को भरपेट भोजन भी प्राप्त नहीं होता था।[३] दिन भर ब्रिटिश राज की हथकड़ियों का गहना पहनकर कोल्हू चलाना, मोट खींचना तथा मिट्टी कूटना सत्याग्रही कैदियों का कार्य था। राष्ट्रभक्त कैदियों की मौन रूप से दण्ड सहने की शक्ति एवं कठोर परिश्रम ने ब्रिटिश साम्राज्य की 'अकड़' कम कर दी थी। ब्रिटिश साम्राज्य की ज़ड़ें हिला दी थीं। माखनलाल चतुर्वेदी ने व्यंग्यात्मक शैली में कारागार के जीवन, कैदी की दशा का सजीव चित्र खींचा है—

> क्या?—देख न सकतीं जंजीरों का गहना?
> हथकड़ियां क्यों? यह ब्रिटिश-राज का गहना,
> कोल्हू का चर्रक चूं?—जीवन की तान,
> गिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान?
> हूं मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
> खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआ।
> दिन में करुणा क्यों जगे, रुलाने वाली,
> इसलिए रात में गजब ढ़ा रही आली?
> इस शान्त समय में,
> अन्धकार को बेध, रो रही क्यों हो?
> कोकिल बोलो तो!
> चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज
> इस भांति बो रही क्यों हो?
> कोकिल बोलो तो![४]

काले शासन की, काली रात्रि में, काली काल कोठरी में, काली टोपी और काली कमली से युक्त परिधान तथा काली लोहश्रृङ्खला में आबद्ध कैदी के समक्ष, काली किन्तु स्वतन्त्र कोकिल का स्वर संघर्ष का शंखनाद-सा सुनाई पड़ता है।[५]

१. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ७३-७४
२. माखनलाल चतुर्वेदी : हिम किरीटिनी : पृ० १४
३. वही, पृ० १५
४. वही, पृ० १७
५. वही, पृ० १८

स्वतन्त्र प्रकृति के इन वीर कैदियों को संवेदना किन्तु साथ ही संघर्ष की प्रेरणा मिलती है। युगीन राष्ट्रीय भावना ने कवि के अन्तरतल तक का स्पर्श कर लिया था। वह उसकी अनन्य अनुभूति बन गई थी। कवि की राष्ट्रीय भावना भी, गांधी जी के सदृश संकुचित अथवा सीमित नहीं है। अतः हथकड़ियों से प्यार तथा जंजीरों का हार केवल भारत की स्वाधीनता के लिए ही ग्रहण किये गये थे, अपितु इनके द्वारा अखिल जगती-तल का उद्धार कर विश्व की परममुक्ति का द्वार खोल देना कवि को इष्ट था।[1]

सियारामशरण गुप्त ने 'बापू' में गांधी जी के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धांतों का विवेचन काव्य रूप में करते हुए 'कारागार' के संबंध में भी लिखा है। कवि ने कारागार का अत्यन्त घृणित, क्रूर एवं भयंकर चित्र खींचते हुए कारागार को 'अबन्धन का मुक्ति द्वार' बनाने का समस्त श्रेय गांधी जी को दिया है—

धन्य वह कारागार ?
वह तो अबन्धन का मुक्ति द्वार !
अंकुरित होकर वहां अखेद
मुक्ति-बीज क्रूर भित्ति-भूमि भेद
फूट पड़ा बाहर है,
लाली लिये ले रहा लहर है
मृत्यु के निकेतन पर जीवन का पुण्य-केतु।
जा रहे वहां की तीर्थ यात्रा हेतु
लक्ष लक्ष नारी-नर
मंगलेच्छा सर्व-सुखकारी कर,
धर के तुम्हारे वे चरण चिह्न ॥[2]

सियारामशरण जी की गांधी जी पर अटूट श्रद्धा है। कवि सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन का समस्त श्रेय मान्यवर गांधी जी को देते हुए कहता है कि गांधी जी की प्रेरणा से राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख अंग कारागार सबके लिए सहजगम्य देशगृह बन गये थे।

छायावाद युग के अन्तिम चरण में छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पन्त राष्ट्र की ठोस पृथ्वी पर उतर आये। उन्होंने अपने युग-जीवन पर दृष्टिपात किया। राष्ट्रीय संग्राम के अमर-सेनानी महात्मा गांधी के प्रति वे अमित श्रद्धा से भर गये। 'बापू के प्रति' कविता में कवि ने बापू की सत्याराधना, अहिंसा, दिव्यता, उदारता आदि विशिष्ट गुणों के स्मरण के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में, कारागृह के महत्त्व पर श्रद्धान्वित शब्दों में प्रकाश डाला है क्योंकि कारागृह में ही मानव-आत्मा की मुक्ति का

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी : हिम किरीटिनी : पृ० ६६

२. सियाराम शरण गुप्त : बापू : पृ० ३६

दिव्य जन्म हुआ है—

साम्राज्यवाद का कंस, बंदिनी मानवता पशु बलाक्रांत,
शृंखला दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन-पद शक्ति-भ्रांत
कारागृह में दे दिव्य जन्म मानव आत्मा को मुक्त कांत,
जन-शोषण की बढ़ती यमुना तुमने की नत, पद-प्रणत, शांत।[१]
(अप्रैल, १९३६)

सत्याग्रही के कर्तव्यों का विवेचन भी काव्य में मिलता है। श्री त्रिशूल जी ने इतिवृत्तात्मक शैली में सत्याग्रही के कर्तव्यों की विवेचना इस काव्य में की है—

उसका है कर्तव्य जो कि सत्याग्रह ठाने,
अन्यायी कानून असत्यादेश न माने।
छेड़े हरदम रहे प्रेम, आनन्द तराने,
निश्चित अपनी विजय सत्य के रण में जाने।
ज्यों ज्यों घहराती उधर, क्षण-क्षण जीवन जंग हो,
त्यों त्यों गहराता इधर, दृढ़ उमंग का रंग हो॥[२]

इसके साथ ही त्रिशूल जी ने सत्याग्रह के कठिन व्रत की आवश्यक मान्यताओं को भी स्पष्ट कर दिया था। इस व्रत का मूलाधार था त्याग। सत्याग्रही को अपने व्रत पर अटल रहकर धैर्यपूर्वक तथा सहनशक्ति द्वारा विपदाओं का सामना करना पड़ेगा—

यह व्रत है अति कठिन समझ कर इसको लेना,
देह गेह, प्रिय, प्रिया, पुत्र-ममता तज देना।
अपने बल से नाव पड़ेगी इसमें खेना,
करना होगा सामना, भीषण अत्याचार का
सहना होगा घाव पर घाव, तीर तलवार का॥[३]

सच्चा असहयोगी, कष्ट-सहन की परीक्षा में भयभीत नहीं होता। कारागार उसकी क्रीड़ा का आगार बन जाता है और जीवन के ध्येय स्वराज्य पर वह सब कुछ न्योछावर कर देता है—

कारागृह गृह हुआ खेलने औ खाने का!
तनिक नहीं भय कभी वहां आने-जाने का॥
वहां बड़े आनन्द सहित हम तो जायेंगे।
कार्य करेंगे, नहीं भाग्य पर पछतायेंगे॥
× × ×

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : युगान्त : पृ० ६८
२. त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० ४
३. वही, पृ० ८

इसीलिये हम अड़ गये, ले लेंगे निज ध्येय को।
बस स्वराज्य उद्देश्य पर, देंगे सभी विधेय को ॥[1]

हिन्दी नाटकों में सत्याग्रह आन्दोलनों की अभिव्यक्ति

बदरीनाथ भट्ट, सुदर्शन, जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, गोविन्दवल्लभ पंत आदि ने ऐतिहासिक नाटकों की ही विशेषतया रचना की थी। उनके नाटकों का संघर्ष, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए युद्ध, इस आन्दोलन को प्रेरणा मात्र देता है। उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति इनके नाटकों में नहीं मिलती। बेचन शर्मा 'उग्र' के 'महात्मा ईसा' नामक नाटक में प्रच्छन्न रूप से सत्याग्रह अथवा असहयोग आन्दोलन का वर्णन मिलता है। गांधी जी और महात्मा ईसा के व्यक्तित्व द्वारा सत्य की प्रतिष्ठा का साधन एक ही है। महात्मा ईसा असत्य, अन्याय तथा अनीति का उन्मूलन असहयोग तथा अहिंसात्मक सत्याग्रह की नीति द्वारा करते हैं। वे असहयोग की विवेचना भी कर देते हैं।[2] गांधी जी के सदृश महात्मा ईसा भी कहते हैं, 'यदि पिता की आज्ञा पुत्र की आत्मा के विरुद्ध है तो उसे चाहिये कि वह अपने पिता से अत्यन्त नम्र शब्दों में असहयोग कर दे।'[3] दुरात्माओं से असहयोग रूपी धर्म-युद्ध कर कोड़ों की मार को विनोद और कारागार को विश्राम-स्थान समझने के लिए वे उपदेश देते हैं। महात्मा ईसा के सत्याग्रह आन्दोलन में भी गांधी जी अपने युग के सदृश बालक दल झंडियां लेकर गाते हुए जुलूस निकालते हैं। महात्मा ईसा भी सभा में भाषण करते दिखाये गये हैं। उनके आन्दोलन की प्रभावात्मकता का वर्णन हैरोद के इन शब्दों में मिलता हैं—'कैसा विचित्र आदमी है। इसके आन्दोलन के सामने हमारा दमन पंगु है—प्राणहीन जान पड़ता है। वह लड़ता तो है पर उसकी लड़ाई कोई देख नहीं सकता। लोग तलवार से साम्राज्य की जितनी हानि कर सकते हैं, उससे कहीं अधिक हानि बिना शस्त्र धारण किये ही ईसा कर रहा है। महात्मा ईसा। गलियों में, बाजारों में, ग्रामों में—जहां देखो वहीं महात्मा ईसा। इस समय जनता का सर्वस्व यह ढोंगी महात्मा ही बना हुआ है।...'[4] वस्तुतः यह गांधी जी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन का ही वर्णन है। गांधी जी की मुट्ठी भर हड्डियों के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव था कि लक्ष लक्ष जनता उनके साथ थी।[5] शासक वर्ग आन्दोलन के इस नवीन रूप से आतंकित हो गया था। उसने प्रजा-द्रोह तथा शांति भंग का आरोप लगा कर सत्याग्रही वीरों को दण्डित किया। इस नाटक में असहयोग आन्दोलन का विस्तृत किंतु प्रच्छन्न वर्णन किया गया है।

---

१. निहालचन्द वर्मा : राष्ट्रीय झंकार (दूसरा भाग) : पृ० ५
२. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० १२३
३. वही, पृ० १२३
४. बेचन शर्मा उग्र : महात्मा ईसा : पृ० १५५
५. वही, पृ० १५६

बाबू जमनादास मेहरा के 'पंजाब केशरी' नाटक को पूर्णतया राजनीतिक नाटक कहना उपयुक्त होगा। इसमें लाला लाजपतराय, राष्ट्रीय स्वयं सेवकों और प्रजा द्वारा साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रत्यक्ष रूप से चित्रण किया गया है—

जिनको हालत हिन्द की लेने को लाया जा रहा।
फर्ज भी उनका 'अदल' हमको बताया जा रहा॥
सामने वे भी न हों, आये हैं वे जिनके लिये?
क्यों न हम अपने कहें, रोका डराया जा रहा?
क्या यही है साइमन का वो कमीशन आपका।
जिनको आंखों से हमारे यूँ हटाया जा रहा?
दरबे में उनको बन्द कर भारत दिखाया जा रहा।
औरतें हैं क्या जो घूंघट में छिपाया जा रहा?[1]

जनता द्वारा कमीशन के तिरस्कार,[2] सत्य पर अटल राष्ट्र भक्तों पर पुलिस के प्रहार, लाला लाजपतराय पर लाठी के आघात, उनकी मृत्यु आदि समस्त उल्लेख ओजपूर्ण शैली में मिलते हैं। वे भारतीयों को अपनी करुण स्थिति पर विक्षुब्ध कर राष्ट्र-निर्माणात्मक कार्य में संलग्न करने में सहायक हैं।

इस युग में राष्ट्रीय आन्दोलन के सक्रिय रूप का वर्णन इन कतिपय रचनाओं में ही मिलता है। ऐतिहासिक नाटकों का संघर्ष अपने युग के सत्याग्रह आन्दोलन की ओर संकेत करता है। बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' में स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अकबर रूपी विदेशी शक्ति से संघर्ष है, जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' में चन्द्रगुप्त चाणक्य की सहायता से विदेशी शक्ति—यूनानियों पर विजय पाता है। 'अजातशत्रु' 'स्कंदगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि प्रसाद जी के नाटक, जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का 'प्रताप-प्रतिज्ञा', हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षाबन्धन', 'शिवा साधना', सुदर्शन का 'जय पराजय', गोविन्दवल्लभ पंत का 'दाहर अथवा सिन्ध पतन', 'राजमुकुट' आदि सभी नाटकों में युद्ध विभीषिका का चित्रण मिलता है जो लेखकों के अपने युग के राष्ट्रीय-संघर्ष को प्रतिध्वनित करते हैं। गोविन्दवल्लभ पंत के 'राजमुकुट' नाटक की प्रजा भी राजा के अन्याय, अधर्म, अनीति के कारण विद्रोहिणी हो जाती है।[3] इसी प्रकार विदेशी शासन-काल के इस युग में प्रजा ने आन्दोलन में भाग लेकर अँग्रेजी शासकों की दमन-नीति, अत्याचार, अन्याय आदि का विरोध किया था।

हिन्दी नाटकों में सत्याग्रह आन्दोलन के प्रत्यक्ष चित्र अधिक न मिलने पर भी सांकेतिक प्रतीकात्मक एवं प्रच्छन्न शैली में लिखे नाटकों का अभाव नहीं है।

---

१. बा० जमुनादास मेहरा : पंजाब केसरी : पृ० ९९
२. वही, पृ० १०२
३. गोविन्दवल्लभ पंत : राजमुकुट : पृ० २२

कथा-साहित्य में गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की अभिव्यक्ति

काव्य अथवा नाट्य-साहित्य की तुलना में कथा-साहित्य राजनीतिक-आन्दोलनों का अधिक विशद एवं मुखर रूप प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ है। कदाचित् इसका यह कारण है कि आन्दोलन के वर्णन अथवा सजीव चित्रांकन का इसमें अधिक सुयोग रहता है। कथा-साहित्य ने भावात्मकता की अपेक्षा वर्णनात्मकता को ही प्रधानता दी है। आन्दोलन के प्रत्येक अँग, स्थिति तथा दृश्यों का चित्र कथा-साहित्य में मिल जाता है। विशेष रूप से प्रेमचन्द जी ने राष्ट्रीय-जागृति एवं स्वतन्त्रता के लिये किए गए आन्दोलन को साहित्यिक परिधान में आवृत्त कर शाश्वत रूप प्रदान किया है।

हिन्दी में शुद्ध राजनीतिक उपन्यासों की अधिक संख्या नहीं मिलती है। सामाजिक समस्याओं एवं राजनीतिक परिस्थितियों से मिश्रित उपन्यास ही अधिक संख्या में मिलते हैं। प्रेमचन्द के 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' तथा राधिकारमण प्रसाद सिंह का 'पुरुष और नारी' उपन्यास राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा पाने के लिए पूर्ण समर्थ हैं। प्रेमचन्द की 'रंगभूमि' असहयोग आन्दोलन की भूमिका पर लिखा गया सफल राजनीतिक उपन्यास है, 'प्रेमाश्रम' में राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा कृषक जागृति का चित्र मिलता है, तो 'कर्मभूमि' में सविनय अवज्ञा आन्दोलन एवं अछूतों की समस्या। राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास का काल-क्षेत्र अति विस्तृत है, उपन्यास ने सन् १९२० के असहयोग आन्दोलन से कथा का प्रारंभ कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् प्रान्तीय स्वायत्त शासन के लिए प्रारंभिक चुनाव में समाप्ति की है। इस उपन्यास में सन् १९२०-३६ तक के राष्ट्रीय इतिहास के विकास का पूर्ण इतिहास उपलब्ध हो जाता है। आन्दोलन की बारीकियों एवं मानव-मनोविज्ञान का सम्पूर्ण विश्लेषण मिल जाता है।

प्रेमचन्द को 'रंगभूमि' उपन्यास की मूल प्रेरणा असहयोग आन्दोलन से मिली थी क्योंकि तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन का सजीव वर्णन तथा चित्र इसमें मिलते हैं। 'रंगभूमि' उपन्यास में दो कथावृत्त एक साथ चलते हैं और अन्त में उन दोनों का एकीकरण हो जाता है। ये दो कथाएँ सूरदास तथा विनयसिंह से संबंधित हैं। सूरदास गांधीवादी सिद्धान्तों का मूर्त्त रूप है और विनयसिंह राष्ट्रीय आन्दोलन की अभिव्यक्ति का साधन। कुंवर विनयसिंह की कथा का सीधा संबंध राष्ट्रीय आन्दोलन से है। कुंवर भरतसिंह तथा रानी जाह्नवी ने देश-प्रेम की भावना से अभिभूत हो विनयसिंह को राष्ट्रीय शिक्षा दी थी।[1] कुंवर भरतसिंह ने विदेशी सरकार से असहयोग का व्रत ले रखा था।[2] असहयोग आन्दोलन के कार्य को राष्ट्रव्यापी पैमाने पर प्रसारित करने के लिए गांधी जी ने राष्ट्रीय स्वयं सेवकों का संगठन किया था। देश में, इस समय

---

१. प्रेमचन्द : रंगभूमि : पृ० १४५

२. वही, पृ० २६३

ऐसा उत्साह था कि स्वाधीनता प्राप्ति की आशा में युवक-समूह हर्ष और उत्साह के साथ आत्म-बलिदान के लिए प्रस्तुत था। गांधी जी के आगमन के पूर्व अनेक सामाजिक, राजनीतिक संस्थाओं के रहने पर भी स्वयं सेवक नहीं मिल पाते थे। कुंवर भरतसिंह ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है।[1] विनयसिंह राष्ट्रीय स्वयं सेवक के रूप में जसवंत नगर जाता है। सेवा और त्याग द्वारा वह वहां की जनता में राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध कर देता है। राष्ट्रीय आन्दोलन की आग भारत के सभी क्षेत्रों में फैली थी, देशी रियासतें भी इससे अछूती नहीं बची थीं 'रंगभूमि' इसका प्रमाण है। राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन के लिए सरकार ने राष्ट्रीय सेवा में संलग्न विनयसिंह जैसे व्यक्तियों को कारावास का कठोर दंड दिया था। हजारों आदमी निरपराध मारे गये थे और पकड़ धकड़ में असाधारण तत्परता से काम लिया गया था। 'सूरदास' की कथा इस उपन्यास की प्रमुख कथा है। उसका झोंपड़ा जातीय मंदिर बन गया था। वस्तुतः उपन्यास के अन्तिम भाग में उसकी जमीन का झगड़ा व्यक्तिगत न रह कर राष्ट्रगत आन्दोलन बन जाता है। स्वार्थ-साधक विदेशी शासन की शोषण प्रवृत्ति का राष्ट्रवादियों द्वारा विरोध होता है। यह आत्मबल, लोकमत एवं अहिंसा द्वारा भारत की मुक्ति का प्रयास है। सत्याग्रही वीरों के प्राणोत्सर्ग को देख कर पुलिस भी अपने भाइयों का गला काटने से मुख मोड़ लेती है। यह पुलिस के इतिहास में नयी घटना थी और राष्ट्रवाद के विकास का सूचक। गांधी जी के राष्ट्रवाद ने सत्य एवं अहिंसात्मक साधन द्वारा नौकरशाही का भी हृदय-परिवर्तन कर दिया था।[2]

'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द ने 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' के युग की राजनीतिक परिस्थितियों, जनता की विकसित राष्ट्रीय भावना तथा आन्दोलन के क्रियात्मक रूप को सम्मुख रखा है। अब जनता में इतनी चेतना आ गई थी कि वह अंग्रेजी शासन में सहयोगी व्यक्तियों को सामूहिक रूप में धिक्कारती थी।[3] न्यायालयों में अब इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह जनता की भावनाओं की उपेक्षा कर अत्याचार तथा अन्याय का पोषण करते।[4] असहयोग आन्दोलन में सरकारी उपाधियों, नौकरियों का त्याग कर विदेशी शासन से असहयोग किया गया था, किन्तु सविनय अवज्ञा आन्दोलन में राष्ट्रीय एकता को स्वतन्त्रता का मूल मन्त्र माना गया था। 'कर्मभूमि' में सुखदा अछूत आन्दोलन का नेतृत्व करती है क्योंकि अछूतों को पृथक् मतदान का अधिकार देकर विदेशी शासक राष्ट्रीय अनेकता को प्रोत्साहन दे रहे थे।

१. प्रेमचन्द : रंगभूमि, पृ० २६२
२. 'सरकार के वे पुराने सेवक, जिनमें से कितनों ही ने अपने जीवन का अधिकांश प्रजा के दमन करने ही में व्यतीत किया था, यों अकड़ते चले जायं, अपना सर्वस्व, यहां तक कि प्राणों को भी, समर्पित करने को तैयार हो जायं।'
—प्रेमचन्द : रंगभूमि : पृ० ३३९
३. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० ५९
४. वही, पृ० ६४

सुखदा ने आन्दोलन में नया जीवन डाल दिया था, लोगों ने पुलिस की गोलियों और बौछारों को सहर्ष सहन किया। 'धर्म और हक' की लड़ाई में आत्मबल तथा बलिदान की भावना के सम्मुख पुलिस का पराजित हो लौट जाना गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की विजय थी।[1] इस आन्दोलन में विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा विद्यार्थी वर्ग ने विशेष रूप से भाग लिया था। अछूत आन्दोलन के पश्चात् सीधे सरकार पर आक्रमण किया गया है। गांधी जी ने इस आन्दोलन को प्रारम्भ करने के पूर्व शासक वर्ग को पत्र व्यवहार द्वारा न्याय व सत्य के मार्ग पर लाना चाहा था लेकिन उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गए थे। इस उपन्यास में सुखदा के शब्दों में इसका आभास लेखक ने दे दिया है।[2] सुखदा ने निम्न वर्ग की संस्थाओं तथा पंचायतों द्वारा हड़ताल करा कर सरकारी नीति का विरोध करवाना चाहा लेकिन इसमें अधिक सफलता न मिली। जन-जीवन में राष्ट्रीय चेतना का विकास करने के कारण उसे कारावास का दंड मिलता है। सत्याग्रही वीर पुरुषों और नारियों को जनता के अधिकारी वर्ग से जो सम्मान मिलता था वह राष्ट्रीय चेतना के विकास का मूर्त्त रूप था।[3] सुखदा के जेल जाने के पश्चात् रेणुका देवी, लाला समरकान्त, डा० शान्ति कुमार सभी राष्ट्रीय संग्राम का नेतृत्व कर बंदी बने। अन्त में नैना आन्दोलन के क्षेत्र में उतरती है। वह हड़ताल की अपेक्षा जुलूस का नेतृत्व कर म्युनिसिपल बोर्ड के दफ्तर की ओर चलती है। प्रेमचन्द जी ने इस दृश्य का चित्रण अत्यधिक सशक्त भावात्मक तथा अलंकारिक भाषा और शब्दों में किया है :—

'नैना ने झण्डा उठा लिया और म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर की ओर चली। उसके पीछे बीस-पचीस हजार आदमियों का एक सागर उमड़ता हुआ चला और यह दल मेलों की भीड़ की तरह अश्रृंखल नहीं फौज की कतारों की तरह श्रृंखलाबद्ध था। आठ आठ आदमियों की असंख्य पंक्तियां गंभीर भाव से, एक विचार, एक उद्देश्य, एक धारणा की आन्तरिक शक्ति का अनुभव करती हुई चली जा रही थीं और उनका तांता न टूटता था, मानों भूगर्भ से निकलती चली आती हों। सड़क के दोनों ओर छतों पर दर्शकों की भीड़ लगी हुई थी। सभी चकित थे। उफ्फोह। कितने आदमी हैं। अभी चले ही आ रहे हैं।'[4]

जुलूस में नैना के गीत ने अधिक उत्साह भर दिया था। उसके पति ने उसे गोली मार दी, और तब जुलूस और भी शांति के साथ गंभीर रूप में, संगठित होकर आगे बढ़ा। बलिदान द्वारा इस आन्दोलन को अजेय एवं अभेद्य होने की शक्ति मिली। यह जुलूस मीलों लम्बी कतार में था। म्युनिसिपल बोर्ड भी इस आत्म बलिदान से पराजित हो गया। उसने मजदूरों को मकानों के लिए जमीन दे दी। इस आन्दोलन

१. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० २१०
२. वही, पृ० २५५
३. वही, पृ० २६९
४. वही, पृ० ३७३

ने विदेशी शासन की जड़ें हिला दी थीं। असहयोग आन्दोलन की अपेक्षा सविनय अवज्ञा आन्दोलन अधिक काल तक चला था और अधिक संगठित था। असहयोग आन्दोलन में सरकार की कर संबंधी नीति का विरोध भी नहीं किया गया था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में किसानों की जागृति के फलस्वरूप अन्याय पर आधारित भूमि कर का विरोध किया गया था। प्रेमचन्द जी ने किसानों द्वारा करबन्दी आन्दोलन का भी विशद विवरण दिया है। अमरनाथ के नेतृत्व में हरिद्वार के पास के गांव में यह आन्दोलन संचालित हुआ था। ग्रामीण जनता भूमिपतियों की निरंकुश एवं स्वच्छन्द नीति से अत्यधिक त्रस्त थी। उसका विक्षोभ विद्रोह का रूप लेना चाहता था कि अमरकान्त ने स्वयं बन्दी होकर अहिंसात्मक सत्याग्रह का उदाहरण रख जनता को पथ-भ्रष्ट होने से रोका। आन्दोलन के तीन भिन्न रूपों के वर्णन के साथ प्रेमचन्द जी ने जनता की यथार्थ मन:स्थिति का भी परिचय दिया है। असहयोग आन्दोलन के समय अहिंसा, आत्मबल, संयम की जनता में बहुत कमी था। अत: गांधी जी ने देश को हिंसात्मक क्रांति से बचाने के लिए आन्दोलन स्थगित कर दिया था। उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली थी। विदेशी शासकों ने इस सुअवसर का पूरा लाभ उठाया था। 'रंगभूमि' उपन्यास में सूरदास तथा विनयसिंह के बलिदान के उपरान्त भी जान सेवक रूपी विदेशी पूंजीवादी नीति का कार्य सुचारु रूप से चलता है। उन्हें अपने स्वार्थ साधन के लिए अनुकूल वातावरण मिल जाता है। सूरदास की जमीन पर फैक्टरी बनना वस्तुत: राष्ट्रीय संग्राम की असफलता का सूचक है। 'कर्मभूमि' उपन्यास द्वितीय आन्दोलन की सफलता का तथा भारतीय जीवन के प्रत्येक वर्ग, विशेष रूप से निम्न वर्ग की, जागृति का सूचक है। 'रंगभूमि' में उच्च एवं मध्य वर्ग द्वारा राष्ट्रीय संग्राम का संचालन किया गया है। 'सूरदास' निम्न वर्ग का है किन्तु वह प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय संग्राम का संचालन नहीं करता। विनयसिंह आदि राष्ट्रीय स्वयं सेवकों ने उसके व्यक्तिगत संघर्ष को राष्ट्रीय रूप दे दिया था। 'कर्मभूमि' में उच्च वर्ग, मध्य वर्ग, निम्न वर्ग, किसान, मजदूर, अछूत सभी आन्दोलन में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। इस आन्दोलन में पग पग पर भारतीयों को सफलता मिलती है।

द्वितीय आन्दोलन काल में भी जनता की उत्तेजना में हिंसात्मकता का पूर्णतया निराकरण नहीं हो पाया था। वह अहिंसात्मक साधन से भ्रष्ट हो ईंट पत्थर भी फेंकती है, लेकिन प्राय: अमरनाथ, सुखदा, डा० शान्तिकुमार के उचित निर्देशन के कारण अधिक नियंत्रित एवं संयत रहती है। प्रेमचन्द जी के राजनीतिक उपन्यास 'रंगभूमि' से 'कर्मभूमि' में विकसित राष्ट्रवाद प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'पुरुष और नारी'[१] उपन्यास में पुरुष और नारी के हृदय में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्वों के मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण की पृष्ठभूमि में

१. यद्यपि इस उपन्यास का प्रकाशन काल १९३९ ई० है, लेकिन रचना काल शोध विषय के अन्तर्गत आ जाता है। महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उपन्यास होने के कारण इसे लेना असंगत न होगा।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम का विशद चित्र खींचा है। उन्होंने स्वयं लिखा है—'आज देश की आजादी की जो जंग छिड़ी है, उसी की पट-भूमि पर मैंने जीवन की एक बुनियादी जंग का रखा है।'[1] गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलनों की अभिव्यक्ति के लिए, भिन्न काल में रचित, प्रेमचन्द जी के दो उपन्यास मिलते हैं लेकिन राधिकारमण प्रसादसिंह ने आन्दोलनों के उपरान्त उपन्यास लिखा था, अतः उन्होंने एक ही उपन्यास में ई० सन् १९२० से १९३६ तक के काल की राजनीतिक परिस्थितियों को समावृत कर लिया है। सन् १९२० में गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया था। उपन्यास के प्रारम्भ में ही असहयोग आन्दोलन के समय की परिस्थितियों का वर्णन मिलता है—'१९२० साल। जलियांवाला बाग की आग अभी बुझी नहीं है। महात्मा गांधी ने राष्ट्र के अन्तर में नवीन चेतना का जादू फूँका है। भारत पहली बार चौंक कर सुनता है—ब्रिटिश सरकार की मिलजोई के प्रयास के बदले अपनी आध्यात्मिक शक्ति की तलाश ही उसकी जिन्दगी की सांस है।'[2] असहयोग आन्दोलन के पूर्व राष्ट्रीय चेतना को क्रियात्मक रूप देकर जन-संगठन का प्रयास नहीं हुआ था, लेखक ने इसका उल्लेख भी किया है कि 'आराम कुर्सी की फुरसत वाली लीडरी सर पर नौकरशाही की सलीमशाही को काफी ढो चुकी थी', अतः अब आन्दोलन का विस्तृत एवं नवीन रूप सम्मुख आया।[3] इस आन्दोलन का विद्यार्थी वर्ग पर विशेष प्रभाव पड़ा था—'आज उसके सामने न दीन है, न दुनिया; न बन्धन है, न माया; न कला है, न कविता। बस, जो कुछ है—वह देश और देश का सन्देश।'[4] उपन्यास का नायक अजीत एम० ए० का विद्यार्थी लेकिन राष्ट्र की पुकार पर परिवार की इच्छा के विरुद्ध, देश के लिए 'दिल पर सिल रखकर', सत्याग्रह रूपी भारत के जौहर व्रत में खादी रूपी केसरिया बाना पहन कर सम्मिलित हो जाता है। अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के व्रती वीर 'जान हथेली पर रखकर तलवार की धार' पर चले थे।[5] 'महात्मा जी ने आजादी का बीज इस मिट्टी में रोप दिया है, अब जवानों का लहू उसे सींच-सींच कर पनपा कर ही दम लेगा।'[6] ऐसा उस समय देशवासियों का दृढ़ विश्वास था। लेखक ने असहयोग आन्दोलन के समय निकलने वाली प्रभात-फेरियों, राष्ट्रीय गीतों आदि की झलक दिखाकर तत्कालीन राष्ट्रीय वातावरण को मुखर किया है।

इस उपन्यास के अजित जैसे कितने ही युवकों ने असहयोग आन्दोलन के जोश

---

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : दो शब्द : पृ० ३
२. वही, पृ० ४, ५
३. वही, पृ० ५
४. वही, पृ० ४
५. वही, पृ० २३
६. वही, पृ० २४

में 'रस की फेनिस बोतल' को त्याग कर राष्ट्रीयता को अपनाया था। इसके पश्चात् लेखक ने दो साल बाद की कथा को मोड़ दिया है। चौरी-चौरा की घटना ने गांधी जी को असहयोग स्थगित करने के लिए प्रेरित किया। देश-जीवन में पुनः शिथिलता आ गई लेकिन 'मर मिटने की लहर मिटी नहीं थी।'[१] इस आन्दोलन ने भारत को जगा दिया था, सार्वजनिक जीवन की नैतिक मर्यादा ऊँची हो गई थी और 'गांधी टोपी की बन्दानवाजी लोगों के दिल में लौ लगा चुकी थी।[२] कुछ वर्ष तक गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति में अजित लगा रहा। पुनः सन् १९३० में 'देश की हवा फिर बदली', कांग्रेस का रुख 'गर्म' हुआ और साबरमती के गर्त में तूफान उठा। 'सरकार की भृकुटि पर फिर बल आया। कायरों ने बिल ढूँढ़ा, वीरों ने ताल ठोंका[३]।' लेखक ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन की राजनीतिक परिस्थिति का विस्तृत चित्र खींचा है। गांधी-अर्विन-पैक्ट के टांके टूटने, समझौते के लिए गांधी जी का लंदन जाकर गोलमेज-सभा से निष्फल लौटने, नजरबन्द होने का भी उल्लेख उपन्यास में मिल जाता है।[४]

गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन काल में दाण्डी मार्च कर कानून भंग किया था। इसके उल्लेख के साथ राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'पुरुष और नारी' उपन्यास में सत्याग्रह आन्दोलन की प्रक्रिया का भी वर्णन किया है—'आज आश्रम में काफी हलचल है। जेल जाने वालों पर कंचन बरस रहा है। इस बे-हथियार, बे बैर की लड़ाई में पैंतरे देख कर गांव वाले दंग हैं। जेल के जत्थे के इर्द-गिर्द हजारों की भीड़ जमी है। अजब माजरा है। जेल जाना एक जशन है। किसी के चेहरे पर एक शिकन तक नहीं। सर पर चन्दन का टीका, गले में गजरा, हाथ में तिरंगा झण्डा और झण्डा ऊँचा रहे हमारा।'[५] पिकेटिंग और गिरफ्तारी के लिए जुलूस जाते थे। इन जुलूसों में राष्ट्रीय गीत गाते थे।

विरादराने नौजवां, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
झुके न हिन्द का निशां, बढ़ें चलो बढ़े चलो ॥

अब खादी के सम्मुख विलायती कपड़ा एक तमाशा बन गया था। नारी ने भी ब्रिटिश शेर से पंजा लेने के लिए सिपाहियाना ठाठ बनाया था।[६] इस आन्दोलन को नारी ने जितना कारावास दण्ड सहन कर सहयोग दिया था, वह इसके पूर्व नहीं था। इस उपन्यास में सुधा का त्याग प्रशंसनीय है। 'जेल तो मानों सनम का देश

---

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी, पृ० ६४
२. वही,
३. वही, पृ० ८७
४. वही, पृ० १३२
५. वही, पृ० १३७
६. वही, पृ० १४१

हो गया था ।[1] सत्याग्रह का जोर उठता और गिरता रहा, कितने ही घर वीरान हुए और कितने ही मुकुल असमय मुरझा गये ।[2] अन्त में यह सत्याग्रह आन्दोलन भी समाप्त हुआ ।

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने आन्दोलन के पश्चात् की राजनीतिक परिस्थितियों का भी उल्लेख किया है। सन् १९३५ में प्रान्तीय स्वायत्त शासन के अधिकार का नियम बना । कांग्रेस में चुनाव के प्रश्न पर दो दल हो गए, एक समर्थक और दूसरा विरोधी । लेखक ने अजीत के माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं। वे कांग्रेस द्वारा तख्तनशीनी को राष्ट्रीय त्याग और साधन में बाधक मानते हैं। 'मैं तो समझाता हूं, मसनद की हवा लगी और कांग्रेस की त्याग की तमाम साधना हवा हुई । आपस में वह छीना-झपटी वह मैं-मैं तू-तू होगी कि तुम देख लेना ।'[3] इसके साथ ही लेखक का यह भी मन्तव्य है कि कांग्रेस का आश्रम अब तपोभूमि न रहा था ।[4] यद्यपि लेखक ने राष्ट्रवाद की दृष्टि से उपन्यास का अन्त अति निराशाजनक दिखाया है लेकिन सत्याग्रह आन्दोलन एवं तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के विशद चित्रण से अन्त में यह प्रत्यक्ष ध्वनित है कि राष्ट्र की रग-रग में चेतना की लहर दौड़ चुकी थी, नगर, ग्राम, पुरुष-नारी सभी समान रूप से इसके भागी थे। उपन्यासकार ने इस उपन्यास की रचना में राजनीतिक परिस्थितियों, राष्ट्रीय आन्दोलनों और देशभक्ति को पट-भूमि के रूप में अंकित किया है, उनका प्रमुख लक्ष्य तो राष्ट्र की तत्कालीन परिस्थितियों में पुरुष और नारी के हृदय में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना ही है। उपन्यास-कला के संयोग से और मानव-मनोवृत्तियों के सूक्ष्म विश्लेषण में राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक सजीव हो गया । पुरुष और नारी की विशेष गुत्थियों पर जिस अनोखे ढंग से लेखक ने प्रकाश डाला है, उससे भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन शुष्क एवं जड़ इतिहास न रहकर सरस एवं कलात्मक हो गया है। 'देशभक्ति' और 'नारी का प्रेम' चिरकाल से पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व का कारण रहे हैं और चिरकाल तक इनके बीच संघर्ष चलेगा, इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए राधिकारमण प्रसाद जी ने इस उपन्यास के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन को शाश्वत साहित्य का रूप दिया है।

कहानी में सत्याग्रह आन्दोलनों के विशद रूप का चित्रण संभव न होने के कारण, उसके विभिन्न पक्षों का सफल एवं पूर्ण चित्रण हुआ है। असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन से प्रेरित होकर कहानीकारों ने पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के बीच आन्दोलन का कार्यक्रम, स्थूल चित्र, उनका प्रभाव

---

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० १५३
२. वही, पृ० १५१
३. वही, पृ० १८५
४. वही, पृ० १८५

तथा उनके कारण उत्पन्न संघर्ष का चित्र खींचा है। असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भ के साथ ही सरकारी नौकरियों, न्यायालयों, शिक्षालयों से असहयोग प्रारम्भ हो गया था। प्रेमचन्द जी की 'लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा' कहानी में डिप्टी मजिस्ट्रेट हरविलास सरकारी नौकरी छोड़ देते हैं।[१] हरविलास ने अपने त्यागपत्र में लिखा था—'मेरे विचार में वर्तमान शासन सत्पथ से सम्पूर्णतः विचलित हो गया है। यह आंग्ल प्रजा के जन्मसिद्ध स्वत्वों को छीनना और उनके राष्ट्रीय भावों का वध करना चाहती है। '[२] स्वयं प्रेमचन्द जी ने भी असहयोग आन्दोलन में सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। सुदर्शन जी की 'अन्धेरे में' कहानी में लाला भगतराम की सरकारी नौकरी दफ्तर टूट जाने के बाद समाप्त हो जाती है और नौकरी के अभाव में वे कष्टकर जीवन व्यतीत करते हैं। इसी समय देश में असहयोग की पुकार उठी और वे दिन रात देश सेवा में लग गये। अब उन्हें सच्चा प्रकाश मिल गया था। अतः दारिद्रय के थपेड़े सहने पर भी वे सरकारी नौकरी ठुकरा देते हैं।[३] सुभद्राकुमारी चौहान की 'तांगेवाला' कहानी में तांगेवाले ने सरकारी नौकरी न कर तांगा चलाने का स्वतन्त्र व्यवसाय इसीलिये किया था कि उसमें किसी की गुलामी न थी। इस कहानी में लेखिका ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है कि सत्याग्रह आन्दोलनों ने साधारण जनता में जागृति कर दी थी। तांगेवाला दो बार सत्याग्रह आन्दोलन में जेल हो आया था।[४]

जुलूस निकालना, नारे लगाना, राष्ट्रीय गीत गाना, धरना देना, सभाएं करना तथा सरकार की कुटिल नीति का सभाओं में उद्घाटन करना, जेल जाना अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के प्रमुख साधनों का स्थूल वर्णन प्रेमचन्द की 'जुलूस', 'जेल', 'समरयात्रा' कहानियों में; सुदर्शन की 'कैदी', 'हार-जीत', 'अन्तिम साधन' कहानियों में; तथा सुभद्राकुमारी चौहान की 'गौरी' कहानी में मिलता है। प्रेमचन्द की 'जुलूस' कहानी में सामान्य जनता द्वारा कांग्रेस के राष्ट्रीय कार्यक्रम में भाग लेने का वर्णन है। राष्ट्रीय स्वयं सेवकों का दल अपने स्वत्वाधिकारों की प्राप्ति और विदेशी शासकों के प्रतिकार के लिए जुलूसों में नारे लगाता चलता था। पुलिस के अत्याचार, लाठियों के निर्दय प्रहार, उनके घोड़ों के टापों की चोट सहन करता हुआ जुलूस अविचल भाव से सुसंगठित रूप में चलता रहता था। 'यह पेट के भक्तों, किराये के टट्टुओं का दल न था। यह स्वाधीनता के सच्चे स्वयं सेवकों का, आजादी के दीवानों का संगठित दल था—अपनी जिम्मेदारियों को खूब समझता था'।[५] कांग्रेस

१. 'सरकारी प्रजा हित नीति पर उन्हें लेशमात्र भी विश्वास न रहा था।'
—प्रेमचन्द : प्रेम चतुर्थी : पृ० ७२ : सातवीं बार

२. प्रेमचन्द : प्रेम चतुर्थी : पृ० ७४

३. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ७८

४. सुभद्राकुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० ३२

५. प्रेमचन्द : मानसरोवर : पृ० ५५

को जनता की पूरी सहानुभूति प्राप्त हुई थी, यद्यपि वह गांधी जी के सत्य एवं अहिंसा की पूरी सहानुभूति प्राप्त हुई थी, यद्यपि वह गांधी जो के सत्य एवं अहिंसा की नैतिकता में तप कर सहनशक्ति का पूर्ण पाठ नहीं पढ़ पाई थी। प्रेमचन्द्र जी ने इस कहानी में उन्मत्त जनता को हिंसा-कार्य से रोकने के लिए सत्याग्राही वीरों द्वारा पीछे लौटना दिखाया है। अतः सत्याग्रह-आन्दोलन में अहिंसात्मकता की पूर्ण रक्षा की गई थी। 'जेल' कहानी में प्रेमचन्द जी ने सत्याग्रह आन्दोलन का जीवित चित्र अंकित किया है। देश-जीवन में राष्ट्रीय भावना तपस्या बन गई थी। भारत की निहत्थी और सशक्त जनता ने भी अपने अन्तर में अपार शक्ति का अनुभव किया था और सामूहिक रूप से आन्दोलन में भाग लिया था।[1] सुदर्शन की 'कैदी' कहानी में धनाड्य परिवार के अब्दुल वहीद को असहयोग आन्दोलन के समय ओजस्विनी वक्तृता देने के कारण कारावास का दण्ड मिलता है। और वे विवाह की पहली रात्रि में 'वतन की खिदमत' के लिए दण्ड स्वीकार करते हैं।[2] 'हार जीत'[3] तथा 'अन्तिम साधन'[4] कहानियों में सुदर्शन जी ने पारिवारिक जीवन में सत्याग्रह आन्दोलन की झांकी दिखाई है। 'समर यात्रा' कहानी में प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन में आन्दोलन तथा गांधी जी के प्रभाव को दिखाया है। गांधी जी द्वारा संचालित आन्दोलन, नगर तक सीमित नहीं थे, उनमें ग्रामीण जनता ने भी उत्साहपूर्वक सहयोग दिया था। गाँव वाले स्वराज्य के दीवाने, गांधी टोपी वालों का हृदय से स्वागत करते थे। राष्ट्रीय वीरों को देख कर 'नौहारी' का बुढ़ापा भाग गया था।[5] उनमें आत्मसम्मान की भावना जागृत हो गई थी। जेल और फांसी गांव वालों के लिए भी गौरव की वस्तु बन गये थे।[6] असहयोग आन्दोलन के समय गांव के हिन्दू व मुसलमान दोनों ने समर यात्रा में भाग लिया था। उस समय ऐसा उत्साह, ऐसी उमंग गांववालों में छा रही थी मानो स्वराज्य ही मिल गया हो।

निराला जी की 'चतुरी चमार' कहानी में भी गांव वालों में आन्दोलन के प्रभाव को दिखाया है। गांवों में तिरंगा झण्डा फहराया जाता था, वहां भी कांग्रेस का जोर था। इस कहानी का रचनाकाल सन् १९२३ ई० है जब असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था। इसमें आन्दोलन तथा उसके स्थगन की प्रतिक्रिया का वर्णन मिलता है—'इन्हीं दिनों देश में आन्दोलन जोरों का चला—यही, जो चतुरी आदियों के कारण फिस्स हो गया है। होटल में रहकर, देहात से आने वाले शहरी

१. वही : पृ० १४
२. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ८०
३. वही : पृ० ८३
४. वही : पृ० ९३
५. प्रेमचन्द : मानसरोवर : पृ० ७५
६. वही : पृ० ८०, ८१

युवक मित्रों से सुना करता था, गढ़ा कोला में भी आन्दोलन जोरों पर है–छः–सात सौ तक का जौत किसान लोग इस्तीफा देकर छोड़ चुके हैं—वह ज़मीन अभी तक नहीं उठी—किसान रोज इकट्ठे होकर झंडा-गीत गाया करते हैं । साल भर बाद, जब आन्दोलन में प्रतिक्रिया हुई, ज़मींदारों ने दावा करना और रियाया को बिना किसी रियायत के दबाना शुरू किया, तब गांव के नेता मेरे पास मदद के लिए आए, बोले—गांव में चल कर लिखो । तुम रहोगे तो मार न पड़ेगी, लोगों की हिम्मत रहेगी, अब सख्ती हो रही है ।'[१]

गांधी जी के सत्साग्रह आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता थी इसमें नारी का प्रमुख रूप में भाग लेना । 'रंगभूमि' में सोफिया, 'कर्मभूमि' में सुखदा, रेणुका देवी, नैना उपन्यास साहित्य द्वारा, प्रेमचन्द की अमर नारी देन हैं । इसके साथ ही उनकी कहानियों में भी नारी का विशेष स्थान है । 'जेल' कहानी में मृदुला अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर, हंसते हुए बिना किसी प्रतिवाद या अपने पक्ष की सफाई के जेल चली जाती है ।[२] पत्नी से पति' कहानी में नारी जागृति तथा उसमें बढ़ते हुए साहस का वर्णन है, गोदावारी राष्ट्रहित के लिए राष्ट्र-विरोधी पति का तिरस्कार करती है ।[३] 'शराव की दूकान' में मिसेज सक्सेना शराब की दूकान पर धरना देती हैं ।[४] 'जुलूस कहानी में मिट्टनबाई अपने दरोगा पति द्वारा सत्याग्रहियों पर किये गये अत्याचार से अत्यन्त क्षुब्ध हो जाती है । वह सरकार द्वारा पति की पदोन्नति को देशद्रोह की कीमत समझती है ।[५] सुदर्शन जी की 'अन्तिम साधन' कहानी में पति की इच्छा के विरुद्ध स्वदेशी का व्रत न पूरा करने के कारण सुशीला प्राण दे देती है[६] 'हार जीत' कहानी में सुदर्शन जी ने आन्दोलन से प्रभावित होकर उसमें सक्रिय रूप से भाग लेने वाले सेठ साहब के पुत्र तथा पत्नी से उसका विरोध करवाया है ।[७] 'सीधे सादे चित्र' में सुभद्रा कुमारी चौहान की गौरी ने विलासी नायब तहसीलदार की अपेक्षा दो बच्चों के पिता कांग्रेसी कार्यकर्ता सीतारामजी को विवाह का पात्र बनाया है । सत्याग्रह आन्दोलन में सीताराम जी की कारावास यात्रा में, वह उनके बच्चों की देख रेख कर त्याग और आदर्श का उदाहरण रखती है ।[८]

आन्दोलन में भाग लेने के लिए पुरुष की अपेक्षा नारी ने अधिक त्याग तथा

---

१. विनोद शंकर व्यास, सम्पादक : मधुकरी (दूसरा खंड) : पृ० १५
२ प्रेमचन्द : मानसरोवर : पृ० ६
३. वही : पृ० १९
४. वही : पृ० ५१
५. वही : पृ० ५८
६. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० १०१
७. वही : पृ० ८६
८. सुभद्रा कुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० १३

संघर्ष किया था। प्रेमचन्द, सुदर्शन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि कहानीकारों की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि उसे सबसे अधिक विरोध अपने परिवार वालों का करना पड़ा था। कुमारी कन्याओं को माता पिता का जैसे 'रंगभूमि' उपन्यास की सोफी, सुभद्राकुमारी चौहान की 'गौरी' विवाहित स्त्रियों को अपने पति तथा ससुराल वालों का जैसे 'कर्मभूमि' उपन्यास की सुखदा, नैना, राधिका रमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास की सुधा और कहानी कहानियों में 'पत्नी से पति' में गोदावरी तथा 'जुलूस' में मिट्ठनबाई अपने पति का विरोध करती हैं। नारी ने राष्ट्रीय कार्यक्रम से प्रभावित होकर अपने व्यक्ति संबंधों के बलिदान का अपूर्व आदर्श रखा था। ग्राम की नारी भी सक्रिय सहयोग देने में पीछे न रही थी। प्रेमचन्द की 'समर यात्रा' कहानी में बूढ़ी नोहरी पुलिस और दरोगा के मुख पर उनकी कुटिलता का वर्णन करती है तथा गांव वालों को अपनी ओजस्विनी वक्रता से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए अनुप्रेरित करती है।

इसके अतिरिक्त बच्चों में भी राष्ट्रीय भावना लहरा रही थी।[1] 'जुलूस' कहानी में प्रेमचन्द जी ने कालेज-स्कूल के बच्चों, स्त्रियों, बुढ़ियों, मजदूरों द्वारा आन्दोलन में भाग लेने का विशेष रूप से वर्णन किया है।[2]

रामवृक्ष बेनीपुरी की 'चिता के फूल 'नामक कहानी संग्रह[3] में १९३०-३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का विशद् एवं स्पष्ट चित्र मिलता है। 'चिता के फूल' कहानी में गांधी जी द्वारा राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंस से असफल होकर लौटने, सीमाप्रान्त में 'लाल कमीज' दल के संगठन, राष्ट्रीय नेताओं गांधी जी, ज्वाहरलाल नेहरू आदि की गिरफ्तारी, अब्दुल गफ्फारखां के सपरिवार निर्वासन, गांधी जी के बंबई लौटने पर कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक, नये वाइसराय से गांधी जी की खतो किताबत, नये वाइसराय द्वारा आंदोलन दबाने के प्रयत्न का उल्लेख मिलता है।[4] यह सब समाचार ग्रामवासियों को भी विस्तार में मिलने लगे थे। देश की निरंतर बदलती हुई गतिविधि, राष्ट्रीय नेताओं के प्रयत्न ने उनमें एक अपूर्व उत्साह भर दिया था। सरकार द्वारा कांग्रेस कमेटियों के गैरकानूनी करार दिये जाने पर ग्राम का बच्चा बच्चा विक्षुब्ध हो गया था और राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणोत्सर्ग की बाजी लगा बैठा था।[5] कुछ पुलिस अफसरों ने सारे कानून अपने हाथ में ले लिये थे जिससे राष्ट्रीय नेता अपने पथ से विचलित नहीं हुए। इस द्वितीय आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता थी कि गैरकानूनी करार दिये जाने पर भी कांग्रेस

---

१. प्रेमचन्द : मानसरोवर : पृ० ८

२. वही : पृ० ६२

३. इन कहानियों का संग्रह बाद में किया गया था, किन्तु रचना १९३०-३२ के काल में हुई थी। —बेनीपुरी परिचय : बेनीपुरी ग्रन्थावली ; भाग १

४. बेनीपुरी ग्रन्थावली : भाग १ : चिता के फूल : पृ० २

५. बेनीपुरी ग्रन्थावली : चिता के फूल : भाग १ : प ४

के कामों की शृंखला पूरी तरह अक्षुण्ण चल रही थी, यहां तक कि स्वराजी डाक का बाजाब्ता संगठन हो गया था, राष्ट्रीय अखबार बन्द होने पर भी कांग्रेस की बुलेटिनें नियमित रूप से प्रकाशित होती थीं। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में फौजी प्रवृत्ति बढ़ गई थी। बेनीपुरी जी ने लिखा है—'वे प्रकट और गुप्त लड़ाइयों की कलाएँ धीरे-धीरे जानने लगे हैं। नये वाइसराय ने कहा था, वह एक महीने में आन्दोलन कुचल देगा, उसकी शेखी धूल में मिल गई—रामू के आनन्द का क्या कहना ?'[1] रामू जैसे छोटे छोटे ग्रामीण बालकों ने राष्ट्र के लिए प्राण निछावर कर दिए थे।' उस दिन झोपड़ी रोई'[2] कहानी में राधो जैसे निर्धन किंतु मेधावी विद्यार्थियों द्वारा अध्ययन छोड़ कर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने, धन तथा परिवार के त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण रखा है।

प्रथम आन्दोलन की अपेक्षा द्वितीय सत्याग्रह आन्दोलन के समक्ष स्थिति बहुत बदल चुकी थी। बड़े घरानों के युवकों ने भी प्रतिष्ठा पाने की महत्वाकांक्षा से राष्ट्रीयता को अपना लिया था।[3] अब 'राष्ट्रीयता' जेल जाना, देशभक्ति का प्रदर्शन. सम्मान की वस्तु थे। जेलों की स्थिति में भी बहुत कुछ सुधार आ गया था। ए० क्लास के कैदियों को तो सब प्रकार की सुविधाएं मिलती थीं।[4] यह राष्ट्रवाद के विकसित रूप का ही परिणाम था। गांधी जी का ऐसा प्रताप था कि उन्होंने देशभक्ति को खादी, अहिंसा, सत्याग्रह द्वारा साधारण जनता के लिए भी अति सहज बना दिया था।

इस राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की विचारधारा में परिवर्तन होने लगा था। समाजवादी विचारधारा अधिक प्रबस होने लगी थी, इसका संकेत भी रामवृक्ष बेनीपुरी की 'वह चोर था' कहानी में मिल जाता है।[5]

सत्याग्रह आन्दोलनों का मूलाधार बलिदान की भावना थी। अतः इसका विस्तृत विवेचन भी अपेक्षित है।

बलिदान की भावना

गाँधीजी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा देशवासियोंके सम्मुख आत्म-त्याग का प्राचीन भारतीय आदर्श रखा। वे तलवार की अपेक्षा कष्ट सहन का अपूर्व सिद्धान्त रखकर विदेशी शासकों का हृदय परिवर्तन कर, स्वराज्य लेना उचित सम-

---

१. बेनीपुरी ग्रंथावली : चिता के फूल भाव १ : पृ० ६
२. वही : पृ० १०१
३. वही : पृ० १०२
४. वही : पृ० ४१
५. बेनीपुरी ग्रन्थावली : भाग १ : चिता के फूल : पृ० ४१

झते थे ।[1] अधिक से अधिक व्यक्तियों को आन्दोलन में सम्मिलित कर मनोबल द्वारा विदेशी शासकों से असहयोग कर मुक्ति प्राप्ति का साधन अधिक मनोवैज्ञानिक तथा जनकल्याणकारी था । हिन्दी-साहित्य में बलिदान की भावना का सुन्दर एवं प्रशस्त वर्णन मिलता है ।

काव्य

रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम शंकर शर्मा, 'त्रिशूल', सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी प्रभृत राष्ट्रीय कवियों ने देशवासियों को प्राणोत्सर्ग का संदेश दिया था। पं० रामचरित उपाध्याय देश पर प्राण न्यौछावर करने के लिये देशवासियों को प्रेरित करते हुए कहते हैं—

देश-प्रेम रस छके हुए हम अग्नि कुण्ड में खेलेंगे,
पराधीन हो किन्तु नहीं अब विविध वेदना झेलेंगे ।[2]

भारत की सत्याग्रही जनता के लिए देश निकाला स्वर्गवास, फाँसी मुक्ति तथा नजरबन्दी की सजा काशी जी की पुण्य एवं सुखराशिदायिनी यात्रा बन गई थी ।[3] उपाध्यायजी की भाँति त्रिशूल ने भी आत्मोत्सर्ग का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार सत्याग्रही का यह अन्यतम धर्म था कि वह विदेशी शासकों के क्रूर अत्याचारों को मौन रूप से, हिंसा तथा घृणा की भावना परित्याग कर सहे ।[4]

त्रिशूल तथा पण्डित रामचरित उपाध्याय की भाँति शंकर कवि ने भी देशवासियों को असहयोग आन्दोलन के पुण्य यज्ञ में आत्माहुति देने का महान संदेश दिया था—

देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा ।
लोकमान्य गुरु गांधी जी का प्रेम-मंत्र पढ़ना होगा,
साथ सत्य धारी अगुओं के अब आगे बढ़ना होगा ।।[5]

---

१. 'आओ बढ़ो बन्धुगण स्वतन्त्रता हुंकार सुनो,
अपने ही हाथों अब अपना करो करो उद्धार सुनो ।
स्वतन्त्रता देवी के पद पर यदि निज शीश चढ़ाओगे,
पाओगे सुख सुयश लोक में अन्त परमपद पाओगे ।'
—महात्मा गांधी : यंग इण्डिया : पृ० ६

२. रामचरित उपाध्याय : राष्ट्रभारती : प्रथम संस्करण : पृ० ३०

३ वही : पृ० २६

४. त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : प्रथमावृत्ति : पृ० ८

५. सम्पादक हरिशंकर शर्मा : शंकर सर्वस्व : पृ० २४८

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत माता के कल्याण के लिए भारतवासियों को आत्म-त्याग तथा बलिदान का पाठ पढ़ाया था—

मातृभूमि को वेदी मान,
करो धर्म-संगत बलिदान ।[१]

महात्मा गांधी ने देशवासियों को बलिदान का ऐसा महामन्त्र दिया था कि जन-जीवन में पराधीनता के प्रति विद्रोह कर जेल जाने एवं अनेक अन्य कष्ट सहन करने की क्षमता आ गई थी। इस बलिदान की उत्कृष्ट भावना का ही यह परिणाम था कि जेलों में सत्याग्रहियों की ऐसी भीड़ थी कि उनमें जगह नहीं रह गई थी। स्वतन्त्रता के साधकों ने प्राणों की बाजी लगा दी थी। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में बलिदान की भावना अधिक पुष्ट रूप में अभिव्यक्ति हुई है।[२] राष्ट्रीय झंडे पर जीवन भेंट कर देना गौरव की बात समझी जाती थी।[३]

सियारामशरण गुप्त ने अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा राष्ट्र की सांप्रदायिक एकता के प्रयत्न में किये जाने वाले अपूर्व बलिदान को राष्ट्रीय कथाकाव्य का ही रूप दे दिया था। 'आत्मोत्सर्ग' गणेशशंकर विद्यार्थी का राष्ट्रहित अमर पद प्राप्त करने का महान राष्ट्रीय काव्य है।

इतिहास से वीर-चरित्रों को लेकर काव्य रचना हुई, जिन्होंने युग-युग से चले आ रहे बलिदान का उच्च आदर्श स्थापित किया। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'झाँसी की रानी' कविता द्वारा सन् १८५७ ई० के स्वातन्त्र्य संग्राम में देश की स्वतन्त्रता के लिए वीरगति प्राप्त करने वाली वीर भारतीय नारी झाँसी की रानी का महानचरित्र ओजपूर्ण शब्दों में रखा। भारत के पुरुषों को ही नहीं, नारी को भी बलिदान के लिए अभिप्रेरित किया। देश की बहिनों का प्रतिनिधित्व करती हुई श्रीमती चौहान ने देश के भाइयों को संग्राम में कट मरने के लिए विदाई दी। उन्होंने अपने अपने वीर भाइयों को यह संदेश दिया कि वे स्वातन्त्र्य संग्राम में पीछे न हटें, नहीं तो बहनों को निर्भय मरने का वरदान दे जायें।[४]

त्रिशूल, शंकर तथा रामचरित उपाध्याय ने इस काल में भी द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली में ही बलिदान का आदर्श रखा है। उनके काव्य में भावात्मकता का ही प्राधान्य है। माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान तथा सियारामशरण गुप्त के काव्य में मार्मिकता अधिक है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की कविता में बलिदान की भावना वीर-रस मंडित है, उसमें करुणा की अपेक्षा उत्साहवर्द्धक गुण अधिक है। माखनलाल चतुर्वेदी में बलिदान का स्वर अधिक स्पष्ट है किन्तु मार्मिकता

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : चतुर्थावृत्ति : पृ० ७५
२. माखनलाल चतुर्वेदी : माता : पृ० ५५
३. वही : पृ० ७६
४. सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० १०९

तथा करुणा का प्राधान्य है। उनकी बलिदान-भावना के पीछे राजपूत-काल का गर्जन-तर्जन अथवा ओज नहीं है, वह गांधी युग के सुसंस्कृत एवं संयत ओज से पूर्ण है। सियारामशरण गुप्त ने बलिदान की भावना को करुण चरित्र-काव्य के रूप में रखा है। 'आत्मोत्सर्ग' पाठकों को करुण वातावरण में बलिदान के लिए प्रेरित करता है। इन सभी कवियों का, बलिदान द्वारा, राष्ट्रीय जीवन को चेतन करने का प्रयास अद्भुत है।

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में बलिदान की भावना का प्राधान्य था। सोहनलाल द्विवेदी ने अधिक ओजपूर्ण किन्तु सरल भाषा में जन-जीवन में जाग्रत बलिदान की भावना का विवेचन किया है :—

किसने स्वतन्त्रता की आगी,
पग-पग मग-मग में सुलगा दी ?
नस-नस में धधक उठी ज्वाला
पर मिटने का उन्मेष लिये,
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव संदेश लिए ?

हिन्दी काव्य में बलिदान की भावना को वर्णनात्मक भावात्मक, एवं अन्योक्ति पद्धति में अभिव्यक्त किया गया है।

हिन्दी नाटकों में बलिदान की भावना

सन् १९२०-३७ में रचित हिन्दी नाटकों में भी बलिदान की भावना का कई रूपों में चित्रण किया गया था। भारतीय इतिहास की वीर-कथाओं के माध्यम से वीरतापूर्ण बलिदान का पोषण किया गया था। ईसाई धर्म एवं मुसलमान धर्म के महापुरुषों की चरित्र-कथा द्वारा भारत में बसने वाले सभी धर्म तथा जातियों के लिए बलिदान का महत्त्व दिग्दर्शित कराया गया था। गांधी जी द्वारा संचालित सत्याग्रह आन्दोलन में वीर गति पाने वाले राष्ट्र-भक्तों के बलिदान की भी झलक दिखाई गई थी।

भारतीय इतिहास प्रसिद्ध वीराख्यान लेकर, बलिदान का महत्त्व प्रदर्शित करने वाले प्रसिद्ध नाटक हैं—बदरीनाथ भट्ट का 'दुर्गावती', जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त, 'स्कंदगुप्त', 'राज्यश्री', आदि, जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' का 'प्रताप प्रतिज्ञा', हरिकृष्ण प्रेमी का 'रक्षा बन्धन', 'शिवा साधना', सुदर्शन का 'जय पराजय'। बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती' नाटक में अकबर से राज्य की रक्षा हेतु वीर रानी दुर्गावती की प्राणाहुति की इतिहास प्रसिद्ध कथा ली गई है। भट्ट जी ने दुर्गावती के वीर चरित्र के ओजपूर्ण वर्णन द्वारा अपने युग की भारतीय नारी को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए बलिदान होने के लिये प्रेरित किया है। जयशंकर प्रसाद ने भारतीय इतिहास के हिन्दू काल से उन महान् वीर राजाओं और नारियों को अपये नाटकों के लिए चुना है, जिन्होंने देश की

रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा दी थी। चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, हर्षवर्द्धन, राज्यश्री ध्रुवस्वामिनी आदि वीर पुरुष एवं नारी पात्र हैं, जो देश को स्वतन्त्रता के लिए बलिदान होने का संदेश देते हैं। 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक में जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' ने राजपूताने के इतिहास प्रसिद्ध वीरवर, स्वतन्त्रता के उपासक, दृढ़व्रती महाराणा प्रताप के जीवन की कथा ली है। इस नाटक में प्रताप ने दलित देशवासियों को गांधी जी के सदृश चित्तौड़ रूपी देश के उद्धार के लिए बलिदान का मार्ग अपनाने को प्रेरित किया है—

'वीरों! मेवाड़ के अभिमान! चित्तौड़ की आशा! आज तुम्हें पाकर हृदय उत्साह से भर गया है। चित्तौड़ के खंडहरों का शून्य हृदय हमारी अकर्मण्यता पर हाहाकार कर रहा है। एक बार उसे फिर स्वाधीनता-संग्राम के लाल दिन दिखाने को जी चाहता है। चलो, हम संसार को दिखा दें कि पद-दलित देशों के शेष शूर किस तरह अत्याचारियों की जड़ हिला देते हैं। आज से मेवाड़ का प्रत्येक पर्वत हमारा दुर्ग, प्रत्येक वन हमारा युद्ध-क्षेत्र और प्रत्येक गुफा हमारा राजमहल होगी। चित्तौड़ का उद्धार हमारा लक्ष्य होगा और बलिदान हमारा मार्ग। जय मेवाड़।'[१]

जंगलों में मारे-मारे फिर कर, बाल-बच्चों को अनेक कष्ट देकर, भूख से तड़पने पर भी महाराणा प्रताप ने अकबर की आधीनता स्वीकार नहीं की थी क्योंकि मातृभूमि के स्वाधीनता यज्ञ में हंसते-हंसते प्राणोत्सर्ग करने की उन्होंने प्रतिज्ञा की थी।[२] स्वाधीनता की प्रबल आकांक्षा प्रलयाग्नि बनकर[३] उनके हृदय में भड़क रही थी। जिस भूमि पर उन्होंने जन्म लिया है, वह 'ईश्वर से भी पूज्य और प्राणों से भी प्यारी है।'[४] अपने अन्तिम समय में वे कहते हैं—"... मैं चाहता हूं कि इस पीड़ित भारत वसुन्धरा पर कभी कोई ऐसा माई का लाल पैदा हो, जिसके हृदय-रक्त की अन्तिम बूंदें इसके स्वाधीनता-यज्ञ में पूर्णाहुति दें, इसे सदा के लिए स्वाधीन कर दें, जिसके इंगित पर, बरसों के बिछुड़े हुए कोटि-कोटि भारतीय एक सूत्र में बंधकर सर्वस्व बलिदान करने मातृ-मन्दिर की ओर दौड़ पड़ें। मेरी प्रतिज्ञा तो अधूरी रह गई सामंत! हृदय में अतृप्ति की एक आग छिपाए जा रहा हूं। उफ!'[५] निस्सन्देह भारतवासियों को सर्वत्र बलिदान करके ही स्वतन्त्रता की उपलब्धि हुई है। इस नाटक के गीतों में भी हंसते हंसते बलिदान होने के लिए देशवासियों को प्रेरित किया गया है।[६]

---

१. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : प्रताप प्रतिज्ञा : पृ० १३
२. वही : पृ० ५४
३. वही : पृ० १३
४. वही : पृ० ४१
५. वही : पृ० ६५
६. वही : पृ० २२, ८७

बाबू लक्ष्मीनारायण कृत 'महाराणा प्रतापसिंह का देशोद्धार' नाटक भी देश के उद्धार के लिए बलिदान का पाठ पढ़ाता है। हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षा बन्धन' नाटक में स्वदेश प्रेम एवं आन के लिए बलिदान देने वाले राजपूतों का वर्णन मिलता है। राजपूत पुरुष ही नहीं नारियां भी बलिदान के महत्व को समझती थीं। इस नाटक में राजपूत नारियां सतीत्व की रक्षा के लिए मरण का गीत गाते हुए चिता पर चढ़कर बलिदान का अद्‌भुत आदर्श रखती हैं।[१] हमारा इतिहास साक्षी है कि स्वाधीनता पराधीनता का विचार तज वे केवल एक बात जानती थीं 'रण में अपनी आहुति देना'[२]। नाटक के गीत भी बलि-पथ का दीवाना बनने की प्रेरणा देते हैं।[३] बलि-वेदी पर मर मिटने के लिए आग्रह करते हैं—

पहनो बन्धु, मरण का ताज।
जन्मभूमि की रखलो लाज ॥[४]

इसी प्रकार शिवा-साधना' नाटक में शिवाजी का चरित्र, बलिदान का सजीव चित्र है, जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया है। लेखक ने शिवाजी के कथन में बलिदान को स्वतन्त्रता की साधना के लिए आवश्यक माना है—'...एक सैनिक की वीरता, एक-एक भावुक का आत्म-बलिदान बूंद-बूंद में एकत्र होकर, अगणित सिंधु भर देता है। तब जाकर किसी दिन स्वतन्त्रता की साधना सम्पूर्ण होती है।...'[५] इस नाटक में भी गीत द्वारा स्वतन्त्रता के लिए तन-मन-प्राण लुटाने का आह्वान किया गया है।[६]

बेचन शर्मा उग्र का 'महात्मा ईसा' और प्रेमचन्द का 'कर्बला' नाटक, क्रम से ईसाई एवं मुसलमान महापुरुषों के चरित्रांकन द्वारा भारत में बसने वाली अल्प-संख्यक ईसाई एवं मुसलमान जातियों के बलिदान का महत्त्व प्रदर्शित करते हैं। 'महात्मा ईसा' में भारतीय परिस्थितियों, राष्ट्रीय संग्राम, अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के अनुकूल ईसा का चरित्र निर्मित कर उग्र जी ने बलिदान का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है। महात्मा ईसा का बलिदान सत्य, न्याय, अहिंसा एवं देशहित रक्षार्थ हुआ था। यही कारण है कि उनके अनुयायियों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ी।[७] 'कर्बला' नाटक में प्रेमचन्द जी ने मुस्लिम इतिहास के धर्म-प्रधान महापुरुष हुसैन के बलिदान की कथा लिख कर देश के मुसलमानों को बलिदान के लिए प्रेरित किया है।

---

१. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा-बन्धन : पृ० ९८
२. वही : पृ० ९९
३. वही : पृ० ३२
४. वही : पृ० ३३
५. हरिकृष्ण प्रेमी : शिवा-साधना : पृ० १५२
६. वही : पृ० १५३
१. बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० १९७

युगीन राष्ट्रीय आन्दोलन में प्राणाहुति देने वालों में लाला लाजपतराय से संबंधित नाटक 'पंजाब-केसरी' मिलता है। इस नाटक में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय द्वारा बलिदान का महत्त्व प्रकाशित करते हुए लेखक ने लिखा है—'यदि पराधीनता की बेड़ी काटते हुए प्राण निछावर हों तो इससे बढ़ कर मुक्ति का मार्ग और दूसरा नहीं।'[१]

अतः हिन्दी नाट्यकारों ने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई धर्मावलम्बी जनता की आस्था एवं धार्मिक विचारधारा के अनुकूल बलिदान के उज्ज्वल दृष्टान्त रख कर राष्ट्र की मुक्ति के लिए बलिदान की शिक्षा दी है। गांधी जी ने राष्ट्रीय संग्राम में धर्म तथा जातीयता की संकीर्ण भावना का परित्याग कर बलिदान के लिए समस्त देशवासियों का आह्वान किया था। उनके विचार हिन्दी-नाटकों में प्रतिबिम्बित मिलते हैं।

कथा-साहित्य में बलिदान की भावना

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में भारतीय राष्ट्रीयता से प्रेरित बलिदान की उच्चतम भावना से मंडित उत्कृष्ट पात्रों का सजीव रूप प्रस्तुत किया है। उनके 'रंगभूमि' उपन्यास में सूरदास, विनयसिंह, इन्द्रदत्त,सोफिया,रानी जाह्नवी आदि के चरित्रों में बलिदान की भावना मूर्तमान हुई है। असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर रचना होने के कारण, इस उपन्यास में प्रतिध्वनित है कि उस समय सत्य के लिए मिट जाना गौरव की बात थी।[२] इन्द्रदत्त की मृत्यु पर स्वयं विनयसिंह कहते हैं, 'कितनी वीर मृत्यु पाई है।'[३] हवलदार विनयसिंह के त्याग भाव के सम्बन्ध में कहते हैं—'कुंअर साहब, मरने-जीने की चिंता नहीं, मरना तो एक दिन होगा ही, अपने भाइयों की सेवा करते हुए मारे जाने से बढ़ कर और कौन मौत होगी। धन्य है आप को, जो सुख विलास त्यागते हुए अभागों की रक्षा कर रहे हैं।'[४] इस उपन्यास में बलिदान के कई रूप सम्मुख आते हैं, विनयसिंह, इन्द्रदत्त द्वारा राष्ट्र के लिए प्राणोत्सर्ग किया जाता है, सूरदास पूंजीवादी तथा मशीनी उद्योग से राष्ट्र को बचाने के लिए अहिंसा तथा सत्य की आराधना में प्राण त्यागता है, रानी जाहनवी ने धन सम्पत्ति ही नहीं अपना पुत्र राष्ट्र की वेदी पर न्यौछावर कर दिया है, राष्ट्र की साधना में इन्द्र का पारिवारिक जीवन विच्छिन्न हो जाता है। सोफिया परिवार और अपने जीवन-सर्वस्व विनयसिंह के साथ अपना जीवन भी त्याग देती है। इस राष्ट्रीय आन्दोलन में बलिदान का जो महान रूप सम्मुख आता है उसका वर्णन इन शब्दों में मिलता है :—

१ जमनादास मेहरा : पंजाब केसरी : पृ० ६१
२. प्रेमचन्द : रंगभूमि : पृ० ३३७
३. प्रेमचन्द : रंगभूमि : पृ० ३३९
४. वही : पृ० ३४१

'गंगे ! ऐसा प्रभावशाली दृश्य कदाचित् तुम्हारी आँखों ने भी न देखा होगा। जो शेरों का मुंह फेर सकते थे, बड़े बड़े प्रतापी भूपति तुम्हारी आंखों के सामने राख में मिल गए, जिनके सिंहनाद से दिक्पाल थर्राते थे, बड़े-बड़े प्रभुत्वशाली योद्धा यहां चिताग्नि में मिल गए। कोई यश और कीर्ति का उपासक था, कोई राज्य-विस्तार का, कोई मत्सर ममत्व का। कितने ज्ञानी, विरागी, योगी, पंडित तुम्हारी आंखों के सामने चितारूढ़ हो गए। सच कहना, कभी तुम्हारा हृदय इतना आनन्द पुलकित हुआ था ? कभी तुम्हारी तरंगों ने इस भांति सिर उठाया था ? अपने लिए सभी मरते हैं, कोई इहलोक के लिये, कोई परलोक के लिये, आज तुम्हारी गोद में वे लोग आ रहे हैं, जो निष्काम थे, जिन्होंने पवित्र, विशुद्ध न्याय की रक्षा के लिए अपने को बलिदान कर दिया।'[1] रानी जाह्नवी विनयसिंह की वीर मृत्यु पर मां की ममता भूल कर गौरव का अनुभव करती हैं।[2]

'कर्मभूमि' उपन्यास में भी प्रमचन्द जी ने अमरकान्त, सुखदा, रेणुका देवी, समरकान्त, नैना के व्यक्तित्व में आदर्श की प्रतिष्ठा की है। अमरकान्त, सुखदा, रेणुकादेवी द्वारा सुख सम्पत्ति का त्याग, समरकान्त का प्राचीन रूढ़िवादिता, धन तथा झूठी प्रतिष्ठा के मोह का त्याग, बलिदान के ही विभिन्न रूप हैं। इस उपन्यास में भी नैना ने राष्ट्रीय संग्राम में जीवन की आहुति दी है। "प्रेमाश्रम" उपन्यास में प्रेमशंकर द्वारा धन-सम्पत्ति के त्याग और ग्रामीणों की उन्नति के लिए रचनात्मक कार्य में भी बलिदान की भावना निहित है। अतः प्राणदान के साथ राष्ट्रीयता के लिए धन-सम्पत्ति, रागात्मक एवं भावात्मक संम्बन्धों का बलिदान अत्यधिक महत्व रखता है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह का "पुरुष और नारी" उपन्यास राष्ट्रीय संग्राम के लिए किये गए युवक और नारियों के बलिदान की कथा है। अजीत जैसे कितने ही विद्यार्थियों ने असहयोग आन्दोलन छिड़ते ही सूट-बूट त्याग, परिवार से संबंध तोड़ और धन-सम्पत्ति पर लात मार कर साबरमती आश्रम की ओर पग उठाया था। इस उपन्यास में लेखक ने अजीत जैसे युवकों को "आंखों की उलझन न गले की थिरकन" छोड़ कर "भारत की आजादी-लाखों की रोटी, करोड़ों की नून-तेल-लकड़ी का" प्रश्न सुलझाने के लिए राष्ट्रीय संग्राम में सम्पूर्ण जीवन होम करते दिखाया है।[3] लेकिन उसके चरित्र की मानवीय दुर्बलता—"रस की फेनिल बोतल" की आकांक्षा, उसके समस्त बलिदान को उत्कर्ष के चरम पर नहीं पहुंचा पाती। गांधी जी ने राष्ट्रीय वीरों के लिए शरीर की आवश्यकताओं से कहीं ऊंची मंजिल ढूंढी थी, वह उस उच्चता तक नहीं पहुंच पाता। प्रेमचन्द जी ने अपने "कर्मभूमि" उपन्यास में

---

१. प्रेमचन्द : दूसरा भाग : पृ० ३४३

२. वही : पृ० ३७५

३. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ४०

नायक अमरकान्त के चरित्र में भी मानवीय दुर्बलताओं को दिखाया है लेकिन उपन्यास के अन्तिम भाग में उसका सुधरा हुआ रूप सम्मुख आता है। राधिकारमण प्रसाद सिंह के अजीत का चरित्र निरन्तर पतनोन्मुख सम्मुख आता है।

इस उपन्यास में भी "सुधा" का चरित्र बलिदान की दृष्टि से अधिक महत्व रखता है। असहयोग आन्दोलन के उत्साह में अजीत ने जिस नारी के प्रेम को बन्धन समझ कर, अवहेलना की थी, वही आन्दोलन की प्रेरक शक्ति बन जाती है। "किसी भी विरोध के बवण्डर में वह अपनी ऊंचाई से जौ भर भी नहीं झुकती।"[1] राष्ट्र के नाम पर सुधा का सारा व्यक्तित्व निछावर हो गया। वह सेवा और त्याग का प्रतीक बन जाती है।" उसकी सेवा तो सरासर साधना हो रही है। उसमें न कहीं ग्रहण है, न विज्ञापन।"[2] पारिवारिक सुख का बलिदान कर महिलाओं को देश सेवा के लिए तैयार करती है। अजीत को राष्ट्र-धर्म से च्युत न होने देने के लिए ही वह विषपान कर राष्ट्र की वेदी पर अपने प्राण अर्पित कर देती है। गौण पात्रों में छन्नूलाल जैसे राष्ट्र-भक्त की पुत्र-वधू का बलिदान भी स्तुत्य है—"चौधरी घराने की बेटी को दो दाने के लिए चक्की पीसना पड़ा" लेकिन उसकी देश-भक्ति, स्वाभिमान, अहम्मन्यता ने किसी का दान स्वीकार न किया।

उपन्यासों की अपेक्षा बलिदान भावना से पूर्ण कहानियां अधिक संख्या में लिखी गई। प्रेमचन्द की सभी राजनीतिक कहानियां—'जुलूस,' 'समर-यात्रा,' 'सुहाग की साड़ी,' आदि में देश के लिए बलिदान के विभिन्न रूपों का चित्रण मिलता है। राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम काल में स्वराज्य के लिए बड़े से बड़ा बलिदान किया जा रहा था। नारी, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सभी इस क्षेत्र में अग्रसरित थे। सुदर्शन की "हार जीत' कहानी में स्वार्थ का बलिदान, 'कैदी'[5] में धनाढ्य युवक द्वारा पारिवारिक सुख और ऐश्वर्य का बलिदान, 'अंधेरे में'[6] कहानी में सरकारी नौकरी की अस्वीकृति का बलिदान प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में भगतराम ने आर्थिक कष्टों के बीच सरकारी नौकरी न करने का जो आदर्श रखा था, वह अन्धकार में हुआ था, किसी प्रकार की वाहवाही अथवा यश प्राप्ति के लिए नहीं न जाने कितने भारतीय परिवारों ने इस प्रकार बलिदान देकर भारत को स्वतंत्र किया है। इस बलिदान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए सुदर्शनजी ने लिखा है—'यह बलिदान अनाज के दाने का बलिदान है, जो अन्धकार में पृथ्वी के अन्दर धंस जाता है और अपने आप अपने जैसे बीसों

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ११२
२. वही : पृ० ११३
३. वही : पृ० २५४
४. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ६१
५. वही : पृ० ८०
६. वही : पृ० ७८

दाने उत्पन्न कर देता है।[1] विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में भी राष्ट्रीय-संग्राम में बलिदान देने का उल्लेख मिलता है। 'विश्वास' कहानी में 'स्वराज्य सोपान' के सम्पादक प्रसन्नता के साथ अपने परिवार तथा प्रेस का कार्य सहकारी सम्पादक पर छोड़ कर जेल जाते हैं। राष्ट्र के लिए किए गये बलिदान ने सी० आई० डी० विभाग की ओर से उनका भेद लेने के लिए नियुक्त, उनके सह-सम्पादक शुक्ल जी भी हृदय परिवर्तित कर, उन्हें सच्चा देश-भक्त बना दिया।[2] इसी प्रकार कौशिक जी ने 'शान्ति' कहानी में दिखाया है कि राष्ट्र-उन्नति के लिए धन सम्पत्ति के बलिदान में ही सच्ची शान्ति मिलती है।[3] 'हिन्दुस्तानी' कहानी में राष्ट्रीय-एकता के लिए धार्मिक कट्टरता के बलिदान पर लेखक ने विशेष बल दिया है।[3]

सुभद्राकुमारी चौहान की गौरी राष्ट्रीय भावना को महत्व देने के कारण नायब तहसीलदार की अपेक्षा विधुर राष्ट्र-सेवी से विवाह कर, राष्ट्र के लिए युवती-हृदय की आकांक्षाओं के बलिदान का आदर्श रखती है।[4] चतुरसेन शास्त्री की 'अभाव' कहानी में भी बलिदान के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।[5]

अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि स्वाधीनता की 'प्रकाशपुरी' में जाने के लिए बलिदान की आवश्यकता थी—'देवता जीवन नहीं मांगते। वे जीवन के भोगों की, जीवनी की लालसाओं की, जीवन के सुखों की, और जीवन की विषय वासनाओं की बलि मांगते हैं। बोलो क्या तैयार हो।'[6] इस बलिदान के लिए देश तत्पर था स्वार्थ पर कर्तव्य को और प्रेम पर पवित्र आत्म-सत्ता को महत्व दिया गया था। जिन्होंने प्राण देकर बलिदान का आदर्श रूप रखा था, उनसे धन, जन तथा लालसाओं का बलिदान देने वालों का महत्व कम नहीं था। कथा-साहित्य में बलिदान की भावना का सुन्दर, यथार्थ एवं प्रेरणादायक चित्रण मिलता है।

हिन्दी-साहित्य में गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का विवरण

गांधी जी ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं पुनरुत्थान के लिए रचनात्मक कार्यक्रम की विस्तृत योजना बनाई थी। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए स्वयं-सेवकों का विशाल दल संगठित किया गया था, जिससे देश में सामूहिक रूप में जागृति आ सकती और सच्चे अर्थों में स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती। गांधी जी ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक अंग के सुधार के लिए जिस अनेकांगी कार्यक्रम को क्रियान्वित किया था, उसके अन्तर्गत प्रमुख रचनात्मक कार्य थे—स्वदेशी का प्रचार एवं विदेशी का बहिष्कार,

१. विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० ६१
२. वही : पृ० १३
३. वही : पृ० २५६
४. सुभद्राकुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० १५
५. चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय : पृ० ३७
६. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० १०

चर्खा, खादी तथा अन्य ग्रामोद्योगों का विकास ; मादक द्रव्य निषेध ; सामाजिक कुरीतियों को मिटाना ; अस्पृश्यता निवारण ; ग्राम-सुधार योजना अर्थात् गांवों की सफाई, शिक्षा एवं अन्धविश्वासों का निराकरण ; साम्प्रदायिक एकता तथा धार्मिक समानता की चेष्टा ; स्वभाषा प्रेम की शिक्षा तथा राष्ट्रभाषा का प्रचार। ये रचनात्मक कार्य गांधी जी की राष्ट्रवाद सम्बन्धी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक नीति के अन्तर्गत समाहित थे। इनकी पूर्ति द्वारा उन्होंने स्वतन्त्र भारत के आदर्श रूप की व्याख्या की थी।

जैसा कि गांधी जी के राष्ट्रवाद के व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है, वे स्वदेश के प्रचार एवं स्वदेशी के बहिष्कार द्वारा राष्ट्र के कला-कौशल, हस्त-उद्योग को विकसित कर, उसकी अर्थनीति को व्यवस्थित और बेकारी की समस्या को सुलझा कर राष्ट्रीय प्रतिभा को बढ़ाना चाहते थे। खादी, चर्खा तथा अन्य ग्रामोद्योगों को, वे भारतीय मनः स्थिति एवं व्यवहार के अनुकूल मानते थे। भारतीय उद्योग धन्धों ने पश्चिमी जगत् की भांति कल-कला अथवा मशीनी विद्या में प्रगति नहीं की थी, अतः चर्खा द्वारा साधारण अपढ़ ग्रामवासी सरलता से सूत कात सकता था। हाथ करघे अथवा चर्खे के लिए अधिक पूंजी की भी आवश्यकता नहीं थी। स्त्रियां, बूढ़े, बच्चे भी अपनी आजीविका का उपार्जन कर सकते थे। इसके द्वारा देश की आर्थिक दशा सुधर सकती थी।[1] घर बैठे रोजी देने का यह अचूक साधन था। ग्रामीणों की दशा सुधारने में चर्खा खादी अति सहायक थे। इसी कारण गांधी जी ने प्रत्येक राष्ट्र-कर्मी के लिए चर्खा कातना आवश्यक धर्म माना था, क्योंकि इससे वह स्वावलम्वी बन सकता था और आत्मशुद्धि का भी यह अद्भुत प्रयास था। राष्ट्रवाद के लिए अस्पृश्यता की भावना अहितकर थी, क्योंकि विदेशी शासकों ने भी इससे लाभ उठा कर विभेद-नीति द्वारा अछूतों को अपनी ओर मिलाना चाहा था। इसके अतिरिक्त अछूत ईसाई-धर्म को भी अपनाते जा रहे थे। निस्सन्देह गांधी जी को इसमें सफलता मिली थी। आत्मबल अथवा नैतिक बल-प्रयोग द्वारा दक्षिण के कुछ मन्दिरों के द्वार अछूतों के लिए खुल गए थे। भारत ग्रामों का देश है। गांधी जी ने विशेष रूप से ग्राम सुधार एवं ग्रामवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए स्वयं सेवकों का संगठन किया था। हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक एकता गांधी जी के जीवन का महान व्रत था। विदेशी भाषा के स्थान पर वे देश-भाषा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे इस प्रकार राष्ट्रीय नेताओं एवं स्वयंसेवकों द्वारा किए गए कार्यों, साधनों और उपायों के रचनात्मक पक्ष की भी अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य में मिलती है।

हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। साहित्य में राष्ट्रीय दुर्दशा का यह चित्रण निष्प्रयोजन नहीं किया गया था। इन रचनाओं ने जनता को देश-दशा सुधारने की प्रेरणा दी थी। प्रत्यक्ष रूप में जो रचनात्मक कार्य किये गये थे, वे हिन्दी साहित्य में मार्मिक अभिव्यक्ति प्राप्ति

१. किशोरीलाल मशरूवाला : गांधी विचार दोहन : पृ० १२२

करने में असमर्थ रहे थे। राष्ट्रीय कविता में देश-जीवन के कष्टों, जेल, शहीद, कैदी, स्वदेश-प्रेम, आन्दोलन, राजनीतिक असन्तोष, बलिदान आदि की अभिव्यक्ति अधिक मिलती है।

स्वदेशी का प्रयोग एवं विदेशी का बहिष्कार

राष्ट्रीय क्षेत्र में गांधी जी के आगमन के पूर्व ही स्वदेशी-आन्दोलन तीव्र गति से चल चुका था। अतः स्वदेशी-प्रचार, प्रयोग तथा अभिवृद्धि सम्बन्धी काव्य द्विवेदी युग में अधिक मात्रा में लिखा गया था। गांधी जी ने स्वदेशी आन्दोलन को अधिक क्रियात्मक रूप देने के लिए स्वयंसेवकों की सेना का संगठन किया था, जो घर घर और विदेशी वस्तुओं की दूकानों पर जाकर धरना देते थे। इस प्रकार कष्ट सहन का आदर्श रख कर देशवासियों का हृदय-परिवर्तन इनका लक्ष्य था। काव्य की अपेक्षा उपन्यासों एवं कहानियों में इसका विस्तृत चित्रण मिलता है, क्योंकि उसमें इसकी अभिव्यक्ति की अधिक संभावना थी। काव्य में स्वदेशी की उन्नति का संकेत अथवा सूक्ष्म उल्लेख मात्र मिलता है। मैथिलीशरण गुप्त ने 'स्वदेशी संगीत' में भारतवासियों को मिल जुल कर अपना व्यापार बढ़ाने का उपदेश दिया है।[१] क्योंकि विदेशी वस्तुओं के प्रयोग से राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था विच्छिन्न हो रही थी। रूपनारायण पांडेय ने चर्खे को सुदर्शन चक्र माना है, जिसके द्वारा भारतवासियों को विजय प्राप्त होगी।[२] 'चर्खे का महत्त्व'[३] प्रतिपादित करते हुए उन्होंने भी चर्खे द्वारा विदेशियों को परास्त करने का प्रण किया था।[४] गांधी जी ने देश की साम्प्रदायिक एवं आर्थिक स्थिति का सूक्ष्म अवलोकन कर खादी और चर्खे के प्रचार पर बल दिया था। खादी और चर्खे के प्रचार द्वारा समाज की विधवाओं को अपने भरण पोषण का साधन मिल सकता था जिससे समाज में उनकी स्थिति सुदृढ़ हो सकती थी और उन्हें दूसरों के भिक्षा-दान पर जीवित न रहना पड़ता। सियारामशरण गुप्त ने 'खादी की चादर'[५] नामक करुण कथा काव्य में इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है। असहाय, निराश्रित एवं सामाजिक अत्याचार से पीड़ित चम्पा, चर्खे से सूत कात कर दो आने पैसे का दूध खरीद कर गंगा की लहरों को समर्पित कर देती है कि वे उसे उसकी भूख से मृत बच्ची की भूखी हड्डियों तक पहुंचा दें। सियाराम जी की खादी की 'बेडौल बुनी चादर' राष्ट्र की करुणा के ताने बाने से बुनी हुई है।

सोहनलाल द्विवेदी ने गांधी जी के खादी सम्बन्धी विचारों को काव्य-रूप प्रदान करते हुए, प्रत्येक दृष्टि से राष्ट्रीय उत्थान के लिए उपयोगी ठहराया है।

१. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० ६६
२ रूपनारायण पांडेय : पराग : पृ० ३५
३. वही : पृ० ३२
४. वही : पृ० ३६
५. सियारामशरण गुप्त : आर्द्रा : पृ० ६८

उनके मत में राष्ट्रीय एकीकरण, आर्थिक सुसम्पन्नता, ग्राम-सुधार, एवं विदेशी साम्राज्यवाद रूपी शत्रु पर विजय प्राप्ति का एकमात्र साधन खादी है। द्विवेदी जी के शब्दों में---

खादी ही बढ़, चरणों पर पड़ नूपुर-सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी आजादी को घर लायेगी;[1]

गांधी जी के स्वदेशी संबंधी रचनात्मक कार्यक्रम के संदेश को काव्यमयी वाणी द्वारा घर-घर पहुंचाने का श्रेय इन कवियों को मिलेगा।

अस्पृश्यता निवारण

गांधी जी की राष्ट्रीय भावना में अस्पृश्यता निवारण अथवा अछूतों की दयनीय स्थिति का निराकरण अत्यधिक महत्त्व रखता था। हिन्दू-समाज एवं राष्ट्रीयता के लिए, वे इस भेदभाव अथवा ऊंच-नीच की भावना को घातक समझते थे। वर्ण व्यवस्था में विश्वास रखने पर भी वे अस्पृश्य जातियों अथवा निम्न वर्ग को समाज में समानाधिकार दिलाना चाहते थे। मैथिलीशरण गुप्त ने गांधी जी की इस विचारधारा का अनुमोदन करते हुए 'अछूतोद्धार' कविता में लिखा है---

देकर सबको आदर-दान
दो निज मनुष्यत्त्व को मान।[2]

गांधी जी की भांति मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय भावना भी अति विशाल एवं वर्णाश्रम धर्म समर्थक है। नीची जातियों के प्रति वैष्णव कवि की पूर्ण सहानुभूति है। 'पंचवटी' खंडकाव्य में लक्ष्मण निम्न-वर्ग को समान भाव से देखते हैं। 'स्वदेश संगीत' में 'छूत' नामक कविता में अस्पृश्यता निवारण पर विशेष बल दिया है।[3] उनकी यही 'वैदिक विनय' थी कि देशवासी धर्म, कर्म में अटल रहें, चारों वर्ण अपने अपने गुणों का विकास करें, युवक उपकारी हों, नारी रूप-शील-युत हों, पशु पुष्ट हों, दूध की धार बहे, मेघ समय पर जल बरसायें और आपस में मेल बढ़े।[4]

सियारामशरण गुप्त ने 'एक फूल की चाह' नामक कथा-काव्य में अछूत जीवन से संबंधित मार्मिक कथा लिखकर अप्रत्यक्ष रूप से पाठकों को सहानुभूति अछूतों के प्रति अर्जित कर, अछूतोद्धार की प्रेरणा दी है

रूपनारायण पांडेय ने गांधी जी के अस्पृश्यता निवारण संबंधी रचनात्मक कार्यक्रम से प्रभावित होकर 'अछूतोद्धार' कविता लिखी थी।[5] इस प्रकार काव्य की अनेक शैलियों में गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के इस पक्ष का उल्लेख मिलता है।

---

१. सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी : पृ० ८
२. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ११४
३. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० १०७
४. वही : पृ७ १३६
५. रूपनारायण पांडेय : पराग : प० १२६

ग्राम सुधार

अपने राष्ट्र का विस्तार ग्रामों में ही हुआ है। किन्तु दुर्भाग्यवश ग्रामवासी अति दीन, हीन दशा में, अज्ञानान्धकार में कूपमण्डूक बने निज अधिकारों से वंचित हैं। गांधी जी का विशेष ध्यान इस ओर गया था। ग्राम सुधार उनके रचनात्मक कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंग था। मैथिलीशरण गुप्त ने गांधी जी के ग्राम सुधार योजना को काव्य द्वारा वाणी प्रदान की है। उनके मत में आज का युवक वर्ग अपनी विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त कर ग्रामों को मिथ्या विश्वास, संक्रामक रोग, आर्थिक शोषण के अभिशाप से मुक्त कर, ग्रामवासियों के साहस, विश्वास, निर्भयता, स्वास्थ्य आदि वरदानों से सुसज्जित कर, देश-विदेश का समाचार सुना कर, उनके कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान का विकास कर, उन्हें अपने निज स्वत्त्व के प्रति सचेत कर सकता है। इस नवयुवक वर्ग को लक्षित कर गुप्त जी ने कहा है—

> **करना है यदि देशोद्धार,**
> **तो कुछ त्याग करो स्वीकार।**[1]

नगर जीवन का सुख त्याग कर रही शिक्षित नवयुवक वर्ग ग्राम-सुधार तथा देशोद्धार कर सकता था। धन जन से श्रेष्ठ नहीं है। अतः शिक्षित नवयुवक वर्ग अँग्रेजों की अधम चाकरी की अपेक्षा उत्तम खेती द्वारा स्वावलम्बी बन कर देश का अधिक कल्याण कर सकता है।[2]

सोहनलाल द्विवेदी ने ग्राम-जीवन का मार्मिक चित्र खींचते हुए, गांवों में बसे हिन्दुस्तान का पुनःनिर्माण करने को प्रोत्साहित किया है। गांधी ने सेगांव (सेवाग्राम) को एक आदर्श ग्राम बना दिया था—कवि की आकांक्षा है कि सभी गांव सेगांव बन जाएं।

> **सेगाँव बनें सब गांव आज हम में से मोहन बने एक,**
> **उजड़ा वृन्दावन बस जावे, फिर सुख की वंशी बजे नेक;**
> **गूंजे स्वतन्त्रता की तानें गंगा के मधुर बहावों में।**
> **है अपना हिन्दुस्तान कहां वह बसा हमारे गाँवों में॥**[3]

सोहनलाल द्विवेदी ने देशवासियों को गांधी जी के सदृश झोपड़ियों की ओर चलकर अन्याय, अनीति, युग युग के दुख दैन्य मिटाने के लिए अभिप्रेरित किया है।[4] वस्तुतः ग्राम सुधार द्वारा स्वतन्त्रता अपने सच्चे अर्थों में चरितार्थ हो सकती थी।

समाज सुधार

काव्य के इस छायावादी युग में नारी को सामंती रूढ़ियों से मुक्त कर, उसके

---

१. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ८५
२. वही : पृ० ८६
३. सोहनलाल द्विवेदी : भैरवी : पृ० १६
४. वही : पृ० १७

आदर्श रूप को सम्मुख रखने का कार्य कर, छायावादी कवियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के समाज सुधारक अंग को अपना सहयोग प्रदान किया। 'नैतिकता की पुरानी रूढ़ियों को तोड़ कर उसने मानव-विवेक पर आधारित प्रेम संबंधी नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना की; सूखे सुधारवाद की जगह छायावाद ने रागात्मक आत्म संस्कार का बीजारोपण किया; मध्य वर्ग को व्यावसायिक प्रयोजन शीलता तथा अत्यन्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण से मुक्त कर आदर्शवाद के उच्च आकाश में विचरण करने की प्रेरणा दी।'[1] निराला की 'विधवा' कविता में नारी के नैतिकतापूर्ण उच्च आदर्श रूप की प्रतिष्ठा की गई है। प्रो० क्षेम ने अपनी पुस्तक 'छायावाद के गौरव चिह्न' में यह सिद्ध किया है कि अप्रत्यक्ष एवं मौन रूप से छायावादी कवियों ने गांधी जी की राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण की योजना को ही मुखरित किया है—

'उसमें उदार गांधीवाद चेतना का औदात्य और भीतर ही भीतर बिना घोषणा किए ही वे जन-मन में एक ऐसा उदार परिष्करण ला रहे थे, जो देश में सद्यःघटित सम्भावनाओं के सर्वथा अनुकूल था। समाज के बाह्य स्तर पर जैसा मनः परिष्कार राजनीति के क्षेत्र से गांधी जी कर रहे थे, साहित्य की भूमि से छायावादी युग भी अपने विश्वासी पाठकों में वैसी ही सांस्कृतिक परिष्कृति सम्भव कर रहा था।'[2]

मैथिलीशरण गुप्त स्त्री के स्वावलम्बन में विश्वास रखते हैं। 'साकेत' एवं 'पंचवटी' में उन्होंने सीता के जिस स्वावलम्बी स्वरूप की ओर दृष्टि आकृष्ट की है वह अप्रत्यक्ष रूप से उनके अपने युग की नारी की प्रगति से संबंधित भावना है। काव्य में समाज-सुधार संबंधी प्रत्यक्ष चित्रों का प्रायः अभाव है। रूपनायण पांडेय की 'स्त्री-शिक्षा' कविता मिलती है।[3] इतिवृत्तात्मक शैली में रचित समाज-सुधार की कविताएं युगीन काव्य की विशेषता थी।

स्वभाषा प्रेम की शिक्षा

निज-भाषा राष्ट्रीयता का एक प्रमुख तत्त्व है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने निज भाषा पर प्यार का संदेश दिया है। गांधी जी के सदृश उनके मतानुसार भी भाषा ही अवनति से आक्रान्त, अन्धकार में भूले भटके भारत को अपने मधुर स्निग्ध स्पर्श से पार लगा सकती है।[4] सुभद्राकुमारी चौहान ने 'मातृ मन्दिर' कविता में स्वभाषा हिन्दी का भविष्य अति उज्जवल देखा था। वे राष्ट्र के प्रत्येक कार्य के लिए अपने देश की भाषा के प्रयोग में विश्वास रखती थीं। उन्होंने लिखा था—

तू हो आधार, देश की पार्लमेण्ट बन जाने में।
तू होगी सुख-सार, देश के उजड़े क्षेत्र बनाने में।।[5]

---

१. नामवरसिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां : पृ० २८
२. प्रो० क्षेम : छायावाद के गौरव चिह्न : पृ० ३२
३. रूपनारायण पांडेय : पराग : पृ० ३२
४. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० ७३
५. सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० १००

राष्ट्रीय एकता एवं विकास के लिए अपनी भाषा ही सहायक होती है। गाँधी जी अपनी विदेशी भाषा की अपेक्षा अपनी भाषा में देशवासियों को शिक्षित करना अधिक श्रेयस्कर समझते थे। परन्तु स्वभाषा प्रेम की शिक्षा देने वाली कविताएँ हिन्दी साहित्य में अधिक उपलब्ध नहीं होतीं।

साम्प्रदायिक एकता

गांधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं द्वारा साम्प्रदायिक एकता का जो प्रयास किया जा रहा था उसका उल्लेख हिन्दी काव्य में भी मिलता है। अधिकांश कवि साम्प्रदायिकता की भावना से मुक्त थे। वे हृदय से हिन्दू मुस्लिम साँस्कृतिक एकता के समर्थक थे। अंग्रेजों ने भेद-नीति द्वारा हिन्दू मुसलमानों को धर्म तथा जाति के आधार पर विभाजित कर राष्ट्रीयता के उद्रेक में वाधा डालने की कुटिल नीति प्रचारित की थी। अतः कविवर 'त्रिशूल' जी भेद का भण्डाफोड़ कर एकता के सूत्र में बंधने के लिए भारत के युवक वर्ग को प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं—

उठो युवकगण उठो, भेद का भण्डा फोड़ो;
आड़े आयें अगर रूढ़ि के बन्धन तोड़ो ॥
सम्मुख उन्नति पथ प्रशस्त है इसे न छोड़ो;
राष्ट्र बनाओ और देश से नाता जोड़ो।
जाग्रत हो जातीयता उन भावों का ध्यान हो।
भारत के अरमान हो तुम्हीं देश की जान हो ॥[१]

कवि की यह महती अभिलाषा थी कि सम्पूर्ण देश ऐक्य-सूत्र में बंध कर राष्ट्र के विकास में योग दे तथा स्वातन्त्र्य की सोमसुधा का पान कर भारत की मृतप्राय राष्ट्रीयता तथा जातीयता को जाग्रत कर स्वराज्य की वंशी बजाये।[२] श्रीधर पाठक ने भारत की सभी जातियों की एकता, सभी धर्मों के भ्रातृ-भाव में भारत का उत्थान माना था। उन्होंने गांधी जी के स्वर में स्वर मिला कर गांधी जी के साम्प्रदायिक एकता के रचनात्मक कार्य को अपना सहयोग दिया है :—

हिन्दू, मुसलमान ईसाई
बौद्ध, पारसी, जैनी भाई
मंदिर, मूरत, तीरथ, मसजिद
मक्का, प्राग, हज्ज, हरद्वारा ॥
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा ॥[३] (३०-१-२१)

'बनें शुभ राज्य भक्ति की खान ; प्रेम की पावें शक्ति महान्' अर्थात् प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, भ्रातृ-अनुराग, सेवा, सत्यता, मन वचन कर्म की पवित्रता तथा धर्म

१. त्रिशूल : राष्ट्रीय मंच : पृ० ३०
२. वही : पृ० १५
३. श्रीधर पाठक : भारत-गीत : पृ० १२६

की एकता द्वारा समस्त विश्व को प्रेम का सन्देश दे भारत की राष्ट्रीयता विकसित हो सकती है—पाठक जी का ऐसा दृढ़ मत था।[१] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध की राष्ट्रीयता अहिंसात्मक और अधिक सहिष्णु न हो कर कुछ प्रतिहिंसात्मक थी।[२] किन्तु साम्प्रदायिक एकता के वे भी बहुत बड़े समर्थक थे। हिन्दुओं को सावधान करते हुए 'हरिऔध' जी ने यह कहा है कि अपने भाइयों के साथ फूट बैर और एक दूसरे को दबाने का ही यह बदला मिला है कि देश को विदेशियों के अधिकार में विवश हो कर रहना पड़ता है।[३] मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू धर्म एवं जातीयता की विशालता का परिचय देकर भारत की अन्य विधर्मी जातियों के प्रति सहिष्णु भाव प्रकट किया है :—

हिन्दू धर्म मुक्ति का द्वार,
करे प्रवेश सर्व संसार।[४]

गांधी जी भी हिन्दू धर्म के उस विस्तृत एवं विशाल रूप को मान्यता देते थे, जिसमें सभी धर्मों का समावेश हो सकता था। गुप्त जी की विचारधारा गांधी जी की धार्मिक एकता की नीति के अनुकूल है।

'हिन्दू' में साम्प्रदायिक एकता के प्रयास-वश ही गुप्त जी ने पारसी, मुसलमानों और ईसाइयों के प्रति एकत्व-भावना से पूर्ण काव्य लिखा है। पारसियों से अति पुरातन धर्मगत एकता का सम्बन्ध है :—

वेद-अवस्ता दो ही नाम ।।
पुरातत्त्व के हैं विश्राम ।।[५]

मुसलमान भी इसी देश के वासी हैं। मुसलमान भाइयों की प्रतिहिंसा की भावना को शान्त करते हुए और हिन्दू भाइयों को उनसे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए राष्ट्र-कवि ने लिखा है :—

डालो अपने ऊपर दृष्टि
तुम अधिकांश यहीं की सृष्टि ।।[६]

ईसाइयों को धार्मिक एकता के नाते अंग्रेजी शासकों का बहुत विश्वास था, और वे राष्ट्रीयता से विमुख थे। उनकी इस भ्रान्त धारणा का निवारण करते हुए कवि ने कहा था :—

---

१. श्रीधर पाठक भारत गीत : पृ० १२९
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : चुभते चौपदे : पृ० ८
३. वही : पृ० २६
४. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० ११४
५. वही : पृ० १८८
६. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० १८९

करो न तुम औरों की आस,
रक्खो भारत का विश्वास ॥[१]

इसी प्रकार 'गुरुकुल' की रचना द्वारा मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू-सिक्ख एकता पर बल दिया है।

सियारामशरण गुप्त ने साम्प्रदायिक एकता के लिए जीवन अर्पण करने वाले अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान की कथा लिख कर काव्य द्वारा साम्प्रदायिकता के विष को मारने का प्रयत्न किया है। रूपनारायण पांडेय ने 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' नामक कविता रच कर, साम्प्रदायिक एकता का प्रचार किया था।[२]

हिन्दी-नाट्य साहित्य में रचनात्मक कार्यक्रम

स्वदेशी—चर्खा, खादी तथा अन्य ग्रामोद्योग :—नाटकों में भी खादी, चर्खा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। जयशंकर प्रसाद के 'कामना' नाटक में गांधी जी की राष्ट्रीय विचारधारा के इस तत्व का पूर्ण विकास मिलता है। गांधी जी नगर के कृत्रिम जीवन, कल-मशीनों की अपेक्षा ग्राम के नैसर्गिक एवं प्रकृत जीवन तथा हस्तकला उद्योग के पक्षपाती थे। अतः प्रसाद जी के इस नाटक में जिस द्वीप एवं जाति का प्रारम्भ में वर्णन किया गया है वह प्रकृति के बीच स्वाभाविक जीवन व्यतीत करती है। चर्खा कातना, रूई ओटना, कृषि-कार्य में हाथ बंटाना तथा प्रेमपूर्वक सम्मिलित भाव से रहना इनकी विशेषता है। प्रच्छन्न रूप से इस नाटक में प्रसाद जी ने अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा प्रचारित पूंजीवादी व्यवस्था, मद्यपान, हिंसा, व्यभिचार आदि को अशान्ति का कारण माना है। गांधी जी के सदृश प्रसाद जी ने भी देशवासियों को पुनः प्राचीन नैसर्गिक किन्तु संघर्ष-विहीन शान्तिमय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित किया है। भारत का कल्याण इसी में था कि वह अपने ग्रामोद्योगों का विकास करता।

उग्र जी ने 'महात्मा ईसा' नाटक में प्रच्छन्न रूप से गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन के वर्णन के साथ ईसा तथा उनके शिष्यों को मोटे वस्त्रों में दिखा कर राष्ट्रीय संग्राम के लिए गाढ़े अथवा खादी को आवश्यक बताया है।

'महाराणा प्रतापसिंह अथवा देशोद्धार नाटक' में नाट्यकार लक्ष्मीनारायण ने अपने युग की राष्ट्रीय भावना तथा चर्खाखादी आदि रचनात्मक कार्य का आरोपण ऐतिहासिक महापुरुष महाराणा प्रताप तथा उनके पारिवारिक जीवन में भी किया है। महाराणा प्रताप आभूषण, साड़ियां आदि परित्याग कर मोटे वस्त्र धारण करने का आदेश देते हैं और उनका पुत्र अमर खादी के वस्त्र धारण करने का प्रण करता है :—

---

२. मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० २०२

३. रूपनारायण पांडेय : पराग : पृ० १२८

पहन के खादी मैं बढ़ूंगा देश-सेवा धर्म पर ।
प्राण जाये तो जाये पर बढ़ता रहूंगा कर्म पर ।।[१]

इस प्रकार स्वदेशी, खादी, चर्खा आदि का उल्लेख कतिपय नाटकों में मिल जाता है ।

नाटकों में ग्राम-सुधार की कार्य-प्रणाली का वर्णन

मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' नामक गीति-नाट्य में भगवान बुद्ध का साधनावतार 'मघ' गांव भर के सुधार का सारा भार अपने ऊपर ले लेता है। वह अहिंसात्मक नीति का पालन करता हुआ समाज तथा शासक-वर्ग के अन्याय से संघर्ष कर मानव धर्म की स्थापना करना चाहता है। इस नाटक में गुप्त जी ने आदर्श ग्राम-पंचायत का रूप रखा है, जिससे गांव के झगड़े आपस में सुलझ जायें ।[२] ग्राम-सुधार की कार्य-प्रणाली के संबंध में गुप्त जी का अभिमत है कि ग्रामवासियों के सम्मिलित उद्योग; मेलों, उत्सवों द्वारा सेवा-सुधार एवं प्रेमप्रचार का कार्य कर ग्राम-सुधार संभव है ।[3] 'मघ' ने ग्राम-सुधार का पूर्ण प्रयत्न कर ग्रामों की उन्नति का थी ।

'पंजाब केसरी' नाटक में बाबू जमनादास मेहरा ने लाला लाजपतराय के जीवन-चरित्र की झलक दिखाते हुए सुधार-कार्य के क्रियान्वित रूप का वर्णन भी किया है। देश की दुर्दशा से व्यथित होकर लालाजी ने राष्ट्रीय पुर्निर्माण का व्रत लिया था। इस नाटक में वे राष्ट्रीय स्वयं सेवकों की सहायता से अकाल, भूकम्प आदि दैवी विपत्तियों एवं विदेशी शासकों की क्रूर नीति से पीड़ित ग्रामीण जनता की सेवा करते दृष्टिगत होते हैं ।[४] पंजाबकेसरी द्वारा उत्साहपूर्ण शब्दों में लेखक ने कहलाया है—'भाइयो ! जाओ, मैं आगे चलता हूं तुम पीछे-पीछे आओ, ग्राम-ग्राम में चलकर पहले उन भूखे भाइयों की अन्न से भेंट कराओ। हम किसी तरह बच रहेंगे तो अन्याय की दुहाई मचायेंगे और ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि 'हमें अन्न प्राप्त हो ।'[५]

सेठ गोविन्ददास के 'प्रकाश' नाटक में प्रकाश द्वारा ग्राम-सुधार के कार्य का आयोजन किया गया है। प्रकाशचन्द्र 'सत्य-समाज' की स्थापना द्वारा गांव में सुधार कार्य प्रारम्भ करने की योजना निर्धारित कराना है ।[६] इस नाटक की रचना सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन के उपरान्त हुई थी। लेखक ने इस बात का संकेत किया है कि यदि 'सत्य-मार्गों द्वारा ग्राम और नगर-निवासियों के दुःखों का परिमार्जन हो जाता तो

१. लक्ष्मीनारायण : महाराणा प्रतापसिंह अथवा देशोद्धार नाटक : पृ० ३९
१. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ : पृ० ६२
२. वही : पृ० ८०
३. पंजाब केसरी : पृ० ४१
४. वही : पृ० ५१
५. सेठ गोविन्ददास : प्रकाश : पृ० ५५

सत्याग्रह आन्दोलन असफल न होते। गांधी जी ने भी इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया था और इसी कारण आन्दोलन समाप्त होते ही वे पुनः रचनात्मक कार्यों में संलग्न हो गए थे। वस्तुतः इस नाटक में प्रकाशचन्द्र की विचारधारा गांधी जी के अनुरूप है।

समाज सुधार

जयशंकरप्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में, प्रच्छन्न रूप में समाज सुधार के रचनात्मक कार्यक्रम की अभिव्यक्ति मिलती है। 'ध्रुवस्वामिनी' में ऐतिहासिक कथा के माध्यम से विधवा-विवाह की पुष्टि की गई है। 'अजातशत्रु' नाटक में वारविलासिनी श्यामा के अन्तर में सद्वृत्तियों के उन्नयन द्वारा प्रसाद जी ने घृणित वेश्यावृत्ति के प्रति ग्लानि उत्पन्न की है। अंत में गौतम बुद्ध के उपदेश द्वारा आम्रपाली के रूप में श्यामा शान्तिलाभ करती है। 'अजातशत्रु' की मल्लिका और 'राज्यश्री' नाटक की राज्यश्री समाज-सुधार की भावना से अभिप्रेरित प्रसाद जी की अमर नारी पात्र हैं। गांधी जी ने राष्ट्रीय स्वयंसेवकों को समाज-सुधार के लिए भी संगठित किया था। अपने युग की वेश्यावृत्ति संबंधी समाजसुधार कार्य का विस्तृत चित्रण सुदर्शन जी के नाटक 'जब आंखें खुलती हैं' में मिलता है। स्वयं सेवक तारा-वेश्या के घर जाकर धरना देते हैं, जिससे वह इस अधम वृत्ति का परित्याग कर दे। राष्ट्रीय स्वयं सेवकों का आत्म-विश्वास, उच्चादर्श एवं त्याग भावना तारा का हृदय-परिवर्तन कर देती हैं। वह भी राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-दल में सम्मिलित होकर अन्य वेश्याओं के उद्धार का कार्य करती है।

मैथिलीशरण गुप्त के 'अनघ' गीति नाट्य में नारी के महत्व की स्थापना मिलती है।

नाटकों में अस्पृश्यता-निवारण

प्रायः इस युग के नाटकों में पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा के माध्यम से अछूतोद्धार का सफल प्रयत्न किया गया है। जयशंकर प्रसाद के 'जनमेजय का नागयज्ञ' नामक नाटक के प्रारम्भ में ही सरमा के कथन में वर्ण-साम्यता को आर्य जाति की विशेषता माना है :—

'...........श्रीकृष्ण की उस अपूर्व प्रतिभा ने मेरी नस नस में मनुष्य मात्र के प्रति एक अविचल प्रीति और स्वतन्त्रता भर दी थी। शूद्र गोप से लेकर ब्राह्मण तक की समता और प्राणी मात्र के प्रति समदर्शी होने की अमोघ वाणी उनके मुख से कई बार सुनी थी। वही मेरे उस आत्म-समर्पण का कारण हुई'।[२] इसके द्वारा प्रसाद जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि आज समाज में प्राप्त ऊंच-नीच, सवर्ण-अवर्ण की भावना कालान्तर का परिणाम है।

---

१. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० १५५

२. जयशंकर प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ : पृ० १

हिन्दी नाटकों में अछूतोद्धार अथवा वर्णसाम्य का सर्वाधिक प्रयत्न उदयशंकर भट्ट के 'दाहर अथवा सिन्धपतन' नाटक में मिलता है। आज से शताब्दियों पूर्व ईसा की सातवीं शताब्दी में सिन्ध के महाराजा दाहर ने नीच जातियों को क्षत्रियों के समान युद्ध करने का अधिकार दिया था। लोहार, जाट, गूजर आदि जातियों ने अपनी वीरता का प्रमाण भी दिया था। गांधी जी वर्णाश्रम-धर्मव्यवस्था में विश्वास रखते हुए भी शूद्र वर्ग को उनके कर्म के आधार पर नीच मानने को तत्पर नहीं थे। उनकी इस विचारधारा को नाट्यकार ने दाहर तथा उनके मन्त्री क्षपाकर के कथन में अभिव्यक्त किया है :—

'पुरोहित—कर्म और जन्म के विचार से एक पशु कभी तप करने पर भी ब्राह्मण नहीं बन सकता महाराज !

अन्य ब्राह्मण—पुरोहित जी ठीक कह रहे हैं।

दाहर—नहीं, कर्म की श्रेष्ठता प्रत्येक व्यक्ति के अपने दैनिक व्यवहार पर निर्भर है। लोहार, जाट और गूजरों में वैसा ही क्षत्रियत्व है जैसा कि वीरता का कार्य करने वाले अन्य क्षत्रियों में।

क्षपाकर— पुरोहित जी, संसार में कोई ऊंचा नीचा नहीं है। यह भेद-भावना मनुष्य-कृत है। देखिये, भगवान् का बनाया हुआ सूर्य सबको एक-सा प्रकाश देता है। वायु सबको एक-सा जीवन देता है; तुम्हें अधिक और उनको, जिन्हें तुम नीच कहते हो, न्यून जीवन नहीं प्रदान करता।'[1]

इन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि जिन वेद-स्मृतियों के नाम पर धार्मिक अंध विश्वास फैला है, उनमें भी समय के अनुसार ऋषियों ने परिवर्तन किया था, इन जातियों को बहुत समय पश्चात् नीच समझा गया। वीरता किसी की बपौती नहीं है, साहस किसी के घर पैदा नहीं होता, नीच जाति में भी देश के लिए सर्वस्व समर्पण का उच्च भाव है।[2] गांधी जी यह भलीभांति जानते थे कि इस नीच कहलाने वाली जाति को साथ लेकर ही स्वतन्त्रता-संग्राम में विजय मिल सकती है और तभी स्वतंत्रता स्थायी भी हो सकेगी।

मैथिलीशरण गुप्त के 'अनघ' नामक गीति नाट्य में मघ द्वारा अछूतोद्धार के कार्य का वर्णन मिलता है। वह शूद्रों को द्विजों से कम नहीं समझता था[3]। सुरभि के गान में मघ के चरित्र की इस विशेषता का उल्लेख मिलता है :—

वे ऊंच नीच का भेद नहीं कुछ रखते,
हैं मनुज मात्र को एक समान निरखते।[4]

---

१. उदयशंकर भट्ट : दाहर अथवा सिन्ध पतन : पृ० ६७

२. उदयशंकर भट्ट : दाहर अथवा सिन्ध पतन : पृ० ६९

३. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ : पृ० ४१

४. वही, पृ० ३३

प्राचीन समाज के विरोध करने पर भी मघ ने देश की जड़ों को खोखला बना देने वाले छुआछूत की संकीर्ण विचारधारा को मिटाकर सच्चे अर्थों में राष्ट्रवाद की स्थापना का प्रयास किया है। उसने निम्न वर्ग को समाज की आधार शिला माना है।[1] गुप्तजी ने मघ द्वारा गांधी जी के अस्पृश्यता संबंधी रचनात्मक कार्य को भी मूर्त रूप दिया है।

मादक द्रव्य-निषेध

हिन्दी-नाट्य साहित्य में मादक द्रव्य-निषेध संबंधी रचनात्मक कार्यक्रम का वर्णन भी सांकेतिक प्रच्छन्न अथवा प्रत्यक्ष रूप में किया गया है। जयशंकर प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक नाटक 'अजातशत्रु' में एक पंक्ति में इसका संकेत किया है कि गौतम बुद्ध ने मद्यपान-निषेध संबंधी प्रवचनों का उदयन जैसे सम्राटों पर भी प्रभाव पड़ा था।[2] 'दाहर अथवा सिन्ध पतन' नाटक में उदयशंकर भट्ट ने गांधी जी के मद्यपान-निषेध का अनुमोदन बगदाद के खलीफा द्वारा कराया है :—

'खलीफा—नहीं हैजाज, मैं इस उत्सव को हर तरह बुरा समझता हूं, शराब मनुष्यता के विरुद्ध, धर्म के विपरीत, आचार के प्रतिकूल है। मैं अपने पूज्य खलीफाओं की तरह इस अपवित्र वस्तु से घृणा करता हूं।'[3] भट्ट जी ने भारत के मुसलमानों को भी मद्यपान से विमुख करने के लिए, इस नाटक में विशेष रूप से यह दिखाया है कि बगदाद में शराब पीना मना था, क्योंकि यह धर्मविरुद्ध और इस्लाम के विपरीत था। लेखक ने खलीफा के शब्दों में यह स्पष्ट कर दिया है कि कुरान शरीफ में शराब के विरुद्ध मुसलमानों को उपदेश दिया गया है कि 'ऐ मुसलमानो, शराब शैतान की बनाई हुई चीज है, इसे छोड़ दो।[4]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' में मघ द्वारा मधुपान की कुप्रथा को मिटाने का सदुद्योग कराया है। इस गीतिनाट्य में शराब की दूकानों पर धरना देकर इसके दुष्परिणामों से जनता को अविदित कराते दिखाया गया है। मघ के सत्-प्रयत्न से बहुत से कलाल यह निकृष्ट कार्य त्याग देते हैं।[5] निःसन्देह गांधी जी को भी इस क्षेत्र में सफलता मिली थी।

नाटकों में साम्प्रदायिक एकता का प्रयास

हिन्दी नाटक-साहित्य की रचना द्वारा हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का सर्वाधिक प्रयास हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने किया है। 'रक्षाबन्धन' नाटक में राजपूत रानी कर्मवती द्वारा हुमायूं को राखी भेज कर अपनी रक्षा के लिए आमन्त्रित करते दिखाया है। कर्मवती कहती हैं—'जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हुए हैं, बिजली कड़क रही है, शत्रु पैशाचिक अट्टहास कर रहे हैं, उस समय पृथक्-पृथक् जातियों और

१. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ, पृ० ४१
२. जयशंकर प्रसाद : अजातशत्रु : पृ० ४६
३. उदयशंकर भट्ट : दाहर अथवा सिन्ध पतन : पृ० २०
४. वही, पृ० २१
५. मैथिलीशरण गुप्त : अनघ : पृ० ६८

देशों के मानापमान और अधिकारों की चर्चा कैसी।......'[1] उन्होंने धार्मिक भेद-भाव, जातीय अन्तर भुलाकर हुमायूं को भाई बनाया था। लेखक ने कर्मवती द्वारा अपने युग के हिन्दुओं को मुसलमानों से भ्रातृत्व संबंध स्थापित कर प्रेम करने का सदेश दिलाया है—'चौंकती क्यों हो जवाहर बाई। मुसलमान भी इन्सान हैं, उनके भी बहनें होती हैं। सोचो तो बहन, क्या वे मनुष्य नहीं हैं? उनके हृदय नहीं है? वे ईश्वर को खुदा कहते हैं, मन्दिर में न जाकर मस्जिद में जाते हैं, क्या इसीलिए हमें उनसे घृणा करनी चाहिए?'[2] गांधी जी ने साम्प्रदायिक एकता पर इसी कारण विशेष बल दिया था कि मुसलमान भी भारत के अविभाज्य अंग बन गए थे। 'मुसलमान भारत के शत्रु हैं' इस भ्रान्त धारणा का निवारण करते हुए इस नाटक में कर्मवती कहती हैं कि मुसललमानों को भी भारत में ही मरना जीना है। 'अब उन्हें काफिले में लादकर अरब नहीं भेजा जा सकता।'[3] हुमायूं दोनों जातियों की मित्रता के बीच मज़हब को दीवार नहीं मानता।[4] शाहशेख औलिया द्वारा मुसलमानों को साम्प्रदायिक भेद-भाव भूल कर देशोद्धार के लिए कटिबद्ध होने का संदेश दिया गया है।[5] इसी प्रकार 'शिवा-साधना' नाटक में शिवा जी का चरित्र भिन्न रूप में सम्मुख आता है। इसके पूर्व शिवाजी के जिस रूप का प्रतिपादन साहित्य में किया गया था, वह यवनों का घोर शत्रु एवं हिन्दू जातीयता की भावना से युक्त था। प्रेमीजी ने गांधीजी के सदृश अति उदारता एवं धार्मिक सहिष्णुता से कार्य लिया। भारत में शक, हूण आदि अनेक जातियां आईं और भारतीय संस्कृति में घुल मिल कर एक हो गई, लेकिन मुसलमान उसमें अपने को समाहित न कर सके।[6] स्वराज्य प्राप्ति के लिए यह आवश्यक था कि उसमें मुसलमानों की भी स्वतन्त्रता सुरक्षित रहती। इसीलिए प्रेमी जी के इस नाटक में शिवाजी कहते हैं:—किन्तु यदि स्वराज्य केवल हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया तो मेरी साधना अधूरी रह जायगी। मैं जो बीजापुर और दिल्ली के राज्यों की जड़ उखाड़ डालना चाहता हूं वह इसलिए नहीं कि वे मुस्लिम राज्य हैं, बल्कि इसलिए कि वे आततायी हैं, एक तन्त्र हैं, लोक-मत को कुचल कर चलने में अभ्यस्त हैं।'[7] शिवाजी गांधी जी के सदृश सभी वर्णों और जातियों को धर्म संबंधी स्वतन्त्रता देकर, उनका संग्रह करना चाहते हैं। कुरान का भी उतना ही आदर करते हैं जितना अपने धर्म का।[8] अफजल खां की लाश को आदरपूर्वक दफनाने की आज्ञा देते हुए शिवाजी

---

१. हरिकृष्ण प्रेमी : रक्षा बन्धन : पृ० ११
२. वही, पृ० ३६
३. वही, पृ० ३७
४. वही, पृ० ४८
५. वही, पृ० ५४
६. वही, पृ० १३
७. वही पृ० १६
८. वही, पृ० १७

ने स्पष्ट कह दिया है कि 'हमारा किसी व्यक्ति विशेष से द्वेष नहीं, हम तो एक महान् साधना के साधक हैं'।[1] प्रेमी जी का नाट्य साहित्य द्वारा साम्प्रदायिक एकता का प्रयास प्रशंसनीय है।

जयशंकर प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर चन्द्रगुप्त एवं विदेशी कन्या कार्नेलिया के विवाह द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से यह संकेत किया है कि युग युग से हिन्दू धर्म ने अपनी सहिष्णुभावना के कारण अन्य धर्मों को समाहित किया है। मैत्री-संबंध के लिए धर्म बाधक नहीं है और मानवता सर्वोपरि धर्म है। डा० श्यामबिहारी मिश्र एवं शुकदेव बिहारी मिश्र रचित मौलिक ऐतिहासिक नाटक 'शिवाजी'[2] में भी शिवाजी का चरित्र हिन्दूमुस्लिम एकता समर्थक है।

इस युग में राजनीतिक नाटकों का प्रायः अभाव होने के कारण प्रत्यक्ष रूप में हिन्दी में गाँधीजी की साम्प्रदायिक भावना मिटाने वाले नाटक नहीं मिलते।

हिन्दी कथा-साहित्य में रचनात्मक कार्यक्रम का वर्णन

काव्य अथवा नाट्य-साहित्य की अपेक्षा हिन्दी कथा-साहित्य में, रचनात्मक कार्यक्रम के विभिन्न पक्षों के अनेक दृश्य, वर्णन अथवा कथोपकथन मिलते हैं।

(क) स्वदेशी का प्रचार अथवा विदेशी का बहिष्कार

स्वदेशी के प्रचार का मूल कारण था, देश की अर्थ-व्यवस्था को नियंत्रित कर पराधीनता के अभिशाप को मिटाना। इसी कारण गाँधीजी ने खादी, चर्खे का प्रचार कर अन्य ग्रामोद्योगों के विकास का भी प्रयास किया था। हिन्दी उपन्यास-साहित्य में प्रेमचन्द एवं राधिकारमण प्रसाद सिंह ने गाँधी जी के राष्ट्रवाद के इस पक्ष की भी सशक्त अभिव्यक्ति की है। प्रेमचन्द जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास का नायक अमरकान्त केवल मौखिक रूप से ही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता नहीं है, व्यवहार रूप में भी सच्चा राष्ट्र-वादी है। धनवान पिता की सम्पत्ति ठुकराकर, खादी के विक्रय का स्वतन्त्र व्यवसाय प्रारम्भ करने के लिए वह खादी का गट्ठर पीठ पर लाद कर बेचता है।[3] इस स्वदेशी के प्रचार के लिए वह हाथ से कर्म करना अधिक उपयुक्त समझता है—'अमर के अन्तःकरण में क्रान्ति का तूफान उठ रहा था। उसका बस चलता तो आज धनवालों का अन्त कर देता, जो संसार को नरक बनाये हुए हैं। वह बोझ उठाकर दिखाना चाहता था, मैं मजूरी करके निर्वाह करना इससे कहीं अच्छा समझता हूं कि हराम की कमाई खाऊं। तुम सब मोटी तोंदवाले हरामखोर हो, पक्के हरामखोर हो। तुम मुझे नीच समझते हो, इसलिए कि मैं अपनी पीठ पर बोझ लादे हुए हूं। क्या यह बोझ तुम्हारी अनीति और अधर्म के बोझ से ज्यादा लज्जास्पद है, जो तुम अपने सिर पर लादे फिरते हो, और शर्माते जरा भी नहीं? उल्टे और घमंड करते हो।'[4]

---

१. हरिकृष्ण प्रेमी : शिवा साधना : पृ० ५३
२. डा० श्याम बिहारी मिश्र—शुकदेव बिहारी मिश्र : शिवाजी : पृ० ६५
३. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १२१
४. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १२१

राधिकारमण प्रसाद सिंह के उपन्यास 'पुरुष और नारी' में तत्कालीन राजनीतिक गतिविधि, आन्दोलन के विस्तृत वर्णन के रचनात्मक कार्यक्रम का विवरण भी मिलता है। असहयोग आन्दोलन की समाप्ति पर अजीत गाँव में आश्रम की स्थापना कर चर्खा और खादी का प्रचार करता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवकों का वस्त्राभूषण तो खादी था ही[1] सामान्य जनता भी खादी के रंग में रंग गई थी। सुधा भी परिवार का बन्धन तोड़ उसके हाथ बंटाने पहुँच जाती है। वह देहात की महिलाओं में चर्खे का प्रचार करती है—'सुधा में लगन तो थी ही, धुन भी थी। देहात में घर-घर छा गई। बहू-बेटियों ने तो उसे सर पर चढ़ा रखा था। दर-दर उसकी पैठ हो गई। चरखे तो चले ही, करघे भी जम गए। खादी की बन्दापरवरी लोगों के दिल में घर करने लगी। कोरदार मलमली साड़ी, गद्दीखाने की बोतल की तरह, एकाध जगह परदे में रह गई।'[2] द्वितीय आन्दोलन के समय खादी के सम्मुख विलायती कपड़ा एक तमाशा बन गया था।[3] शादी की महफिल भी खादी की सादगी में रंग गई।[4]

उपन्यास की अपेक्षा कहानियों में स्वदेशी प्रचार की कार्य प्रणाली, जन-जीवन में स्वदेशी के प्रभाव, खादी चर्खे आदि का वर्णन अधिक मिलता है। प्रेमचन्द, सुदर्शन, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, सियारामशरण गुप्त आदि की कहानियाँ उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचन्द की 'होली का उपहार'[5], 'पत्नी से पति'[6], 'सुहाग की साड़ी,'[7] कहानियों में स्वदेशी के प्रचार की सम्पूर्ण प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है। 'होली का उपहार' कहानी में अमरकान्त पत्नी को होली का उपहार देने के लिए विदेशी वस्त्र की प्रसिद्ध दूकान के पीछे के द्वार से साड़ी लाता है क्योंकि मुख्य द्वार पर स्वयंसेवकों का धरना था। बाहर आने पर उसे स्वयंसेवकों का सामना करना पड़ता है, और एक खद्दरधारी युवती की भर्त्सना सुननी पड़ती है। वास्तव में यह खद्दरधारी महिला उन की पत्नी थीं। दूसरे दिन वे भी स्वयंसेवक बन धरना देते हैं और कारावास का दंड भोगने के लिए सहर्ष चले जाते हैं। 'पत्नी से पति' नामक कहानी में भारतीयों की उस पतित मनोवृत्ति की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है जिसमें स्वदेशी वस्तुओं को ही नहीं, भारतीयता को ही लज्जास्पद माना जाता था। मि० सेठ इसी मनोवृत्ति के थे, लेकिन उनकी पत्नी गोदावरी राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत आदर्श नारी थीं। वे

१. राधिकारमण प्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ८०
२. वही, पृ० १११
३. वही, पृ० १३९
४. वही, पृ० १९५
५. प्रेमचन्द : राजनीतिक कहानियां और समरयात्रा : पृ० ११०
६. प्रेमचन्द : मानसरोवर (भाग ७) : पृ० १७
७. वही, पृ० २७०

स्वदेशी की रक्षा के हेतु पति का भी तिरस्कार करती हैं। प्रिंस ग्राफ वेल्स के भारत-गमन पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई थी, उसका उल्लेख भी प्रेमचन्द जी ने अपनी इस कहानी में किया है। पति द्वारा स्वदेशी अंगीकार करने पर पारिवारिक जीवन में नवीन प्रेममय प्रकरण का प्रारम्भ होता है। 'सुहाग की साड़ी' कहानी में राष्ट्रीय धर्म की प्रतिष्ठा के लिए विदेशी कपड़े से निर्मित सुहाग की साड़ी भी अग्नि में भस्म कर दी जाती है,'विलायत का एक सूत भी घर में रखना मेरे प्रण को भंग कर देगा।'[1] यह कितने की राष्ट्र प्रेमियों का व्रत था।' इसी कपड़े की बदौलत हम गुलाम बने, यह गुलामी का दाग मैं अब नहीं रख सकता।'[2] यह देशवासियों को भली प्रकार समझ में आ गया था। प्रेमचन्द जी ने विदेशी के बहिष्कार का सजीव चित्र इस छोटी सी कहानी में खींचकर रख दिया है, जिससे राष्ट्रीय भावना एवं स्वदेशी को प्रोत्साहन मिलता है—'विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलाई जा रही थीं। स्वयंसेवकों के जत्थे भिखारियों की भाँति द्वारों पर खड़े होकर विलायती कपड़ों की भिक्षा माँगते थे और ऐसा कदाचित ही कोई द्वार था, जहाँ उन्हें निराश होना पड़ता हो। खद्दर और गाढ़े के दिन फिर गए थे। नयनसुख नयनदुख, मलमल मनमल और तनजेव तन बन्ध हो गये थे।' विधि की यह कठोर विडम्बना थी कि सुहाग की साड़ी जैसा पवित्र परिधान भी विदेशी मलमल का बनता था।'[3] इस स्वदेशी आन्दोलन द्वारा आत्मा का परिष्कार हुआ, स्वदेशानुराग ने स्वदेशी के उपयोग एवं विदेशी के बहिष्कार की ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा कराई कि अमंगल का भय भी सुभद्रा की सुहाग की विदेशी साड़ी को भस्म करने से न रोक सका। प्रेमजन्द जी ने देश जीवन पर स्वदेशी के प्रभाव का भी उल्लेख किया है। देश में नया आत्म-सम्मान आया, जुलाहे और कोरियों को फिर से आजीविका का आधार मिला और देश की श्री-सम्पत्ति घर लौट आई। सुहाग की साड़ी ने भस्म होकर देश जीवन को, देश के व्यापार को एक नई चमक से भर दिया।[4]

प्रेमचन्द जी की राष्ट्रीय परम्परा में 'सुदर्शन' जी को भी रखा जायेगा। रचनात्मक कार्यक्रम एवं उसकी प्रक्रिया के विस्तृत वर्णन सुदर्शन जी की कहानियों में भी मिलते हैं। इनकी 'हार जीत' कहानी में विदेशी कपड़ों के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ नरोत्तमदास की विदेशी कपड़ों के व्यापार की नीति का विरोध उनका पुत्र और पत्नी करते हैं।[5] स्वदेश आन्दोलन की प्रबल लहर में, गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति के लिए साधारण जन ही नहीं, ऐश्वर्य में पले धनिक वर्ग के युवक भी बह गये

१. प्रेमचन्द : मानसरोवर (भाग ७) :पृ० २६४
२. वही, पृ० २६६
३. वही, पृ० २६४
४. वही, पृ० ३०२
५. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ८१

थे। इसके लिए उन्होंने धन, ऐश्वर्य, सुख-भोग सभी का त्याग अंगीकार किया था। इस कहानी में, अपने पुत्र को स्वयंसेवक के वेश में दूकान पर धरना देते देखकर सेठ जी की जो मानसिक दशा हुई थी, उसका अत्यधिक मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है—'एकाएक उनकी दृष्टि लखमीचन्द पर पड़ी। उनके हौसले टूट गये। जिस तरह उड़ता हुआ कबूतर बाज को देखकर सहम जाता है, उसी तरह पुत्र को स्वयंसेवकों में देखकर उनका जोश बैठ गया। मन में सोचा, यही लड़का है जो कभी मोटर के बिना दो पग भी नहीं चलता था, आज इसके पाँव में जूता नहीं। सिर के बाल खुश्क हो गये हैं। कपड़े खद्दर के, परन्तु चेहरा उसी तरह चमक रहा है। परन्तु अपना कोई स्वार्थ नहीं, जो कुछ करता है, देश और जाति के हित के लिए और इस समय कैद होने को भी तैयार है।'[1] सेठ नरोत्तमदास जैसे कितने ही बड़े व्यापारियों का हृदय-परिवर्तन हुआ था, जिन्होंने विदेशी कपड़े का व्यापार बन्द कर देश का कल्याण किया था। सुदर्शन जी की 'अन्तिम आकांक्षा'[2] कहानी में रायबहादुर की पत्नी सुशीला स्वदेशी का महान व्रत लेती हैं, लेकिन जब वह द्वार पर खड़े स्वयंसेवकों को विदेशी कपड़ों की गठरियाँ भेज रही थीं, रायसाहब इस महान अनुष्ठान में विघ्न सम आ खड़े होते हैं। सुशीला की प्रतिज्ञा भंग हो गई। इस चिन्ता में घुट-घुटकर उसने अपने प्राणों की बलि दे दी। जो कार्य अपने जीवन काल में सुशीला न कर सकी, वह उसने मरण के पश्चात् किया, रायसाहब ने विदेशी कपड़ों की होली जलाकर क्रिया-कर्म के आध्यात्मिक कार्य को पूर्ण किया।[3] सुशीला की दिवंगत आत्मा को इससे सन्तोष मिला।[4] 'कैदी'[5] और 'हार जीत'[6] कहानियों में सुदर्शन जी ने खादी के महत्त्व का प्रकाशन किया है।

सुभद्राकुमारी चौहान के 'सीधे सादे चित्र'[7] की गौरी खद्दरधारी विधुर सीताराम जी की ओर सहज ही देशभक्ति के कारण आकृष्ट हो जाती है। नारी और पुरुष युवक और वृद्ध सभी के हृदय पर खादी ने सिक्का जमा लिया था। चारों ओर खादी स्वदेशी और चर्खे की धूम थी। आचार्य चतुरसेन ने 'अभाव' कहानी में कठोर एवं नृशंस राजनीतिक दासता की अवस्था में अंग्रेजी वस्त्र ही नहीं, उस काँट छाँट और ठाठ के वस्त्रों का धारण करना भी स्वाभिमान एवं देशभक्ति के लिए हेय समझा है — 'देश के पुरुषों का सम्मान, संगठन देशभक्ति और स्वात्माभिमान की कल्पना से होगा।

---

१. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० ९९
२. वही, पृ० ९३
३. वही, पृ० १०२
४. वही, पृ० १०३
५. वही, पृ० ८०
६. वही, पृ० ९१
७. सुभद्राकुमारी चौहान : सीधे सादे चित्र : पृ० ११

यह बढ़िया विदेशी ठाठ और काट के वस्त्र पहिनना और मोर के पर खोंस कर कौवे की तरह हास्यास्पद बनना अत्यन्त पाप कर्म है। मैं आज से यह सब त्यागता हूं।"[1]

स्वदेशी प्रचार एवं विदेशी बहिष्कार सम्बन्धी कहानियों से यह स्पष्ट अभिव्यंजित है कि स्वदेशी और विदेशी का प्रश्न केवल राष्ट्रीय जीवन में ही नहीं, पारिवारिक का भी अभिन्न अंग बन गया था। इस प्रश्न को लेकर पति-पत्नी, पिता-पुत्र में संघर्ष छिड़ गया था। राष्ट्र-प्रेम के सम्मुख अन्य प्रेम सम्बन्ध, आदर्श मान्यतायें गौण हो गई थीं। राष्ट्रीयता सर्वोपरि धर्म था। स्वयंसेवक सत्य एवं अहिंसा का निर्वाह करते हुये, इस कार्य की सफलता के लिए चुपचाप कठोर शारीरिक यंत्रणायें सह लेते थे। सुदर्शन की 'अन्तिम साधन'[2] प्रसिद्ध कहानी है। प्रायः सभी कहानियों में लेखकों ने स्वदेशी की विजय और विदशी की पराजय दिखाई है। गाँधी जी ने खादी के प्रचार द्वारा राष्ट्रीय द्रव्य बचत का जो हिसाब लगाया था उसका पूर्ण विवरण प्रेमचन्द जी की 'लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा' नामक कहानी में मिलता है। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी कहानियों द्वारा स्वदेशी प्रचार के रचनात्मक कार्यक्रम को भी सुसम्पन्न किया गया है।

मादक द्रव्य निषेध

गांधीजी द्वारा नियोजित स्वयंसेवक नगर तथा ग्राम में मद्य निषेध का कार्य अत्यन्त सुचारुता के साथ कर रहे थे। देश के कल्याण के लिए यह आवश्यक था कि देशवासियों के नैतिक चरित्रोत्थान के लिए उन्हें इस प्रकार के घृणित दुर्व्यसनों से बचाया जाये। हिन्दी-कथा साहित्य में रचनात्मक कार्य-क्रम के इस पक्ष की भी पुष्टि मिलती है। प्रेमचन्द जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास का अमरकान्त ग्रामवासियों को मद्यपान के घातक परिणाम बताकर, उन्हें इस दुर्व्यसन से मुक्त करने का प्रयास करता है। गूदड़ चौधरी अमरकान्त के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कहता है— 'चाहे दरद हो चाहे बाई हो, अब पीऊंगा नहीं। जिन्दगी में हज़ारों रुपये की दारु पी गया। सारी कमाई नशे में उड़ा दी। उतने रुपये से कोई उपकार का काम करता, तो गाँव का भला होता और जस भी मिलता। मूरख को इसी से बुरा कहा है। साहब लोग सुना है, बहुत पीते हैं, पर उनकी बात निराली है। यहाँ राज करते हैं। लूट का माल मिलता है, वह न पीयें, तो कौन पीये। देखती है, अब काशी और प्रयाग को भी कुछ पढ़ने-लिखने का चस्का होने लगा है।'[3] गांधीजी के सदृश अमरकान्त भी यह चाहता है कि इस निषेधात्मक कार्य को बलपूर्वक न किया जाय वरन् हृदय परिवर्तन द्वारा लोगों में इसके विरुद्ध घृणा का प्रचार हो। 'फिर वही डाँट फट-

१. चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय : पृ० ३५
२. सुदर्शन : सुप्रभात : पृ० १२२
३. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १५५

कार की बात ? अरे दादा ! डांट फटकार से कुछ न होगा । दिलों में बैठिये । ऐसी हवा फैला दीजिये कि ताड़ी शराब से लोगों को घृणा हो जाय । आप दिन भर अपना काम करें और चैन से सोयेंगे,तो यह काम हो चुका । यह समझ लो कि हमारी बिरादरी चेत जायेगी, ब्राह्मण ठाकुर आप ही चेत जायेंगे ।'[१]

प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास में अमरकान्त द्वारा ग्रामों में और सुखदा तथा शान्तिकुमार द्वारा नगर में मद्य-निषेध का कार्य सुचारु रूप से चलाया है ।' इधर सुखदा और शान्तिकुमार का सहयोग दिन-दिन घनिष्ठ होता जा रहा था । धन का अभाव तो था नहीं, हरेक मुहल्ले में सेवाश्रम की शाखायें खुल रही थीं और मादक वस्तुओं का बहिष्कार जोरों से हो रहा था ।'[२]

बेचन शर्मा उग्र का 'शराबी' उपन्यास मद्य-निषेध पर आधारित सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास का हतभागी पिता शराब के फेर में अपनी प्रतिष्ठा, मर्यादा, धन-सम्पत्ति के साथ अपनी कुमारी कन्या को भी संसार में भटकने के लिए गँवा बैठता है । पारिवारिक जीवन को विनष्ट कर मस्तिष्क की विकृतावस्था में भी पारस एक क्षण को शराब के दुष्परिणाम को भूल नहीं पाता । उसे 'पागल-पियक्कड़ों' का शराब पीना असह्य है, वह जानता है कि 'मतलबी कलाल लोगों को हलाल कर पैसे' बनाते हैं ।[३] पारस शराबखानों में राष्ट्रीय-स्वयं सेवकों की भांति धरना देकर बैठ जाता है ।

राधिकारमणप्रसाद सिंह के उपन्यास 'पुरुष और नारी' में अजीत ग्राम-सुधार कार्य के अन्तर्गत मद्य-निषेध पर भी विशेष बल देता है । उन्होंने इस उपन्यास में लिखा है—'बोतलबाजी की तो कमर टूट गई । जो लुक-छिप कर एकाध चुल्लू पी पाते, वे घर आकर चुल्लू-भर पानी में डूब मरते । औरतों की हड़ताल के आगे मर्दों के पांव उखड़ गये । पुराने अखाड़ियों ने चीं चपड़ तो जरूर की, मगर जब छोटी-छोटी बच्चियां राह चलते तालियां पीटने लगीं, तो लाचार हो घुटने टेक दिये ।[४]

प्रेमचन्द जी की कहानियों में भी मद्य-निषेध के विभिन्न अहिंसात्मक उपायों का, सत्याग्रही वीरों द्वारा प्रयोग द्रष्टव्य है । इससे सम्बन्धित उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं—'शराब की दूकान',[५] और 'मैकू'[६] । इन दोनों कहानियों में शराब की दूकान पर स्वयंसेवकों द्वारा पहरा देना, ग्राहकों को इस कार्य से विनम्रता पूर्वक रोकना, अहिंसात्मक रीति से कष्ट सहन द्वारा उनके हृदय परिवर्तन आदि का विस्तृत एवं यथार्थ

१. प्रेमचन्द : कर्मभूमि पृ० २८०
२. वही : पृ० २३२
३. बेचन शर्मा : उग्र : शराबी : पृ० १८०-१८१
४. राधिकारमणप्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ११०
५. प्रेमचन्द : मानसरोवर (भाग ७) : पृ० ३७
६. प्रेमचन्द : राजनीतिक कहानियाँ और समरयात्रा : पृ० ९१

चित्र मिलता है। यह सत्याग्रही वीर जमीन पर लेट जाते थे और शराब के ग्राहकों को अपनी छाती पर पैर रखकर जाने को कहते थे। यदि कोई क्रुद्ध होता, मारता, पीटता तो सहर्ष कष्ट सहते, किन्तु मन में मलाल भी न लाते क्योंकि गाँधी जी ने अहिंसात्मक नीति पालन का कठिन आदेश दिया था। 'शराब की दुकान' कहानी में जयराम अहिंसा, त्याग एवं साहस का पुतला है। वह चोट सह कर भी धरना देता है। 'मैकू' कहानी में मैकू राष्ट्रीय स्वयंसेवक पर शारीरिक बल प्रयोग कर शराब की दुकान में प्रविष्ट तो हो गया किन्तु उसकी आत्मा उसे धिक्कार उठी। उसका हृदय परिवर्तन हुआ, उसमें ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि उसने पियक्कड़ों तथा ठेकेदार को पीटा और शराब के बर्तन उठा कर फेंक दिये।

शराब की दुकान पर धरना देने का कार्य केवल पुरुषों ने ही नहीं किया था, नारियों ने भी उसमें भाग लिया था और पुरुषों से अधिक सहनशीलता तथा धैर्य का परिचय दिया था 'शराब की दुकान' कहानी में प्रेमचन्द जी ने जयराम के सत्याग्रह धर्म से विचलित हो जाने पर अर्थात् अधिक उग्र हो जाने पर मिसेज सक्सेना द्वारा त्याग तथा कष्ट सहन का दृष्टान्त रख कर शराबियों का हृदय-परिवर्तन कराया है। अतः मद्यनिषेध से सम्बन्धित कुछ सुन्दर प्रभावोत्पादक एवं राष्ट्रीय जागरण का चित्र प्रस्तुत करने वाली कहानियां मिलती हैं।

ग्राम-सुधार तथा ग्राम-शिक्षा

प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' उपन्यासों में ग्राम सुधार एवं ग्रामीण शिक्षा के कार्यक्रम का क्रियान्वित रूप दिया गया है। प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर ग्राम-सुधार के सिद्धान्तों को कार्य रूप देने के लिये आदर्श आश्रम की स्थापना करते हैं। कृषि-विकास के नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों का प्रयोग कर, ग्रामीणों को शिक्षित तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेत करके ग्राम जीवन को उन्नत एवं विकसित करना चाहते हैं।[1] 'कर्मभूमि' उपन्यास का नायक अमरकान्त ग्राम-सुधार एवं ग्राम शिक्षा का सफल उद्योग करता है। वह हरिद्वार के पास जाकर एक गाँव में टिकता है जिसमें अधिकतर निम्न वर्ग के चमार लोग रहते हैं। मद्य पान निषेध के साथ वहां के अशिक्षित जनसमूह में वह शिक्षा का भी प्रचार करता है—'शिक्षा का लोगों को कुछ ऐसा चस्का पड़ गया था कि जवान बूढ़े भी आ बैठते और कुछ-न-कुछ सीख जाते। अमर की शिक्षा शैली आलोचनात्मक थी। अन्य देशों की सामाजिक और राजनीतिक प्रगति, नये-नये आविष्कार, नये-नये विचार उसके मुख्य विषय थे।'[2] वह ग्रामवासियों का ऐसा स्वभाव बना देना चाहता था कि सफाई उनके जीवन का अंग बन जाये। वह स्वयं हाथों द्वारा परिश्रम कर गांव के लोगों को प्रेरणा देता है।[3]

---

१. प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम : पृ० १८९

२. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १७२, १७३

३. वही : पृ० २७९

वह दिखावा नहीं, ठोस कार्य करना चाहता है । पंचायतों को ग्राम-सुधार के लिए उपयुक्त साधन मानता है। गोदान' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण कथा के साथ नागरिक कथा इसी उद्देश्य से जोड़ी है कि नगर के शिक्षित जन ग्राम सुधार का कार्य करें। गांधी जी ने आदर्श भारत की रूपरेखा में लिखा था—

'शहरों और गांवों में एक स्वस्थ और नैतिक सम्बन्ध तभी स्थापित होगा जब कि शहरी लोग उन्हें शोषित करने की स्वार्थपूर्ण भावना का त्याग करेंगे और यह महसूस करेंगे कि जो अन्न, जल और शक्ति उनके द्वारा हमें प्राप्त हो रही है, उसका उचित प्रतिदान करना हमारा कर्तव्य है। यदि नगर के बालक यह चाहते हैं कि सामाजिक संगठन के इस महत् कार्य में हम अपना पार्ट अदा करें तो जिस प्रणाली से वे शिक्षा प्राप्त करते हैं, वह ग्रामों की आवश्यकताओं से सीधा सम्पर्क रखें।'[1] गाँधी जी की इस योजना के अनुरूप पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित रंगीन तितली सी मालती का हृदय परिवर्तन होता है और वह होरी के गांव जाकर अशिक्षित, अज्ञानी, निरीह ग्रामवासियों के सुधार का कार्य करती है।

राधिकारमणप्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास का नायक अजित भी प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' के प्रेमशंकर की भांति ग्राम-सुधार के लिये गांव में आश्रम की स्थापना करता है। राधिकारमणप्रसाद जी ने गांधी जी के रचनात्मक कार्यों का अधिक विस्तार से उल्लेख किया है। असहयोग आन्दोलन के पश्चात् रचनात्मक कार्य सम्बन्धी, तत्कालीन परिस्थितियों के विषय में लिखा है। अजीत जैसे कितने ही युवकों की 'नस नस में सेवा का रस भींग' रहा था। साबरमती का पानी पीने के बाद देश के लिये लहू को पानी बनाने का संकल्प आ गया था। आन्दोलन समाप्त हो जाने पर भी गांधी जी द्वारा प्रारम्भ रचनात्मक कार्य सुचारु रूप से चलते रहे। ग्राम सुधार तथा उनमें चेतना प्रसार का कार्य विशेष रूप से किया गया। अजीत ने रेखा के तट पर कच्चा-पक्का आश्रम बांधा—उसी के नाम अपनी जायदाद भी वक्फ कर दी। खेतीबारी का सिलसिला रखा। 'चरखे तो चले ही, करघे भी जारी हुए। और भी कितने छोटे-मोटे उद्योग-धन्धे आश्रम की देख-रेख में नमूदार हुए।'[2] अजीत द्वारा किये गये कार्यों के विषय में लेखक ने लिखा है—'अजीत ने अपने जिम्मे देहात का काम रखा। गांवों में घूम-घूम गंवारों की आंखों में उंगलियां डाल, उनकी आंखों का परदा उठाने लगा। देहातियों के सर से भूत और भभूत का भूत उतारना, परम्परा की अँधेरी पगडण्डियों से घसीट कर उन्हें दुनिया की रोशनी में ला खड़ा करना, उनके दिल में देव-बल की जगह आत्मबल का विश्वास भरना—उसके यौवन की तमाम उमंगों के लिए काफी मैदान निकले।'[3] सुधा जैसी नारियों ने भी अदम्य उत्साह एवं

१. मोहनदास कर्मचन्द गांधी : आदर्श भारत की रूपरेखा पृ० २६
२. राधिकारमणप्रसाद सिंह : पुरुष और नारी : पृ० ६५
३. वही : पृ० ६५

त्याग-भाव से इस कार्य को अपना सहयोग दिया था। अन्धविश्वास, अशिक्षा एवं अर्थाभाव में जकड़ी ग्रामीण जनता का सुधार राष्ट्रीय जीवन का नितान्त आवश्यक स्तम्भ था—'गाँव ही तो राष्ट्र का प्राण है और वही आज निष्प्राण हो रहा है। बस, उसाँस ही उसके जीवन की आस है। गांव ही नहीं पनपा, तो फिर यह देश क्या शहर की शुहरत पर बुलन्द होगा ?' लेकिन यह कार्य सहज नहीं था—'देहात की छाती पर सदियों से चित्तियां जम आई हैं—उनको उठाना खेल है ? बड़ों-बड़ों के पित्त पानी हो गए। देहाती तो किवाड़ बन्द कर मौत की नींद सो रहे हैं, बहुत सर पीटने पर वे करवटें ले पाते हैं। बन्द किवाड़ खुल पाते, तो कहीं रोशनी जाती या हवा पहुंचती।'[1] गांधी जी द्वारा संचालित द्वितीय आन्दोलन के पश्चात् ग्रामों की स्थिति में सुधार आ गया था। गाँधी जी एवं राष्ट्रीय सेवक दल का प्रयास निष्फल नहीं गया था। उसका उल्लेख भी इस उपन्यास में मिल जाता है।[2]

अछूतोद्धार :

प्रेमचन्द जी ने गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के अन्य पक्षों की भांति ही अछूतोद्धार का भी क्रियान्वित रूप पाठकों के सम्मुख रखा है। अछूतों की दशा में सुधार करना, उन्हें समानाधिकार देना तथा उनके प्रति घृणा की भावना को मिटा कर सहानुभूति पूर्ण दृष्टि की स्थापना का विस्तृत चित्रण उनके 'कर्मभूमि' उपन्यास में मिलता है। 'कर्मभूमि' उपन्यास की रचना, गांधी जी द्वारा संचालित द्वितीय आन्दोलन काल में हुई थी। सरकारी नीति तथा शासन प्रणाली की सविनय अवज्ञा के साथ ही अछूतोद्धार आन्दोलन भी इस समय अपनी पूर्ण प्रगति पर था। अंग्रेजी साम्राज्यवादी भेदप्रवण नीति हिन्दू-मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक विद्वेष की प्रबल अग्नि प्रज्वलित कर ही शान्त न हुई। अब उन्होंने अछूतों के लिए भी पृथक् निर्वाचन क्षेत्र स्थापित कर सवर्ण तथा अवर्ण के बीच भेदभाव बढ़ा कर राष्ट्रीय अनेकता द्वारा अपना 'शासन करो' का मन्तव्य सिद्ध करना चाहा। अतः इस काल में विशेष रूप से यह आवश्यक हो गया था कि अछूतों अथवा शूद्र वर्ण को सवर्णों के समान अधिकार मिले। 'कर्मभूमि' उपन्यास में शान्तिकुमार तथा सुखदा द्वारा इस आन्दोलन अथवा रचनात्मक कार्य का नेतृत्व किया गया है। शान्तिकुमार ने अछूतों को उनके मन्दिर-प्रवेश के अधिकार से परिचित कराते हुए उन्हें अपने स्वत्व के प्रति जागरूक किया—'तुम्हारा बस उस समय तक कुछ नहीं है, जब तक तुम समझते हो कि तुम्हारा बस नहीं है। मन्दिर किसी एक आदमी या समुदाय की चीज नहीं है। वह हिन्दू-मात्र की चीज है यदि तुम्हें कोई रोकता है तो उसकी जबर्दस्ती है। मत टलो उस मन्दिर के द्वार से, चाहे तुम्हारे ऊपर गोलियों की वर्षा ही क्यों न हो। तुम जरा जरा-सी बात के पीछे अपना सर्वस्व गंवा देते हो, यह तो धर्म की बात है; और धर्म हमें जान से

१. पुरुष और नारी : पृ० १०२
२. वही : पृ० २०६

प्यारा होता है। धर्म की रक्षा सदा प्राणों से हुई है और प्राणों से होगी।'[1] डा० शान्तिकुमार पांडे पुजारियों के डंडे खाकर भी अछूतों को ठाकुर जी के नाम पर बलिदान होने की प्रेरणा देते हैं।[2] धर्म के लिए अछूतों ने प्राण दिये, तथा अन्त में सुखदा द्वारा प्रोत्साहन पाकर उन्हें विजय मिली ; मन्दिर के द्वार खुल गये।[3]

गोविन्दवल्लभ पंत के 'जूनिया' उपन्यास की मूल प्रेरणा अवर्णों की समस्या है। अवर्णों के प्रति सामाजिक अत्याचार का उल्लेख करते हुए पंत जी ने यह सिद्ध किया है कि अर्थाभाव एवं सामाजिक भेदभाव से विक्षुब्ध होकर अवर्ण दूसरा धर्म अपना लेते थे। इस उपन्यास का अवर्ण नाम पात्र जूनिया धर्म के मूल तत्व को प्राप्त कर लेता है। पंत जी गांधी जी की धार्मिक विचारधारा से प्रभावित थे। इसी कारण वे इस उपन्यास द्वारा सवर्ण-अवर्ण अथवा धार्मिक भेदभाव को मिटा कर समता का उपदेश देते हैं। पीटरलाल द्वारा उन्होंने कहलाया है 'प्रभु के राज्य में सब समान हैं। उसका मन्दिर जब किसी के प्रवेश से अशुद्ध हो जाता है, तो उसकी सबको पवित्र करने की शक्ति में संशय उत्पन्न होने लगता है।'[4] सदियों से कुचली हुई जाति के उत्थान में ही देश का कल्याण था।

साम्प्रदायिक एकता अथवा धार्मिक एकता

कथा-साहित्य में भी गांधी जी के साम्प्रदायिक एकता सम्बन्धी रचनात्मक कार्यक्रम का उल्लेख मिलता है। प्रेमचन्द जी के 'रंगभूमि' उपन्यास की नायिका सोफिया ईसाई है किन्तु नायक विनयसिंह हिन्दू। प्रेमचन्द जी ने साम्प्रदायिक एकता की भावना से अभिप्रेरित होकर दोनों को प्रेम-सम्बन्ध में बांधा है। सोफिया का हृदय साम्प्रदायिक अत्याचार का विचार कर अति खिन्न हो जाता है। वह सोचती है कि यदि वह ईसा की अनुचरी न होकर राजपूतनी होती तो रानी जाह्नवी उसे सहर्ष स्वीकार करती। साम्प्रदायिक भेदों द्वारा आत्मा पर जो अत्याचार हो रहा था, वह उसे असह्य है।[5] साम्प्रदायिकता का भौतिक आवरण विनय और सोफिया के आत्मिक मिलन में बाधक नहीं हो पाता। ईसाई सोफिया, विनयसिंह की मृत्यु के पश्चात् गंगा की गोद में आत्मसमर्पण पर जिस महान् आदर्श की स्थापना करती है, उसके द्वारा प्रेमचंद जी ने साम्प्रदायिक मतभेद मिटाने का संकेत किया है।

गोविन्दवल्लभ पंत के 'जूनिया' उपन्यास में गांधी जी की धार्मिक नीति का पुष्ट प्रतिपादन मिलता है। साम्प्रदायिक एकता गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख अंग थी। इसे भारतीय जीवन के व्यावहारिक पक्ष में घटित करने के लिए

---

१. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० २०३
२. वही, पृ० २०६
३. गोविन्दवल्लभ पंत : जूनिया : पृ० ४५
४. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० २११
५. प्रेमचन्द : रंगभूमि : पृ० १५९

उन्होंने धर्म के मूल तत्व की एकता का उद्‌घाटन किया था। जैसा कि गांधी जी की धार्मिक नीति के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है, वे सभी धर्मों को एक ही लक्ष्य की ओर ले जाने वाले विविध मार्ग मानते थे। 'जूनिया' उपन्यास में पंत जी ने लिखा है—'सच बात तो यह है कि प्रत्येक धर्म के मूल-सूत्र समान हैं। प्रचारक को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए। वह अपने धर्म की श्रेष्ठता साबित करे, पर दूसरे के धर्म को नीचा बना कर नहीं।'[1] जूनिया द्वारा उन्होंने कहलाया है—'धर्म ! धर्म कोई चीज नहीं। संसार की सरल और सीधी आबादी को ठगने के लिए एक शब्द। और ईश्वर ; उसे भयभीत बनाये रखने के लिए एक शस्त्र।'[2] गांधी जी के अनुसार सत्य ही धर्म था। इस उपन्यास में भी सत्य को ही धर्म माना है। भाषा की भिन्नता से भी प्रभु में भेद नहीं पड़ सकता।[3] भारत के विभिन्न धर्मावलम्बी जनता को एकता के सूत्र में बांधने के लिए पंत जी ने कहलाया है—'क्या भाई बनने के लिये एक ही धर्म का होना आवश्यक है फिर धर्म तो सब एक ही हैं। आप मुझे क्यों आपना भाई नहीं समझते ? मैं तो आपको भाई समझता हूं, फिर आप मेरे लिये क्यों अपने मन में घृणा का भाव रखते हैं।'[4] गांधी जी ने 'हिन्दू' शब्द का भी बड़ा विस्तृत अर्थ लिखा था। उनके हिन्दू का अर्थ था सत्य का साधक। इस उपन्यास में जूनिया कहता है—'हिन्दू सच बोलने को कहते हैं, मैं भी सच बोलने की कोशिश करता हूं, तो फिर हिन्दू क्यों नहीं।'[5] वह धर्म को बहस की चीज नहीं मानता और सचाई ही उसका धर्म है। निःसन्देह पंत जी का जूनिया उपन्यास धार्मिक-एकता के लिग अद्‌भुत प्रयास है।

हिन्दी कहानीकारों में प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, बिश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक आदि ने कहानी द्वारा साम्प्रदायिक एकता का सफल प्रयास किया था। प्रेमचन्द जी ने 'जिहाद'[6] कहानी में साम्प्रदायिकता के भीषण परिणाम को दिखाकर, अप्रत्यक्ष रूप से धर्मान्धता के विकास को विनष्ट करना चाहा है। 'पंच परमेश्वर'[7] कहानी में ग्रामीण जीवन को साम्प्रदायिकता से मुक्त दिखाया है। ग्रामीण जीवन में साम्प्रदायिकता का विष नहीं फैला था, तभी जुम्मनशेख और अलगु चौधरी पंचायत के सरपंच बन कर उचित न्याय कर सके। जयशंकर प्रसाद जी की 'सलीम'[8] कहानी इस दिशा में

१. गोविन्दवल्लभ पंत : जूनिया : पृ० १६५
२. वही : पृ० २२२
३. वही : पृ० २२६
४. वही : पृ० २३८
५. वही : पृ० २३९
६. प्रेमचन्द : मानसरोवर (भाग ७) : पृ० १७३
७. वही, पृ० १५२
८. जयशंकरप्रसाद : इन्द्रजाल : पृ० १३

सुन्दर प्रयत्न है। इसमें उन्होंने मानवता के सम्मुख साम्प्रदायिकता की हार दिखाई है। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के एक छोटे से गांव में हिन्दू-मुस्लिम एकता का अद्भुत दृश्य देखकर हिजरती सलीम आश्चर्य से भर गया था—'मनुष्यता का एक पक्ष वह भी है जहां वर्ण, धर्म और देश को भूलकर मनुष्य-मनुष्य के लिए प्यार करता है।'[1] प्रसाद जी ने साम्प्रदायिकता के गरल को मानवता के अमृत के सम्मुख तुच्छ दृष्टि से देखा है। इनकी मानवता का पर्यवसान विश्व-बन्धुत्व की महती भावना में होता है। वह राष्ट्रीयता की सीमा भी पार कर जाती है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'हिन्दुस्तान'[2] कहानी में हिन्दू मुस्लिम एकता का भाव केन्द्रीभूत है। हिन्दू और मुसलमानों के बीच धार्मिक विद्वेष अधिक बढ़ता जा रहा था। मुसलमानों के लिए हिन्दुओं के पर्व त्यौहार घृणा की वस्तु बन गये थे।[3] और हिन्दू अपनी कट्टर धार्मिक भावना के कारण मुसलमानों से खान-पान का संबंध नहीं रखते थे। खां साहब और किशोरीलाल में घनिष्ट मित्रता थी। एक दूसरे के घर पर्व त्यौहारों पर मिठाइयां भेजी जाती थीं लेकिन खां साहब के पुत्र बशीर अहमद को खां साहब की यह धार्मिक सहिष्णुता खटकती थी। एक बार किशोरीलाल के घर भूल से खाँ साहब पर रंग पड़ गया, घर आने पर पुत्र, पत्नी और नौकर सभी को उनका रंग में सराबोर होना धार्मिकता के प्रतिकूल आचरण लगा। खां साहब भारतीयता के लिये धार्मिकता को बाधा नहीं मानते थे। उनका सिद्धान्त था कि 'हिन्दू मुसलमानों को इस तरह रहना चाहिये गोया दोनों भाई-भाई हैं।'[4] लेकिन बशीर अहमद के मतानुसार 'इसलाम कभी कुफ्र का शरीक नहीं हो सकता।'[5] इसके तर्क में उसने हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों को निकृष्ट समझे जाने का उदाहरण प्रस्तुत किया। वह किशोरीलाल के घर से आई होली की मिठाई इसीलिए वापस कर देता है कि हिन्दू मुसलमानों की छुई चीज क्यों नहीं खाते। किशोरीलाल तथा बशीर अहमद की बातचीत में 'कौशिक जी' ने दोनों सम्प्रदायों के दोषों पर प्रकाश डाला है। बशीर अहमद केवल धार्मिक मामलों में ही हिन्दुओं पर आक्षेप नहीं करता वरन् राजनैतिक दृष्टि से भी हिन्दू मुस्लिम एकता को असंभव मानता है—'क्या आप बतला सकते हैं कि अगर हमको ब्रिटिश कौम की गुलामी से छुटकारा मिल गया तो हिन्दू मुसलमानों के या मुसलमान हिन्दुओं के मातहत होकर रह सकेंगे। मैं तो कहता हूं यह गैर मुमकिन है। इसलिए यह नतीजा निकलता है कि अगर हिन्दुस्तान आज आज़ाद हो तो हिन्दू मुसलमानों में तास्सुब और छुआछूत के ऐसे झगड़े उठ खड़े होंगे कि हम एक

---

१. जयशंकरप्रसाद : इन्द्रजाल : पृ० २१
२. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : २४१
३. वही : पृ० २४२
४ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० २४७
५. वही, पृ० २४७

बला से निकल कर दूसरी बला में फंस जायेंगे, जो पहली से ज्यादा खतरनाक है ।"[1] इसके प्रत्युत्तर में किशोरीलाल ने भी मुसलमानों की धार्मिक कट्टरता का दृष्टान्त रखा कि मुसलमान हिन्दू को काफिर समझते हैं और गाय की कुर्बानी करते हैं । राजनीतिक मामलों में भी—'आप हिन्दुस्तान में पैदा हुये, हिन्दुस्तान के अन्न से पले, हिन्दुस्तान में रहते हैं, लेकिन आपकी मुल्की दिलचस्पी टर्की के साथ रहती है । अगर आज हिन्दुस्तान आजाद हो जावे और कल टर्की हिन्दुस्तान पर कब्जा जताने की नीयत से इस पर हमला करे तो क्या आप हिन्दुस्तान के साथ खड़े होकर हिन्दुस्तान को टर्की के पंजे से बचाने की कोशिश करेंगे ?'[2]

इसके उपरान्त कौशिक जी ने हिन्दू मुसलमानों की साम्प्रदायिक एकता की दृढ़ता के लिए धार्मिकता को बाधा नहीं समझा है, किशोरीलाल जी के शब्दों में उनका यह दृढ़ मत है कि यदि भारत के मुसलमान अपने को 'हिन्दुस्तानी' समझें, सभी मज़हबों में भ्रातृभाव की भावना हो, हिन्दुस्तान की हिफाजत के लिये कुर्बानी कर सकें तो हिन्दू भी उनके साथ बैठ कर खाना खाने लगें । अन्त में कौशिक जी ने गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हिन्दू मुसलमानों की एकता को मूर्त रूप में रखा है । किशोरीलाल बशीर अहमद को अपने तर्कों से लज्जित कर देते हैं, वह कुरान शरीफ को गवाह कर कसम खाता है कि आज से अपने को हिन्दुस्तानी समझेगा और उन तमाम बातों को मानेगा जो हिन्दुस्तानी के लिए मानना जरूरी है । किशोरीलाल जी ने भी खां साहब तथा बशीर अहमद के साथ बैठ कर भोजन किया । उस समय उन दोनों में न कोई हिन्दू था न मुसलमान, वरन् तीन हिन्दुस्तानी थे जो अपने हिन्दुस्तानी होने का प्रमाण कार्य रूप में दे रहे थे ।'[3] यही गांधी जी के आदर्श भारत का स्वप्न था, यही उनके रचनात्मक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन था, जिसकी पूर्ति इस कहानी में हुई है । हिन्दी-कथा साहित्य में भी साम्प्रदायिक एकता का स्तुत्य प्रयास है ।

हिन्दी-साहित्य में गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम की भी पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है । रचनात्मक कार्यक्रम साहित्यकारों की संवेदना का स्पर्श कर शुष्क एवं नीरस राष्ट्र-सुधार-कार्य मात्र नहीं रह गया था, अपितु सरस, भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक बन गया था । इस कार्यक्रम को साहित्य में प्रतिबिंबित करने के लिए इतिवृत्तात्मक शैली में प्रचारात्मक साहित्य की ही रचना नहीं हुई, वरन् कथा-साहित्य में मानव मनोवृत्ति के सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा शाश्वत एवं अनुभूतिपरक शुद्ध-साहित्य की रचना की गई । साहित्यिक परिधान से सुसज्जित होकर रचनात्मक कार्यक्रम युग-युग के लिए देश-जीवन को राष्ट्र-निर्माण की प्रेरणा देगा ।

१. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : कल्लोल : पृ० २५४
२. वही, पृ० २५४
३. वही : पृ० २५६

हिन्दी-साहित्य में स्वराज्य पार्टी के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति

असहयोग आन्दोलन की सफलता के पश्चात् कांग्रेस में स्वराज्य पार्टी का विशेष जोर था। वस्तुतः ये कांग्रेस से भिन्न न थे, केवल कौंसिलप्रवेश द्वारा वे शासकों के साम्राज्यवादी गढ़ को जीत लेना चाहते थे। अन्य सभी सिद्धान्तों में ये गांधी जी की नीति का अनुकरण करते थे।

स्वराज्यवादियों की कौंसिल-प्रवेश-नीति का केवल उल्लेख मात्र यत्र तत्र साहित्य में मिलता है, विशेष रूप से कथा-साहित्य में अधिकांशतः कवि गांधीवाद विचारधारा से प्रभावित थे। काव्य में स्वराज्यवादियों के कौंसिल-प्रवेश-नीति का वर्णन प्रायः नगण्य-सा है। प्रेमचन्द जी ने अवश्य अपने उपन्यासों तथा कहानियों में स्वराज्यवादियों की कुछ चर्चा की है, किन्तु प्रमुखतया उनकी असफलता पर ही प्रकाश डाला है। 'रंगभूमि' उपन्यास में डा० गंगोली स्वराज्य पार्टी से संबंधित हैं, और कौंसिल-प्रवेश द्वारा स्वराज्य के प्रश्न को हल करना चाहते हैं। इनके कार्यों का विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता केवल संकेत मात्र प्रेमचन्द जी ने किया है।

प्रेमचन्द जी ने 'कानूनी-कुमार' नामक संवादात्मक कहानी में कौंसिल में बिल प्रस्तुत कर देश-सुधार की नीति का उल्लेख किया है। प्रायः स्वराज्य पार्टी के अधिकांश नेतागण कानूनी-कुमार की भांति कौंसिल में बिल पेश कर यश और नाम अर्जित करने की महत्त्वाकांक्षा भी रखते थे। कानूनी-कुमार देश की दुर्दशाग्रस्त अवस्था पर सरकार द्वारा ध्यान न दिये जाने पर 'इसको कानून से रोकना चाहिए, नहीं तो अनर्थ हो जायगा' में विश्वास रखते थे।[1] देश के चारित्रिक पतन, नारियों की पिछड़ी अवस्था, भिखमंगों के बहिष्कार आदि से संबंधित बिल पास करने की योजना बनाते हैं। अन्त में प्रेमचन्द जी ने कानून द्वारा भारत की दशा के सुधार की निरर्थकता का वर्णन मिसेज कुमार द्वारा कराया है। गांधी जी ने कांग्रेस में स्वराज्यवादियों को कौंसिल प्रवेश तथा अड़ंगा नीति के संबंध में पूरी स्वतन्त्रता दे दी थी। असहयोग आन्दोलन स्थगित करने के पश्चात् कुछ वर्ष तक वे तटस्थ रूप से राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के रचनात्मक कार्य में लगे रहे थे। वे भली प्रकार यह जानते थे कि कानून अथवा कौंसिल प्रवेश की नीति द्वारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में सफलता नहीं मिल सकती। अतः प्रेमचन्द जी ने मिसेज कुमार के शब्दों में गांधी जी की नीति का ही समर्थन किया है—

'...मैं यह नहीं कहती कि सुधार जरूरी नहीं है। मैं भी शिक्षा का प्रचार चाहती हूं, मैं भी बाल-विवाह बंद करना चाहती हूं, मैं भी चाहती हूं, बीमारियां न फैलें, लेकिन कानून बना कर, जबर्दस्ती यह सुधार नहीं करना चाहती। लोगों में शिक्षा और जागृति फैलाओ, जिसमें कानूनी भय के बगैर यह सुधार हो जाय। आपसे कुरसी तो छोड़ी जाती नहीं, घर से निकला जाता नहीं, शहरों की विलासिता को एक दिन

---

१. ११ राजनैतिक कहानियां और समरयात्रा : पृ० १७

के लिए भी नहीं त्याग सकते और सुधार करने चले हैं आप देश का। इस तरह सुधार न होगा, हां, पराधीनता की बेड़ी और कठोर हो जायगी।''[1]

स्वराज्यवादियों को स्वयं अपनी भूल का ज्ञान हो गया था और साइमन-कमीशन आगमन काल में पुनः गांधी जी ने आन्दोलन का संचालन किया तथा इस दल की समाप्ति हो गई।

हिन्दी-साहित्य में समाजवादी राष्ट्रीय विचारधारा

श्रमिक-वर्ग के संगठन के साथ ही समाजवादी विचारधारा का प्रचार भी प्रारम्भ हो गया था। कांग्रेस के अन्तर्गत जवाहरलाल नेहरू एवं अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने, विशेषकर युवक वर्ग ने, समाजवाद को राष्ट्र के लिए हितकर मान कर, उसका समर्थन किया था। सन् १९३५ में कांग्रेस-संगठन के अन्तर्गत समाजवादी दल की स्थापना की गई थी। यह समाजवाद मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित था। रूसी-क्रान्ति के प्रभाव से देश अछूता नहीं बचा था। हिन्दी-साहित्य अपने युग की इस नवीन विचारधारा से विशेष रूप से प्रभावित हुआ। सन् १९३६ में 'प्रगतिशील संघ' की स्थापना हुई जिसके सभापति प्रेमचन्द जी थे।[2] अब साहित्य ने युगीन विचारधारा के अनुरूप नवीन मोड़ लिया, जिसमें यह प्रतिध्वनित किया गया कि समाज के वर्तमान दुःख क्लेश का तथा वैषम्य का कारण पूंजीवाद है। पूंजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन से ही वर्ग-गत स्वार्थों की समाप्ति हो सकती है। समाज और देश-जीवन में आमूल परिवर्तन के लिये क्रान्ति को आवश्यक माना गया। १९३७ ई० के पूर्व समाजवादी विचारधारा से अनुरंजित साहित्य अधिक नहीं मिलता। १९३७ ई० के उपरान्त, अवश्य समाजवादी साहित्य प्रचुर मात्रा में लिखा गया।

हिन्दी-कविता और समाजवाद

भारत में समाजवाद राष्ट्रवाद का सहायक था क्योंकि विदेशी साम्राज्यवाद पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित था, जिससे देश का अत्यधिक अहित हो रहा था। इस व्यवस्था ने राष्ट्र-जीवन को दो बड़े वर्गों में विभाजित कर दिया था—शोषक और शोषित। भारत की अधिकांश जनता श्रमिक एवं कृषक वर्ग की थी, अतः इस दलित वर्ग के उत्थान के लिए समाजवादी क्रान्ति अति अनुकूल थी। बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारीसिंह दिनकर, सुमित्रानन्दन पंत, नरेन्द्र शर्मा प्रभृति कवियों पर समाजवाद का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारीसिंह दिनकर और नरेन्द्र शर्मा ने असहाय दलित वर्ग के शोषण से विक्षुब्ध होकर विध्वंस, महानाश और प्रलय का साधन अपनाया है। निःसन्देह यह मार्क्स-सम्मत-समाजवादी विचारों का ही प्रभाव है। राष्ट्र के नवनिर्माण के आकांक्षी कवि 'नवीन' ने ऐसी

---

१. ११ राजनैतिक कहानियां और समरयात्रा : पृ० २८
२. विजयशंकर मल्ल : हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद : पृ० ३१

तान छेड़नी चाही थी जिससे उथल-पुथल हो जाती अथवा ऐसा अनल गान गाना चाहा था, जिससे नाश ही नहीं, महानाश हो जाता—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए
× × ×
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि-रव नभ में छाए,
नाश और सत्यानाशों का-धुआंधार जग में छा जाए,
बरसे आग, जलद जल जाए, भस्मसात भूधर हो जाएं,
× × ×
नाश ! नाश ! हो महानाश ! ! की प्रलयंकारी आंख खुल जाए,
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे अंग अंग झुलसाएं···।[१]

विदेशी साम्राज्य के अत्याचार, शोषण और राष्ट्र की दुर्गति देखकर कवि का क्रोधानल प्रलयंकारी हो जाता है। उन्होंने क्षणिक आवेश अथवा कोरी भावुकतावश क्रान्ति-आह्वान नहीं किया था, यह प्रलय का राग उनके हृदय के रक्त से लिखा गया था।[२]

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी वर्तमान के दुःख, दैन्य और दारुण कष्ट को मिटाने के लिए विध्वंस अथवा तांडव का आह्वान किया था—

कह दे शंकर से आज करें वे प्रलय नृत्य एक बार
सारे भारत में गूँज उठे हर-हर-बम का फिर महोच्चार।[३]

देश की सम्पूर्ण व्यवस्था को मिटाकर दिनकर जी ने उसे पुनः नवीन जीवन से स्पंदित करना चाहा था—

प्रभु ! तव पावन नील गगन-तल
विदलित अमित निरीह-निबल-दल
मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र-जन
आह ! सभ्यता आज कर रही
असहायों का शोणित शोषण
पूछो, साक्ष्य मरेंगे निश्चय, नभ के ग्रह-नक्षत्र-निकर
नाचो हे ! नाचो नटवर

कवि ने कविता को राजवाटिका छोड़ वन-फूलों की ओर मोड़ दिया था क्योंकि ग्राम, ग्राम-जीवन और कृषक-वृन्द ही राष्ट्र की विभूति हैं और समाजवाद दलित वर्ग को शोषण से विमुक्त करने में विश्वास रखता है। 'नवीन' जी की भाँति 'दिनकर' में भी पौरुष ओज और साहस का अभाव नहीं था। प्रो० कामेश्वर वर्मा ने दिनकर की

---

१. बालकृष्ण शर्मा नवीन : कुंकुम : पृ० ९ से ११
२. वही : पृ० १२
३. रामधारीसिंह दिनकर : हुंकार : पृ० ८

राष्ट्रीय-भावना को 'आतंकवादी, हिंसावादी और विध्वंसकारी' कहा है।[1] दिनकर के काव्य में विध्वंस का राग अवश्य अलापा गया है, लेकिन वे हिंसावादी नहीं हैं। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की साधना पद्धति में उनका विश्वास नहीं था। वे उसी अर्थ में क्रान्तिवादी अथवा आतंकवादी हैं जिस अर्थ में बालकृष्ण शर्मा नवीन। रूसी क्रान्ति अथवा खूनी क्रान्ति के पक्ष में वे नहीं थे। उनकी राष्ट्रीय भावना भी भारत के नवनिर्माण से अनुप्रेरित थी।

दिनकर और नवीन जी के काव्य में देश का उद्दीप्त यौवन पुकार रहा है। दोनों ही प्राणों को हथेली पर रखकर साम्राज्यवाद को भस्म कर देना चाहते थे। दोनों कवियों की राष्ट्रीयता का अधिक संबंध मानवता का कल्याण कर उसे सत्यं, शिवं, सुन्दरं के पथ पर ले जाता है। इनकी समाजवादी विचारधारा राष्ट्रीयता में साधक है। राष्ट्रवाद के विकास को क्रांतिवाद के योग से पूर्ण विकास प्राप्त हुआ था।

गांधीवादी राष्ट्रीय कवि सियारामशरण गुप्त भी अपने युग के ध्वंस राग से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे थे। उन्हें भी जीवन के लिए, नई सृष्टि के नवोल्लास के लिए, ध्वंस को आवश्यक माना था—

कुछ भी मूल्य नहीं जीवन का हो यदि उसके पास न ध्वंस;
ओ कृतान्त, हमको भी दे जा निज कृतान्तता का कुछ अंश।[2]

सुमित्रानन्दन पंत की 'युगान्त' के बाद की रचनाएं समाजवाद अथवा मार्क्सवादी भूतवाद की ओर मुड़ गई है। स्वयं कवि ने 'युगवाणी' के 'दृष्टिपात' में लिखा है कि इसमें मुख्यतः पांच प्रकार की विचारधारा मिलती हैं—(१) भूतवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय, जिसमें मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके। (२) समाज में प्रचलित जीवन की मान्यताओं का पर्यावलोकन एवं नवीन संस्कृति के उपकरणों का संग्रह, (३) पिछले युगों के उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ि रीतियों की तीव्र भर्त्सना जो आज मानवता के विकास में बाधक बन रही है, (४) मार्क्सवाद और फ्रायड के प्राणिशास्त्रीय मनोदर्शन का युग की विचारधारा पर प्रभाव, जन-समाज का पुनः संगठन एवं दलित लोक समुदाय का जीर्णोद्धार, (५) बहिर्जगत के साथ अंतर्जगत के संगठन की आवश्यकता। राग भावना का विकास तथा नारी जागरण पदार्थ। पदार्थ और चेतना को पंत जी ने दो विचारों के समान माना है—

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहां आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान।

---

१. प्रो० कामेश्वर वर्मा : दिग्भ्रमित राष्ट्र कवि : पृ० १६
२. सियारामशरण गुप्त : पाथेय : पृ० ११७

नहीं जानता युग विवर्त में होगा कितना धन क्षय
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय ।[1]

कवि ने गांधीवाद को साम्यवाद के सम्मिश्रण में राष्ट्र का कल्याण माना था। जग-जीवन से दैन्य, अभाव और परवशता मिटा कर मानवतावाद की स्थापना उनका इष्ट था।[2]

असहयोग आन्दोलनों की असफलता ने गांधी जी के सत्य अहिंसा के साधन द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति की आशा पर तुषारापात किया था। क्रान्तिवाद अथवा मार्क्स-सम्मत समाजवाद के प्रचार का यह कारण भी था। इसी कारण नरेन्द्र शर्मा ने लिखा था—

आओ, हथकड़ियां तड़का दूं, जागो रे नतशिर बन्दी !
उन निर्जीव शून्य श्वासों में आज फूंक दूं लो नवजीवन,
भर दूं उनमें तूफानों का, अगणित भूचालों का कंपन,
प्रलयवाहिनी हों, स्वतन्त्र हों, तेरी ये सांसें बन्दी ।[3] (१९३४)

मार्क्सवाद के अनुरूप नरेन्द्र शर्मा भी दैवी शक्ति की अपेक्षा, मानव की शक्ति में विश्वास रखते हैं—

व्यक्त रूप में हो असीम तुम, सृष्टि श्रेष्ठ ! तुम में असीम है,
निबल ! तुम्हारा बल तुम में है ज्यों तुम में जग-ज्योति लीन है,
उठो सूर्य-से चीर तिमिर को, उठो, उठो, नतशिर बन्दी ।[4]

वह महाप्रलय के वीर घोष से दलित वर्ग का उद्धार करना चाहते हैं—

भोगी की तम-निन्द्रा टूटे, योगी की समाधि हो क्षय,
शंख नाद में घोषित हो, कवि, एक बार न्यायी की जय !
त्याग-तप्त संतप्त अस्थियों का तुम विद्युत बज्र बना
उभड़ा दो निज ज्योति-ज्वाल से, वीर घोष के महाप्रलय ।[5]
(कृषिकों की अन्तरात्मा : कवि के प्रति—१९३५)

नरेन्द्र शर्मा के काव्य में 'नवीन' जी अथवा 'दिनकर' की भांति प्रबल ओज नहीं मिलता। नवीन जी क्रांतिवाद के अग्रदूत हैं। इन सभी कवियों ने राष्ट्रवाद के विकास में युग की विचारधारा का सामंजस्य किया है।

१. सुमित्रानंदन पंत : युगवाणी : पृ० १
२. वही : पृ० ४
३. नरेन्द्र शर्मा : प्रभात फेरी : पृ० १
४. नरेन्द्र शर्मा : प्रभात फेरी : पृ० ३
५. वही : पृ० १९

हिन्दी-नाटकों में समाजवादी विचारधारा

सेठ गोविन्ददास के नाटकों में गांधीवादी विचारधारा के साथ मार्क्सवादी विचारधारा का सम्मिलन हुआ है 'प्रकाश' नाटक के प्रारम्भ में ही लेखक ने इस ओर संकेत कर दिया है कि सत्याग्रह आन्दोलनों की असफलता के पश्चात् देश की सर्वेसर्वा कांग्रेस की स्थिति में परिवर्तन आ गया था। इसके अतिरिक्त अन्य देशों की भांति इस देश में भी आर्थिक प्रश्न की प्रधानता हो रही थी।[1] समाजवाद का मूलाधार ही मानव मात्र में अर्थ-साम्य की समस्या थी। प्रकाशचन्द्र नाटक का नायक है जिसे समाज के अन्तर्गत धनियों और निर्धनों, पठितों और अपठितों अथवा किसी भी कारण से उच्च स्थान रखने वालों और पतित व्यक्तियों का परस्पर भेदभाव अमान्य है।[2] वह धनिक वर्ग को संबोधित कर कहता है—'आप लोग अपने भाइयों पर हँसते हैं। महाशयौ ! यह हँसने की नहीं, गंभीरता से विचार करने की बात है। यदि मेरे इन भाइयों को अपनी पतित अवस्था का ज्ञान नहीं है, और इस अवस्था तक में ये आनन्द मनाते हैं, तो इसमें इनका दोष कम और आपका अधिक है। आज शताब्दियों से आपने ही इन्हें दबा कर रखा है, इनके हृदयों के स्वतन्त्र भावों को कुचला है।'[3] करोड़ों निर्धनों अथवा अपठितों में आ रही जागृति की ओर भी उसने संकेत किया है। पूंजी-वाद के अन्याय और अत्याचार का भी उल्लेख किया है। वह भी इसी पूंजीवादी साम्राज्यवाद रूपी चक्र-व्यूह का विध्वंस करना चाहता है।[4]

हिन्दी-कथा-साहित्य में समाजवाद की अभिव्यक्ति

प्रेमचन्द्र जी के 'कर्मभूमि' उपन्यास में ही समाजवाद के कुछ बीज बिखरे मिल जाते हैं जो 'गोदान' में पनप उठे हैं। प्रेमचन्द जी मूलतः गांधीवाद थे। गांधीवाद का समाजवाद से विरोध भी नहीं था क्योंकि दोनों ही सामाजिक विषमता के अवसाद को मिटा कर मानवतावाद की स्थापना में विश्वास रखते थे। केवल दोनों के साधन भिन्न थे। अतः गांधीवादी प्रेमचन्द का समाजवाद की ओर झुकाव भी अस्वाभाविक अथवा असंगत नहीं था। उनका यह परिवर्तन तो युग की परिवर्तित परिस्थितियों की स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में हुआ था। 'कर्मभूमि' उपन्यास में अमर बोझ उठा कर यह दिखाना चाहता है—'मैं मजूरी करके निबाह करना इससे कहीं अच्छा समझता हूं कि हराम की कमाई खाऊँ। तुम सब मोटी तोंदवाले हरामखोर हो, पक्के हरामखोर हो। तुम मुझे नीच समझते हो, इसलिए कि मैं अपनी पीठ पर बोझ लादे हुए हूं। क्या यह बोझ तुम्हारी अनीति और अधर्म के बोझ से ज्यादा लज्जास्पद है, जो तुम अपने सिर पर लादे फिरते हो और शर्माते जरा भी नहीं? उल्टे और घमंड

१. सेठ गोविन्ददास : प्रकाश : पृ० ११
२. सेठ गोविन्ददास : प्रकाश : पृ० १८
३. वही : पृ० १९
४. वही : पृ० २०

करते हो।[१] पूंजीवाद का विरोध प्रारम्भ हो गया था। सुखदा कहती है—'गरीब को तुम अब तक कुचलते आये हो, वही अब साँप बन कर तुम्हारे पैरों से लिपट जायेंगे।[१] इसी प्रकार अमर और ग्राम के चौधरी की बातचीत में बड़े छोटे से भेद पर विवाद होता है। वर्ग-भेद के प्रति ग्रामीण कृषकवर्ग सजग हो रहा था। इस जागृति के फलस्वरूप चौधरी को 'पूर्व जन्म के संस्कार' और 'कर्म के फल' पर विश्वास नहीं रह गया था।[३] आदर्शवाद के स्थान पर भूतवाद की प्रधानता हो रही थी।

'गोदान' में प्रेमचंद जी ने शिष्ट एवं शिक्षित जन के बीच समाजवाद पर विवाद कराया है। रायसाहब समाजवाद का विश्लेषण करते हुए कहते हैं—'बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु-महात्माओं के सामने इसीलिए सिर झुकाते हैं कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी, लेकिन सम्पत्ति किसी तरह नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है, लेकिन उसकी सम्पत्ति विष बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बगैर किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक तोड़ देना चाहते हैं।'[४] रायसाहब जैसे जमींदार भी समाजवाद जैसे विषयों पर विचार करने लगे थे। इस उपन्यास की मूल समस्या आर्थिक है। कृषक एवं श्रमिक वर्ग की आर्थिक विपन्नता का मार्मिक चित्रण कर प्रेमचन्द जी ने वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया है। निःसन्देह प्रेमचन्द जी इस उपन्यास के रचना-काल में समाजवाद से अत्यधिक प्रभावित हुए होंगे।

विश्वभरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में श्रमिक वर्ग के प्रति मिल मालिकों के अत्याचार, मजदूरों की हड़ताल आदि का उल्लेख मिलता है।[५] 'उद्धार' कहानी में लेखक ने मजदूरों की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए यह आवश्यक माना है कि उन्हें उनके परिश्रम का उचित मूल्य मिले।[६] कौशिक जी समाजवाद के सिद्धान्तों से पूर्ण प्रभावित दिखाई देते हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'वह चोर था' कहानी में गरीबों के प्रति सहानुभूति मिलती है।[७] उपेन्द्रनाथ अश्क की 'तीन सौ चौबीस' कहानी में पूंजीवादी सभ्यता पर कटु व्यंग्य कसा गया है।[८] यह भी समाजवाद का प्रभाव था,

१. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० १२१
२. प्रेमचन्द : कर्मभूमि : पृ० २५२
३. वही, पृ० १५१
४. प्रेमचन्द : गोदान : पृ० ५९-६०
५. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : चित्रशाला : पृ० २२
६. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : चित्रशाला : पृ० ३४
७. बेनीपुरी ग्रन्थावली : पृ० ४१
८. उपेन्द्रनाथ अश्क : पृ० ३१४

जो कहानीकारों का ध्यान देश की आर्थिक समस्या, उसके उत्पादन और वितरण की प्रक्रिया की ओर आकृष्ट कर रहा था।

जहां तक राष्ट्रीय हित की दृष्टि से, साहित्य में इस विचारधारा का आरोपण हुआ है, वहां तक इस साहित्य की राष्ट्रीयता में संदेह नहीं किया जा सकता। रूस के मार्क्सवाद के पिष्टपेषण में अवश्य राष्ट्रीयता की भावना अविच्छिन्न नहीं रह पाती। १९३७ ई० के पूर्व जो भी साहित्य समाजवादी विचारधारा से प्रभावित मिलता है, उसने सामाजिक भावना एवं राष्ट्रीयता के विकास में सहयोग देकर, देश में राष्ट्रवाद के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित किया था।

सशस्त्र क्रान्तिकारी-दल

भारत में राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील एक अन्य दल भी था, जिसकी देशभक्ति ने उसे हिंसात्मक साधनों के अवलम्ब के लिए बाध्य किया था। यह दल अत्यन्त सीमित था, इसे जनता का विशेष सहयोग भी प्राप्त नहीं हो सका था। किन्तु इसके साहस, धैर्य तथा कुशलता ने विदेशी सरकार को आतंकित कर दिया था। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल ने ब्रिटिश शासकों द्वारा किए गए अत्याचारों और अन्याय का बदला हिंसात्मक रीति द्वारा, ब्रिटिश सत्ता को मिटा कर लेना चाहा। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भ का ठीक समय निश्चित करना कठिन है। गदर के सयय से ही ब्रिटिश सत्ता को मिटा देने के लिए यह प्रवृत्ति कार्य कर रही थी। सन् १८९४ ई० में चाफेरकर बंधुओं ने 'हिंदु धर्म-संरक्षिणी सभा' बनाई, शिवाजी तथा गणपति उत्सव पर जिन श्लोकों का गान हुआ था, उनमें सशस्त्र राष्ट्रीय संग्राम का आह्वान तथा राष्ट्रीय युद्ध में प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा दी गई थी। अंग्रेजों का बहिष्कार ही नहीं, उनकी जीवन-लीला समाप्त कर देने का संदेश देशवासियों को दिया गया था।[1] 'शिवाजी-उत्सव' द्वारा अंग्रेज जाति के विरुद्ध विद्वेष का प्रचार किया गया। १८९७ ई० में पूना में ताऊन (प्लेग) का विशेष जोर था, तथा मि० रैण्ड ने कठोरता से बीमारी का दमन किया। इस संबंध में लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' में लिखा था कि सरकार बीमारी के बहाने से जनता की आत्मा कुचलना चाहती है, मि० रैण्ड अत्याचारी हैं और सरकार की आज्ञा से ऐसा कर रहे है।[2] पुलिस रिपोर्ट के अनुसार लोकमान्य तिलक ने श्रीमद्भगवत् गीता से उद्धरण देकर, भारतवासियों को हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा अंग्रेजी शासन से मुक्ति का संदेश दिया था। सन् १८९७ में महारानी विक्टोरिया के ६०वें राज्याभिषेक दिवस पर दामोदर चाफेरकर ने मि० रैण्ड की हत्या कर दी।[3] अंग्रेजी शासक वर्ग अधिक सतर्क हुआ, उसकी दमन नीति अधिक कठोर हुई। श्री लोकमान्य तिलक को तार्किक रूप से राजनीतिक हत्या के समर्थन के अपराध में कारावास का दण्ड मिला।

---

१. मन्मथनाथ गुप्त: भारतमें सशस्त्र क्रान्ति चेष्टाका रोमांचकारी इतिहास :पृ० १७

२. वही, पृ० १९

३. वही, पृ० २१

श्यामजी वर्मा ने १९०५ ई० में 'इंडिया होमरूल सोसाइटी' नामक सभा की स्थापना की। इसका उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना, उसके लिए इंगलैंड में जनमत जाग्रत करना तथा वहां के भारतीय स्नातकों में स्वतन्त्रता की भावना भरना था। इंगलैंड में 'भारतीय भवन' सच्चे देशभक्तों का विशेष स्थान था जिसमें 'गदर दिवस' मनाया गया और सभाओं में गुप्त हत्या के लिए उत्तेजित किया गया था। इसमें बम बनाने के मसालों पर वक्तृता दी जाती थी।[1] विनायक दामोदर सावरकर इंगलैंड और तत्पश्चात् पेरिस गए और वहां राजद्रोहात्मक बातें छापीं, जिनके पर्चे भारत आया करते थे, तथा भारत में सशस्त्र क्रान्ति की प्रवृत्ति को उभारने में सहायक होते थे। सन् १९०९ में लन्दन में धींगरा ने पिस्तौल से लार्ड कर्जन को समाप्त कर दिया।[2] गणेश सावरकर भारत में क्रान्तिकारी दल का संगठन कर रहे थे। १९०८में उन्हें 'लघु अभिनव भारत-मेला' नाम से कुछ उत्तेजित करने वाली देशभक्तिपूर्ण कविताओं के प्रकाशन के कारण काले पानी की सजा मिली। विदेशों से भारत शस्त्र भेजने का कार्य भी चल रहा था। औरंगाबाद में २१ दिसम्बर १९०९ को मिस्टर जैक्सन को गोली मार दी गई।

नासिक तथा ग्वालियर में षड्यन्त्र किए गए। सन् १९१२ में दिल्ली में लार्ड हार्डिग पर बम फैंका गया। यद्यपि प्रारम्भ में बंगाल में इस क्रान्तिकारी दल का विशेष जोर था, किन्तु संयुक्त प्रान्त, महाराष्ट्र और पंजाब में भी इस दल ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सन् १९०७ में इलाहाबाद शहर में विप्लव का कार्य प्रारम्भ हुआ। बनारस में १९०८ में शचीन्द्र नामक युवक ने 'अनुशीलन समिति' द्वारा यह कार्य आरम्भ किया।[3] इन हिंसात्मक क्रान्तिकारियों को ब्रिटेश शासकों ने कठोर से कठोर दंड दिया किन्तु इनका कार्य बढ़ता गया गया। श्री रासबिहारी बोष तथा लाला हरदयाल का दल समय-समय पर विप्लव की चिंगारियां छोड़ता रहा। सम्पूर्ण देश में इस दल के अड्डे थे तथा विदेशों में भी इनकी संस्थाएं थीं। लाला हरद्रयाल ने अमेरिका में 'गदर' नाम का पत्र निकाला था। पंजाब में विदेशों से लौटे सिक्खों ने जिनमें बाबा गुरुदत्त का नाम विशेष महत्व रखता है, इस विद्रोह में सहयोग दिया। सन् १९१४ में विष्णु पिंगले नामक एक महाराष्ट्री युवक ने पंजाब जाकर बंगाल के षड्यन्त्रकारियों से सहयोग स्थापित किया। पंजाब में क्रान्तिकारियों की एक सभा बनाई गई, जिसमें सरकारी खजाना लूटने, भारतीय सैनिकों में विद्रोह का प्रचार तथा हथियार संग्रह के लिए डकैती की योजनाएं बनाई गई थीं। इन लोगों ने फिरोजपुर में सरकारी खजाना लूटने, ९ डाके तथा ६ बार रेल उलटने का उद्योग किया था। सरकार के जासूसों को इनका पता लगते ही इनके अड्डों पर धावा बोल इन्हें नजर-

१. मन्मथनाथ गुप्त: भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास:पृ० २६
२. वही, पृ० ३०
३. पंडित शंकरलाल तिवारी बेढ़व : भारत सन् १९५७ के बाद : पृ० ९२

बन्द कर दिया गया।[1] १९१५ में जर्मनी से मार्टिन वेषधारी युवक ने जर्मनी से एक जहाज में ३००० राइफलें, प्रत्येक वन्दूक के लिए ८०० के हिसाब से कारतूस व दो लाख रुपये नकद भेजे किंतु सरकार ने उनकी आशा विफल कर दी।

अतः १९२० ई० के पूर्व ही भारत में सशस्त्र क्रान्ति की ज्वाला प्रज्ज्वलित हो गई थी, जिनसे साधारण जनता की राष्ट्रीय चेतना की जागृति में सहयोग मिलता रहता था, यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति का यह साधन उनकी नैतिकता तथा मानवता के विपरीत था। इस हिंसात्मक क्रान्ति को 'रूसी क्रान्ति' से विशेष प्रेरणा मिली थी। श्री मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक में लिखा है :-

'यह कह देना आवश्यक है कि इन अलमस्तों का हमारी राष्ट्रीय सुषुप्त चेतना पर गहरा असर पड़ा, और राष्ट्रीय मनोजगत् में इसकी बहुमुखी प्रतिक्रिया हुई।'[2]

सन् १९२०-२२ में गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन का देशव्यापी प्रचार किया। किन्तु संयुक्त प्रान्त में घटित चौरी चौरा की हिंसात्मक प्रवृत्ति से उन्हें दुःख हुआ और उन्होंने असहयोग आन्दोलन भंग कर दिया। गांधी जी हिंसात्मक क्रान्ति को अमानुषिक, बर्बर एवं नृशंस मानते थे। असहयोग आन्दोलन की समाप्ति ने विप्लववाद के अनुकूल वातावरण का निर्माण किया क्योंकि अहिंसा द्वारा स्वराज्य प्राप्ति की आशा निराशा में परिणित हो चुकी थी। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल का कार्य पुनः वेग से प्रारम्भ हो गया। ३ अगस्त सन् १९२३ ई० को कलकत्ते के शाखारी-टोला से पोस्ट आफिस को लूटने का प्रयास हुआ तथा कुछ प्राप्ति न होने पर वहां के पोस्ट मास्टर की हत्या की गई। इस पर नरेन्द्र नामक युवक को आजीवन काले पानी का दण्ड मिला।[3]

इस प्रसंग में काकौरी षड्यन्त्र अत्यधिक प्रसिद्ध है, जिसका मुख्य उद्देश्य था क्रान्ति की अग्नि भड़काने के लिए धन की प्राप्ति। इसका विशेष संबंध हिन्दी-प्रदेश से था।

'असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद क्रांतिकारियों ने फिर सिर उठाया। बनारस षड्यन्त्र के बाद श्री शचीन्द्र ने फिर एक नवीन दल की स्थापना की। इसका केन्द्र स्थान लखनऊ रखा गया। श्री शचीन्द्र ने इस दल में बहुत से युवक भरती किए। इस दल का मुख्य उद्देश्य था धन की प्राप्ति, जिससे क्रान्ति की आग जोरों से भड़काई जा सके।'[4] ९ अगस्त सन् १९२५ ई० को अवध-रुहेलखंड रेलवे के काकोरी स्टेशन पर गाड़ी रोक कर खजाना लूट लिया गया। इस षड्यन्त्र का भेद खुलने पर रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, श्री रोशनसिंह तथा अशफाक उल्ला

१. पंडित शंकरलाल तिवारी 'बेढ़ब' : भारत सन् १९५७ के बाद : पृ० १००
२. मन्मथनाथ गुप्तः भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहासः पृ० ३३
३. पण्डित शंकरलाल तिवारी 'बेढ़ब' : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० ८९
४. वही, पृ० १०४

खां आदि शहीद हो गए थे।[1] इसके मुखिया थे चन्द्रशेखर आज़ाद किन्तु वे फरार हो गए।

सन् १९३० ई० में यह विप्लव अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया था। २५ अगस्त सन् १९३० को कलकत्ते में पुलिस कमिश्नर पर दो बम फैंके गए किन्तु वे बच गए। इस प्रकार की अन्य घटनाएं भी वहां घटीं। दिल्लीं में 'दिल्ली क्रान्तिकारी दल' का संगठन किया गया जिसका प्रारम्भ सन् १९२३ के पहले ही हो चुका था। इस दल के संगठनकर्ता शैलेन्द्रनाथ चक्रवर्ती थे। इसने अपने कार्यकर्ताओं द्वारा विभिन्न प्रान्तों में क्रान्तिकारी साहित्य द्वारा सशस्त्र क्रान्ति-आन्दोलन का प्रचार किया।

अब यह दल बम बनाने लगा था तथा बम बनाने की छोटी छोटी फैक्टरियां भी स्थापित हो गई थीं। धन की आवश्यकता के लिए ये सरकारी खजाने लूटते थे तथा ट्रेन उड़ाते थे। दिल्ली दल के प्रसिद्ध सशस्त्र क्रान्तिकारी थे चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, कैलाश व राजगुरु। ये सभी नवयुवक थे। इन लोगों ने कांग्रेस अहिंसात्मक आन्दोलन के विरोध में भी एक पर्चा निकाला था। इन्होंने सांडर्स की हत्या की योजना बनाई तथा अपनी योजना की पूर्णता के निमित्त ट्रेन उड़ाने का प्रबंध किया। किन्तु उनके दल के कुछ विश्वासघातियों के कारण उनका षड्यन्त्र असफल हुआ।

'दिल्ली षड्यन्त्रकारियों के पास धन का बहुत अभाव था। साथ ही उनका संगठन छिन्न-भिन्न था। दल के सभी व्यक्तियों पर पुलिस का ज्यादा सन्देह था और प्रत्येक व्यक्ति की कार्य शैली पर पुलिस की काफी निगरानी रहती थी। षड्यन्त्रकारियों में अधिकतर युवक ही थे, जिन्हें इस बात का पता ही न था, कि हमारे दल के भीतर ही ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं, जो प्रति मिनट की खबर सरकार को देते हैं। इसी से प्रायः सभी षड्यन्त्र फेल हो गए। नवजवानों ने अपनी हस्तियाँ विश्वासघातियों के जरिए फना कर दीं।'[2] भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दी गई।

इन लोगों ने नेशनल बैंक की डकैती की, वाइसराय की हत्या का प्रयत्न किया, खानबहादुर अब्दुल अज़ीज तथा सरकारी वकीलों के मारने का प्रयास किया। मि० सांडर्स की हत्या चन्द्रशेखर आजाद की गोली से हुई क्योंकि उन्होंने भगतसिंह आदि को फाँसी की अन्तिम आज्ञा दी थी। अन्त में प्रयाग की भूमि चन्द्रशेखर आजाद के रक्त से पवित्र हुई। देश की स्वतन्त्रता के लिए बलि होने वाले इन क्रान्तिकारी शहीदों की वीरता तथा साहसपूर्ण त्याग का विशेष आदर एवं सम्मान हुआ। इनकी राष्ट्रीय भावना जनता पर अपनी अमिट एवं स्थायी छाप छोड़ गई। चन्द्रशेखर आज़ाद की लाश के उठते ही उनके रक्त से लाल मिट्टी तक लोग उठा ले गये थे—'लाश के जाते ही लोग उसके खून से सनी हुई मिट्टी लेने के लिये टूट पड़े और जिसे जितनी मिली उठा ले ग़ए। + + + आज़ाद की लाश लोगों को नहीं दी गई

---

१. पंडित शंकरलाल तिवारी बेढ़ब : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० १०४

२. वही, पृ० १५२

इसलिए उनकी अस्थियों का बड़ा भारी जलूस निकाला गया। पुरुषोत्तमदास पार्क में एक विराट-सभा की गई, जिसमें कमला नेहरू, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि के जोरदार व्याख्यान हुए।'[1] यद्यपि गाँधीजी भारतीय नवयुवकों के लिए इस मार्ग का अनुसरण देश के हित के लिए घातक समझते थे, किन्तु उन्होंने भी इन विप्लवकारियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की सरकार की दमनकारी नीति तथा भगतसिंह आदि के बलिदान से भारतीय जनता में, विशेषकर शिक्षित भारतीयों में असन्तोष तथा विदेशी शासकों के प्रति आक्रोश की भावना अधिक प्रबल हो गई। इस दल का संगठन टूटने की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ हो गया।

कलकत्ते में क्रांति के काले मेघ अधिक सघन हो गए थे। हत्याओं, गिरफ्तारियों, फाँसी, निर्वासन, नजरबन्दियों की बाढ़ आ गई थी। सरकार का दमनचक्र तीव्र था तथा क्रांतिकारी दल का हिंसात्मक कार्यक्रम अपने पूर्ण उत्साह पर। सशस्त्र एवं हिंसात्मक क्रान्ति में केवल पुरुषों ने ही सहयोग नहीं दिया था वरन भारतीय नारियों, विशेषकर बंगाल की कतिपय प्रतिष्ठित महिलाओं ने, इस दल के कार्य को साहसपूर्ण सुचारु रूप से किया। ये स्त्रियाँ शस्त्र का प्रयोग भलीभाँति जानती थीं। एक स्थान से दूसरे स्थान पर इस दल का संवाद पहुंचने का कार्य प्रायः स्त्रियों द्वारा लिया जाता था। बनारस बम केस में तीन बंगाली स्त्रियां थीं तथा मेरठ षड्यन्त्र केस में क्रान्तिकारियों की धन द्वारा सहायता भी स्त्रियों द्वारा की गई थी।

सशस्त्र क्रांतिकारी दल की राष्ट्रीयता का स्वरूप

सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की राष्ट्रीयता का मूलाधार मानव की हिंसात्मक पशु प्रवृत्ति थी। आदिकाल में जब मानव असभ्य तथा बर्बर अवस्था में था वह हिंसा द्वारा अपने अधिकारों की प्राप्ति तथा उनका विकास करता था। इसी आदिम पद्धति को इस दल के राष्ट्रवादी नेताओं ने स्वीकार किया था। अपने देश की विदेशी आक्रान्ताओं से रक्षा तथा उसकी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए शस्त्र का सहारा लेकर विदेशी शासकों तथा वासना के बन्धन में जकड़ने वाली प्रत्येक कड़ी को मिटा डालने में इन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं होता था। अतः सशस्त्र कांतिकारी दल की राष्ट्रीयता हिंसात्मक तथा क्रूर थी।

इस दल विशेष के सदस्यों ने अपना कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए भिन्न भिन्न स्थानों पर गुप्त रूप से अपने अड्डे बना रखे थे तथा इनका कार्यक्रम निश्चित तथा गुप्त रीति से होता था। नायक के आदेश का पालन इस दल के प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य था तथा उसका उल्लंघन मृत्युदंड होता था।

इस दल की राष्ट्रीयता के कार्यक्रम में विदेशी शासकों तथा विदेशी शासन में योग देने वाले व्यक्तियों की हत्या को प्रमुखता दी गई थी। दल के कार्य को सुविधा-

१. पंडित शंकरलाल तिवारी बेढ़ब : भारत सन् ५७ के बाद : पृ० १९७

पूर्वक तथा सुचारु रूप से चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती थी। इस धन को एकत्रित करने के लिए ये सरकारी खजानों तथा बैंकों को लूटते थे। रेलगाड़ियों को रोककर उन्हें लूटना इनके अतीव साहस का परिचय देता है।

सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की राष्ट्रीयता का विशेष उद्देश्य था विदेशी शासकों तथा नौकरशाही को हत्या द्वारा आतंकित करना, जिससे वह भयभीत हो इस देश को मुक्त कर दें। अपने साहसपूर्ण हिंसात्मक कृत्यों द्वारा उसने भारतीयों की वीरता तथा साहस का परिचय दिया।

साधारण जनता ने इनकी वीरता तथा साहस की मुक्तकंठ से प्रशंसा की किंतु वह अपना सहयोग न दे सकती थी। चन्द्रशेखर आज़ाद की मृत्यु पर जनता ने उनके प्रति जो अपनी श्रद्धा एवं अपनी संवेदना प्रकट की, उससे यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि इस दल की क्रूरता की ओट में जो देशभक्ति और राष्ट्रीयता छिपी हुई थी, उसका देश ने आदर किया था। विदेशी शासक भी इनके साहस को देखकर आश्चर्यान्वित रह गए थे, क्योंकि ये स्वतन्त्रता के अलमस्त पुजारी फाँसी की वेदी पर हँसते-हँसते बलि हो जाते थे। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की शृंखला को खोलने में इस दल का भी महत्त्वपूर्ण योग था। इन्होंने अपने साहस से विदेशी शासकों को आतंकित कर दिया था।

'गीता' इनका पवित्र धर्म ग्रन्थ था तथा गीता के उपदेश को ही इन्होंने अपना ध्येय बनाया था।

सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की राष्ट्रीयता का हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव

सशस्त्र क्रांतिकारी दल का इतिहास तथा उसकी राष्ट्रीयता के स्वरूप का विवेचन किया जा चुका है। अतः यह स्पष्ट है कि भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो संघर्ष चल रहा था, उसके दो भिन्न मार्ग थे—अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल के अतिरिक्त जितने भी दल थे, उन सभी का विश्वास देश को गाँधीजी द्वारा प्रदत्त सत्य तथा अहिंसा से मुक्त करने में था। सशस्त्र क्रान्तिकारी दल के राष्ट्रीय नेता अथवा नायक उसके विपरीत हिंसा का सहारा ले रहे थे। साहित्यकार स्वभाव से ही शान्तिप्रिय तथा ब्राह्मण प्रवृति के होते हैं, अतः उनकी कलात्मक प्रतिभा का सामंजस्य इस दल की विचारधारा, कार्यप्रणाली तथा सिद्धान्तों से नहीं हो सकती थी। अधिकाँश हिन्दी-साहित्य प्रणेताओं की विशेष श्रद्धा, विचारधारा का सामंजस्य तथा विश्वास अहिंसात्मक पद्धति तथा महात्मा गांधी के साथ रहा। हिंसा की प्रणाली के प्रति वे संवेदनशील न हो सके। हिन्दी-साहित्य में इस दल के कार्य-क्रम, घटनाओं तथा उद्देश्य की चर्चा तथा उनके साहस के प्रति प्रशंसा का भाव मिलता है।

काव्य

काव्य क्षेत्र में श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय महात्मा गांधी के अहिंसात्मक मार्ग से अधिक संतुष्ट नहीं हैं। उनकी राष्ट्रीयता गाँधीजी की भाँति उदार एवं अहिंसात्मक

भी नहीं है, वह प्रतिहिंसात्मक है तथा मानव की शारीरिक शक्ति में अधिक विश्वास करती दिखाई पड़ती है—

पाजियों को गाल क्यों दें मारने । सामने दुख फिरकियाँ फिरती रहें ।।
जिस तरह हो चीर देंगे गाल हम । चिर गई तो उंगलियाँ चिरती रहें ।।[1]

वे साहस तथा पौरुष में सभी कार्यों की सिद्धि मानते थे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समान वे देशवासियों द्वारा मिलकर आँसू बहाने की अपेक्षा रणक्षेत्र में संघर्ष करने का संदेश देते हैं—

सब दिनों मुँह देख जीवट का जिये । लात अब कायरपने की क्यों सहें ।।
क्यों न बैरी को विपद में डाल दें । हम भला क्यों डालते आंसू रहें ।।[2]

उन्हें यह सह्य नहीं है कि भारतवासी मौन रूप से दासता के अत्याचार सहन कर लें। 'हरिऔध' जी की प्रतिहिंसा की भावना पर प्राचीन क्षात्र धर्म (महाभारत, गीता आदि) के विचारों का प्रभाव था। निःसंदेह क्रान्तिकारी दल ने भी 'गीता' की युद्ध नीति तथा हिंसात्मक संघर्ष का आह्वान किया था। 'हरिऔध' जी का सशस्त्र क्रान्तिकारी दल से सीधा संबन्ध न होने पर भी अप्रत्यक्ष रूप से इस दल की हिंसात्मक नीति का कुछ अंशों में प्रभाव पड़ा होगा। इसके अतिरिक्त देश के अन्तर में प्रतिहिंसा की ज्वाला जल रही थी, वह अपने अक्रांताओं को मिटाकर, अपना हृदय शीतल करना चाहता था, इसी कारण गाँधी जी के अथक प्रयत्न के उपरांत भी युक्त-प्रान्त में चौरीचौरा की हिंसात्मक घटना घट गई थी। हिन्दी कविता के क्षेत्र में अन्य कवि अवश्य अहिंसावादी हैं लेकिन 'हरिऔध' जी की विचाराधारा उनके कुछ विपरीत अथवा प्रतिकूल है।

कथा-साहित्य

हिन्दी कथा साहित्य में इस दल की कार्य-प्रणाली, घटनाओं तथा उद्दश्य आदि का वर्णन मिलता है। राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए, यह दल निरन्तर क्रियाशील था।। प्रेमचन्द जी ने 'रंगभूमि' उपन्यास में इस दल की ओर भी इंगित किया है। 'रंगभूमि' राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें उस समय की प्रमुख राष्ट्रीय संस्था कांग्रस तथा गांधी जी के नेतृत्त्व में संचालित अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का विस्तृत वर्णन मिलता है। लेखक के गाँधीवादी विचारधारा तथा अहिंसात्मक आन्दोलन से अत्यधिक प्रभावित होने पर भी राष्ट्रीय संग्राम की हिंसात्मक पद्धति को विस्मृत नहीं किया है। वीरपालसिंह क्रान्तिकारी दल की पद्धति का प्रतिनिधित्त्व करता है। डाकू के वेश में ये राष्ट्रभक्त अधिक क्रूर बन गये थे। रक्तपात द्वारा शोषित जनता की सहायता तथा उनके प्रति पूर्ण सहानुभूति इनका ध्येय था। विदेशी शासक वर्ग के प्रति इनमें प्रतिशोध की प्रवल भावना थी। सोफ़िया को इस दल ने

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : चुभते चौपदे : पृ० ८
२. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध : चुभते चौपदे : पृ० १०

आश्रय दिया था। विनयसिंह के राष्ट्रीय मार्ग से भटक जाने पर वीरपालसिंह के साथी उसके रक्त के प्यासे हो गए थे। डाके डालना, सरकारी खजाने लूटना, आततायियों का विनाश करना, इनका साधन था। इस उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने इन सबका उल्लेख तो अवश्य किया है किन्तु सांकेतिक रूप में, तथा उनकी विशेष सहानुभूति भी इस दल के साथ लक्षित नहीं होती।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के उपन्यास 'अप्सरा' में भी क्रान्तिकारी दल का थोड़ा सा उल्लेख मिल जाता है। चन्दन, एक राजकुमार का मित्र है जिसे लखनऊ षड्यन्त्र के मामले में गिरफ्तार कर लिया जाता है। राजकुमार को यह समाचार पत्र द्वारा ज्ञात होता है।[1] वास्तव में चन्दनसिंह क्रान्तिकारी नहीं हैं, केवल किसानों का संगठन कर रहे थे।[2] उस समय स्वतन्त्रता की शिक्षा देने वाली फ्रांस, रूस, चीन, अमेरिका, भारत, मिश्र, इगलैंड की विप्लवात्मक पुस्तकों को रखना भी अपराध था। इसका संकेत भी इस उपन्यास में मिल जाता है।[3] राजकुमार, चन्दनसिंह के घर से इन पुस्तकों को निकाल कर अपने घर ले आता है। अन्त में इन पुस्तकों के आधार पर ही चन्दनसिंह को गिरफ्तार कर लिया जाता है। निराला जी ने इन राजनीतिक प्रसंगों का उल्लेख सोद्देश्य नहीं किया है जैसा कि उन्होंने वक्तव्य में स्वयं ही कह दिया है।

प्रेमचन्द के पश्चात् जैनेन्द्र कुमार ने अपने उपन्यास 'सुनीता' में क्रान्तिकारी दल की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। इस उपन्यास का नायक हरि प्रसन्न क्रान्तिकारी दल का सदस्य है। सुनीता उसके मित्र की पत्नी है। वह गृहिणी सुनीता को क्रांतिकारी दल की प्रेरणादायिनी शक्ति बना देना चाहता है—'हरि प्रसन्न के मन में आज एकाएक नया विचार उदय हो आया मानो जिसको सुदूर से अनुभव करता था, आज वह प्रत्यक्ष हुआ है। यह सुनीता आज घर में है, गृहणी है। वह रण में रणदेवी क्यों न बने? पौरुष कहाँ से साहस लेता है? युवकों में कहाँ से स्फूर्ति भरनी होगी? वे कहाँ से मद पायेंगे? जीवन की स्पृहा उनमें कैसे जागेगी? उसके लिए एक नारी की आवश्यकता है। हां नारी। वह देवी हो, वह चण्डी हो, वह माया हो। कर्त्तव्यों में से नहीं आयगा उल्लास, उल्लास जागेगा माया के आकर्षण में से। माया योग्य नहीं है, माया मरीचिका है।...वह मायामयी नारी घर में ही क्यों—वह वृहत्क्षेत्र में क्यों नहीं? वह भाभी ही क्यों? अरे वह ध्वजाधारिणी क्यों नहीं?'[4] दुर्भाग्यवश जैनेन्द्रकुमार का नायक अति दुर्बल है। नैतिकता की जिस दृढ़ आधारशिला पर इस दल की राष्ट्रीयता की स्थापना

१. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : अप्सरा : पृ० ८७
२. वही : पृ० ९७
३. वही, पृ० ९९
४. जैनेन्द्रकुमार : सुनीता : पृ० १३५-१३६

की गई थी, हिंसा एवं क्रूरता जिसका साधन था, उसकी राष्ट्रीयता पर मानव प्रकृति की दुर्बलता विजय पा जाती है। सुनीता को दल की रानी बनाने की अपेक्षा, वह अपनी प्रेम भावना अथवा वासना की तृप्ति का साधन बनाना चाहता है, खतरे की लाल रोशनी देखकर उसमें कूदने की अपेक्षा नारी में अपनी निर्बलता का बहाना ढूंढता है—'तुम जानती हो, अकेला होता तो अब क्या करता ? वहां संकट है। उस संकट के मुंह को जाकर मैं पकड़ता। लेकिन आज तो मैं उधर ताकता दूर खड़ा हूं। मैं कुछ भी नहीं कर सकता।

और उसी भांति एकाएक झुक कर अपने हाथ से सुनीता की ठोडी ऊपर उठा कर बोला—'क्यों? क्योंकि मैं अकेला नहीं हूं और प्रेम आदमी को निर्बल बना देता है।'[1]

राष्ट्रीयता के पथ पर मृत्यु का आलिंगन करने वाले वीर का नारी के प्रेम में लक्ष्य-भ्रष्ट हो जाना, प्रेम में सत्य पथ को भुला देना, क्रान्तिकारी दल के सदस्य के लिए अनुचित लगता है। मानव-मनोविज्ञान की दृष्टि से यह उचित ठहर सकता है किन्तु राष्ट्रवाद की दृष्टि से अहितकर एवं संघातक है। यह वह युग था जब चन्द्र शेखर आजाद, भगतसिंह जैसे वीर क्रान्तिकारी युवक परिवार और जीवन का मोह त्याग कर राष्ट्र की वेदी पर हंसते-हंसते अपने प्राणों की बलि दे रहे थे। इस दल के नियम इतने कठोर थे, तथा राष्ट्रीय भावना इतनी प्रबल थी कि उसमें मानवीय दुर्बलता का अधिक अवकाश ही नहीं था। इस उपन्यास में क्रान्तिकारी दल का लक्ष्य भ्रष्ट होकर रह गया है। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक की इस दल के साथ सहानुभूति अवश्य थी, इसी कारण उन्होंने उपन्यास के नायक को क्रान्तिकारी दल का सदस्य दिखाया है। सुनीता पातिव्रत की अवहेलना कर हरिप्रसन्न के पथ का अनुगमन करने तथा उसे अपना सर्वस्व समर्पण करने को तत्पर हो जाती है तथा अन्त में हरी दुर्बलता को दबा सदैव के लिए मृत्यु के पथ का राही बनने चला जाता है, यह भी इसकी पुष्टि करता है। क्रान्तिवाद अथवा इसके साधनों, घटनाओं, गुप्त सभाओं आदि का विवेचन उपन्यास में नहीं मिलता। अतः उपन्यास का लक्ष्य क्रान्तिवाद की अपेक्षा मानव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषणमात्र है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कुछ कहानियों में इस दल के नीति कार्य-प्रणाली तथा राष्ट्रवादिता का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। 'खूनी' तथा 'क्रान्तिकारिणी' कहानियों का सम्बन्ध इस दल विशेष से है। आचार्य जी ने इन कहानियों में क्रान्तिवाद के सिद्धान्त, उद्देश्य, साधन आदि का विस्तार से विवेचन किया है। 'उन्होंने सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की क्रूरता, कठोरता, नियमबद्धता आदि का दृश्य अंकित किया है। किस प्रकार इस दल की गुप्त सभाएं हुआ करती थीं तथा नायक का आदेश निर्विवाद रूप से सदस्यों को मान्य होता था, किसी प्रकार के तर्क अथवा रहस्योद्घाटन

१. जैनेन्द्रकुमार : सुनीता, पृ० १८०

का दण्ड 'मृत्यु' था, तथा 'गीता' इनका प्रमुख धर्मग्रन्थ था,' इन सब बातों का उल्लेख 'खूनी' कहानी में मिलता है ।[1] यह दल विदेशी सरकार के साथ, अपने हत्या संबंधी षड्यन्त्रों के विरोधियों को भी मिटाना अपना कर्त्तव्य समझता था । इसी कारण 'खूनी' कहानी में गांव के जमीदार के इकलौते बेटे को सरकारी मुखबिर होने के संदेह में नायक के आदेश पर मौत के घाट उतार दिया गया ।[2] क्रान्तिकारी आन्दोलन में नारियों ने भी अत्यधिक सजगता एवं सचेतना से कार्य किया था । उनमें बुद्धि, चातुर्य एवं निःशंकता थी । 'क्रान्तिकारिणी' कहानी में, मेरठ षड्यन्त्र केश में व्यय करने के लिए जिस कौशल एवं साहस के साथ अभियुक्तों के मुकदमे के लिए महिला द्वारा रुपया भेजा जाता है, वह रोचक, एवं प्रशंसनीय है । क्रान्तिकारी आन्दोलन में स्त्रियों ने भाग लिया था, दल के कार्य को सुचारु रूप से चलाया था, उसी का यथार्थ चित्रण इसमें किया गया है । जैनेन्द्रकुमार की 'सुनीता' का नायक नारी के जिस चण्डी रूप की इच्छा रखता है उसी का मूर्त रूप आचार्य जी की क्रान्तिकारिणी कहानी में मिलता है । पाठकों की जिज्ञासा, उनका कुतूहल अन्त तक बना रहता है तथा अन्त में वह क्रांतिकारिणी तथा वकील साहब दोनों के बुद्धि चातुर्य पर मुग्ध हो जाता है । पुलिस दरोगा और डिप्टी इन्स्पेक्टर अपना मुंह लेकर रह जाते हैं तो पाठकों की जिज्ञासा हर्ष में परिणत हो जाती है ।

आचार्य जी ने क्रान्तिकारी दल, उसकी कार्य-प्रणाली, उनके साहस का पाठकों को विस्तृत परिचय दिया है किन्तु इस दल के साधन के प्रति अपनी घृणा को भी उन्होंने स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त कर दिया है । 'खूनी' कहानी में उन्होंने अन्त में लिखा है :—

'अब मैं रो उठा । मैंने कहा—मुझे मेरे वचन फेर दो, मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त करो, मैं उसी के समुदाय का हूं । तुम लोगों में नंगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मर्दानगी न हो तो तुम अपने को देशभक्त कहने में संकोच करो । तुम्हारी इन कायर हत्याओं से मैं घृणा करता हूं । मैं हत्यारों का साथी सलाही और मित्र नहीं रह सकता तुम तेरहवीं कुर्सी को जला दो ।'[3]

लेखक की आत्मा को अनीतिपूर्ण उपाय से स्वतन्त्रता प्राप्ति इष्ट नहीं थी, उन्हें गांधी जी का आत्म बलिदान का ही मार्ग अधिक मान्य था किन्तु इस दल के सदस्यों के साहस तथा कौशल के वर्णन से भी वे विमुख नहीं हुए हैं । 'खूनी' कहानी के सम्बन्ध में स्वयं लेखक ने लिखा है—'यह कहानी प्रताप में सन् २३ या २४ में छपी थी, उस समय पं० माखनलाल चतुर्वेदी उसका संपादन करते थे । उन्होंने लिखा

---

१. चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय : पृ० २२
२. चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय : पृ० २५
३. वही, पृ० ५०

है—'खूनी को छाप कर प्रताप निहाल हो गया।'[1] आचार्य जी ने चन्द्रशेखर आजाद तथा भगतसिंह जैसे वीर नवयुवकों के कारण आधुनिक काल को वीरगाथा काल कहना उचित समझा है।

अज्ञेय जी की 'कोठरी की बात' में क्रान्तिकारी दल से संबंधित सुन्दर, भावात्मक कहानियां मिलती हैं। जैसा कि इस पुस्तक की भूमिका से विदित है कि इसकी प्रथम छः कहानियां जेल में लिखी गई थीं लेखक का विश्वास है कि यद्यपि जिन क्रान्तिकारियों का चित्रण इन कहानियों में मिलता है, वह युग बीत चुका है, लेकिन उनके जीवन के भीतर स्पन्दित होने वाली मानवता इतनी जल्दी पुरानी पड़ने वाली चीज नहीं है।'अज्ञेय' जी की इन कहानियों में सशस्त्र क्रान्तिकारी दल की साधना पद्धति के साथ मानवीय सम्बन्धों और आकांक्षा के भी चित्र मिलते हैं, 'छाया' कहानी का कार्य क्षेत्र कारावास है। अरुण बाबू को दस वर्ष का कठोर कारावास मिला था क्योंकि उन्होंने हिंसात्मक क्रान्ति में भाग लिया था—'मैंने सुना था, उसने कई खून किये हैं, मगर सुल्तानी गवाह के पलट जाने से सबूत नहीं मिला, इसलिए दस ही साल की सजा रह गई।'[2] यह क्रान्तिकारी अपनी धुन में मस्त रहते थे। सुषमा इस कथा की क्रान्तिकारिणी नायिका है। कारावास में उसने अरुण के पास जो पत्र भेजा था उससे क्रान्तिकारी दल की कार्य-प्रणाली का पता चलता है कि किस प्रकार ये क्रान्तिकारी गुप्त दलों का संगठन कर बम आदि का प्रयोग कर विदेशी शासकों को आतंकित करते थे।[3] इस कहानी का प्रथम गीत ही सशस्त्र क्रान्ति का आह्वान करता है :—

वेदी तेरी पर माँ, हम क्या शीश नवाएँ ?
तेरे चरणों पर मां, हम क्या फूल चढ़ाएं ?
खंग हमारे हाथों में है,
लौह मुकुट है शिर पर।[4]

छाया जैसी युवतियों में भी अदम्य साहस था। हंसते-हंसते फांसी के तख्ते पर चढ़ जाती थीं।[5] विवेक से बढ़ कर'[6] और 'कैसेंड्रा का अभिशाप'[7] रूसी क्रान्ति से सम्बन्धित कहानियां हैं। कदाचित् लेखक ने इन कहानियों द्वारा भारतवासियों को रूस की क्रान्ति के अनुगमन की प्रेरणा दी है। निःसन्देह अज्ञेय जी का इस दल में विश्वास ही नहीं था, इन क्रान्तितारियों के प्रति हृदय से सहानुभूति थी।

१. आचार्य चतुरसेन शास्त्री : मरी खाल की हाय : पृ० २५
२. अज्ञेय : कोठरी की बात : पृ० १०
३. वही, पृ० १९
४. अज्ञेय : कोठरी की बात : पृ० ११
५. वही, पृ० २९
६. वही : पृ० ६०
७. वही : पृ० १०१

नाटक :

हिन्दी नाटकों में भी क्रान्तिवाद अथवा इस दल के साधन का विशेष उल्लेख नहीं मिलता। प्रायः इस युग के नाटक ऐतिहासिक कथा पर आधारित थे, जिनमें युद्ध आदि का वर्णन मिलता है, लेकिन इसे सशस्त्र क्रान्तिकारी दल का प्रभाव नहीं कहा जा सकता। नाटकों में युद्ध आदि का वर्णन अतीत गौरव, पूर्वजों की वीर-भावना का लक्ष्य रख कर किया गया है।

बेचन शर्मा 'उग्र' के 'महात्मा ईसा नामक नाटक में प्रच्छन्न रूप से हिंसात्मक पद्धति का भी संक्षिप्त उल्लेख मिलता है महात्मा ईसा महात्मा गांधी की अहिंसात्मक साधना पद्धति द्वारा देशोद्धार का प्रयत्न करते हैं तो डाकू बरव्बा हिंसात्मक नीति को अपना कर राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति में अपना सहयोग देता है। डाकू बरव्बा महारानी हैरोदिया की हत्या द्वारा प्रतिशोध लेकर स्वयं बन्दी बन जाता है—'मैं स्वतः अपने को गिरफ्तार कराता हूं। अब मेरा काम हो गया। पड़क लो मुझे।'[1] क्रान्तिकारी भी अपना कार्य पूरा करने के बाद बन्दी बनकर फांसी के तख्ते पर झूल जाया करते थे। अतः इस दल की कार्य प्रणाली तथा उद्देश्य का सांकेतिक वर्णन इस नाटक में मिलता है।

हिन्दी साहित्य इस दल की राष्ट्रीयता से प्रभावित अवश्य था किन्तु तटस्थ रूप से ही, उसमें घुलमिल कर एक हो जाने की क्षमता नहीं थी।

०

---

१. बेचन शर्मा 'उग्र' : महात्मा ईसा : पृ० १२०

: ९ :

राष्ट्रवाद का आदर्श

हिन्दी साहित्य में स्वराज्य तथा भारत के भविष्य का चित्रण

हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी लेखनी द्वारा राष्ट्रवाद के विभिन्न तत्त्वों को उभार कर, अपनी समस्त मेधा से अभावों और आवश्यकताओं की पूर्ति की योजनाएँ भी कला द्वारा प्रस्तुत की थीं। गाँधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने भारतवासियों को जिस स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित कर मुक्ति-पथ पर अग्रसर कर दिया था, उससे भविष्य का सुन्दर चित्र सजीव हो गया था। अतः द्विवेदी युग से ही हिन्दी साहित्य में आशामय भविष्य का स्वर निनादित होने लगा था। अतीत की स्वर्णिम स्मृति ने भारत के भविष्य के लिए आदर्श-मान्यताएं प्रस्तुत कीं और वर्तमान के सँघर्ष ने स्वराज्य प्राप्ति का पथ कटंक विहीन बना लिया। हिन्दी साहित्य में स्वराज्य अथवा स्वतन्त्रता का विवेचन किया गया और आदर्श की रूपरेखा निर्मित हुई।

हिन्दी कविता

सर्वप्रथम मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत-भारती' में 'भविष्यत् खण्ड' की रचना कर भावी भारत के लिए आदर्श प्रस्तुत किये थे। इसके उपरान्त प्रायः सभी कवियों ने स्वराज्य, स्वतन्त्रता अथवा राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में लिखना प्रारम्भ कर दिया। राष्ट्रीय-स्वातन्त्र्य-संग्राम का यही लक्ष्य था कि भारत को पूर्णतया स्वतन्त्र कर, उस आदर्श स्थिति तक पहुंचा देना, जहाँ मानव की मानव के प्रति पूर्ण सहानुभूति हो। 'त्रिशूल' जी ने 'राष्ट्र' की परिभाषा देते हुए लिखा था—

ऐक्य, राज्य, स्वातन्त्र्य यही तो राष्ट्र-अंग हैं,
सिर,धड़, टांगों सदृश जुड़े हैं संग संग हैं।।[1]

त्रिशूल के सदृश रामचरित उपाध्याय ने भी स्वतन्त्रता की विवेचना करते हुए लिखा था—

स्वतन्त्रता है साम्यवाद की सहधर्मिणी समझ रखिये,
परतन्त्रता, उसे वैतरिणी दुखदायिनी समझ रखिये।।[2]

---

१. त्रिशूल : राष्ट्रीय मन्त्र : पृ० २६
२. रामचरित उपाध्याय : राष्ट्र-भारती : पृ० ३६

उपाध्याय जी भारत को स्वर्ग बनाना सीखना और सिखाना चाहते थे।[1] कवि को भारत के भविष्य के विषय में पूरी आशा थी कि स्वराज्य मिलेगा और सत्य की विजय होगी। रूपनारायण पांडेय ने दीनों की रक्षा को सत्य-स्वाधीनता माना था, और राष्ट्र को न्याय-निष्ठ हो नियम-धर्म से डरने का उपदेश दिया था।[2] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने 'उगता राष्ट्र' में नवनिर्मित होते राष्ट्र की विशेषताओं के विवेचन में उज्जवल भविष्य का भी संकेत किया था।[3]

मैथिलीशरण गुप्त ने स्वराज्य का उल्लेख मात्र ही नहीं किया अपितु स्वराज्य के पश्चात् आदर्श राष्ट्र का स्वप्न भी संजोया था।[4] इन्हें भारत के भविष्य-निर्माण के लिए गाँधी जी का 'राम-राज्य' पूर्णतया मान्य था। 'साकेत' महाकाव्य में गुप्तजी की आदर्शवादी प्रवृत्ति ने प्रारम्भ में ही साकेत नगरी के भव्य रूप का चित्रण किया है, वस्तुतः वह उनके स्वतन्त्र भारत का आदर्श है। उन्होंने भारत को स्वस्थ, शिक्षित शिष्ट, उद्योगी बना कर उसके जीवन में आध्यात्मिकता की श्रेष्ठता का आदर्श रखा था।[5] पर वे राष्ट्र को सुदृढ़ देखना चाहते थे।[6] राजा और प्रजा का भेद उन्हें मान्य नहीं था। इसी कारण उन्होंने साकेत में राम से कहलाया है :

प्रजा नहीं, तुम प्रकृति हमारी बन गये,
दोनों के सुख-दुःख एक में सन गये॥
मैं स्वधर्म से विमुख नहीं हूंगा कभी
इसीलिए तुम मुझे चाहते हो सभी॥[7]

सियारामशरण गुप्त की आशावादिता ने असफलता में भी भारत के भविष्य के गर्भ में छिपी सफलता को देख लिया था—

नहीं आज में ही परिसीमित,
है असीम यह काल विराट,
कल का पथ क्या रोक सकेगा
तुच्छ आज के उर के पार।
जो तेरा उपहास कर रहे
आज तिरस्कृत कर तुझको

---

१. रामचरित उपायास : राष्ट्रभारती : पृ० ३५
२. रूपनारायण पांडे : माधुरी पृ० २३
३. जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द : जीवन संगीत : पृ० ६३
४. मैथिलीशरण गुप्त : स्वदेश संगीत : पृ० १२०
५. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० २२
६. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत : पृ० २४
७. वही, पृ० १२९

कल ही वे तेरे कीर्तन से
गुंजित कर देंगे पथ-घाट ॥[1]

सुभद्राकुमारी चौहान की कल्पना ने प्यारे स्वतन्त्र देश का स्वागत करते हुए लिखा था—

ओ स्वतन्त्र प्यारे, स्वदेश आ, स्वागत करती हूं तेरा।
तुझे देखकर आज हो रहा दूना प्रमुदित मन मेरा ॥[2]

कविवर 'दिनकर' और 'नवीन' जी ने विध्वंस में नवनिर्माण देखा था। 'दिनकर' ने आशामय भविष्य से अभिप्रेरित होकर हुंकार मचाई थी।

गत विभूति, भावी की आशा ले युग धर्म पुकार उठे
सिंहों की घन अन्ध गुहा में जागृति की हुंकार उठे ॥[3]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने वात्सल्यभावना के आश्रय से भारत के पुरातन मानवतावाद को पुनः शिशुरूप में प्रकट होते देखा था :—

आज विश्व-शैशव अपनी गोदी में खिला रही हूं मैं,
सुविगत, वर्तमान, मधुरस भावी को पिला रही हूं मैं;
शत शत संस्कारों की धारा, मेरे स्तन से बही अपारा,
बनकर पयस्विनी करती हूं, मैं भविष्य निर्माण दुलारा;
मेरे शिशु में प्रगटी मानवता की रुचिर पुरातन धुन
रुन झुन-झुन झुन रुनन-झुनुन ॥'[4] (सन् १९३२)

हिन्दी कवियों को गाँधी जी की भाँति राष्ट्रवाद के चरम विकास के लिए और आदर्श-भारत के निर्माण के लिए मानवतावाद ही इष्ट था। आदर्श भारत की रूपरेखा के लिए प्रायः सभी कवियों ने भारत के चिरपुरातन अध्यात्म, दर्शन और संस्कृति का आधार लिया था।

हिन्दी नाटक साहित्य

जयशंकर प्रसाद के नाटकों में इतिहास की पृष्ठभूमि पर एक स्वतन्त्र एवं संगठित राष्ट्र की योजना उभरी है। उनके चन्द्रगुप्त, स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, राज्यश्री आदि सभी नाटक अतीत के महत्त्वपूर्ण प्रसंगों के साथ आदर्श भारत की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। चन्द्रगुप्त नाटक इस दिशा में सर्वाधिक सफल रहा है। उसके संपूर्ण कथानक में 'एक आर्यावर्त्त', 'एक देश', 'एक राष्ट्र', का संदेश गूंज रहा है। हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम प्रसाद जी ने हिमालय से अन्तरीप तक फैले अखंड भारत को एक छत्र राज्य अथवा पुष्ट राष्ट्र के रूप में देखा। भारत की प्राचीन संस्कृति के

१. सियारामशरण गुप्त पृ० ४२
२. सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल : पृ० ११९
३. रामधारीसिंह दिनकर : हुंकार : पृ० ९
४. बालकृष्ण शर्मा नवीन : रश्मि रेखा : पृ० ६९

आधार पर नवीन सांस्कृतिक निर्माण प्रसाद जी की अनुपम देन है। 'अजातशत्रु' नाटक में राष्ट्र को अहिंसा और आत्मत्याग के आधार पर एकता के सूत्र में बंध जाने का सन्देश दिया गया है। चन्द्रगुप्त नाटक में छोटे-छोटे राज्यों और दलों को स्वतः एक दूसरे के अस्तित्व में विलीन होकर एक राष्ट्र बनाने का आदेश दिया गया है। अतः स्वतन्त्रता की साधना के साथ प्रसाद जी के राष्ट्रवाद का आदर्श भारतीय इतिहास का वह स्वर्ण युग था, जब देश किसी भी विदेशी सत्ता से आक्रान्त नहीं हुआ था।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द के नाटक 'प्रताप-प्रतिज्ञा' में स्वाधीनता के आह्वान के साथ भावी भारत के प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली अपनाने का संदेश दिया गया है। इस नाटक में यह स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि 'राजा प्रजा का सेवक है—दास है,' प्रजा उसकी अन्नदाता है। वह उसे गद्दी पर चढ़ा भी सकती है, उतार भी सकती है, बना भी सकती है, बिगाड़ भी सकती है।[१]

'प्रेमी' जी के नाटकों ने भारत के मुस्लिम-काल की ऐतिहासिक-कथाओं से दृष्टान्त रख कर भारत के लिए हिन्दू-मुस्लिम साँस्कृतिक समन्वय का आदर्श रखा था। 'रक्षा-बन्धन', शिवा-साधना', नाटक इसके उदाहरण हैं। मुसलमान भी इस देश का एक अंग बन गये थे। गाँधी जी के सदृश प्रेमी जी ने इन नाटकों में यह स्पष्ट किया है कि इन दोनों के साँस्कृतिक एकीकरण में ही राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित रह सकता था। निःसंदेह यदि हिन्दू और मुसलमान एक हो सकते तो आज देश हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो अंगों में न बँट सकता।

इस युग के हिन्दी नाटकों में राष्ट्रवाद को ऐतिहासिक आधार मिला और भविष्य निर्माण के लिये अपनी एक सुव्यवस्थित परम्परा भी मिली।

हिन्दी-कथा-साहित्य और भारत का भविष्य

हिन्दी कथा-साहित्य में भी भारत के भविष्य से सम्बन्धित अनेक संकेत बिखरे पड़े हैं। उपन्यास एवं कहानीकारों ने भारत के स्वातन्त्र्य-आन्दोलन, राष्ट्रीय चेतना, रचनात्मक कार्यक्रम के साथ उज्ज्वल भविष्य की ओर भी इंगित किया था। राष्ट्र निर्माण की योजना इनके मस्तिष्क में भी क्रियाशील थी। आदर्श राष्ट्र का रंग इनकी कल्पना में अधिक गहरा हो गया था। प्रेमचन्द जी के प्रत्येक उपन्यास में राष्ट्रीय पुनर्निमाण की ध्वनि गूँज रही है। सेवा सदन, रंगभूमि, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, गोदान आदि सभी उपन्यास स्वतन्त्रता एवं राष्ट्र-सुधार का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। 'सेवा सदन' में वेश्याओं की कन्याओं के लिए सेवासदन की स्थापना में देश के नैतिक उत्कर्ष का प्रयत्न है। 'रंगभूमि' में देश की स्वतन्त्रता का आह्वान है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेम-शंकर आदर्श गांव का नमूना प्रस्तुत कर ग्रामोन्नति का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। 'कर्मभूमि' में अछूतोद्धार की समस्या ही नहीं है, उसका समाधान भी है। अछूतों के

१. जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द : प्रताप-प्रतिज्ञा : पृ० २

लिये मन्दिर का द्वार खुल जाता है, जो भारत के सुन्दर भविष्य का पूर्वाभास है। 'गोदान' में नागरिक पात्रों जैसे मालती द्वारा ग्रामीणों के जीवन में रुचि लेना भावी भारत के लिए आशीर्वाद है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' भी अपने उपन्यासों में निरन्तर भविष्य निर्माण के लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ते हैं। 'अप्सरा' में वेश्या की कन्या को कुलवधू के रूप में समाज द्वारा ग्रहण करा कर भविष्य के लिए आदर्श रखा है।

इस युग की कहानियां भी राष्ट्र के अभावों को मिटा कर नवनिर्माण का सन्देश देती हैं, जैसा कि राष्ट्रवाद के अभावात्मक एवं भावात्मक पक्षों के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है।

उपन्यास अथवा कहानीकार की दृष्टि अपने युग की ओर रहती है, अतः भविष्य के स्वप्न को प्रत्यक्ष रूप से वर्णित करना असंभव होता है। अतः कथा-साहित्य में भारत के भविष्य के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न संकेत मात्र मिलते हैं।

इस समय लिखित ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या अति अल्प है। कहानियां अवश्य सुन्दर मिल जाती हैं। जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, सुदर्शन आदि की ऐतिहासिक कहानियों में अवश्य स्वतन्त्र भारत के लिए आदर्श एवं मानदण्ड मिल जाते हैं। प्रसाद जी की 'सालवती' कहानी में गणतन्त्र प्रणाली की ओर संकेत किया गया है, प्रेमचन्द ने 'रानी सारन्धा', 'वीर हरदौल', आदि कहानियों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उसकी रक्षा का सन्देश दिया है। सुदर्शन की 'पंथ की प्रतिष्ठा' कहानी में राजा की अपेक्षा प्रजा की शक्ति के महत्त्व का प्रदर्शन किया है।

इस युग के साहित्य में स्पष्ट अभिव्यंजित है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत, आध्यात्मिकता, नैतिकता आदि सत्य गुणों का आधार ग्रहण कर ही अपनी स्वाधीनता सुरक्षित रख सकेगा और पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त होगा। साहित्य निर्माताओं का यह राष्ट्र निर्माण कार्य एवं भविष्य के प्रति आशान्वित दृष्टिकोण स्पृहणीय है।

उपसंहार

साहित्य युग-चेतना से संश्लिष्ट रहता ही है, फिर भी आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य ने देश-जीवन के साथ जितना घनिष्ठ संबंध स्थापित किया है, वह अपूर्व है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय-भावना को दृष्टि में रखकर डा० सत्येन्द्र का साहित्य के विषय में यह मत नितान्त सत्य ठहरता है—'साहित्य का युग से बड़ा घनिष्ठ संबंध होता है। युग की प्रवृत्ति और प्रक्रिया की प्रतिक्रिया साहित्य पर बड़े वेग से होती है। अतः युग का प्रतिबिंब भी साहित्य में मिलता है।'[1] निःसन्देह साहित्यकार का यह परम धर्म है कि वह अपने चारों ओर की परिस्थिति का निरीक्षण कर अपने विशद मानस-पट पर अंकित कर ले और अपनी अनुभूति के गहरे रंग में रंग कर व्यक्त करे। सन् १९२० ई० से लेकर हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के विकास की अभिव्यक्ति के सम्यक् विवेचन के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस युग के साहित्य ने पूर्णतया युग-धर्म का निर्वाह ही नहीं किया है, अपितु युग के मर्म को भी समझा था। हिन्दी साहित्य ने पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के इस मत को भी पूर्णतया चरितार्थ किया था कि साहित्य द्वारा राष्ट्रीयता की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।[2]

इस युग के साहित्य में राष्ट्रवाद के सभी पक्षों की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। साहित्य-मनीषियों ने भारत के विगत उत्कर्ष के सभी अंगों—आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक—का चित्रण कर राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक पक्ष का सजग प्रतिबिंबन किया इससे देश में उत्साह के साथ-साथ आत्म गौरव एवं स्वाभिमान की भावना आई। देश के इतिहास को कल्पना के योग से राष्ट्रवाद के ढांचे में ढालना इस युग की सबसे बड़ी बिशेषता है। इतिहास साहित्य की वस्तु बन गया। भारतीय राष्ट्रीय-चेतना की सांस्कृतिक आत्मा का सर्वाधिक उदात्त, परिष्कृत, समुन्नत एवं मानवता से ओतप्रोत रूप मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद के काव्य एवं नाटकों में मिलता है। हरिकृष्ण प्रेमी जैसे ऐतिहासिक नाटककार ने तो राष्ट्रीयता के अतिरेक में इतिहास को कुछ इस प्रकार का मोड़ दिया कि 'शिवाजी', 'हुमायूं', जैसे ऐतिहासिक व्यक्तित्व भी संकीर्णता का परित्याग कर साम्प्रदायिक एकता के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। काव्य-क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त अग्रगण्य हैं, तो नाट्य-क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने पथ-निर्देशन किया है। भारत की चिर-पुरातन सांस्कृतिक

---

१. डा० सत्येन्द्र : कला, कल्पना और साहित्य : पृ० ४२

२. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी : हिन्दी साहित्य विमर्श : पृ० २८

चेतना से आवृत्त उपन्यास का इस युग में अभाव रहा, यद्यपि वृन्दावनलाल वर्मा ने इसकी पूर्ति का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। सन् १९३७ के पश्चात् औपन्यासिक क्षेत्र ने भी इस दिशा में प्रगति की है। युगीन राजनीतिक आन्दोलन, राष्ट्र के अभावों एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति के विविध साधनों का भी यथार्थ, मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया था। देश-जीवन में क्षय के कीटाणुओं से व्याप्त राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक न्यूनताओं का सबसे अधिक सफल चित्र कथा-साहित्य में हुआ है। नि:सन्देह साहित्य ने अपने सामाजिक राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अनुभूति, चिन्तन और कल्पना के माध्यम से सरस, स्वच्छ और युग-प्रेरक रूप दे दिया था। इस क्षेत्र में प्रेमचन्द जी विशेष श्रेय के पात्र हैं। राष्ट्र के भविष्य-निर्माण के लिए भी साहित्यकार राष्ट्रीय नेताओं से कुछ कम गतिशील नहीं थे। द्विवेदी युग तक प्राय: हिन्दी साहित्य में हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तानी के स्वर की ही प्रधानता थी। साहित्य में भी राष्ट्रीयता का अर्थ हिन्दू पुनरुत्थान ही था। अब गांधी जी के प्रभावस्वरूप विकसित राष्ट्रीयता ने साहित्य-प्रणेताओं की मनोवृत्ति को भी उदार, विकसित एवं प्रखर बना दिया। हिन्दी साहित्य भी हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, सिक्ख, जैन और बौद्ध-समन्वित एक देश अथवा एक राष्ट्र के आदर्श के स्पदंन से मुखरित हुआ।

सन् १९२० से हिन्दी का साहित्य गांधी जी के राष्ट्रवाद से सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। इस समय के प्राय: सभी प्रतिनिधि एवं प्रतिष्ठित हिन्दी साहित्यकार गांधी जी के सहयोगी थे। गांधी जी ने उन्हें अपने व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित किया था—'भाषा और साहित्य की प्रतिष्ठा भी स्वतन्त्र राष्ट्र में किस तरह हो, इस दिशा में गांधी जी बहुत सतर्क थे। जहां वे नवयुवकों को स्वतन्त्रता आन्दोलन में बड़ी कुशाग्र बुद्धि से जूझने का आमंत्रण दिए जा रहे थे, उसी तरह उन्होंने साहित्यकारों को भी अपनी निष्ठावान वाणी से प्रभावित किया था।'[1] अतः हिन्दी साहित्य में गाँधी जी के राष्ट्रवादी सिद्धान्तों की पुष्ट अभिव्यंजना मिलती है। यह सिद्धान्त-विवेचन भारतीय जीवन को शक्ति प्रदान करने में पूर्णतया समर्थ है। गांधी जी से प्रेरणा पाकर इस युग का राष्ट्रवादी साहित्य भी ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित है। सच्चे अर्थों में मोक्ष-प्राप्ति ही साहित्य का भी उद्देश्य है। इसके अतिरिक्त गांधी जी के सदृश साहित्य में भी देश के व्यावहारिक जीवन को राष्ट्रवाद की सक्रिय चेतना से संवेष्ठित कर देने की शक्ति है। सरस्वती के इन वरद पुत्रों ने राष्ट्र-परक साहित्य ही नहीं समष्टिपरक राष्ट्रीय साहित्य भी रचा था। राष्ट्रवाद में मानवतावाद का समाहार कर,गांधीजी ने विश्व के सम्मुख राष्ट्रवाद के जिस पूर्ण एवं आदर्श रूप को समुपस्थित किया था, राष्ट्रवाद का वही रूप हिन्दी साहित्य में भी सन्निहित मिलता है। हिन्दी के मेधावी कथाकारों को राष्ट्रीयता के प्रबल प्रवाह में वह दृष्टि मिल गई थी जिससे वे भारत और विश्व को एक साथ रख कर देख रहे थे।

१. राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ : पृ० १९६

हिन्दी कविता के इस विशेष युग में दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट लक्षित होती हैं—छायावाद और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता। छायावाद के अन्तर्गत सूक्ष्म-अतीन्द्रिय सौन्दर्य से अनुप्राणित कविताएँ रखी जायेंगी और राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता का सीधा संबंध राष्ट्रवाद से है। काव्य की इन दोनों प्रमुख प्रवृत्तियों को गांधी जी के राष्ट्रवाद से प्रेरणा मिली थी। छायावादी काव्य को तत्कालीन विचारधारा से पृथक् नहीं रखा जा सकता। यद्यपि छायावाद का जन्म गांधी जी के राष्ट्रीय क्षेत्र में आगमन के पूर्व ही हो चुका था लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि गांधी जी के पहले ही लोकमान्य तिलक, अरविन्द घोष जैसे राष्ट्रवादी नेता भारत की राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक-चेतना-सम्पन्न कर चुके थे। गाँधी जी ने इसी विकसित राष्ट्रवाद को अधिक परिष्कृत एवं समुन्नत कर जन-जीवन में भर दिया था। अतः छायावाद और तत्कालीन राष्ट्रवाद का मूल दर्शन भारतीय अद्वैतवाद एवं अध्यात्म ही था। इस संबंध में डा० नगेन्द्र का भी यही मत है कि गांधीवाद और छायावाद का मूल दर्शन एक ही है—'छायावाद ने इसके दो मूल तत्वों को सौन्दर्य और प्रेम के रूप में ग्रहण किया है, गांधीवाद ने सत्य और अहिंसा के रूप में। भावना के क्षेत्र में जो सौन्दर्य है, वही चिन्तन और विचार के क्षेत्र में सत्य है, पहले जो प्रेम है, वही दूसरे में अहिंसा है।'[1] छायावादी अथवा रहस्यवादी कविता तत्कालीन राष्ट्रीय-चेतना की अन्त:प्रवृत्ति का प्रकाशन है तो राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता राष्ट्रवाद के भावात्मक और क्रियात्मक रूप की अभिव्यक्ति।

राष्ट्रवाद के आविर्भाव काल से ही हिन्दी साहित्य में उसकी सजग अभिव्यक्ति हुई है। भारतेन्दु युग में राष्ट्रीयता देश-दशा सुधार, समाज-सुधार धर्म-सुधार तक सीमित थी अतः उस युग के साहित्य ने भी अपने युग की व्यथा को अपने अन्तर में संचित कर साहित्य-सृजन किया। इस युग के साहित्य में भी पूर्णतया हिन्दू राष्ट्रीय भावना मिलती है, जो केवल देश-दशा में सुधार मात्र चाहती थी। द्विवेदी युग में राष्ट्रवाद अधिक विकसित हुआ। साहित्य में देश के अल्पसंख्यक अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति भी सहिष्णु भावना आई। स्वतन्त्रता की पुकार की गई और विदेशी शासन का विरोध। गांधी जी के आगमन के पश्चात् राष्ट्रवाद का चरम विकास हुआ अतः छायावादी युग का साहित्य राष्ट्रवाद के सर्वांगों से पूर्ण मिलता है। इस युग के साहित्य निर्माताओं ने केवल वाणी से ही नहीं, अपने व्यक्तित्व से भी आन्दोलन को सक्रिय सहयोग दिया था। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सियारामशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सेठ गोविन्ददास आदि सभी प्रतिनिधि हिन्दी साहित्यकार कारावास की यातना सह चुके थे। राष्ट्रीय भावना इनके लिए कोरी कल्पना न थी, इनके जीवन का अनुभूत विषय थी। इनका जीवन, राष्ट्रीय-चेतना और साहित्य एक ही दिशा में गतिशील थे।

भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास में हिन्दी साहित्य ने अपना पूर्ण योगदान

---

१. डा० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां : पृ० ३

दिया था। साहित्यिक कलाकार ने अपने युग की देशव्यापी राष्ट्रीय भावना के स्थूल बाह्य रूप की ही अभिव्यक्ति नहीं की थी, अपितु उसकी अन्तश्चेतना का भी स्पर्श कर लिया था। राष्ट्रीयता के विकास में सक्रिय सहयोग देते हुए उसकी सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों का भी प्रकाशन किया था। इनकी राष्ट्रीयता का क्षेत्र हिन्दी प्रदेश मात्र नहीं था, बल्कि पूर्ण राष्ट्र साहित्य के सूत्रों में गुंथ गया था। हिन्दी साहित्य ने काव्य द्वारा राष्ट्रीय भावना की आग को राग दिया; कथा-साहित्य द्वारा युगीन परिस्थिति का विशद चित्र खींचा; नाटकों की रचना कर राष्ट्रवाद को अभिनीत बना दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय भावना को कला के परिधान से सुसज्जित कर, नाना रंगों से चमका कर, शब्द-शक्ति से पुष्ट कर, अभिव्यंजना की अनेक शैलियों में मुखर कर साहित्यकार ने अपने कर्म का और धर्म का परिचय दिया। राष्ट्रीय भावना के मर्म को समझने वाले कवियों, नाट्यकारों और कथाकारों की संख्या कम न थी। राष्ट्रवाद के विकास में हिन्दी साहित्य ने जो अपना कार्य संपादित किया है वह अविस्मरणीय है और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

हिन्दी साहित्य के विकास में भी राष्ट्रीय-भावना अति सहायक रही है। भारतेन्दु युग में ही काव्य को शृंगारिकता की संकीर्ण परिधि से उन्मुक्त कर देश-जीवन की ओर उन्मुख करने का बहुत कुछ श्रेय, तत्कालीन उद्भूत होती हुई राष्ट्रीयता को ही दिया जायेगा। विकसित राष्ट्रीय भावना ने ही साहित्यकार को स्व की सीमित रेखा से निकाल कर समष्टिपरक बना दिया था। जीवन के अन्य पक्षों की ओर दृष्टि डालने में यह समर्थ हुआ। काव्य की भाँति ही विकासशील गद्य-साहित्य के विविध रूपों को युग-जीवन से अनेक वर्ण्य विषय मिले। राष्ट्रीय-चेतना ने साहित्य को विकसित चेतना, युगदर्शन की व्यापक संवेदनशीलता एवं क्रियाशक्ति प्रदान कर दलित वर्ग की सम्पत्ति बना दिया। रीतियुगीन साहित्य आभिजात्य वर्ग की सम्पत्ति बन गया था लेकिन आधुनिक काल में विशेषकर गांधी युग में साहित्य जन-जीवन की शक्ति बन गया। राष्ट्रवाद ने साहित्य का मानदण्ड बदल दिया, आदर्श बदल दिया और उसे नवीन मूल्य प्रदान किये। प्राचीन आचार्यों ने भाव-विवेचन के अन्तर्गत जितने भावों का उल्लेख किया था, उनका विश्लेषण ही साहित्य में किया गया था। राष्ट्रीयता जैसे किसी भाव का विवेचन नहीं किया गया था। अतः इस युग के स्वातन्त्र्य आन्दोलन ने हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीयता जैसा प्रबल भाव प्रदान किया। राष्ट्रीयता की बलि-वेदी पर सर्वस्व समर्पित करने के उत्साह ने अन्य स्थायी भावों – वात्सल्य, रति-शोक आदि का रंग फीका कर दिया। राष्ट्रीयता में इन सभी भावों का समाहार हो गया था। यह सिद्ध किया जा चुका है कि हिन्दी साहित्य में भी ऐसी कथाओं की योजना की गई जिसमें दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन को ठुकरा कर राष्ट्रीयता की अग्नि तीव्र की गई थी। राष्ट्रीयता जैसी व्यापक भावना में मानव-तावाद का समावेश कर हिन्दी साहित्यिक सार्थक हो गया है।

राष्ट्रीयता का विशेष सम्बन्ध मानव की विकसित एवं उदात्त रागात्मक प्रवृत्ति

से है। राग में उत्साह के समावेश से साहित्य द्वारा सचेतन राष्ट्रवाद सम्मुख आया। स्वार्थ के परित्याग का अमोघ उद्देश्य लिए हिन्दी साहित्य ने अपने युग-युग के अभाव की पूर्ति की है।

राष्ट्रीय साहित्य के संबंध में प्राय: यह भ्रामक धारणा है कि यह साहित्य घटनापरक, सामयिक अथवा क्षणिक होता है। वर्ण्यविषय की सामयिकता अथवा असामयिकता साहित्य की स्थिरता, अस्थिरता का निर्णय नहीं करती। इस संबंध में रामेश्वर शर्मा का यह मत नितान्त संगत है—'साहित्य के क्षणजीवी अथवा स्थायी होने का आधार उसकी कथावस्तु का सामयिक अथवा सामयिक होना नहीं है, वरन् उसमें पाई जाने वाली संवेदना का स्वर, उसके कलात्मक गुण तथा उसकी सामाजिक चेतना ही उसका नियोजन करती है।'[1] इस युग के साहित्य-निर्माता की सामाजिक चेतना इतनी प्रबुद्ध थी कि राष्ट्रीयता उसकी प्रेरक संवेदना बन गई थी। उन्होंने साहित्य में कुछ इस प्रकार के राष्ट्रीय व्यक्तित्व की योजना की थी कि राष्ट्रीय युग और काल के बंधन से मुक्त होकर युग युग के लिए अनुकरणीय बन गई। मानवीय प्रवृत्तियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, प्रकृति और दर्शन के सामंजस्य में साहित्य का राष्ट्रवाद सम्पूर्ण है।

हिन्दी में राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का अधिकांश साहित्य शुद्ध साहित्य है। कुछ रचनाएँ अवश्य प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं क्योंकि आज की परिवर्तित परिस्थितियों में उनका विशेष मूल्य नहीं रह गया है। 'त्रिशूल', रामचरित उपाध्याय, रूपनारायण पांडेय, श्यामनारायण पांडेय आदि द्विवेदीयुगीन कवियों का इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा हुआ काव्य जिसमें असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन, असहयोगी के कर्त्तव्य, सत्य-अहिंसा, स्वतन्त्रता आदि का वर्णन मिलता है, प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखा जायेगा। सीधी-सादी स्पष्ट भाषा में आन्दोलन के स्थूल रूप का जहां परिचय दिया गया है, वह शाश्वत साहित्य नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार जहां साहित्य द्वारा गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम अथवा गांधीजी के सिद्धान्तों का पिष्टपेषण मात्र हुआ है, वह भी प्रचारात्मक साहित्य के अन्तर्गत रखा जाएगा, क्योंकि उससे आज साधारण पाठक को आनन्द नहीं मिल सकता। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त. माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेद्वी आदि की कुछ कवितायें और प्रेमचन्द, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन आदि की कुछ कहानियों को इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है।

आज की बदली हुई स्थिति में भी जिस राष्ट्रीय साहित्य को पढ़कर हृदय ओज, उत्साह, करुणा, देशप्रेम से भर जाये, वही शुद्ध साहित्य कहा जाएगा। राष्ट्र को एकता का संदेश देने वाला, राष्ट्रीय जीवन को संस्कारशील बनाने वाला एवं सहृदय को मुदित करने वाला राष्ट्रीय साहित्य शुद्ध एवं शाश्वत साहित्य है। जैनेन्द्रकुमार जी ने शुद्ध साहित्य की परिभाषा दी है—'इसीलिए साहित्य की कसौटी वह

१. रामेश्वर शर्मा : राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य : पृ० ४६

संस्कारशीलता है, जो हृदय से हृदय का मेल चाहती है और एकता में निष्ठा रखती है। जो सहृदय का चित्र मुदित करता है वह साहित्य खरा है, जो संकुचित करता है, वह खोटा है।'[1] इस परिभाषा पर कसने पर हिन्दी का अधिकांश राष्ट्रीय साहित्य खरा उतरता है अथवा शुद्ध कहा जा सकता है। भारत के अतीतगौरव से संबंधित हिन्दी साहित्य आज भी देशवासियों को उस संस्कारशीलता का सन्देश देता है, जिससे मानव मानव के हृदय का मेल हो और राष्ट्र एकीकरण के सूत्र में आवद्ध हो। राष्ट्रवादी हिन्दी-साहित्य के मूल में मानवतावाद का महान् आदर्श निहित है, आज स्वन्त्रता के पश्चात् भी इस युग का अधिकांश साहित्य राष्ट्रीयता के भाव को अक्षुण्ण एवं प्रबुद्ध रखने में समर्थ है। सहृदय के चित्त को मुदित करने की भी इसमें शक्ति है। जहाँ कवि, नाट्यकार अथवा कथाकार ने अपने युग के विष को अन्तरस्थ कर अमृत उंडेल दिया था, वह राष्ट्रवादी साहित्य युग-युग तक अमर रहेगा। वह केवल भारतवासियों को ही नहीं, मानवमात्र को राष्ट्रीयता की प्रेरणा देता रहेगा। यह साहित्य देश और काल की सीमा के परे है। इसमें सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक बलिदान का महत्त्व प्रतिपादित मिलता है। निर्जीव तथ्यों और राष्ट्र की गतिविधि को भावनाओं और अनुभूतियों के प्रकाशन ने शुद्ध साहित्य की संज्ञा प्रदान की है।

रस की दृष्टि से भी इस युग का राष्ट्रवादी साहित्य श्रेष्ठ ठहरता है। यद्यपि इस समय के राष्ट्रवादी साहित्य का मूलरस वीर है, लेकिन अन्य सभी रसों का राष्ट्रवाद में समाहार हो जाता है। देश-प्रेम में रति, देश की दुर्दशा के चित्रण में करुणा, देश के लिए संघर्ष में वीर, देश-सुधार के लिए क्रांति में रौद्र, विदेशी शासकों की निर्दयता के वर्णन में घृणा एवं बीभत्स, देश पर भारी विपति की आशंका में भयानक और भारत माता की पूजा में भक्ति आदि सभी स्थायीभाव उद्बुद्ध होकर रस की कोटि तक पहुंच जाते हैं। वीर रस के प्रायः सभी संचारियों और अनुभावों का विकास राष्ट्रीयता में होता है। द्विवेदी युग की अपेक्षा सन् १९२० के पश्चात् साहित्य में अनुभूति तत्त्व की प्रमुखता हुई। सत्यं, शिवं और सुन्दरं के समन्वय में राष्ट्रवाद को सच्ची कला मिली। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली—साहित्य के सभी तत्त्व इस राष्ट्रीय साहित्य के मिल जाते हैं। साधारण से साधारण घटना को कल्पना के रंग में रंग कर राष्ट्रीयता को भव्य रूप दिया गया था। इस युग के साहित्य में करुणा की शत शत धाराएँ उद्वेलित हुई। कल्पना के बल पर साहित्यकार ने राष्ट्रीयता के सूक्ष्म भाव को भी स्थूल रूप में प्रस्तुत किया। बुद्धि के बल पर तथ्यों और सिद्धान्तों का भी राष्ट्रीयता में समावेश हुआ था। इसी कारण साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना का चित्रण स्वाभाविक एवं उचित रूप में हुआ है।

अन्त में यह निर्विवाद एवं निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य का यह विशेष युग राष्ट्रवाद की चरम परिणति का युग है। राष्ट्रभावना ने साहित्य को और साहित्य ने राष्ट्रभावना को समृद्ध किया।

---

१. जैनेन्द्रकुमार : साहित्य का श्रेय और प्रेय : पृ० १३२

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

१.	कांग्रेस का इतिहास	पट्टाभिसीतारम्मया
२.	भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास	गुरुमुख निहालसिंह
३.	माता भूमि	वासुदेवशरण अग्रवाल
४.	भारतीय संवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास	डॉ० रघुवंशी
५.	स्वाधीनता की चुनौती	प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा
६.	हमारा स्वाधीनता संग्राम	कृष्णदत्त पालीवाल
७.	यंग इण्डिया	महात्मा गांधी
८.	कांग्रेस का सरल इतिहास	ठाकुर राजबहादुरसिंह
९.	हमारी राजनैतिक समस्याएं	प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा
१०.	आदर्श भारत की रूपरेखा	मोहनदास कर्मचन्द गांधी अनुवादक देवराज उपाध्याय
११	भारत सन् ५७ के बाद	पं० शंकरलाल तिवारी 'वेढब'
१२.	गाँधी विचार दोहन	किशोरीलाल मशरूवाला
१३.	बापू और भारत	कमलापति त्रिपाठी
१४.	गांधीवाद और मार्क्सवाद	श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
१५.	समाजवाद	डा० सम्पूर्णानन्द
१६.	पूंजीवाद समाजवाद ग्रामोद्योग	डा० भारतन् कुमारप्पा
१७.	गांधी गीता अथवा अहिंसा योग	प्रो० इन्द्र
१८.	भारत में सशस्त्र क्रान्तिचेष्टा का रोमांचकारी इतिहास	मन्मथनाथ गुप्त
१९.	राष्ट्रीय संस्कृति	डा० आबिद हुसैन
२०.	हिन्दी-कविता में युगान्तर	डा० सुधीन्द्र
२१.	आधुनिक हिन्दी-साहित्य	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
२२.	हिन्दी-साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
२३.	आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्णलाल
२४.	भारतेन्दु साहित्य	श्री रामगोपाल
२५.	भारतेन्दु ग्रन्थावली—तीनों भाग	ना० प्र० सभा काशी
२६.	प्रेमघन सर्वस्व	"
२७.	गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त—जीवन और साहित्य	डा० नत्थनसिंह
२८.	प्रताप-लहरी	प्रतापशाह
२९.	राधाकृष्ण ग्रन्थावली	सम्पादक—श्यामसुन्दरदास

३०. भारतगीत	श्रीधर पाठक
३१. गुप्त-निबन्धावली	बि० रा० प० पटना
३२. हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट	पंडित राजेन्द्र शर्मा
३३. भारतेन्दु जी का नाट्य-साहित्य	डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल
३४. भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि	किशोरीलाल गुप्त
३५. शंकर सर्वस्व	नाथूराम शंकर शर्मा
३६. माता	माखनलाल चतुर्वेदी
३७. हिमकिरीटिनी	"
३८. प्रिय प्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
३९. कल्पलता	"
४०. चुभते चौपदे	"
४१. पद्य-प्रसून	"
४२. भारत-भारती	मैथिलीशरण गुप्त
४३. रंग में भंग	"
४४. जयद्रथ वध	"
४५. किसान	"
४६. द्वापर	"
४७. हिन्दू	"
४८. साकेत	"
४९. स्वदेशी संगीत	"
५०. सिद्धराज	"
५१. अनघ	"
५२. गुलेरी जी की अमर कहानियाँ	सम्पादक—शक्तिधर गुलेरी
५३. वीर-सतसई	वियोगी हरि
५४. पराग	रूपनारायण पाँडेय
५५. राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त, अभिनन्दन ग्रन्थ	
५६. जनमेजय का नागयज्ञ	जयशंकर प्रसाद
५७. इन्द्रजाल	"
५८. प्रतिध्वनि	"
५९. अजातशत्रु	"
६०. चन्द्रगुप्त	"
६१. विशाख	"
६२. राज्यश्री	"

६३. आकाशदीप	जयशंकर प्रसाद
६४. तितली	"
६५. कंकाल	"
६६. लहर	"
६७. महाराणा का महत्त्व	"
६८. छाया	"
६९. पूर्ण पराग़	"
७०. कृषक-क्रन्दन	गयाप्रसाद शुक्ल सनेही
७१. भारत-विजय	शुकदेव बिहारी मिश्र
७२. रत्नाकर	नागरी प्रचारिणी सभा काशी
७३. मेवाड़ गाथा	लोचन प्रसाद पाण्डेय
७४. महाराष्ट्र वीर	बाबू रामप्रताप गुप्त
७५. पद्म पुंज	गिरिधर शर्मा
७६. मिलन	रामनरेश त्रिपाठी
७७. पथिक	"
७८. मानसी	"
७९. सेवासदन	प्रेमचन्द
८०. प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियां	"
८१. प्रेमाश्रम	"
८२. निर्मला	"
८३. रंगभूमि	"
८४. गबन	"
८५. कायाकल्प	"
८६. प्रतिज्ञा	"
८७. कर्मभूमि	"
८८. गोदान	"
८९. मानसरोवर	"
९०. प्रेम-पंचमी	"
९१. प्रेम चतुर्थी	"
९२. राजनैतिक कहानियां और समययात्रा	"
९३. कर्बला	"
९४. मौर्य-विजय	सियारामशरण गुप्त
९५. दूर्वादल	"
९६. आर्द्रा	"
९७. गोद	"
९८. आत्मोत्सर्ग	"

९९. पुण्य पर्व	सियारामशरण गुप्त
१००. पाथेय	,,
१०१. बापू	,,
१०२. पराग	रूपनारायण पांडेय
१०३. संगम	वृन्दावनलाल बर्मा
१०४. लगन	,,
१०५. प्रेम की भेंट	,,
१०६. गढ़ कुण्डार	,,
१०७. कुण्डली-चक्र	वृन्दावनलाल वर्मा
१०८. नंदन-निकुंज	चन्डीप्रसाद हृदयेश
१०९. नूरजहां	ठाकुर गोपालशरण सिंह
११०. संचिता	,,
१११. रामचरित चिन्तामणि	रामचरित उपाध्याय
११२. राष्ट्र-भारती	पं० रामचरित उपाध्याय
११३. राष्ट्रीय मन्त्र	श्री त्रिशूल
११४. मुक्ति-मन्दिर	पं० रामचरित उपाध्याय
११५. जयहिन्द-काव्य	सम्पादक-श्री चन्द्र
११६. अलका	सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
११७. निरुपमा	,,
११८. लिली	,,
११९. अनामिका	,,
१२०. अपरा	,,
१२१. परिमल	,,
१२२. अप्सरा	,,
१२३. तुलसीदास	,,
१२४. शिवाजी	डा० श्यामबिहाती मिश्र शुकदेव बिहारी मिश्र
१२५. कुंकुंम	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
१२६. चित्रशाला	विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक
१२७. कल्लोल	,,
१२८. महात्मा ईसा	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'
१२९. तक्षशिला	उदयशंकर भट्ट
१३०. विक्रमादित्य	,,
१३१. दाहर अथवा सिंध पतन	,,
१३२. सुदर्शन सुधा	सुदर्शन

१३३. तीर्थयात्रा — सुदर्शन
१३४. सुप्रभात — सुदर्शन
१३५ मुकुल — सुभद्रा कुमारी चौहान
१३६. सीधे सादे चित्र — ,,
१३७. उन्माद — कमला चौधरी
१३८. परख — जैनेन्द्रकुमार
१३९. सुनीता — ,,
१४०. मरी खाल की हाय — आचार्य चतुरसेन शास्त्री
१४१. उत्सर्ग — ,,
१४२. महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक लक्ष्मीनारायण
१४३. राजमुकुट — गोविन्दवल्लभ पंत
१४४. जूनिया — ,,
१४५. राखी — द्विवेदी
१४६. रूपराशि — डा० रामकुमार वर्मा
१४७. जीवन संगीत — जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द
१४८. प्रताप-प्रतिज्ञा — ,,
१४९. रेणुका — रामधारीसिंह दिनकर
१५०. इतिहास के आंसू — ,,
१५१. दिल्ली — ,,
१५२. हुँकार — ,,
१५३. अशोक — लक्ष्मीनारायण मिश्र
१५४. रक्षा-बन्धन — हरिकृष्ण प्रेमी
१५५. शिव-साधना — ,,
१५६. गोविन्ददास ग्रन्थावली — सेठ गोविन्ददास
१५७ राजसिंह — चतुरसेन शास्त्री
१५८. दुर्गावती — बदरीनाथ भट्ट
१५९. भैरवी — सोहनलाल द्विवेदी
१६०. पंजाब-केसरी — जमानादास मेहरा
१६१. अस्सी कहानियां — विनोदशंकर व्यास
१६२. पुरुष और नारी — राधिकारमणप्रसाद सिंह
१६३. बेनापुरी ग्रन्थावली : भाग १ — बेनीपुरी प्रकाशन, मुजफ्फरपुर
१६४. सत्तर श्रेष्ठ कहानियां — उपेन्द्रनाथ अश्क
१६५. पतिता की साधना — भगवतीप्रसाद वाजपेयी
१६६ प्रेमपथ — ,,
१६७. त्यागमयी — ,,
१६८. भिखारिणी — ,,

१६९. राष्ट्रीय झंकार (दूसरा भाग) — संग्रहकर्त्ता-निहालचन्द वर्मा
१७०. युगान्त — सुमित्रानंदन पंत
१७१ युगवाणी — ,,
१७२. प्रारम्भिक रचनाएं — बच्चन
१७३. प्रकाश — सेठ गोविन्ददास
१७४. प्रभातफेरी — नरेन्द्र शर्मा
१७५ मधुकरी — सम्पादक-विनोदशंकर व्यास
१७६. साहित्यकार पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी अभिनन्दन ग्रन्थ
१७७. हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास — डा० दशरथ ओझा
१७८ आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत — डा० केसरीनारायण शुक्ल
१७९. हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन — डा० ब्रह्मदत्त शर्मा
१८०. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां — डॉ० नामवरसिंह
१८१. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग — डा० उदयभानु सिंह
१८२. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य — रामेश्वर शर्मा
१८३. आधुनिक हिंदी-कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां — डा०जगदीशनारायण त्रिपाठी
१८४. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त — डा० सुरेशचन्द गुप्त
१८५. साहित्य का श्रेय और प्रेय — जैनेन्द्रकुमार
१८६. आधुनिक हिंदी-कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां — डा० नगेन्द्र
१८७. कला, कल्पना और साहित्य — डा० सत्येन्द्र
१८८ हिन्दी साहित्य-विमर्श — पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी
१८९ दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि — प्रो० कामेश्वर वर्मा
१९०. प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन — डा० द्वारिका प्रसाद
१९१. हिन्दी-उपन्यास — डा० सुषमा धवन
१९२ प्रेमचंद और गांधीवाद — रामदीन गुप्त
१९३. मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता — उमाकान्त गोयल
१९४. छायावाद के गौरव चिह्न — प्रो० क्षेम
१९५. हिन्दी-काव्य में प्रगतिवाद — विजयशंकर मल्ल
१९६. भारत का स्वतन्त्रता-प्राप्ति संबंधी आन्दोलन और हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव — कीर्तिलता अग्रवाल
(अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय).
१९७. हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय भावना (साहित्य के आदिकाल सं० १८८५ ई० तक) — शैलकुमारी गुप्त
(अप्रकाशित शोध-प्रबंध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

अंग्रेजी की पुस्तकें

1. Mahatma : A Life of Mahatma Karamchand Gandhi. Published by : Vithalbhai K. Zhaven & Tandulker.
2. The Idea of Nationalism by Hans Kohn.
3. Nationalism and Internationalism by Raimsey Muir.
4. The Fundamental Unity of India.
5. Studies in Modern History—G. P. Gooch.
6. Political Science and Government—Majumdar.
7. Twentieth Century—Hans Kohn.
8. How India Wrought Her Freedom—Annie Besant.
9. Social Background of India Nationalism–A. R. Desai.
10. The legacy of the Lokmanya ; The Political Philosophy of Bal Gangadhar Tilak—Theodore L. Shay.
11. A History of Indian Nationalist Movement—Sir Verney Lovett.
12. Life of Lord Curzon—Ronald Shay.
13. The Development of Indian Political Thought —Dr. M. A. Buch.
14. Rise and Growth of Indian Nationalism—Dr. Buch.
15. India Today—R. Palme Dutt
16. The Political Philosophy of Mahatma Gandhi — Gopinath Dhawan.
17. Selections from Mahatma Gandhi—Nirmal Kumar Bose
18. Truth is God — ,, ,, ,,
19. My Religion — ,, ,, ,,
20. Centpercent Swadeshi — ,, ,, ,,
21. Hindu Dharma — ,, ,, ,,
22. Satyagrah — ,, ,, ,,
23. A Nation Builder At work—Pyarelal.
24. The Life of Mahatma Gandhi—Louis Fischer.
25. Indian Nationalist Movement and Thought —Dr. Raghuvanshi.
26. The Political Movement In India—J. N. Vajpeyi